आनंद बक्शी का जीवन और उनके गीत

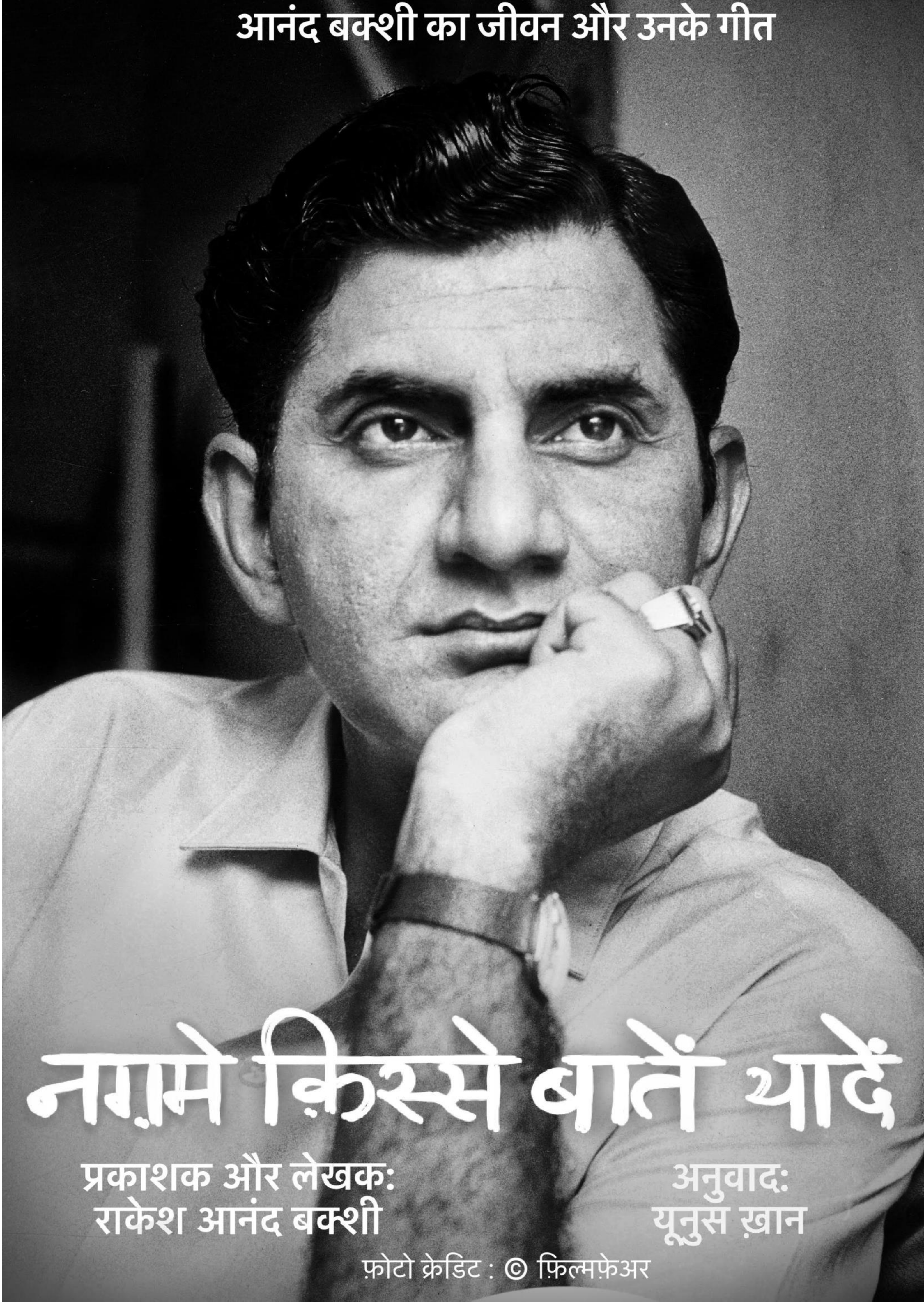

नग़मे क़िस्से बातें यादें

प्रकाशक और लेखक:
राकेश आनंद बक्शी

अनुवाद:
यूनुस ख़ान

फ़ोटो क्रेडिट : © फ़िल्मफ़ेअर

राकेश आनंद बक्शी

नग़्मे, क़िस्से, बातें, यादें

आनंद बख़्शी का जीवन और उनके गीत

राकेश बक्शी और परिवार द्वारा लिखित।
अनुवाद: यूनुस ख़ान।
डिज़ाइन और साज सज्जा: उर्वा शर्मा

राकेश आनद बक्शी

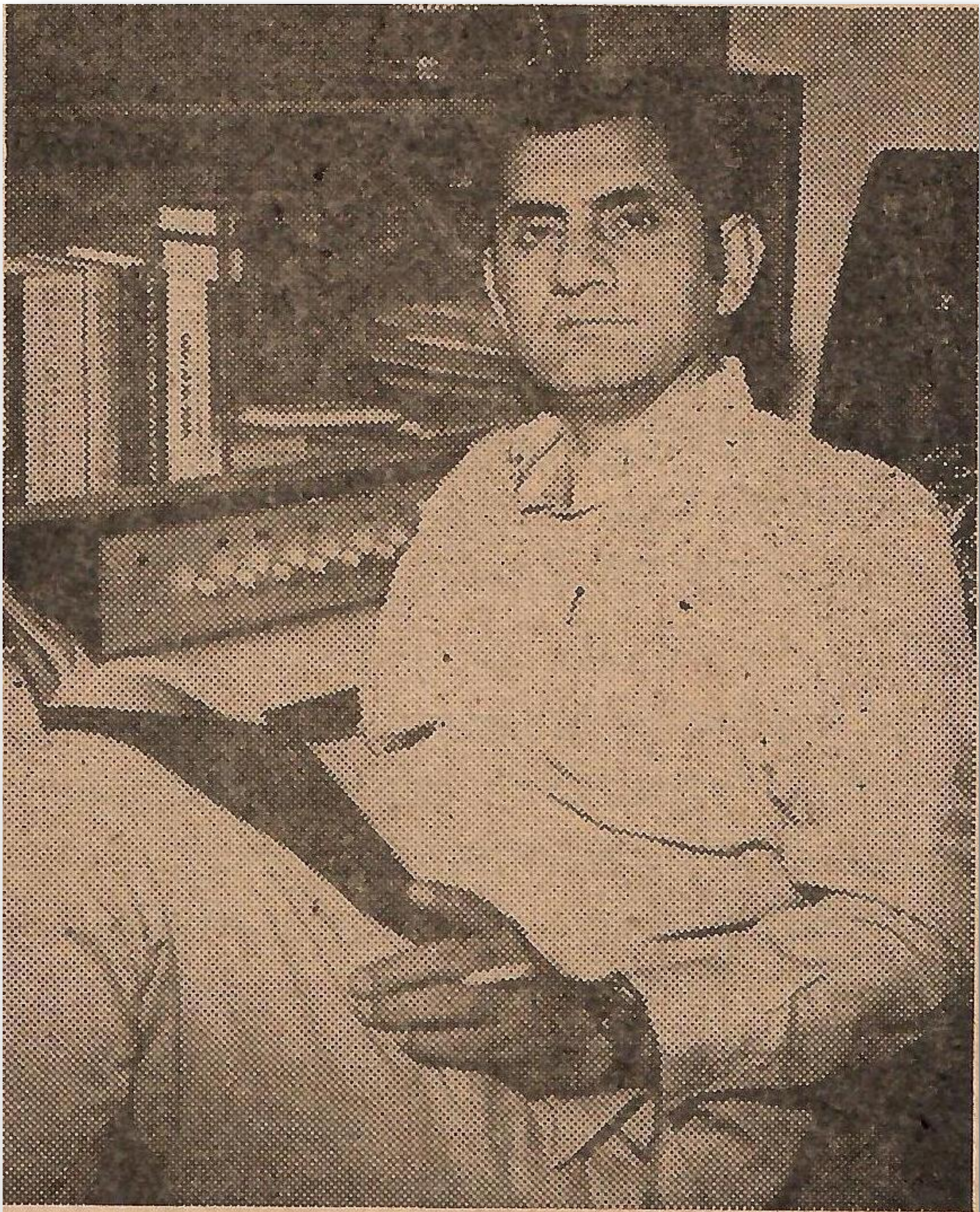

जो तकदीरोसे फिर जाए वह तदबीरे नहीं होती ।
बदल दे न जो तकदीरे वह तदबीरे नहीं होती ।।

– आनंद बक्षी

लेखक के बारे में

राकेश आनंद बख़्शी एक निर्देशक भी हैं और लेखक भी। फ़िल्म-स्क्रिप्ट और किताबों के लेखक। उनकी प्रकाशित किताबें हैं: डायरेक्टर्स डायरीज़–रोड टू देयर फ़र्स्ट फ़िल्म (प्रकाशक हार्पर कोलिन्स इंडिया) 2015, लेट्स टॉक ऑन एयर-रेडियो प्रेजेन्टर्स से बातचीत (पेंग्विन रैंडम हाउस) 2019; डायरेक्टर्स डायरीज़ 2 (पेंग्विन रैंडम हाउस) 2019; आई अडोर यू (कनिका केडिया रावल के साथ), हमारी प्यारी यादों की एक निजी डायरी।

उनके कुछ ब्लॉग भी हैं, जैसे सायकिल वाले लोगों पर ब्लॉग ब्यूटीफ़ुल बाइसाइकिल्स ब्यूटीफ़ुल पीपल। तंदुरूस्ती के दीवानों के लिए फ़िटनेस स्कल्प्टर्स। राकेश तेज़ चलने, तैराकी, साइकिलिंग, स्केटिंग और जिम के जुनूनी हैं। वो बाइसाइकिल एंजेल्स के संस्थापक हैं, यह संस्था उन्होंने अपने दोस्तों के साथ उन लोगों के लिए शुरू की है, जो साइकिल के सहारे ज़िंदगी बिताते हैं। उन्हें साइकिल दान की जाती है। सेलीब्रल पाल्सी से जूझ रहे लोगों को व्हील चेयर दान की जाती हैं। नेत्रहीनों को कंप्यूटर भी सिखाया जाता है। प्लांट अ लाइफ़ और ज्यादा पेड़ उगाने के लिए उनकी एक मुहिम है। अ बुक फ़ॉर वूमन एंड चिल्ड्रन, मदर्स लव द शेड ऑफ़ फ्लावर्स, व्हेन आइ ग्रो अप, चार से सात साल के बच्चों के लिए कहानियों और गतिविधियों की एक किताब पर वो इन दिनों काम कर रहे हैं। इन्हें Birch books प्रकाशित करेगी। इसके अलावा लाइट स्पीक्स पर भी काम जारी है।

अनुवादक के बारे में

यूनुस ख़ान का नाम फ़िल्म-संगीत के दीवानों में लिया जाता है। उन्होंने तकरीबन ग्यारह बरस तक देश के लोकप्रिय अख़बार दैनिक भास्कर में फ़िल्म-संगीत पर एक साप्ताहिक कॉलम लिखा–'स्वर पंचमी' जो गुजराती में भी अनूदित होता रहा। इन दिनों वे हर सप्ताह लोकमत समाचार में 'ज़रा हटके' लिख रहे हैं। संगीत पर केंद्रित उनका ब्लॉग 'रेडियोवाणी' संगीत के दीवानों के

राकेश आनंद बख़्शी

लिए बहुत ज़रूरी मंच रहा है। ऑडियो बुक्स से भी पहले के समय में उन्होंने ऑडियो कहानियों का अपना ब्लॉग शुरू किया था, 'कॉफ़ी-हाउस' जिसमें देश विदेश के साहित्यकारों की कहानियों के ऑडियो मौजूद हैं।

वे एक कवि भी हैं और हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनकी कविताएं छप चुकी हैं।

तमाम साहित्यिक पत्रिकाओं में उन्होंने सिनेमा पर लगातार लिखा है। बीते दिनों मुंबई के सिनेमाघरों के इतिहास पर उनका शोध लेख राजकमल ने छापा और ख़ासा चर्चित रहा। उन्होंने महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन के चुनिंदा प्रेम-पत्रों का भी अनुवाद किया है, जो चर्चित पत्रिका 'पहल' में छपा।

यूनुस ख़ान ने गुलज़ार पर केंद्रित एक चर्चित पुस्तक का भी अनुवाद किया है जो जल्द ही प्रकाशित होगी। इन दिनों वे फ़िल्म-संसार के एक महत्वपूर्ण गीतकार पर अपनी पुस्तक पर काम कर रहे हैं। वे अनुवाद की दुनिया में तकरीबन दो दशकों से सक्रिय रहे हैं। वो विविध भारती सेवा में उद्घोषक हैं। देश भर के श्रोता उनकी आवाज़ और अदायगी को पसंद करते रहे हैं।

राकेश आनंद बक्शी

डिजिटल संस्करण को मुफ़्त में पढ़ने के लिए आप पाँच सौ रूपए तक दान कर सकते हैं। यह संस्करण हम आपके लिए मुफ्त में उपलब्ध करवा रहे हैं। आप इस संस्करण की लागत के पैसे अपनी मर्ज़ी से किसी संस्था को दान में दे दें। या फिर ग़रीबों को पाँच सौ रूपए तक का भोजन करवा दें। शुक्रिया।

- आनंद प्रकाश बख़्शी
- राकेश आनंद बक्शी

राकेश आनंद बख़्शी द्वारा प्रकाशित

सर्वाधिकार सुरक्षित

संपर्क: rakbak16@gmail.com

इंस्टाग्राम और ट्विटर हैंडल- @rakbakx

अनुवादक- यूनुस ख़ान

आवरण और साज-सज्जा- उर्वा शर्मा

Amazon Kindle e-book ASIN: B097RPX2KG

कॉपीराइट @ राकेश आनंद बख़्शी **July 21st 2021 Edition**

“वो होते हैं किस्मत वाले जिनकी मां होती है”
-- आनंद प्रकाश बख़्शी

हम आनंद बख़्शी के बच्चे अपनी इस कोशिश को अपनी मां जी को समर्पित करते हैं। और बख़्शी साहब के चाहने वालों और सुनने वालों को।

बख़्शी परिवार, दत्त परिवार, बाली परिवार, सूद परिवार और मेहरा परिवार।

विषय-सूची ॐ

परिचय 1 राकेश आनंद बक्शी - page **11**
परिचय 2 राकेश आनंद बक्शी - page **23**
प्रस्तावना “पैसे तो हम नौकरी कर के कमा सकते हैं, मगर...” नंद (राकेश आनंद बक्शी) - **25**
प्रस्तावना फ़िल्म-लेखक सलीम ख़ान - **27**
प्रस्तावना फ़िल्म-लेखक, गीतकार और शायर जावेद अख़्तर - **33**
प्रस्तावना सुमन विनय दत्त (सबसे बड़ी बेटी) - **35**
एक गीतकार की यात्रा (नीरा बख़्शी) आनंद बख़्शी की भांजी - **41**
प्रस्तावना वो तदबीरें नहीं होतीं। - आनंद प्रकाश बख़्शी - **42**
अध्याय 1 1930-1944 **आनंद की पैदाइश - 46**
अध्याय 2 1944-1947 **जो नहीं बंट सकी वो चीज़ रह गयी** - **72**
अध्याय 3 1947-1950 **मेरी ज़िंदगी का मक़सद - 87**
अध्याय 4 1950-1951 **यहां मैं अजनबी हूं - 106**
अध्याय 5 1951-1956 **एक बेटी ने जन्म दिया एक पिता और गीतकार को - 121**
अध्याय 6 1955-1959 **ज़िंदगी हर क़दम इक नई जंग है - 155**
अध्याय 7 1959-1967 **काग़ज़ कलम दवात- कलम के ज़रिए चोटी तक का सफ़र -176**
अध्याय 8 **रूहानी रोशनी और ताक़त वाली शख़्सियत - 264**
अध्याय 9 **मुश्किल में है कौन किसी का - 335**
अध्याय 10 साल 2000 से 2022 **सबसे अच्छी ख़बर ये है कि मैं ज़िंदा हूं** - **347**
अध्याय 11 **आनंद बख़्शी को श्रद्धांजलि- दीवाने तेरे नाम के, खड़े हैं दिल थाम के - 368**
उपसंहार 1- **मैं वक़्त का मुरीद हूं- आनंद बख़्शी - 405**
उपसंहार 2- **ज़िंदा रहती हैं मुहब्बतें- यूनुस ख़ान** (अनुवादक, लेखक, कॉलमिस्ट, रेडियो उद्घोषक) - **412**
किंवदंती थे बख़्शी - 419
मेरे पसंदीदा - राकेश आनंद बक्शी **- 419**
आनंद बख़्शी के करियर के मुख्य आकर्षण (सन 1956 से 2002) - 423
आभार - 430
प्रेम और प्रेरणा के लोकप्रिय गीतकार - डॉ. इंद्रजीत सिंह **- 437**
आनंद बक्शी के एक दीवाने की चिट्ठी - मनोज पंचारिया (ख़ाकसार) - **443**

(These page numbers are valid for the website PDF edition only; not for the Kindle e-book edition.)

बख़्शी

परिचय 1

एक बेटा याद कर रहा है अपने डैडी को, एक ऐसे गीतकार जो चार दशकों तक संगीत-जगत पर छाए रहे।

आदमी मुसाफिर है।

“आदमी मुसाफ़िर है, आता है जाता है, आते जाते रस्ते में यादें छोड़ जाता है”
(फ़िल्म अपनापन)

डैडी की सबसे प्यारी याद वो है, जब हमारा पूरा परिवार साल में एक बार महाबलेश्वर जाता था, छुट्टियां मनाने के लिए। ये तस्वीर वहीं झील के किनारे ली गयी थी:

ये वो ग्रीटिंग कार्ड हैं, जो मैं डैडी को उनके जन्मदिन पर बनाकर देता था। :) मुझे पता था कि उन्हें हाई-ब्लड प्रेशर है और जब वो बहुत सारा मीट खा लेते हैं तो उनका कोलोस्ट्रोल भी बढ़ जाता है।

इस अध्याय की शुरूआत में मैं ज़िक्र करना चाहता हूं चंदू बारदानावाला साहब से हुई मेरी बातों का। चंदू भाई आनंद बख़्शी के बहुत ही ज़बर्दस्त फ़ैन हैं। एक बार चंदू भाई मेरे घर आए थे, एकदम वापस लौटते वक़्त उन्होंने पूछा, "क्या आपको गर्व नहीं होता कि आप आनंद बख़्शी के बेटे हैं?"

मैंने सोचा, 'हम्मममम, पर मैं उस चीज़ पर कैसे गर्व करूं, जो मैंने ख़ुद हासिल नहीं की, वो तो मुझे विरासत में मिली है। ये तो ऊपर वाले की मेहरबानी है?' तो मैंने उन्हें जो जवाब दिया वो आधा सच था, "मुझे अपने डैडी पर गर्व है"

मैंने देखा कि मेरी इस ख़ुशनसीबी को देखकर उनका सीना थोड़ा फूल गया था, "बख़्शी साहब अपने पीछे गानों की विरासत छोड़ गए हैं, उनके गानों में जाने कितनी प्रेरणा छिपी है, इसलिए तुम्हें गर्व होना चाहिए कि आनंद बख़्शी तुम्हारे डैडी थे"

एक और घटना का ज़िक्र करना चाहता हूं, पत्रकार और लेखक डॉक्टर राजीव विजयकर बख़्शी साहब के निधन के बाद मुझसे मिले, उन्हें स्क्रीन वीकली के लिए एक फ़ीचर करना था। उन्होंने मुझे निर्देशक राज खोसला और आनंद बख़्शी के बीच हुई एक जज़्बाती घटना के बारे में बताया। सन 1966 में गीतकार राजा मेहदी अली ख़ां का इंतकाल हो गया। उन्होंने फ़िल्म 'अनीता' (1967) के सारे गाने लिखे थे। राज खोसला ने राजीव को बताया कि संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने मुझे आनंद बख़्शी का नाम सुझाया। इस तरह बख़्शी साहब ने फ़िल्म में ये गाना लिखा—'है नज़र का इशारा, संभल जाईये'। इस गाने में दोनों गीतकारों का नाम गया। जब राज खोसला ने आनंद बख़्शी को गाना लिखने का मेहनताना देना चाहा, तो बख़्शी साहब ने कहा कि ये फ़ीस राजा मेहदी अली ख़ान साहब की बीवी को दे दी जाए। अगर कोई रईस इंसान अपनी फ़ीस लेने से इंकार कर दे तो बात अलग है। पर यहां बख़्शी साहब अपना करियर खड़ा करने की कोशिश में थे, पाँच लोगों के परिवार की ज़िम्मेदारी उन पर थी। सात सालों से वो परिवार से अलग मुंबई में रह रहे थे। इसलिए क्योंकि उनकी हैसियत नहीं थी कि सबको यहां अपने साथ रख सकें। इसके बावजूद उन्होंने अपनी फ़ीस ये सोचकर छोड़ दी कि वो लोग मुझसे ज़्यादा ज़रूरतमंद हैं। ये इंसानियत और मदद की एक मिसाल है।

शायर और गीतकार विजय अकेला, गायक मनोहर अय्यर और इनके अलावा बहुत सारे ऐसे लोग थे जिन्होंने मुझे प्रेरित किया कि मैं उनके बारे में किताब लिखूं।

जब इस तरह की घटनाएं मैंने सुनीं, उनके गीत मैंने मीडिया में हर जगह बजते देखे, तो मुझे ये महसूस हुआ कि मैं एक बेहतर बेटा और एक बेहतर भाई बन सकता था। जज़्बात का ऐसा सागर लहराया कि मैंने अपने परिवार और बख़्शी साहब के चाहने वालों के लिए ये किताब लिखने का फ़ैसला किया।

शांतनु राय चौधरी वो पहले प्रकाशक थे, जिन्होंने मुझे इस किताब के लिए सन 2012 में प्रेरित किया था। मैंने शांतनु से कहा कि मैं सन 2002 से लिख रहा हूं और क़रीब डेढ़ सौ शब्द लिखे जा चुके हैं। पर मैं तभी भेजूंगा जब मेरे नाम से कोई किताब या फ़िल्म आ जाए। क्योंकि डैडी ने मुझसे कहा था, "मेरे नाम पर कोई काम तब तक नहीं करना, जब तक कि अपना कोई काम तुम ख़ुद ना कर लो"। अपना ख़ुद का कुछ रचने में मुझे पचास साल लग गए। बतौर लेखक मेरी पहली किताब आई- Directors' Diaries -The Road To Their First Film, जिसे सन 2015 में हार्पर कोलिन्स इंडिया ने छापा।

मैं सन 2002 से जो कुछ लिख रहा था, उसे सात आठ साल पहले ही मैंने एक किताब की तरह देखना शुरू किया। मुझे ये लग रहा था कि अपने पिता के बारे में अगर मैं लिखूंगा तो ये माना जायेगा कि बेटा होने की वजह से मैं इतनी तारीफ़ कर रहा हूं। पर मैं ग़लत था।

संस्करणों पर आधारित इस किताब को लिखने का जो सबसे बड़ा इनाम मुझे मिला, वो ये कि मैं अपने भाई-बहनों के और क़रीब आ गया। मैंने उनका महत्व समझा। मुझे ये अहसास हुआ कि हमारे मम्मी-डैडी के लिए हम चार बच्चे सबसे ज़्यादा मायने रखते थे। कभी-कभी मुझे लगता था कि बख़्शी साहब के लिए उनके गाने सबसे ज़्यादा मायने रखते हैं।

परिवार की पहली तस्वीर जो कहीं छपी थी:

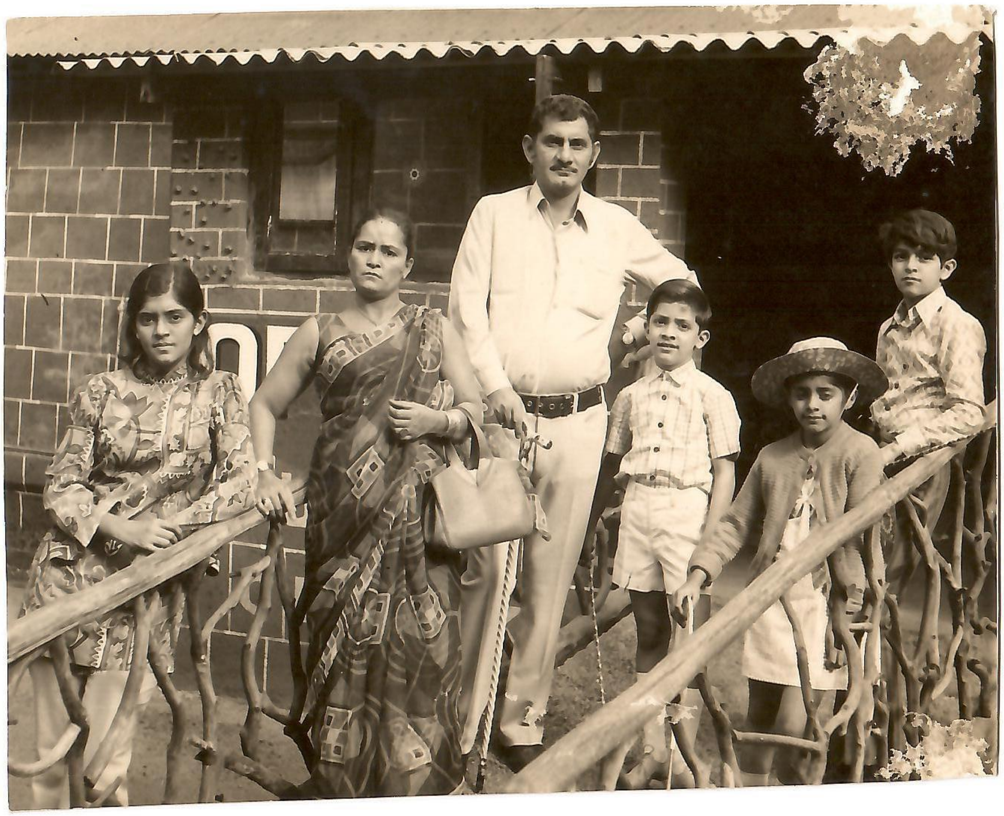

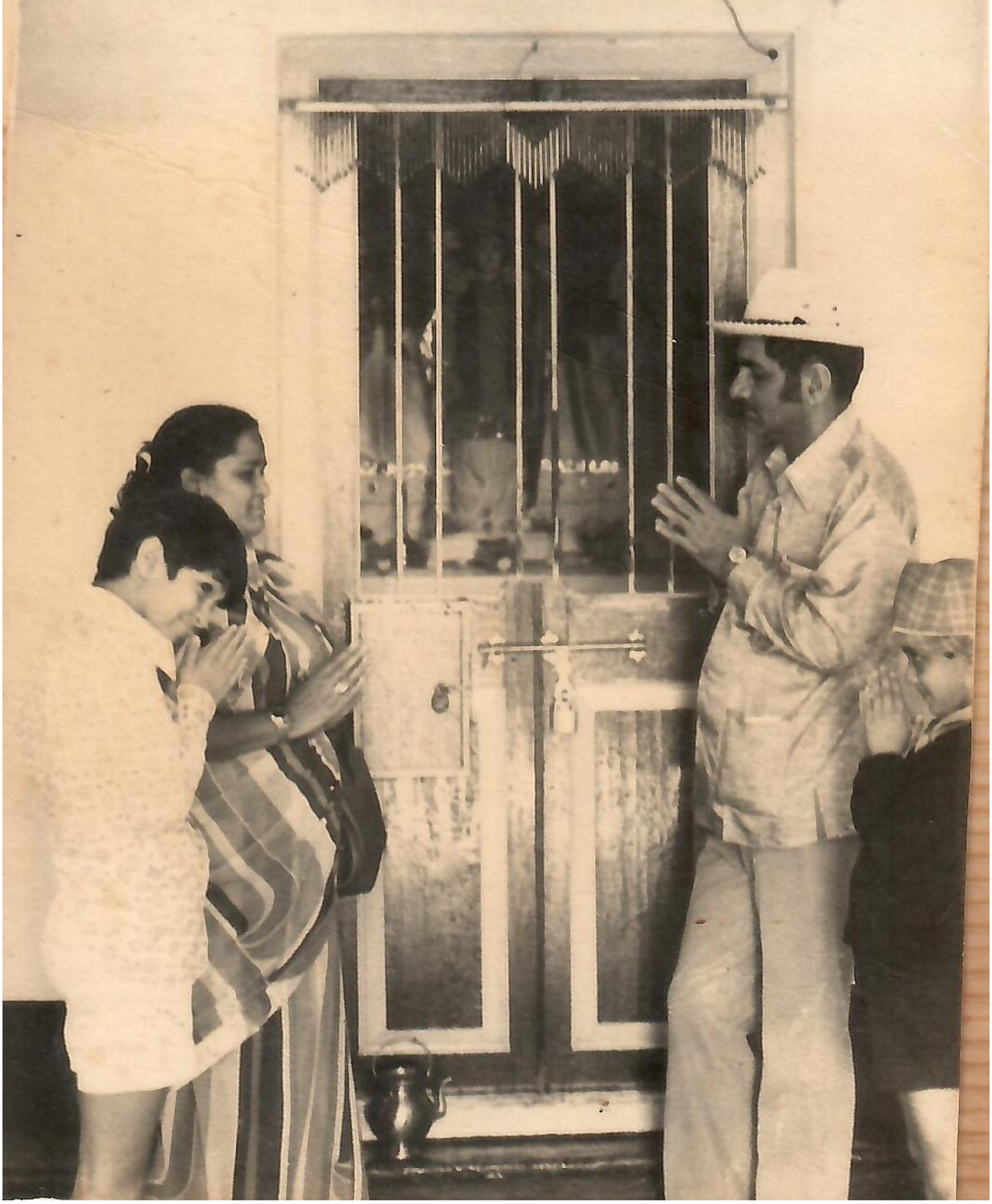

आनंद बख़्शी के बच्चे यानी हम सब। सन 2019

बाईस जून 1995. कभी कभी मैं कुछ ऐसा कह देता था जिससे उन्हें दुःख पहुंचता था। इसका मुझे अफ़सोस है। मुझे लगता है मैंने कई बार उन्हें दुःख पहुंचाया। एक बार तो वो कह उठे थे कि काश तुम्हारी बजाय मेरी बेटी होती, तो दो बेटियां हो जातीं। उन्होंने एक बार ख़ुद के लिए एक नोट टाइप किया था, क्योंकि मेरा बर्ताव उनके प्रति ठीक नहीं था।

कभी-कभी मैं उन्हें इस तरह के कार्ड बनाकर देता था, और माफी मांगता था कि मैंने उन्हें दुःख पहुंचाया है। ये कार्ड मैंने सन 1989 में बनाया था। “हमसे भूल हो गयी, हमका माफ़ी दै दो’ (राम-बलराम) :)

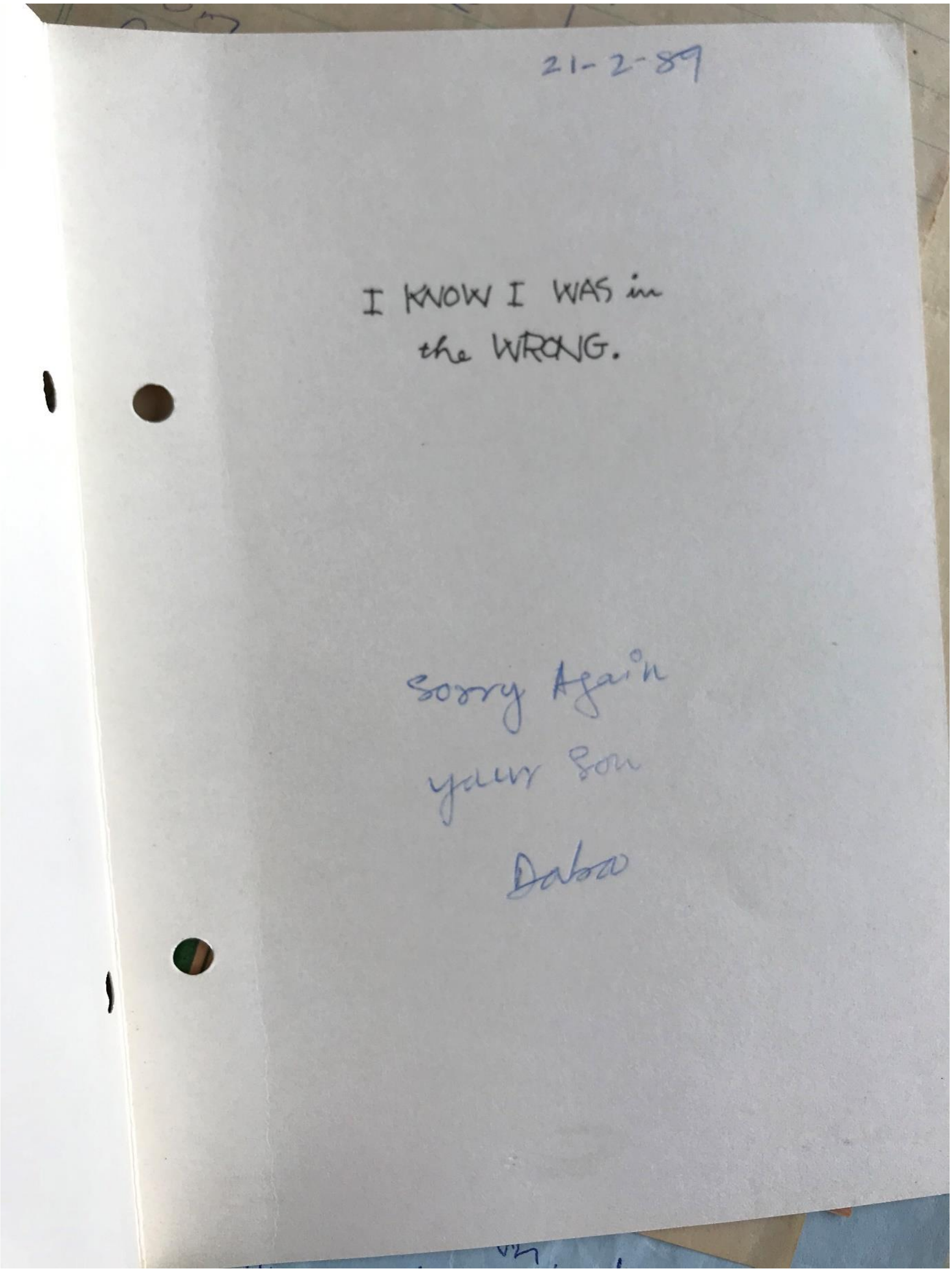

बीस अगस्त 1982. हमने उन्हें 'गेट वेल सून' का कार्ड भेजा था–ये तब की बात है जब पहली बार उन्हें दिल का दौरा पड़ा और वो ठीक होकर आए थे। उन्होंने लिखा है--"ईश्वर ने मुझे

इसलिए बचाया है ताकि मैं तुम सबको प्यार कर सकूं। बहरहाल....ये मुझे मिला अब तक का सबसे अच्छा कार्ड है। डॉ. गांधी ओर डॉ. शरद पांडे का भी मैं शुक्रगुज़ार हूं''

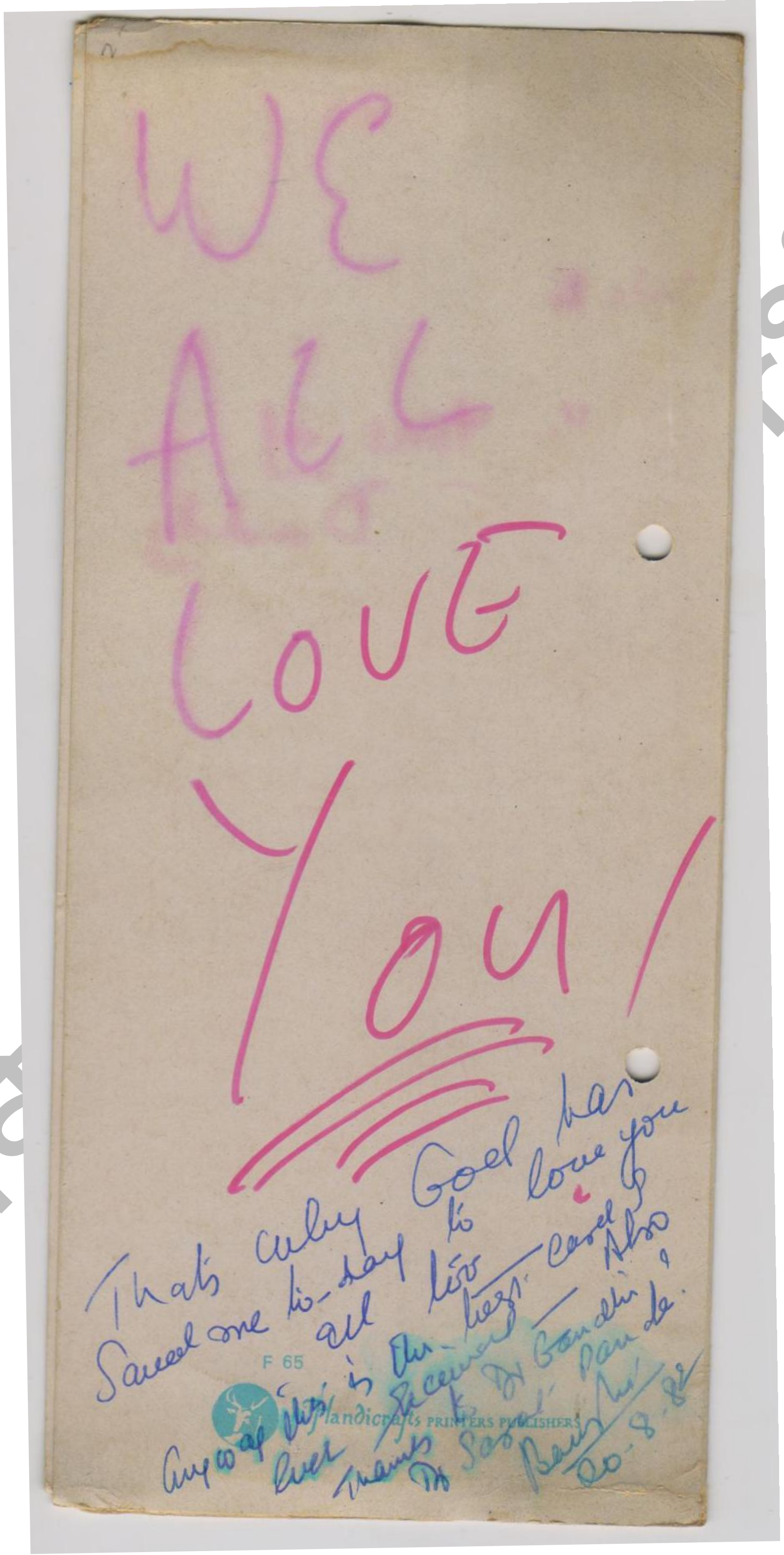

ये हमारे पूरे परिवार की पहली तस्वीर है। 1970 के ज़माने में जब पापा ने पहला घर ख़रीदा था तब वहां ली गयी थी।

परिचय 2

अपने पिता मशहूर गीतकार आनंद बख़्शी की जीवनी लिखने की प्रेरणा सबसे पहले मुझे उनके दीवानों, क़रीबी दोस्तों और मेरी पहली किताब के प्रकाशक शांतनु रॉय चौधरी ने सन 2012 में दी थी। मैंने शांतनु से कहा था कि मैं सन 2002 से इस पर काम कर रहा हूं और मैंने डेढ़ सौ पेज तो लिख भी लिए हैं, पर मैं ये तभी भेज सकूंगा जब मैं अपने नाम से कोई पुस्तक लिख लूंगा या कोई फिल्म बना लूंगा, क्योंकि डैडी ने हमेशा मुझसे कहते थे, 'मेरे दुनिया से जाने के बाद तब तक मेरे नाम पर कुछ मत करना जब तक कि तुम अपने नाम से कुछ नया रच ना लो'। और अपना कुछ रचने में मुझे पचास साल लग गये। एक लेखक के रूप में मेरी पहली किताब आई, 'डायरेक्टर डायरीज़-द रोड टू देयर फ़र्स्ट फ़िल्म' ये किताब सन 2015 में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद ही मैंने आनंद बख़्शी की जीवनी के लिए प्रकाशक खोजना शुरू किया और आख़िरकार पेंग्विन रैंडम हाउस से इसका अंग्रेज़ी संस्करण छपकर आपके सामने आ रहा है।

सन 2002 से मैं जो कुछ भी लिखे जा रहा था, उसे एक 'किताब' की शक्ल में सोचना मैंने बस सात-आठ साल पहले ही शुरू किया। मुझे ये लगता था कि मैं अपने डैडी के सबसे ज़्यादा क़रीब था, इसलिए मुझे उनके बारे में नहीं लिखना चाहिए क्योंकि ये एक तरह से अपने पिता को हीरो की तरह पेश करने जैसा हो जायेगा। पर मैं ग़लत था। इस किताब को लिखने का जो सबसे बड़ा ईनाम मुझे मिला है वो ये कि मैं अपने भाई-बहनों के और क़रीब आ गया हूं। अब मैं उन्हें उतने हल्के में नहीं लेता, क्योंकि इतने बरसों बात अब मुझे ये समझ में आ गया है कि मेरे मम्मी-पापा के लिए हम चार बच्चे सबसे ज़्यादा मायने रखते थे। बख़्शी साहब के लिए उनके गाने भी उतने मायने नहीं रखते थे जितने हम सब। जब वो ज़िंदा थे तो मुझे कभी-कभी लगता था कि उनके लिए उनके गाने हमसे ज़्यादा मायने रखते हैं। पर जब मैंने इस किताब के लिए खोजबीन करनी शुरू की और इसे लिखना शुरू किया तो मुझे अहसास हुआ कि मैं ग़लत था।

इस किताब को लिखते हुए मुझे ये भी अहसास हुआ कि हमारे परिवार को विरासत में बख़्शी साहब के प्रेरणा देने वाले, मनोरंजन करने वाले और आज तक प्रासंगिक बने हुए गाने ही विरासत में नहीं मिले हैं–जिनकी याद उनके दीवाने मुझे जब-तब दिलाते रहते हैं। या अकेली उनकी शोहरत भी हमें विरासत में नहीं मिली है। बल्कि हमारी विरासत वो भी है जो उनसे और उनके परिवार से छीन ली गयी थी, उनकी तरह लाखों लोग थे, जिनसे वो सब कुछ छिन गया था जब सन 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप का बंटवारा हुआ था। मुझे लगता है कि हमारी असली विरासत है....उनका धीरज, हालात के मुताबिक़ ख़ुद को ढाल लेने की काबलियत और उनका हौसला- जिससे उन्होंने अपनी ही ज़िंदगी नहीं बनायी बल्कि अपने परिवार को भी

राकेश आनंद बक्शी

संवार दिया। उन्होंने हमेशा हम पर वैसे ही नज़र रखी जैसे वो अपने गीत या अपनी डायरी लिखते हुए अपनी कलम की नोंक पर रखते थे।

इस किताब में कल्पा शाह मनियार के लिखे कुछ निबंध भी हैं, जिन्होंने मुंबई में बख़्शी साहब की शुरूआत के बारे में काफी विस्तार से खोजबीन की है। मुझे इससे काफ़ी कुछ पता चला। मुझे नहीं पता था कि फ़िल्म संसार में उनकी शुरूआत किस तरह की रही थी। कल्पा के लिखे अध्याय ने बख़्शी साहब के बारे में मेरी सीमित जानकारी को आगे बढ़ाया है और इससे ये किताब और भी समृद्ध बन गयी है।

हालांकि, इससे पहले कि हम समय में पीछे चलें और देखें कि कहां और कब नंद पैदा हुए थे, नंद यानी आनंद बख़्शी, मैं ये स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं कोई हिंदी फ़िल्मी गीतों का विशेषज्ञ नहीं हूं, मैं एक बेटा हूं जो अपने पिता के ज़िंदगी के सफ़र के बारे में एक किताब लिख रहा है। मुझे जो कुछ भी थोड़ा पता है और जो कुछ उनके गीतों के ज़रिये मैंने जाना है, वो मैंने इसमें शामिल किया है। इस पुस्तक में मैंने जो कुछ भी लिखा है वो सब मेरी जमा की गयी जानकारी नहीं है, इसमें से कई बातें उनके सैकड़ों दीवानों ने मुझे बतायी हैं जिसने मेरी मुलाक़ात होती रही है। इसके अलावा डैड और हमारे परिवार के सदस्यों या रिश्तेदारों से जो कुछ मैं सुनता चला आया हूं वो भी इसमें शामिल है। जहां भी 'मैं' वाली बातें आयी हैं उनमें से ज़्यादातर मैंने आनंद बख़्शी की डायरियों या जर्नल से ली हैं- क्योंकि मैं चाहता था कि जो कुछ भी किताब में आये वो एकदम विश्वसनीय लगे और ऐसा लगे कि जैसे वही बता रहे हैं।

मुझे इंतज़ार रहेगा आप पाठकों, बख़्शी साहब के दीवानों और पत्रकारों की प्रतिक्रियाओं और सुझावों का। उन तमाम लोगों को जिन्होंने बख़्शी साहब पर काम किया है या जो उनके गानों को जानते हैं। गाने से जुड़ी उन घटनाओं का भी इंतज़ार रहेगा जिनके बारे में आपको पता है और जो इस किताब में के इस पहले संस्करण में शामिल नहीं हो सकी हैं। हम आपके सुझावों के आधार पर पुस्तक को और भी बेहतर बनायेंगे और अगले संस्करण में आपको बेशक़ीमती सुझावों को शामिल कर पायेंगे। आनंद बख़्शी के व्यक्तित्व और कृतित्व को एक पुस्तक में समेटने की ये हमारी पहली कोशिश है।

इस पुस्तक को लिखने के दौरान मैंने जो सबसे बड़ा सबक़ सीखा है वो है अपने परिवार के महत्व को और ज़्यादा समझना। अगर दुनिया में सिर्फ़ आपको ही ख़ुद पर और अपने ख़्वाबों पर भरोसा है, अपनी मंज़िल पर भरोसा है, अपनी महत्वाकांक्षा पर भरोसा है तो भी आपको बढ़ते चले जाना चाहिए। भले ही आप अकेले क्यों ना हों।
शुक्रिया, ख़ुशामदीद, मज़े से पढ़िए।

राकेश आनंद बख़्शी

प्रस्तावना "पैसे तो हम नौकरी कर के कमा सकते हैं, मगर..." नंद (राकेश आनंद बक्शी)

2 अक्तूबर 1947 का दिन था, आज दो अक्टूबर का दिन गांधी जयंती के रूप में मनाया जाता है। कुछ ही हफ़्तों पहले ही भारतीय उपमहाद्वीप का बंटवारा हो गया था और अचानक हमारे बीच एक बदनामशुदा 'रैडक्लिफ़ लाइन' खींच दी गयी थी, जिसकी वजह से लाखों लोगों को रातों-रात 'रिफ़्यूजी' की तरह यहां आना पड़ा। कई लोगों के पास एक पैसा भी नहीं था, कोई उम्मीद नहीं थी, थोड़ा-बहुत जो कुछ था, उसे समेटकर वो चल पड़े। हिंसा, बलात्कार जैसी चीज़ों का सामना किया। प्रकाश वैद बख़्शी या 'नंद' भी उन्हीं में से एक था। आपको बता दें कि उनकी मांजी उन्हें प्यार से 'नंद' पुकारती थीं और पिता उन्हें प्यार से 'अज़ीज़' कहते थे।

उस वक़्त उनकी उम्र सत्रह बरस की थी और उनका परिवार रावलपिंडी छोड़ रहा था। पाकिस्तान बन चुका था। रातों-रात उन्हें अपने पुश्तैनी घर के सुकून और हिफ़ाज़त को छोड़कर जाना पड़ा था। अब ज़िंदगी में थी तकलीफ़, बेइज़्ज़ती, जज़्बाती और आर्थिक तूफ़ान और असुरक्षा। ये भी भरोसा नहीं था कि ज़िंदगी बचेगी या नहीं। ग्यारह बरस पहले 'नंद' ने इससे भी बड़ी तकलीफ़ सही थी। अपनी मां मित्रा को खो देने की तकलीफ़, जिन्हें वो 'मां जी' कहकर पुकारते थे। उस वक़्त नंद छह बरस के थे जब पेट में एक और बच्चा था, सेहत बिगड़ी और उनकी मां चल बसीं।

बख़्शी परिवार एक डकोटा विमान से रावलपिंडी से सुरक्षित दिल्ली आ गया, क्योंकि डैड के बाऊजी पुलिस के सुप्रिंटेन्डेन्ट थे। पंजाब की जेलों, लाहौर और रावलपिंडी के इंचार्ज। जब ये संयुक्त परिवार बदहवासी में बॉर्डर के पार भागा, अफ़रा-तफ़री में जो कुछ भी ले सकते थे पैसे, कपड़े या निजी सामान—वो परिवार ने समेट लिया। इस परिवार में थे नंद के सौतेले भाई-बहन, सौतेली मां, पापाजी और उनके नाना-नानी, बाऊ जी और बी जी। ये लोग फ़ौजी ट्रक में चढ़े और वहां से उन्हें डकोटा प्लेन में चढ़ा दिया गया। उनके बुज़ुर्गों को ये ख़बर मिली थी कि उनके पड़ोस के मुहल्ले पर कभी भी दंगाईयों का हमला हो सकता है।

हालात ने इस परिवार को 'रिफ़्यूजी' बना दिया था। अपनी जड़ों से कटा ये बदहवास परिवार अगले दिन दिल्ली पहुंचा, जहां बाऊ जी की बहन वंति का बेटा उन्हें लेने आया। इस परिवार के साथ ये लोग कुछ घंटे देव नगर में रहे और फिर पूरा (पुणे) चले गये ताकि अपना रिफ़्यूजी रजिस्ट्रेशन करवा सकें। जब ज़रा-सा सुकून मिला, हालात को समझ सके और सोचने का वक़्त मिला तो बाऊ जी और पापा जी ने अपने बुज़ुर्गों से पूछा, आप लोग घर से क्या-क्या लेकर आए हैं। ये बात सत्रह बरस के नंद से भी पूछी गयी कि मिलेट्री के ट्रक पर चढ़ने से पहले उसने क्या-क्या अपने साथ लिया था। डैड ने बताया कि उन्होंने परिवार की तस्वीरें ले ली थीं। उनमें से कुछ तस्वीरें उनकी मां जी की थीं। जब ये बात सुनी तो परिवार के लोग उन पर

राकेश आनंद बक्शी

चिल्लाए–‘क्या बेकार की चीज़ें तुम लेकर आए हो! हम बिना क़ीमती चीज़ों के यहां कैसे परिवार चलायेंगे?’

नंद ने जवाब दिया–‘पैसे तो हम नौकरी कर के कमा सकते हैं, मगर मां की तस्वीर अगर पीछे रह जाती तो मैं कहां से लाता? मुझे तो मां का चेहरा भी याद नहीं। इन तस्वीरों के सहारे ही मैं आज तक जीता आया हूं’।

हिसार हरियाणा साल 1936

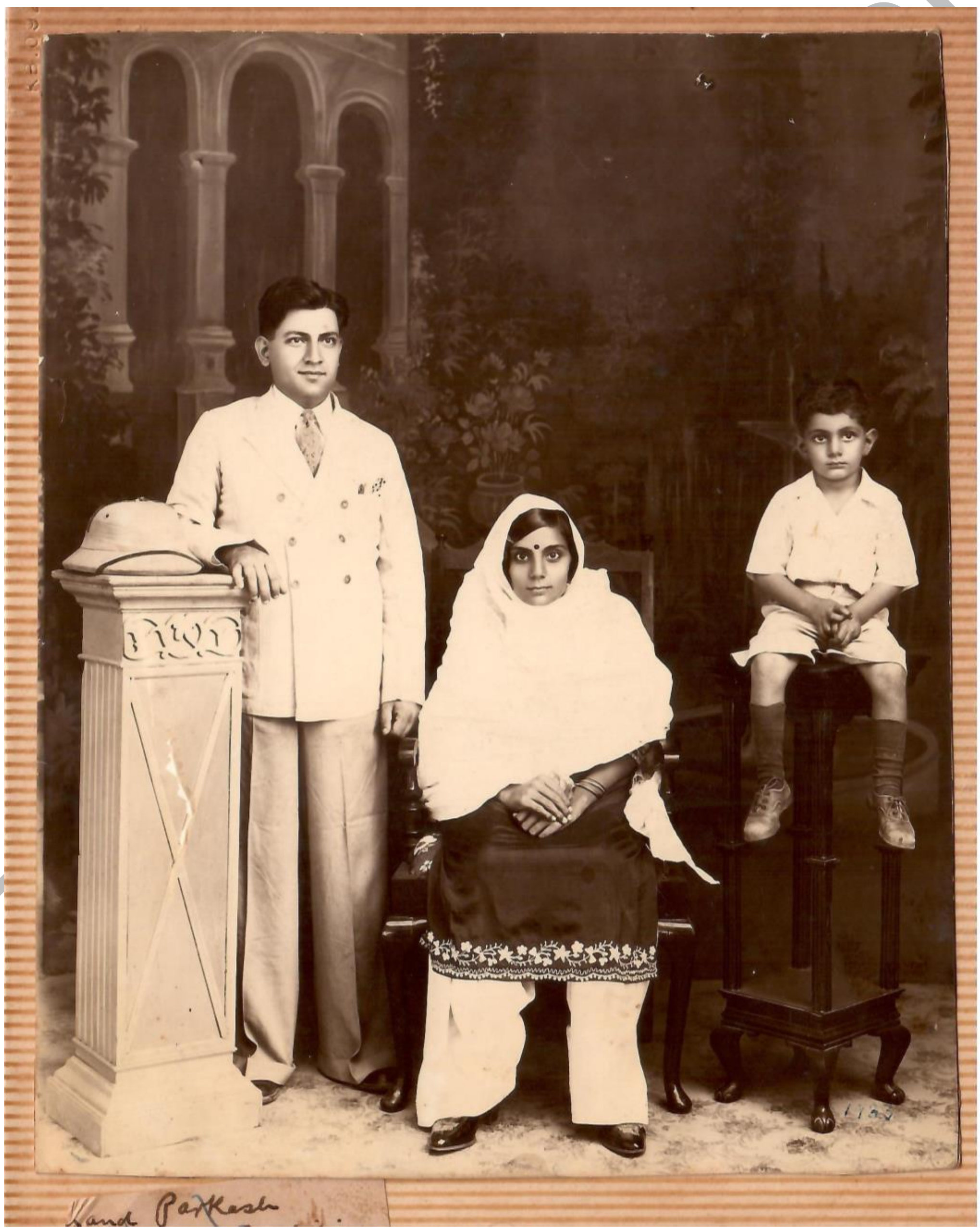

\- राकेश आनन्द बख़्शी

प्रस्तावना - सलीम ख़ान

जब भारत में किसी बच्चे का जन्म होता है तो ना सिर्फ माता-पिता उसकी राशि के मुताबिक़ उसे एक सही नाम देते हैं, बल्कि किसी अच्छे ज्योतिषी से उसकी कुंडली भी तैयार करवाते हैं। ये कोई आम परंपरा नहीं है, क्योंकि इससे बच्चे की एक छबि बन जाती है, ये विचार जीवन भर बच्चे के साथ चलता है। कुछ लोग जो अंधविश्वासी होते हैं, अपने बच्चे का कोई कमज़ोर या बेकार नाम रख लेते हैं। मेरे परिचित कई रईस लोग रहे हैं, जिनके नाम ऐसे थे कि उनकी हैसियत या उनके किरदार से एकदम उल्टे लगते थे। मैं कई ऐसे ग़रीब लोगों को जानता हूं जिनके नाम से ऐसा लगता है मानो वो बहुत ही ज्यादा रईस हैं। पर कई लोग ऐसे होते हैं, जो साबित कर देते हैं कि उनका नाम एकदम सही रखा गया है। पंजाब के एक छोटे-से गांव में पैदा हुए एक बच्चे का नाम रखा गया 'आनंद' यानी ख़ुशी और बख़्शी यानी 'तोहफ़ा'। वो अपने मां-बाप के लिए एक तोहफ़ा थे। अपनी पूरी ज़िंदगी ये कवि-गीतकार अपने लाखों-करोड़ों सुनने वालों को ख़ुशियों का तोहफ़ा ही बांटता रहा। ऊपर वाले ने उसे कविता लिखने का तोहफ़ा दिया था। बहत्तर सालों की अपनी जिस्मानी ज़िंदगी और पचास सालों से ज़्यादा की अपनी पेशेवर ज़िंदगी में उसने अपनी कविता से अनगिनत लोगों को लुभाया। बहुत कम लोग आनंद बख़्शी की तरह ख़ुशनसीब और प्रतिभाशाली होते हैं कि वो अपने नाम और अपने नसीब को इतनी ख़ूबसूरती और अदा के साथ निभाते हैं।

भारत की आज़ादी के दिनों में बहुत कम समाजवादी शायरों ने फ़िल्मी गाने लिखे, जैसे जोश मलीहाबादी, साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी, शैलेंद्र वगैरह। उन दिनों के गीतकारों पर देशभक्ति का रंग चढ़ा था। वो राजनीतिक रूप से जागरूक भी थे और इसका असर उनके फ़िल्मी गानों पर भी नज़र आता है। किसी देश की राजनीति से आपका जुड़ाव होना या आपका किसी ख़ास विचारधारा के पक्ष में होना ग़लत नहीं है। ये हर कवि का अधिकार है कि वो अपने विचारों या धारणा पर चले। मैंने जिन कवियों-शायरों का ज़िक्र किया उन सबने कमाल के गीत लिखे हैं, लेकिन आनंद बख़्शी कभी किसी समाजवादी या राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित या जुड़े नहीं थे। वह पहले और अकेले फिल्मी गीतकार थे, जो अपने काम में पूरी तरह से डूबे हुए थे और उनके गीत फ़िल्म की कहानी और उसके किरदारों से निकलकर आते थे। उन्होंने कभी कविता की दुनिया में नाम कमाने की तमन्ना नहीं की, पर फ़िल्मी गानों की दुनिया में उनसे बेहतर कोई नहीं था। जिस तरह वो फ़िल्मी गाने एकदम सहजता से लिखते थे, उसे देखकर लगता है कि मानो वो दुनिया में एक बेहतरीन फ़िल्मी गीतकार बनने की तकदीर लेकर ही आए थे।

उस ज़माने में शैलेन्द्र, राजा मेहदी अली ख़ां, प्रेम धवन जैसे कई गीतकार पहले से ही सक्रिय थे। ज़ाहिर है कि कोई मौक़ा नहीं था और कोई भी इन दिग्गजों के सामने खड़ा नहीं हो सकता था, ख़ासकर एक मामूली फ़ौजी जो गीतकार बनने का सपना देख रहा था। उस ज़माने के कई

राकेश आनंद बख़्शी

मशहूर फ़िल्मी-संगीतकारों के अपने अपने पसंदीदा गीतकार थे और वो उन्हीं के साथ काम करके ख़ुश थे, इसलिए आनंद बख़्शी के पास कोई गुंजाइश नहीं थी।

उस दौर के कई प्रसिद्ध संगीत रचनाकारों के पास पहले से ही अपने पसंदीदा कवि और गीत लेखक थे, जिनके साथ काम करके वे खुश थे, इसलिए आनंद बख्शी के पास न तो कोई गुंजाइश थी और ना ही कामयाब होने का कोई मौक़ा था। ख़ासतौर पर इंदीवर और अंजान जैसे गीतकार आनंद बख़्शी के आने से पहले से सक्रिय थे और कामयाबी की राह देख रहे थे। पर ये आनंद बख्शी की हिम्मत थी कि वो सीधे ज़बर्दस्त प्रतियोगिता के तूफ़ानी समुद्र में कूद गए, जहां पहले से बहुत बड़ी मछलियां मौजूद थीं।

आनंद बख़्शी के पास मज़ाक और संगीत दोनों की गहरी समझ थी। दिलचस्प बात ये है कि उनके अंदर गहरी फ़िलॉसफ़ी को भी बहुत ही आसान और कम शब्दों में बयां करने की काबलियत थी। धीरे-धीरे लगातार उन्हें फ़िल्मों में गाने लिखने का मौक़ा मिलने लगा। वैसे भी मुंबई फ़िल्म जगत के बारे में कहा जाता है कि यहां ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो उगते हुए सूरज की किरणों और उसकी गरमी को सलाम करना और उसकी इबादत करना ना जानते हों। जब आनंद बख़्शी कामयाबी के दरवाज़े खटखटा रहे थे और वो पूरी तरह से खुले नहीं थे, ठीक उसी वक़्त एक और सूरज उग रहा था, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल का सूरज। इस जीनियस संगीतकार जोड़ी ने आनंद बख़्शी की प्रतिभा को पहचाना। इस तरह आनंद बख़्शी जल्दी ही उनके पसंदीदा और चुनिंदा गीतकार बन गये। आनंद बख़्शी, लक्ष्मीकांत और प्यारेलाल की इस तिकड़ी ने हिंदी फ़िल्मी गीतों के इतिहास को बदलकर रख दिया। इन्होंने एक साथ क़रीब 303 फ़िल्मों के गीत तैयार किए। इसी तरह की जोड़ी उनकी आर. डी. बर्मन के साथ भी बनी, जिनके साथ उन्होंने 99 फ़िल्में कीं।

बख़्शी बहुत ही सीधे-सादे, बिना दिखावे वाले और ईमानदार इंसान थे। उन्हें हवाई जहाज़ में सफ़र करने से और ऊंची इमारतों की बंद लिफ़्ट में जाने से डर लगता था। छोटी-छोटी तंग लिफ़्ट उन्हें डराती थीं इसलिए वो ऐसे लोगों या दोस्तों के पास नहीं जा पाते थे, जो ऊंची इमारतों में रहते या काम करते थे। ज़िंदगी की ऊँचाई उन्होंने सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़कर ही छूई और अपनी प्रतिभा की ताक़त से सीढ़ियां चढ़ते हुए कामयाबी के शिखर पर पहुंचे। दुनिया में कामयाबी के लिए किसी मशीन या किसी सहारे का उन्होंने इस्तेमाल नहीं किया। वो पंजाब के एक छोटे से गांव की अपनी मज़बूत जड़ें और अपनी तहज़ीब लेकर आए थे, गांव उनके दिल में धड़कता था। इसलिए वो मायानगरी बंबई में कभी खोए नहीं, मुश्किलों और माया-मोह के जंगल में उन्होंने अपने सपनों के रास्ते को खोने नहीं दिया। उनकी सादगी और विनम्रता उनकी ताकत थी, इसी ने लगातार कामयाबी के दिनों में भी उनको बचाकर रखा। अपनी सादगी की वजह से ही उन्होंने गांव और शहर के लोगों का और इसके साथ-साथ विदेशों में बसे भारतीयों का दिल जीता। रोज़मर्रा के शब्दों में ज़िंदगी के गहरे फ़लसफ़े को पिरोकर उन्होंने पूरी दुनिया

में बसे फ़िल्म-संगीत के चाहने वालों के दिलो-दिमाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया। ये उनकी सादगी ही थी कि वो अकसर ये कहकर मेरे घर आ जाया करते थे—

"भाई, चूंकि आप पहली मंजिल पर रहते हैं और किसी को आपके घर तक पहुंचने के लिए लिफ्ट से सफ़र नहीं करना पड़ता और चूंकि आपकी प्यारी बीवी सलमा सबसे लज़ीज़ खाना बनाती है, मैं आज रात आपके घर खाने पर आ रहा हूं।"

आमतौर पर मैंने देखा है कि फ़िल्मी-दुनिया में तमाम मशहूर हस्तियां, तमाम सितारे अपने असली मक़सद को छिपाते हैं, पर बख़्शी इस मामले में अनूठे थे क्योंकि जो उनके दिल में होता था, उनकी ज़बां पर आ जाता था। हम सब जानते हैं कि अपने गीतों की गहराई की वजह से आनंद बख़्शी बहुत मशहूर हुए। ज़िंदगी के हर मोड़ से उन्होंने सीखा। वो ये बात बहुत शिद्दत से मानते थे कि ज़िंदगी का हर पल आपको कुछ ना कुछ सिखा रहा है, पर हम ज़िंदगी में कामयाबी और पैसों के पीछे भागने में इतने मशगूल हो जाते हैं, अपनी चुनौतियों और सपनों में इतने खो जाते हैं कि ज़िंदगी हमें क्या सिखा रही है, ये देख पाने की मोहलत तक हमें नहीं मिल पाती और इसी वजह से हम कुदरत की सिखायी बातों को समझ नहीं पाते। समय की रेत पर हम अपने क़दमों के निशान छोड़ते चले जाते हैं, इस रेत के हर कण पर ज़िंदगी के सबक छपे हुए होते हैं, पर अफ़सोस, हम उनकी तरफ़ नज़र उठाकर नहीं देखते।

बख़्शी ने मुझे ये सबक सिखाया और इसी बहाने मुझे याद आ गया कि फ़िल्म 'नाम' लिखते वक़्त एक बड़ी दिलचस्प बात हुई थी। मेरी फ़िल्म का हीरो बेहतर ज़िंदगी की तलाश में अपने परिवार को छोड़कर विदेश चला जाता है पर वो वहां अपनी महत्वाकांक्षाओं के जाल में फंस जाता है। अचानक उसे अपनी मां की याद आती है, उसे अपने वतन में अपने परिवार का प्यार याद आता है। बख़्शी ने इस हीरो की तकलीफ़ और उसके दर्द को बड़ी अच्छी तरह से समझ लिया और एक ऐसा गाना रचा, जो उसके सबसे मशहूर गीतों में से एक है। इस गाने की बिना पर फ़िल्म ने ज़बर्दस्त कारोबार किया। यक़ीन मानिए फ़िल्म की कामयाबी में इस गाने का बड़ा योगदान है। ये गाना था—'चिट्ठी आयी है, वतन से चिट्ठी आई है'।

बख़्शी ने अपनी क़ीमत पहचानने के बारे में मुझे एक कहानी सुनायी थी। एक कामयाब और मशहूर अंग्रेज़ कवि की एक कविता अधूरी रह गयी थी। कई बार कोशिश की कि पर वो इस कविता को पूरा नहीं कर पाया। उसे अहसास हुआ कि इस कविता को पूरा करने के लिए उसे किसी से मदद लेनी होगी। एक दोस्त ने उसे बताया कि तुम दूर एक गांव में चले जाओ, वहां तुम्हें एक बुज़ुर्ग लेखक मिलेगा, उसके पास प्रतिभा तो है पर वो उसे कभी पहचान नहीं पाया। पर उसके भीतर कमाल का आत्मविश्वास है। वो जानता है कि वो कामयाबी का हक़दार है भले ही कामयाबी उसे मिल नहीं रही है।

राकेश आनंद बख़्शी

कामयाब और मशहूर लेखक दूर-दराज़ के उस गांव में गया, उस बुज़ुर्ग लेखक से मिला और उससे मदद मांगी। बुज़ुर्ग लेखक ने वो अधूरी कविता पढ़ी और कहा कि वो इसे पूरी तो कर देगा पर उसे इसके बदले में पाँच सौ पाउंड स्टर्लिंग चाहिए। ज़ाहिर है कि कामयाब लेखक राज़ी हो गया और जल्दी ही इस बुज़ुर्ग ने कविता पूरी कर दी।

कामयाब लेखक हैरान रह गया कि बुज़ुर्ग लेखक ने इतनी जल्दी और इतने कम शब्दों में कविता कैसे पूरी कर दी। उसने अपनी चेक-बुक निकाली ताकि बुज़ुर्ग को तयशुदा पाँच सौ पाउंड स्टर्लिंग दे सके। उसने बुज़ुर्ग लेखक से पूछा कि इतने आसान और कम शब्दों वाले काम के लिए आपने पाँच सौ पाउंड स्टर्लिंग मांगे, क्या ये जायज़ है? ये काम तो फ़टाफ़ट हो गया।

बुज़ुर्ग लेखक ने जवाब दिया, "आप इसलिए मुझे पैसे देने में हिचक रहे हैं क्योंकि आपको लग रहा है जिस काम को मैंने इतनी आसानी से कुछ ही मिनिटों में पूरा कर लिया, उसके लिए मुझे इतने पैसे नहीं मांगने चाहिए थे। हालांकि मैंने काम ऐसा किया कि आपको पूरी तसल्ली हो। आप इस बात पर ध्यान दे रहे हैं कि मैंने कुछ ही मिनिटों में काम कर लिया पर आप इस बात पर ध्यान नहीं दे रहे कि मैंने ज़िंदगी के कितने सालों का अनुभव लगा दिया है तब जाकर ये काबलियत आयी है कि मैं कुछ ही मिनिटों में उम्दा तरीक़े से आपकी कविता को पूरा कर पाऊं। आप बस वो चंद लम्हे ही गिन रहे हैं जो आपने मेरे साथ बिताए पर आप उन लाखों करोड़ों पलों को भूल रहे हैं जिन्हें बिताने के बाद मैं यहां तक पहुंचा हूं। इतनी लंबी ज़िंदगी के उन तजुर्बात का शुक्रिया कि जिनकी वजह से मैं आपकी अधूरी कविता को चंद मिनिटों में ही पूरा कर पाया।" कामयाब और मशहूर लेखक को ये बात फौरन समझ में आ गयी और वो शर्मिंदा हुआ। उसने फौरन ही तयशुदा फीस अदा कर दी।

अपनी मौत से ठीक पहले जब आनंद बख़्शी बीमार थे, तो अस्पताल से उन्होंने सुभाष घई की फ़िल्म 'मजनूँ' के लिए एक गाना लिखा, ये फ़िल्म अभी तक रिलीज़ नहीं हो सकी है। जब मैंने वो गाना सुना तो उसमें कविता की जो गहराई थी, उसे महसूस करके मैं दंग रह गया था। मुझे इस बात पर भी हैरत हुई कि उन्होंने ये गाना अपनी बीमारी के दिनों में लिखा था, अपनी मौत से ठीक पहले। ऐसा उन्होंने इसलिए किया क्योंकि लिखना उनका मज़हब ही नहीं था, उनकी ज़िंदगी था, ज़िंदगी और मौत के इस सिलसिले में लिखना उनका एक मिशन था, वो सिर्फ़ उनकी तक़दीर नहीं थी। हमारे यहां कई शायर हुए हैं, उनसे बेहतर शायर, पर गीतकारों में वो सबसे ऊपर रहे। 30 मार्च 2002 को उन्होंने इस फ़ानी दुनिया को अलविदा कह दिया। सन 1957 से शुरू करके उन्होंने साढ़े छह सौ फ़िल्मों में साढ़े तीन हज़ार गाने लिखे। उन्होंने हर मौक़े और ज़िंदगी के हर रिश्ते के लिए गाने रचे, जबकि बख़्शी अपनी स्कूल की पढ़ाई भी ठीक से पूरी नहीं कर पाये थे। बख़्शी एक पैदाईशी सितारे थे। वो मिथक बन गये। मिथक कभी मरते नहीं हैं। बख़्शी हमेशा अपने गानों के ज़रिए हमारे दिलों में ज़िंदा रहेंगे।

राकेश आनंद बक्शी

सलीम ख़ान और राकेश बख़्शी, सलीम ख़ान ने मेरी पहली किताब Directors' Diaries The Road To Their First Film (2015) में भी एक लेख लिखा था। इसे प्रकाशित किया था हार्पर कोलिंस ने।

सलीम ख़ान ने मुझे बताया कि "बख़्शी साहब को अपने क़रीब दोस्तों और रिश्तेदारों के लिए गाना बड़ा पसंद था"

प्रस्तावना - जावेद अख़्तर

जावेद अख़्तर ने 21 जुलाई 1998 को लीला होटेल में आनंद बख़्शी के जन्मदिन पर निर्देशक सुभाष घई द्वारा आयोजित समारोह में बख़्शी साहब के बारे में ये बातें कहीं थीं।

हिंदुस्तान को गीतों का मुल्क़ कहते हैं इसलिए कि यहां की अनगिनत ज़ुबानों में हर मौक़े के लिए अनगिनत लोकगीत हैं, लेकिन मुझे कभी-कभी लगता है कि अगर ये अनगिनत गीत नहीं भी होते तो हिंदुस्तान को गीतों का मुल्क़ कहने के लिए अकेले आनंद बख़्शी साहब ही काफी थे।

वो जज़्बात का कौन-सा मोड़ है, वो अहसास की कौन-सी मंज़िल है, वो धड़कनों की कौन-सी रूत है, वो मुहब्बत का कौन-सा मौसम है, वो ज़िंदगी का कौन-सा मुकाम है, जहां सुरों के बादलों से आनंद बख़्शी के गीत के चाँद झलकते ना हों। आनंद बख़्शी आज के लोक-कवि हैं। आनंद बख़्शी आज के समाज के शायर हैं।

ब्रिटिश नेशनल म्यूज़ियम में जहां मिस्र की बरसों पुरानी ममी रखी हैं, जहां हिंदुस्तान के बादशाहों के शराब के प्याले और ख़ंजर रखे हैं, जहां रोम की तहज़ीब के निशानात रखे हैं। वहां एक बहुत बड़ा हॉल है, जहां मशहूर अँग्रेज़ लेखकों की पांडुलिपियां, रफ़-बुक और नोट-बुक रखी हैं। वहां जॉर्ज बर्नार्ड शॉ हैं, विलियम शेक्सपीयर हैं, ऑस्कर वाइल्ड हैं, चार्ल्स डिकेन्स हैं, कीट्स हैं और वहां एक शो केस में बीटल्स के हाथ का लिखा हुआ गीत 'यस्टरडे' भी रखा हुआ है। इससे दो बातों का पता चलता है। एक तो ये कि वो क़ौम बीटल्स की इज़्ज़त करती है। दूसरा ये कि उस क़ौम में इतनी ख़ुद-एहतमादी है, आत्मविश्वास है कि वो शेक्सपीयर के साथ पॉल मैकार्टनी की इज़्ज़त करने में अपने आपको ग़ैर-महफ़ूज़ नहीं समझती है। मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि हमारे एकेडिमिया में, हमारे बुद्धिजीवियों में ये आत्मविश्वास अभी तक नहीं आया है।

आज से ढाई सौ, तीन सौ साल पहले अठारहवीं सदी में एक और आनंद बख़्शी पैदा हुआ था, उसका नाम था नज़ीर अकबराबादी। वो आदमी एक नंगे पैर रहने वाला कवि था, वो गांव-गांव जाता था, अपने गीत सुनाता था। वो गीत लिखता था होली पर, दीवाली पर, ईद पर, फागुन पर, तरबूज़ पर, कच्ची मिट्टी के बर्तनों पर, फलों पर, त्यौहारों पर....और उस ज़माने की जितनी शायरी की किताबें या संग्रह हैं, उनमें नज़ीर अकबराबादी का नाम नहीं लिखा गया। नज़ीर अकबराबादी को उसके सौ बरस के बाद लोगों ने खोजा और उसकी इज़्ज़त की। क्या हम दोबारा फिर सौ बरस बाद ही अपनी ग़लती को मानेंगे? शायद पहले मान लें। आज कोई माने या ना माने लेकिन मैं अपने ख़ून से लिखकर दे सकता हूं कि एक दिन आएगा जब लोग

जानेंगे कि आनंद बख़्शी का आज के संगीत और आज की शायरी में क्या योगदान है और उस दिन आनंद बख़्शी पर थीसिस लिखी जाएगी और पी.एच.डी. की जाएगी।

मैं बख़्शी साहब का एक फ़ैन हूं। मुझे उनके बहुत सारे गीत बहुत पसंद हैं। और उनमें से एक गीत है 'ज़िंदगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मुकाम, वो फिर नहीं आते' (फ़िल्म-आपकी क़सम)। उन्होंने जब ये गीत लिखा था, बहुत बरसों पहले की बात है, तो मैं उन्हें एक पार्टी में मिला और मैंने कहा कि जिस क़लम से आपने ये गीत लिखा है, आप वो मुझे दे दीजिए। तो उन्होंने कहा कि भाई वो क़लम तो मुझे किसी ने तोहफ़े में दी थी लेकिन एक दूसरी क़लम मैं आपको ज़रूरी तोहफ़े में दूंगा। और अगले दिन उन्होंने मुझे एक बहुत ख़ूबसूरत क़लम भेजी। वो गीत मैं अब भी सुनता हूं तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और मेरी आंखों में आंसू आ जाते हैं। बहुत ख़ूबसूरत गीत है वो बख़्शी साहब का, लेकिन एक बात कहूंगा कि उस गीत के मुखड़े में एक ग़लत बात है। आपने कहा है कि ज़िंदगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मुकाम, वो फिर नहीं आते, मगर एक मुकाम हमारी ज़िंदगी में बार-बार आया है कि आपसे हमें ख़ूबसूरत गीत मिले हैं और मुझे मालूम है कि ये मुकाम फिर आएगा। फिर आयेगा। फिर आयेगा। शुक्रिया बख़्शी साहब।

जावेद अख़्तर, जावेद सिद्दीक़ी, जाने-माने फ़िल्म लेखक सचिन भौमिक के साथ फ़िल्म 'ताल' (1999) के लॉन्च के समय

प्रस्तावना - सुमन विनय दत्त। (सबसे बड़ी बेटी)

राकेश बख़्शी ने हमारे पिता आनंद बख़्शी के संस्मरणों की ये जो किताब लिखी है, ये उनके गुज़रने के अठारह साल बाद आपके सामने आ रही है। हम सभी भाई-बहन राजेश, कविता और मैं अपने भाई राकेश के शुक्रगुज़ार हैं, जो सन 2002 से ही डैडी की ज़िंदगी की दास्तान काग़ज़ पर उतारने में लगा हुआ था। उसने इसमें बख़्शी साहब के और अपने कई दोस्तों, रिश्तेदारों और साथियों की यादें, उनकी बातें और उनके विचार शामिल किए हैं। इसमें बख़्शी साहब की फ़िल्म-संसार में कामयाब हो जाने तक और उसके बाद की जद्दोजेहद भी शामिल है। बख़्शी साहब बचपन से ही फ़िल्मों में आने का सपना देखते रहे थे। हमारे पिता ने ना सिर्फ़ अपने सपने को पूरा करने की कोशिश की बल्कि हर अच्छे-बुरे वक़्त में अपने परिवार का पूरी तरह से ख़याल रखा। उन्होंने इस बात का पूरा ख्याल रखा कि उनके बच्चों और पत्नी कमला, जो हर क़दम पर उनका सबसे बड़ा सहारा थीं, इन सबको मार्गदर्शन मिले और पैसों की कोई कमी ना महसूस हो।

राकेश ने पूरे जुनून, नाज़ुकी और इज़्ज़त से आनंद बख़्शी की ज़िंदगी को उकेरा है। उन्होंने एक गीतकार और परिवार के एक मुखिया के रूप में बख़्शी साहब की प्रगति की यात्रा की पूरी रचनात्मकता के साथ पड़ताल की है। इसमें उन्हें कुछ बहुत ही हैरत भरे काग़ज़ात की मदद

भी मिली है, जिन्हें डैडी ने इतने दशकों तक संजो कर रखा था, यानी अपने स्कूल के ज़माने से।

मैंने इस पुस्तक में जब आनंद बख़्शी के बचपन के दिनों वाला रोचक अध्याय पढ़ा, उसके बाद उनकी शुरूआती कामयाबी के दिन और फिर सुभाष घई साहब द्वारा अड़सठवें जन्मदिन पर उन्हें एक मुकुट पहनाकर सम्मानित किया जाने की घटना पढ़ी, तो जैसे मैंने अपनी ज़िंदगी के बयालीस साल फिर से जी लिए और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि डैडी इस वक़्त भी हमारे साथ हैं।

एक बेमिसाल गीतकार और बुद्धिजीवी आनंद बख़्शी के ये संस्मरण बहुत शिद्दत भरे हैं। बख़्शी साहब ने इंसानी रिश्तों के हर पहलू को अपने सरल शब्दों वाले गीतों के ज़रिए दर्शाया ताकि एक आम आदमी भी इसे आसानी से समझ पाए। उनका सपना था कि वो आखिरी सांस तक लिखते रहें और ऐसा ही हुआ। तीस मार्च 2002 को इस दुनिया से रूख़सत होने तक उन्होंने क़रीब तीन-साढ़े तीन हज़ार गाने लिख लिए थे और साबित कर दिया था कि वो लाखों में एक थे। बल्कि ये कहूं कि वो करोड़ों या अरबों में एक थे। उन्हें उनके परिवार वाले, दोस्त और साथी ही याद नहीं करते बल्कि दुनिया भर में फैले उनके दीवाने बहुत ज़्यादा याद करते हैं। उन्हें कभी भुलाया नहीं जा सकता। इसकी गवाही इस बात से मिलती है कि हाल की कुछ फ़िल्मों में उनके लिखे गानों को रीमिक्स किया गया है या नये रूप में पेश किया गया है।

मेरे पिता मेरे हीरो थे और आज भी हैं। वो एक बेमिसाल शख़्स थे। मैं रोज़ उन्हें 'मिस' करती हूं। उनके बिना ज़िंदगी एकदम बदल गयी है। पर मैं बहुत खुशनसीब हूं कि मैं उनकी बेटी हूं और मुझे उन्हें 'डैडी' कहकर पुकारने का सौभाग्य मिला।

जो परिवार साथ प्रार्थना करता है, वो साथ रहता है।

19 जून 2008 को एक साथ:

डैडी ने ना सिर्फ़ अपने ददिहाल के परिवार की मदद की बल्कि मेरी मौसी विमला सिंह छिब्बर के बेटे परमजीत सिंह इस किताब में अपनी बात शामिल करना चाहते हैं, "ये हमारे परिवार की ओर से मेरे प्यारे मौसाजी आनंद बख़्शी को हमारा सलाम है। उन्होंने और हमारी मौसी कमला बख़्शी ने जिस तरह हर वक़्त हमारी मदद की, उसी की वजह से हमारा परिवार पिताजी के फ़ौज से रिटायर होने के बाद मुंबई में बस सका। मेरे लिए आनंद बख़्शी एक महान व्यक्ति थे, जिनसे आप समय और रिश्तों का मोल, अपने परिवार को साथ लेकर चलना और इंसानी मूल्य सीख सकते हैं।

हमारी मां कमला बख़्शी अपने भाईयों भगवंत मोहन, कैलाश मोहन, बहन विमला छिब्बर और भतीजी वीना दिवाय के_साथ

हमारी मां कमला मोहन बख़्शी के पिताजी और मां। उनके पिता अमर सिंह मोहन भूतपूर्व फ़ौजी थे। मां बुधवंती मोहन। दोनों मूल रूप से अविभाजित भारत में रावलपिंडी के रहने वाले थे।

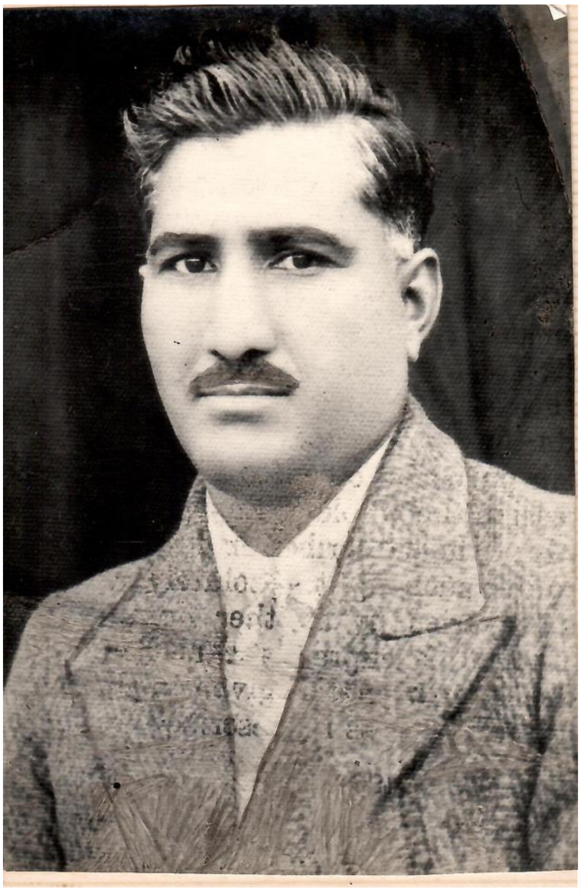

<u>एक गीतकार की यात्रा</u>

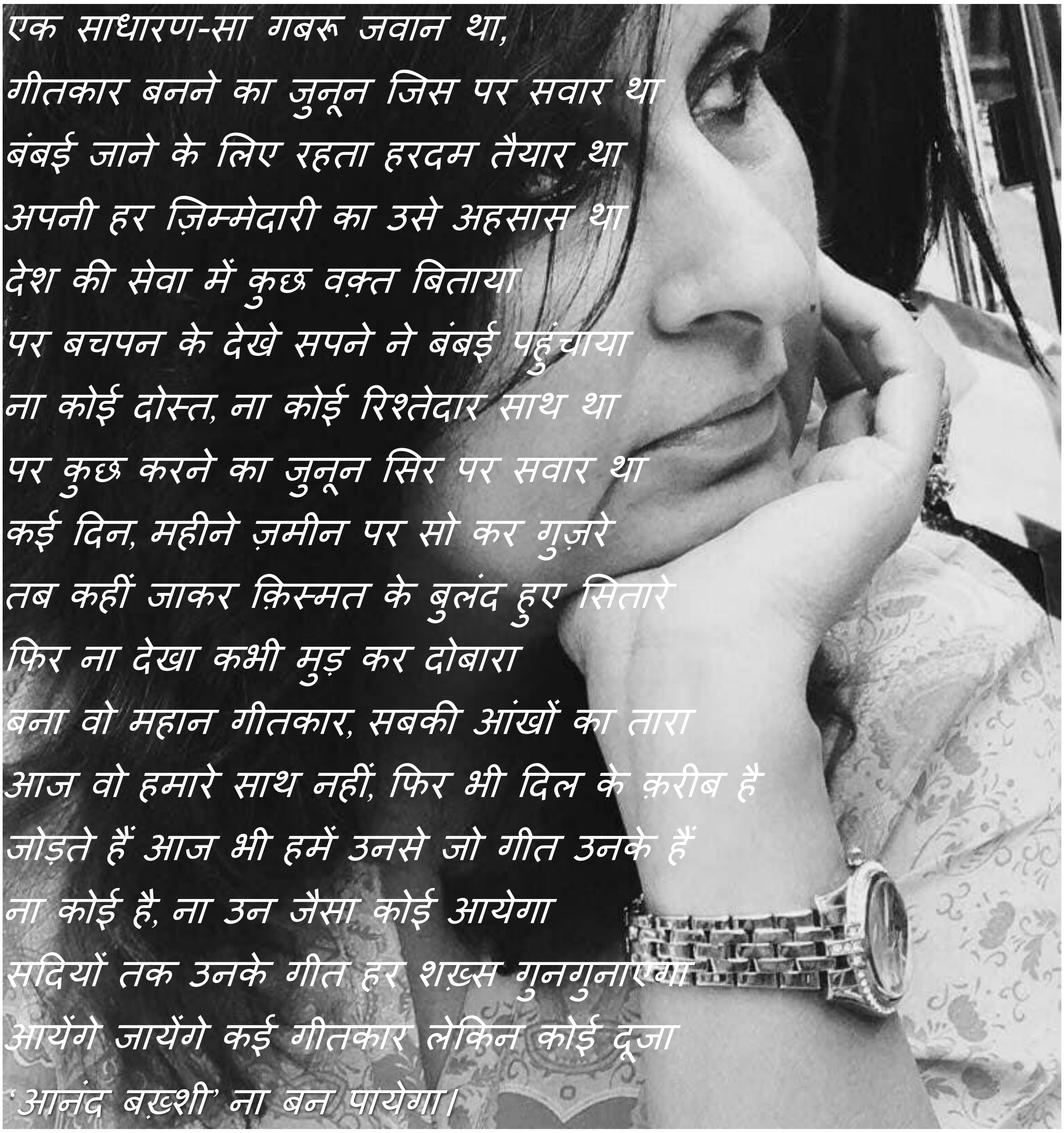

एक साधारण-सा गबरू जवान था,
गीतकार बनने का जुनून जिस पर सवार था
बंबई जाने के लिए रहता हरदम तैयार था
अपनी हर ज़िम्मेदारी का उसे अहसास था
देश की सेवा में कुछ वक़्त बिताया
पर बचपन के देखे सपने ने बंबई पहुंचाया
ना कोई दोस्त, ना कोई रिश्तेदार साथ था
पर कुछ करने का जुनून सिर पर सवार था
कई दिन, महीने ज़मीन पर सो कर गुज़रे
तब कहीं जाकर क़िस्मत के बुलंद हुए सितारे
फिर ना देखा कभी मुड़ कर दोबारा
बना वो महान गीतकार, सबकी आंखों का तारा
आज वो हमारे साथ नहीं, फिर भी दिल के क़रीब है
जोड़ते हैं आज भी हमें उनसे जो गीत उनके हैं
ना कोई है, ना उन जैसा कोई आयेगा
सदियों तक उनके गीत हर शख़्स गुनगुनाएगा
आयेंगे जायेंगे कई गीतकार लेकिन कोई दूजा
'आनंद बख़्शी' ना बन पायेगा।

- नीरा बख़्शी - आनंद प्रकाश बख़्शी (नंद) की भांजी

प्रस्तावना - आनंद प्रकाश बख़्शी

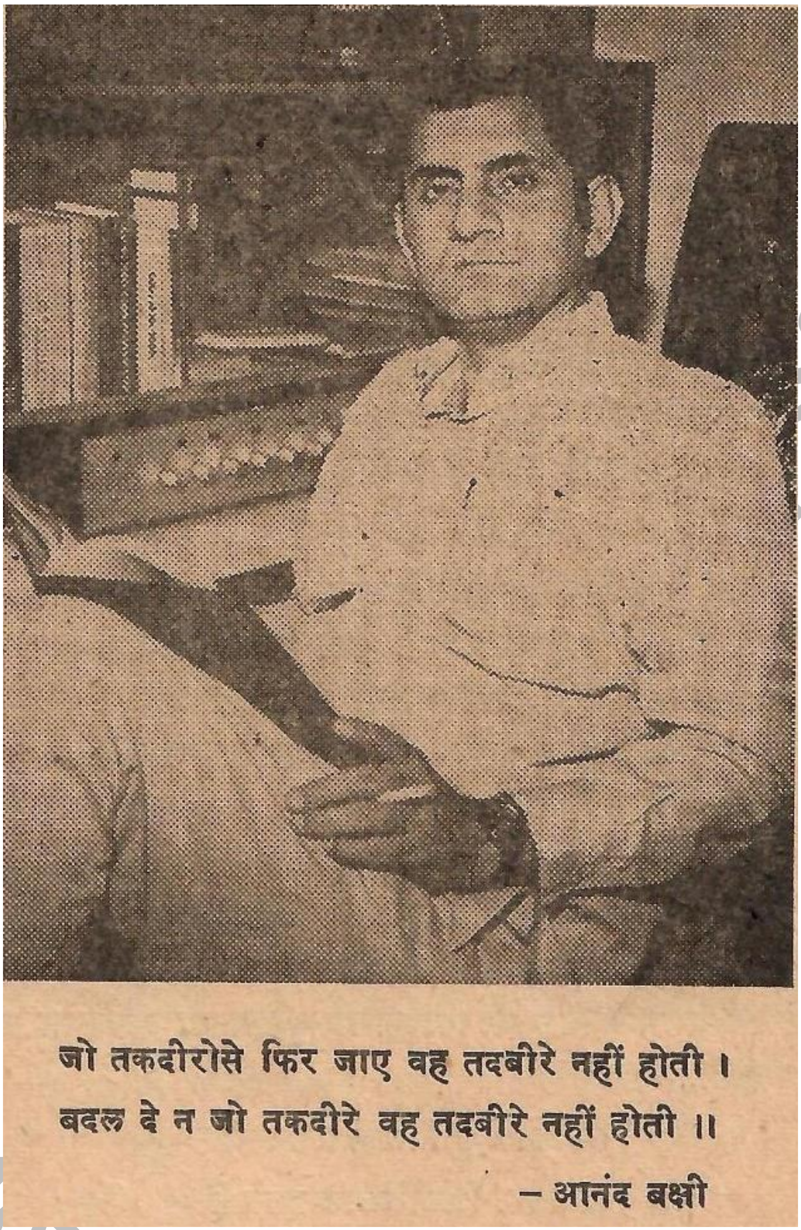

नदी की शुरूआत हमेशा कहीं से तो होती है

ये आनंद बख़्शी की लिखी पहली कविता है। सन 1956 में जब वो दूसरी बार बंबई में बतौर गीतकार अपनी किस्मत आज़माने आए थे, तब उन्होंने ये कविता ख़ुद को प्रेरित करने के लिए लिखी थी। अपने सपने को साकार करने के लिए उन्होंने दूसरी बार फौज को छोड़ा था। उन्होंने ये कहा था, "जब मैं फ़िल्मों में आया, तो मैंने ख़ुद को प्रेरित करने के लिए ये कविता लिखी थी, इसने मुझे अपनी जद्दोजेहद, काम और निजी ज़िंदगी में हमेशा प्रेरित किया"।

इस कविता का सार कुछ इस तरह है–'अगर आपकी तक़दीरें आपकी तदबीरों यानी कोशिशों से बदली जा सकती हैं, तो वो सचमुच आपकी तक़दीर नहीं है। वो आपका नसीब नहीं है। अगर आपकी कोशिशें यानी तदबीरें आपकी तक़दीरों को नहीं बदल सकतीं तो वो आपकी तदबीरें नहीं हैं।

वो तकदीरें नहीं होती !

जो तदबीरों से फिर जाये वो तकदीरें नहीं होतीं,
बदलदें जो न तकदीरें वो तदबीरें नहीं होतीं ॥
मोहब्बत के महलका तो तसव्वुर भी नहीं आसां,
वफा के 'ताज' की आसान तामीरें नहीं होतीं ॥
रिहाई का मुसम्मअहद कर लेते है जब कैदी,
तो कार आमद सितमगरों की जंजीरें नहीं होतीं ॥
मोहब्बत का ताल्लुक रूह मे मखसूस होता है,
यह दिल की बात है और इस पे तकरीरें नहीं होतीं ॥
समझ भी लें मोहब्बत को तो हम समझा नहीं सकते,
किताबे इश्क की लफ्जों में तफसीरें नहीं होतीं ॥
खलूस और सिद्क के सजदों में तासीरें जो होती हैं,
दिखावे की इबादत में वो तासीरें नहीं होतीं ॥
खुद उनकी दीद से बख्शी तसव्वुर उनका बेहतर है,
कि इतनी बेमुरव्वत उनकी तसवीरें नहीं होतीं ॥

—आनंदप्रकाश 'बख्शी'

वो तदबीरें नहीं होतीं।

"जो तदबीरों से फिर जायें वो तक़दीरें नहीं होतीं
बदल दें जो ना तक़दीरें वो तदबीरें नहीं होतीं"

मुहब्बत के महल का तो तसव्वुर भी नहीं आसान
वफ़ा के ताज की आसान तामीरें नहीं होतीं।

रिहाई का मुसम्म अहद कर लेते हैं जब क़ैदी
तो कारआमद सितमगरों की ज़ंजीरें नहीं होतीं।

मुहब्बत का ताल्लुक़ तो रूह से मख़सूस होता है
ये दिल की बात है और इस पे तक़रीरें नहीं होतीं।

समझ भी लें मुहब्बत को तो हम समझ नहीं सकते
किताब-ए-इश्क़ की लफ़्ज़ों में तफ़सीरें नहीं होतीं

खुलूस और सिद्क के सजदों में तासीरें जो होती हैं
दिखावे की इबारत में वो तासीर नहीं होती

ख़ुद उनकी दीद से बख़्शी तसव्वुर उनका बेहतर है
के इतनी बेमुरव्वत उनकी तस्वीरें नहीं होतीं

-आनंद प्रकाश बख़्शी

राकेश आनंद बक्शी

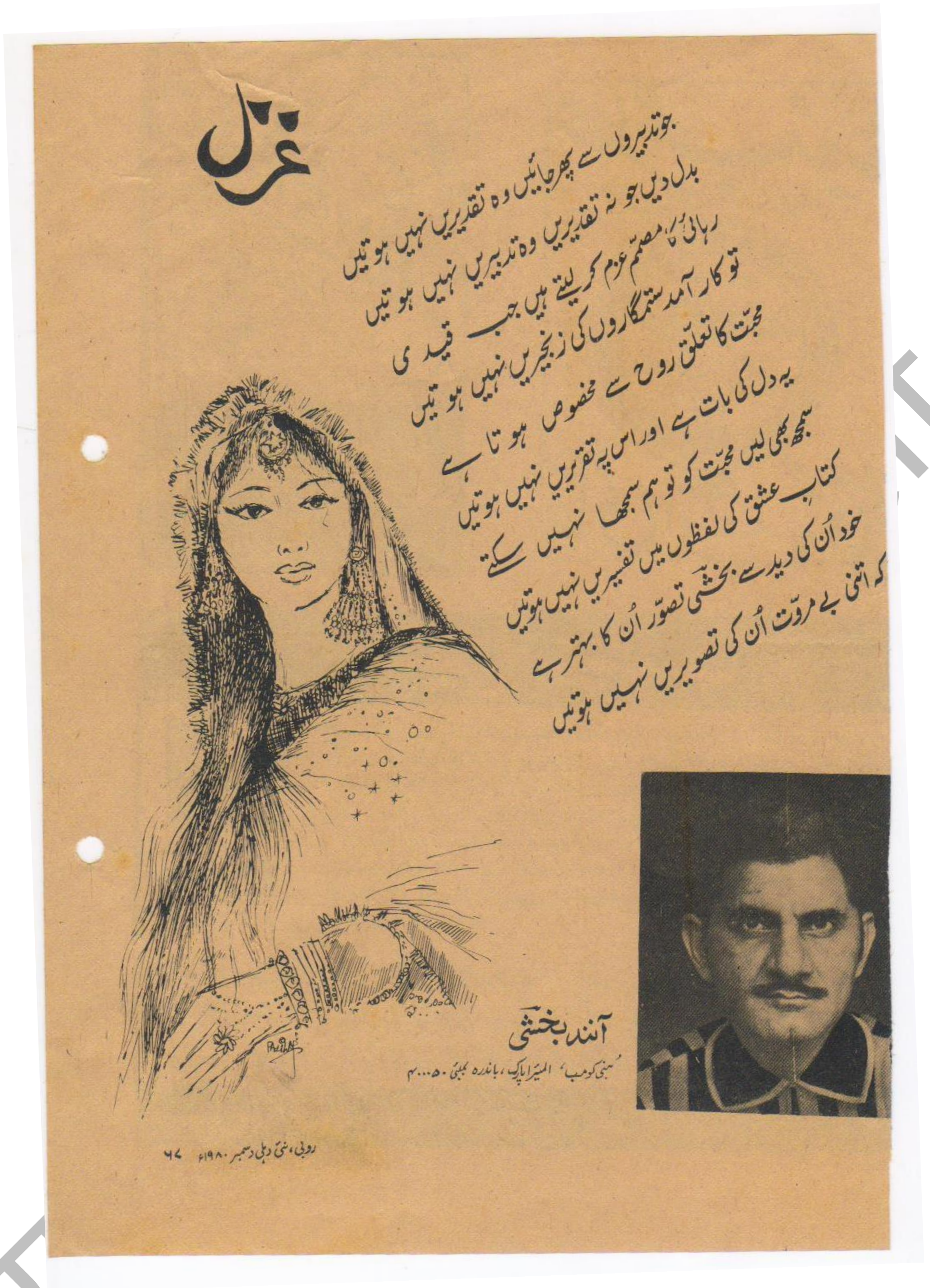

غزل

جو تدبیروں سے پھر جائیں وہ تقدیریں نہیں ہوتیں
بدل دیں جو نہ تقدیریں وہ تدبیریں نہیں ہوتیں
رہائی کا مصمم عزم کر لیتے ہیں جب قیدی
تو کار آمد ستمگاروں کی زنجیریں نہیں ہوتیں
محبت کا تعلق روح سے مخصوص ہوتا ہے
یہ دل کی بات ہے اور اس پہ تقریریں نہیں ہوتیں
سمجھ بھی لیں محبت کو تو ہم سمجھا نہیں سکتے
کتابِ عشق کی لفظوں میں تفسیریں نہیں ہوتیں
خود اُن کی دید سے بخشی تصور اُن کا بہتر ہے
کہ اتنی بے مروت اُن کی تصویریں نہیں ہوتیں

آنند بخشی
"منی کومب" المیرا پارک، باندرہ بمبئی ۴۰۰۰۵۰

روبی، نئی دہلی دسمبر ۱۹۸۰ء ۶۷

यह ग़ज़ल दिल्ली से प्रकाशित होने वाली पत्रिका रूबी में सन 1980 में छपी थी। यहां आपको बता दें कि एक और ऐसी ही असरदार कविता है जो उन्होंने ख़ुद को प्रेरित करने के लिए लिखी थी–'मैं कोई बर्फ़ नहीं हूं जो पिघल जाऊंगा'। इसका ज़िक्र हम आगे एक अध्याय में

अध्याय 1

1930 से 1944

आनंद की पैदाईश

गीतकार आनंद बख़्शी का जन्म अविभाजित भारत में 21 जुलाई 1930 को सुबह सात बजकर पचपन मिनिट पर हुआ था। हम बच्चे उन्हें 'डैडी' कहते थे, मां जी मित्रा (सुमित्रा) उन्हें 'नंद' कहती थीं। पापाजी उन्हें 'अज़ीज़' या 'अज़ीज़ी' कहते थे। और रिश्तेदार 'नंदो' कहते थे।

नंद अपनी मां के साथ रावलपिंडी में

नंद अपने पिताजी (पापाजी) के साथ लाहौर चिड़ियाघर में। 24 फ़रवरी 1931।

<u>नंद अपनी मां जी और पापा जी के साथ रावलपिंडी के अपने घर की छत पर।</u>

राकेश आनंद बक्शी

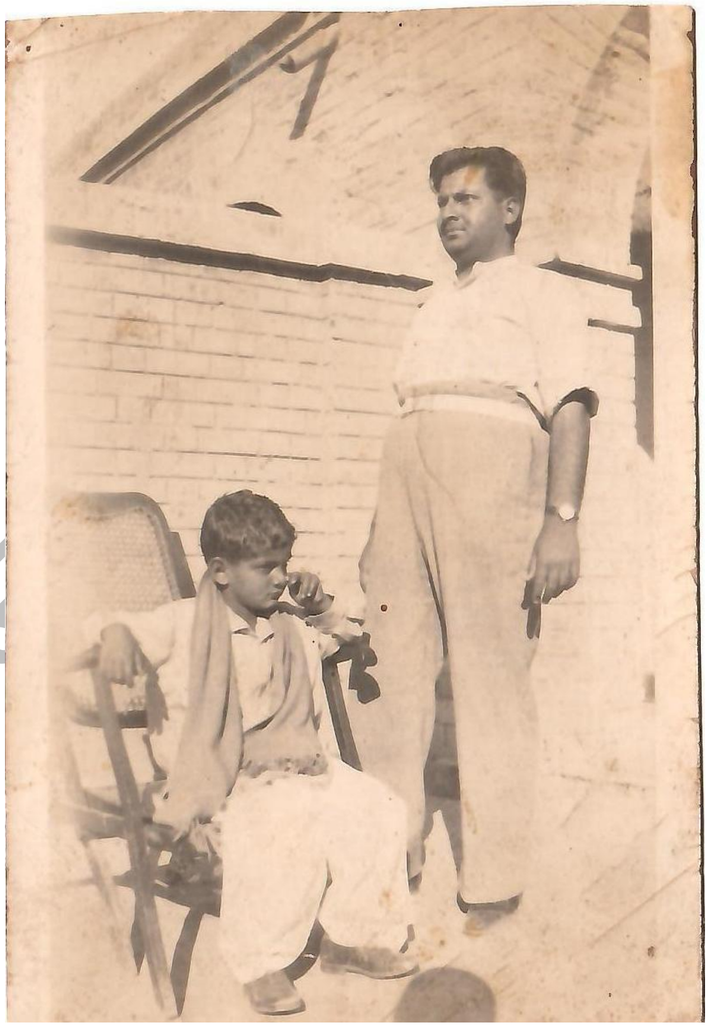

नंद के पापा जी।

नंद के दादा जी (बाऊजी)

<u>**नंद के बाऊ जी और बी जी लाहौर में**</u>

नंद की जन्म-कुंडली- जो उनकी बुआ ने बनाई थी।

बख़्शी परिवार चिट्टियां हट्टियां, मोहल्ला कुतुबुद्दीन, रावलपिंडी में एक तीन मंज़िला घर में रहता था। ये घर आज भी कायम है। इस घर को 'दरोग़ा जी का घर' या 'दरोग़ा जी की कोठी' के नाम से जाना जाता था, क्योंकि आनंद के बाऊ जी यानी उनके दादाजी ब्रिटिश राज में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट थे।

“हमारे घर के आसपास एक कुंआ, गुरद्वारा, एक मस्जिद और एक हिंदू स्कूल था। मैं गुरद्वारे में जाकर ‘कड़ा प्रसाद’ खा लेता था और वहीं शबद-कीर्तन गाया करता था। कुंए का पानी पीता और मस्जिद से अज़ान की आवाज़ आती तो स्कूल जाते हुए उसकी मीठी धुन सीटी पर बजाया करता था। मुझे अज़ान और घर के पास मौजूद भगवान कृष्ण के मंदिर से आती घंटियों की आवाज़ों से पता चल जाता था कि क्या टाइम हो रहा है। इतनी एकता थी, हम मिल-जुलकर रहते और बड़े ख़ुश थे।”

‘तब गांव में गिनी-चुनी साइकिलें होती थीं। मैं अपनी साइकिल मुहल्ले में कहीं भी छोड़कर घर लौट आता था। मुहल्ले का कोई शख़्स साइकिल यहां-वहां पड़ा देखता तो हमेशा हमारे घर लौटा जाता। लोग कहते, अरे ये तो दरोग़ा जी के पोते की साइकिल है, चलो इसे दरोग़ा जी की कोठी पर छोड़ आते हैं।’

रावलपिंडी का घर, सन 2012 में। तस्वीर वसीम अलताफ़ के सौजन्य से।

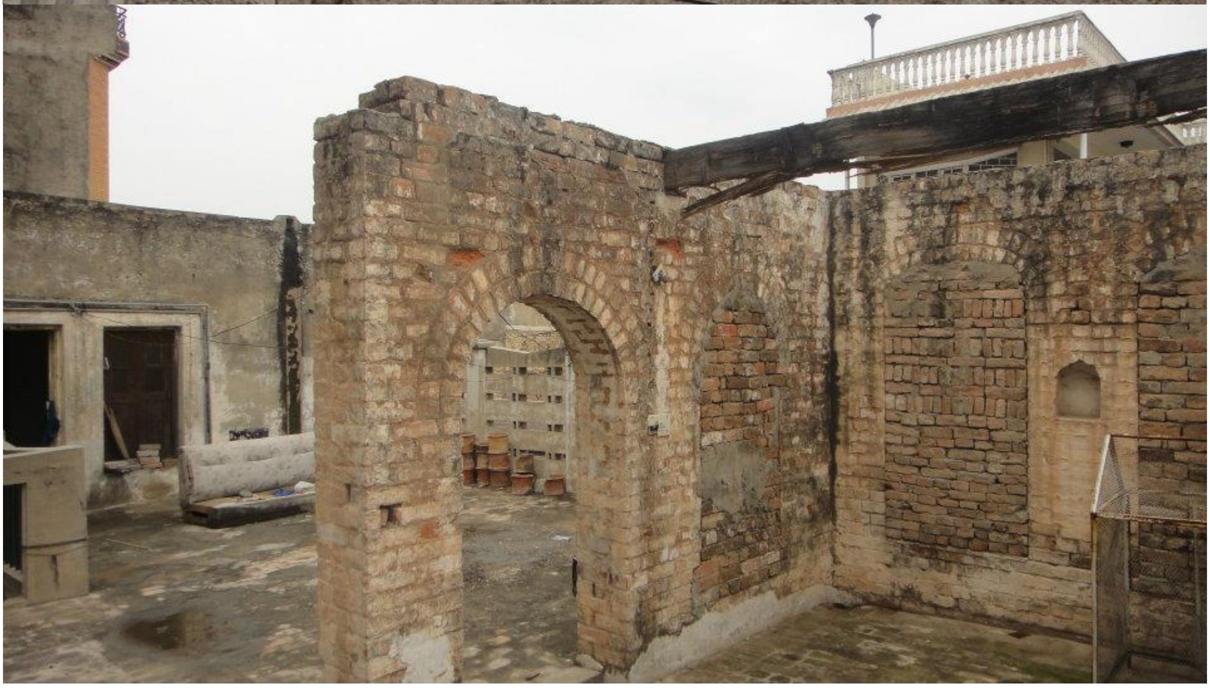

सन 2014 में शीराज़ हसन की ली तस्वीरें।

पूरा बख़्शी ख़ानदान एक साथ रहता था। संयुक्त परिवार था। इसमें नंद के बाऊ जी यानी बख़्शी सुघड़मल वैद डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पंजाब जेल मुखिया थे। उनकी पोस्टिंग पिंडी में थी। परिवार में 'बीजी' यानी दादीजी थीं, पापाजी बख़्शी मोहनलाल वैद और मां जी सुमित्रा बाली बख़्शी भी थे।

'पिंडी का हमारा जो घर था वो बहुत ही सुघड़, साफ़-सुथरा था। बाऊ जी पुलिस में थे और पापा जी बैंक मैनेजर थे, इसलिए वहाँ बड़ा सख़्त अनुशासन रहा करता था। बाऊ जी पतले मलमल की सफ़ेद पगड़ी पहना करते थे, कड़क कलफ़ वाली तुर्रेदार पगड़ी। जैसे सख़्त वो थे, वैसी उनकी पगड़ी। जब मैं रॉयल इंडियन नेवी और बाद में फ़ौज में गया तो बाऊ जी की तरह व्यवस्थित रहने की आदत और भी पक्की हो गयी। मैंने जान लिया कि जब आपका मन व्यवस्थित रहेगा तो आप बेहतरीन काम कर पायेंगे।

नंद की मां जी जब गर्भवती थीं तब एक बीमारी के कारण या शायद बच्चे के जन्म के दौरान उनका निधन हो गया था। तब वो महज़ 25 बरस की थीं। उनके मामा जी मेजर डब्ल्यू. एम. बाली ने एक चिट्ठी में डैडी को लिखा था–"...नंद, मुझे पता है कि बिना मां की परवरिश के रहते तुम्हारे मन पर गहरा असर पड़ा है। तुम्हें बहुत कम उम्र में ही घर से दूर भेज दिया गया था....."

नंद की मां जब चल बसीं तो नंद ने अपने पिता की बजाय बीजी के साथ रहना पसंद किया। उन दिनों कुछ दिनों के लिए बाऊ जी की पोस्टिंग लाहौर में थी। वो महिलाओं की जेल के इंचार्ज थे। बिन मां का नंद उनके साथ ही आ गया ताकि वो अपनी बीजी के साथ रह सके। बीजी ने मां के प्यार की कमी पूरी की। नंद के पिता जी ने जल्दी ही यशोदा देवी बाली से दूसरी शादी कर ली। वो सुमित्रा की रिश्ते की बहन ही थीं। नंद जब बहुत कामयाब हो गये, उन्हें बहुत शोहरत मिल गयी- तब भी उन्हें अपनी मां की शिद्दत से याद आती रही। यहां तक कि अपने बच्चे पैदा होने के बाद भी। वो अपने बच्चों को भी पिंडी के बचपन वाले अपने दिनों और मां जी के के बारे बताते थे... मानो वो चूर-चूर हो चुका कोई एक सपना हो।

डैड की मौसी श्रीमती निर्मला मेहता छिब्बर ने एक बार मुझे बताया था–'तुम्हारे डैडी की मां जी को परिवार के लोग प्यार से मित्री या मित्रा कहते थे। वो बहुत ज़िंदादिल थीं और संगीत से उन्हें प्यार था। वो पंजाबी गाने बड़ी अच्छी तरह गाती थीं। जब भी परिवार में कहीं शादी होती, तो पूरा ख़ानदान जमा होता और तब खेले जाने वाले नाटकों में वो पुरूष का भेस बनातीं। हमेशा पुरूष किरदार निभातीं।' शायद अभिनय करने और गाना गाने का जो शौक़ मां जी को था वही बचपन से नंद के अवचेतन मन में बस गया था। वो अपनी मां सुमित्रा के पहले और इकलौते बच्चे थे।

राकेश आनंद बख़्शी

जब सन 1936 में मां जी की मौत हो गयी उसके बाद बीजी ने आनंद बख़्शी को 'नंद' कहकर पुकारना शुरू किया। (इससे पहले वो नंदो कहकर पुकारती थीं)। छह साल की उम्र से बीजी ने नंद को अपने बेटे की तरह पाला।

'बीजी लकड़ी की कंघी से मेरे बालों में बड़े प्यार से संवारती थीं। उनका बनाया छांछ और रात के बचे गेहूँ के मोटे परांठों पर घर का सफ़ेद घी मुझे बहुत पसंद था। ये नाश्ता करने के बाद मैं स्कूल के बाद सड़क पर खेलने निकल जाता था। गाजर दा हलवा और काटे दा हलवा, जैसा गुरद्वारे में बनाया जाता है, वो भी मुझे बड़ा पसंद था। कभी-कभी वो स्कूल के टिफिन में भी चुपके-चुपके ये हलवा रख देती थी और मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता था/ हालांकि बीजी ने मुझे मां का प्यार दिया पर मेरा मन करता था कि काश मेरी अपनी मां आज ज़िंदा होतीं।

"मां ख़ुदा तो नहीं, लेकिन मां तू ख़ुदा से कम भी नहीं', डैड अपनी मां और हम बच्चों की मां की तारीफ़ में ये अल्फ़ाज़ हमेशा कहते थे।

कई दशक बाद जब वो भारतीय फ़ौज में काम कर रहे थे, और सन 1956 में उनका अपना पहला बच्चा पैदा हुआ, जो एक बेटी थी, उन्हें लगा कि ये ऊपर वाले का संकेत है, अब क़िस्मत चमकेगी। क्योंकि बीजी ने उनसे पंजाबी में कहा था, "बेटियां, पियो दे लिये अच्छा नसीब लांदी हैं"। बेटी की पैदाइश के बाद उन्होंने ये फ़ैसला किया कि वो फ़ौज छोड़ देंगे और दूसरी बार फ़िल्मों में अपनी क़िस्मत आज़माने के लिए बंबई जायेंगे।

बीजी ये भी कहती थीं कि बच्चों से प्यार करने का सबसे अच्छा तरीक़ा ये है कि उनकी मां से प्यार करो।" जब मैं कभी-कभी अपनी मां से बदतमीज़ी कर बैठता था, तो डैड मुझसे कहते, "तुम ऐसा बर्ताव इसलिए कर पा रहे हो, क्योंकि तुम्हारे पास मां है। तुम उसका महत्व नहीं समझ पा रहे हो। मैं छह बरस का था, जब मैंने अपनी मां को खो दिया था। तब से ज़िंदगी भर एक तड़प रही कि काश मैं उसे गले लगा पाता।"

"चिट्ठी ना कोई संदेश, जाने वो कौन-सा देश, कहां तुम चले गये" (फ़िल्म दुश्मन का गीत)

आनंद बख़्शी ने मां के प्यार, मां की ममता के नाम कई गाने लिखे। शायद उन्होंने इस बारे में बाक़ी गीतकारों से ज़्यादा लिखा है। जैसे फ़िल्म खलनायक का गाना, 'मां तुझे सलाम', फ़िल्म छोटा भाई का गाना, 'मां मुझे अपने आँचल में छिपा ले', फ़िल्म राजा और रंक का गाना, 'तू कितनी अच्छी है' और मेरे राजा मेरे लाल तुझको ढूंढूं मैं कहां'। फ़िल्म मस्ताना का गीत, 'मैंने मां को देखा है, मां का प्यार नहीं देखा', फ़िल्म अमर-प्रेम का गाना, 'बड़ा नटखट है रे', चाचा भतीजा का गाना 'मां ने कहा था ओ बेटा'। इसके अलावा आसरा, मां, आखिरी

राकेश आनंद बक्शी

रास्ता, अनोखी पहचान, अनुराग, शत्रु, दर्द का रिश्ता, गाय और गोरी, जैसे को तैसा, ज्योति (1969), ज्योति (1981) वग़ैरह फ़िल्मों में भी उन्होंने मां और बच्चे के रिश्ते पर शानदार गीत रचे हैं।

'बातें, भूल जाती हैं, यादें, याद रह जाती हैं, ये यादें, किसी दिलो-जानम के, चले जाने के बाद आती हैं, यादें, मीठी मीठी यादें' (फ़िल्म यादें)

नंद के पापा जी और उनकी दूसरी पत्नी यशोदा देवी के छह बच्चे हुए। उमा, शुभ, इंदिरा, जीवन, अशोक और वेद। शुभ और उनके पति स्वर्गीय खेमराज दत्त के डैड से काफ़ी क़रीबी रिश्ते रहे। 1970 के ज़माने में डैड ने अपने एक सौतेले भाई की ग्रेजुएशन करने में मदद की और 1974 में दिल्ली में पिताजी के निधन तक उनकी लगातार मदद करते रहे। उनके सौतेले भाई-बहन उनसे बहुत प्यार करते थे। इसके बावजूद डैड को ये अफ़सोस सताता रहा कि उनके अपने सगे भाई-बहन क्यों नहीं हुए।

नंद का नाम रावलपिंडी के उर्दू मीडियम स्कूल और उसके बाद कैंब्रिज कॉलेज में लिखा दिया गया। इसके बाद वो रॉयल इंडियन नेवी और उसके बाद भारतीय फ़ौज में बतौर 'आनंद प्रकाश' शामिल हो गये। जब 1947 से 1950 के बीच फ़ौज में नौकरी करते हुए आनंद प्रकाश ने पहली बार कविताएं लिखना शुरू किया, तो उन्होंने कविताओं के नीचे दस्तख़त किए, आनंद प्रकाश बख़्शी। सन 1959 में अपनी पहली फ़िल्म 'भला आदमी' की रिलीज़ के बाद ही वो आनंद बख़्शी कहलाए। कहीं-कहीं अंग्रेज़ी में उनका सरनेम ग़लती से 'Baxi' भी लिखा जाता रहा। पर आखिरकार वो आनंद बख़्शी हो गये।

जो परिवार के बुज़ुर्ग थे, जैसे पापाजी, बाऊ जी और ससुर अमर सिंह मोहन उन्हें अपने ख़तों में 'अज़ीज़' कहकर पुकारते रहे। उर्दू शब्द 'अज़ीज़' के मायने हैं सबसे ज्यादा प्रिय। ख़ासतौर पर वो चिट्ठियां जिनमें सख़्ती से वो उन्हें लानतें भेज रहे हैं कि क्यों उन्होंने अच्छी-भली फ़ौज की नौकरी छोड़ दी। बंटवारे के बाद उनका कहीं अपना कोई घर तक नहीं है.....और वो बंबई जैसे अंजान शहर जाकर फ़िल्मों में अपना नसीब आज़माना चाहते हैं, जिसका कोई भरोसा तक नहीं है। "मेरे ख़ानदान में सारे लोग पुलिस में थे या फ़ौज में या ज़मींदार थे और मैं ख़ानदान की इस रवायत को तोड़ रहा था"।

'फ़िल्मों में काम करना उनके ख़ानदान और साहसी मोहयाल समुदाय में बहुत नीचा काम समझा जाता था। कहा जाता है, मोहयाल समुदाय की शुरूआत उत्तर भारत में हुई थी।

राकेश आनंद बख़्शी

"मेरे देश में, पवन चले पुरवाई"

सन 1988 में एक बार किसी ने आनंद बख़्शी से पूछा कि गीतकारी का हुनर उनके भीतर कब और किस तरह शुरू हुआ, तो उनका जवाब ये था-

फ़िल्मी गानों से मेरा प्यार तब बढ़ा जब अचानक मुझे बैंजो बजाने और गीत गाने का शौक़ हो गया। गाने लिखना सिखाया नहीं जा सकता। वक़्त के साथ आप अपने हुनर को संवार भर सकते हैं। पर जो हुनर है ना, जिसे आज रचनात्मकता कहा जाता है, वो तो आपके भीतर पैदाईशी होनी चाहिए। मुझे याद है कि एक कवि और गीतकार के रूप में मेरा हुनर संवरना बचपन में पिंडी में ही शुरू हो गया था। मेरा गांव, मेरी मां, मेरी मिट्टी थी वो। मुझे फ़िल्मी गाने गाना और बैंजो बजाना बड़ा पसंद था। मैं बड़ी आसानी से रामलीला, सोहनी महिवाल, लैला मंजनू, नौटंकी और नाटकों के लिए संवाद और गीत लिख लेता था। हमारे शहर में पास-पड़ोस में त्यौहारों के मौक़े पर ये सब हमेशा होते रहते थे। मैं अपनी लिखी कविताएं अपने घर के बाहर की सड़क पर खड़ा होकर गाता था। मंच पर जाकर भी गा लेता था। उस ज़माने में जब तक आपको गाना नहीं आता हो, आपको अच्छे रोल नहीं दिये जाते थे। आग़ा हश्र कश्मीरी और मुंशी प्रेमचंद के नाटक आधुनिक होते थे *और जनता उन्हें बड़ा पसंद करती थी। इसी तरह लैला मंजनू, हीर रांझा, शीरीं फ़रहाद, सोहनी महिवाल जैसी लोक-कथाओं को देखने सैकड़ों लोग आते थे। मुझे तकरीबन ऐसे हर नाटक में किरदार मिल जाता था। अभिनेता, निर्देशक और निर्माता सुनील दत्त मेरे मोहयाल तबक़े के रिश्तेदार थे और हम दोनों मिलकर शादियों में गाने गाते, ड्रामा करते। तब सारा समुदाय जमा हुआ करता था। 'सूहे वे चीरे वालेयां मैं केहनी आं' शादियों का बहुत ही लोकप्रिय गीत था और मुझे ये गाना गाना और इस पर नाचना बड़ा पसंद था। पंजाबी लड़कियां तो एक्टिंग करती नहीं थीं, ऐसे में लड़की का किरदार भी हम लड़कों को ही निभाना पड़ता था।*

हम दोस्तों के साथ पिंडी बाज़ार जाते, वहां ताज़ा गन्ना ख़रीदते और अपने दांतों से ही उसे चीरकर खाते। हम चाकू का इस्तेमाल नहीं करते थे। जिसके दाँत गन्ने को अच्छी तरह चीर पाते वो बड़ा गर्व करता कि देखो उसमें कितना दम है। पत्ते पर कुल्फ़ी बेचने वाला हमारी गली में आता और घंटी बजाता ताकि सबको पता चल जाये कि वो आ गया है। उसके पास वज़न करने के लिए एक तराज़ू होता था। जब हाट-बाज़ार होता तो हमारे मुहल्ले के पास से ऊँट भी गुज़रते। हम बच्चों को ऊँट देखने में बड़ा मज़ा आता। हम तब तक उनका पीछा करते जब तक कि वो किसी अंजान मुहल्ले तक नहीं पहुंच जाते। एक पांसे का खेल भी खेला जाता था। स्कूल के बाद हम घर नहीं जाते थे। वही खेल खेलते रहते थे। हम पिंडी के बाहर एक दोस्त के खेतों में जाकर नहा लेते थे। वहां कुंआ था और एक बैल की मदद से रहट से पानी

निकाला जाता था। अंजान लोगों के बग़ीचों के पेड़ों से फल चुराकर खाना हमारा पसंदीदा काम था। और चोरी के फलों का तो स्वाद ही अलग होता था।

RAJA BAZAR. RAWALPINDI CITY 26.

तस्वीर सौजन्य

https://twitter.com/1947Partition/status/968871082861170688/photo/1

आज शहरों में हमें पता ही नहीं होता कि हमारे पड़ोस में कौन रहा रहा है, उनका नाम क्या है। अपने बचपन में हम अपने पूरे मुहल्ले के लोगों को जानते थे। और सब लोग हमें भी जानते थे। अगर किसी ने पापा जी या बाऊ जी से ये बता दिया कि मैं कोई नाटक देखने या उसमें हिस्सा लेने गया था तो वो मुझे छड़ी से पीटते थे। बाऊ जी अपने बेंत से इतनी सख़्ती से मारते थे कि आज भी उस पिटाई की याद करके मैं कांप जाता हूं। जब मेरी मां नहीं रहीं, उसके बाद उनकी सख़्ती और बढ़ गयी क्योंकि उन्हें डर था कि बिन मां का ये बच्चा आसानी से बिगड़ सकता है। वो मुझे 'कंजर' कहते थे। कंजर घुमक्कड़ या बंजारे लोग होते हैं। पर उस ज़माने में ये लफ़्ज़ कभी-कभी लानतें भेजने के लिए उन लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता था जो फ़िल्मों या नाटकों में काम करते थे। फ़िल्मों या नाटक पर हमारे घरों में सख़्त मनाही थी, हालांकि आपको हैरत होगी कि हमारे घर में एक ग्रामोफ़ोन था और पापाजी उस पर भजन या सहगल के नग़मे सुना करते थे। हम मोहयाल लोग अमूमन फ़ौज में या बैंक में काम करते थे। हम नौकरीपेशा लोग थे। यहां तक कि हमारे यहां कारोबार करना भी अच्छा नहीं माना जाता था। कहा जाता था कि ये हमारे ख़ून में नहीं है।

मुझे संगीत बड़ा पसंद था। रामायण की चौपाइयां या गीता के श्लोक जब गाये जाते, तो मुझे अच्छा लगता। मैं गुरु ग्रंथ साहब का पाठ भी सुनता और अज़ान मुझे बड़ी मीठी लगती। ये आवाज़ें दिन भर हमारे मोहल्ले में गूंजती रहती थीं। मुझे खेतों में काम करते किसानों के गाने भी बड़ा पसंद थे, वो बुवाई करते या कटाई या फिर सूरज डूबने के बाद दिल बहलाने के लिए गाने गाते रहते। शायद यही वजह है कि मैं इस तरह के गाने आसानी से लिख सका--"मेरे देश में पवन चले पुरवाई" या फिर "लिखा है ये इन हवाओं में, लिखा है ये इन घटाओं में, मैं हूं तेरे लिए, तू है मेरे लिए".

रोज़मर्रा की गांव की ज़िंदगी की सीधी-सादी आवाज़ें, कुदरत, लोक-संगीत...पंजाब की हर चीज़ मेरा दिल लुभाती थी। मुझे रेडियो सुनना बड़ा पसंद था, यहां तक कि पापा जी के ग्रामोफ़ोन पर जब भजन बजते तो भी मुझे अच्छा लगता। मुकेश, लता, मोहम्मद रफ़ी ने मुझे भी प्रेरणा दी। मुझे मंच पर सहगल के गीत गाने का बड़ा शौक़ था। मैं गांव की सारी शादियों में जाता, कभी-कभी तो बिन-बुलाये चले जाता ताकि मैं उनका संगीत सुन सकूं और बाद में गा सकूं। सत्रह बरस तक अपने उस इलाक़े की हर ख़ुश्बू, हर आवाज़, हर रंग को मैंने अपने दिल में उतारा, जज़्ब किया। उस वक़्त मुझे अहसास नहीं था पर मेरे परिवार और आसपास के माहौल और मेरी मां के ना होने से मेरी शख्सियत में वो जज़्बात और वो नरमी आ गयी। मुझे इसकी क़ीमत भी चुकानी पड़ी क्योंकि मेरा दिल बड़ी आसानी से दुःख जाता था।

"मेरे गीतों में मेरी कहानियां हैं, कलियों का बचपन है, फूलों की जवानियां हैं" (फ़िल्म तेरी क़सम)

सबके भीतर संगीत होता है। हमारा चलना-फिरना, बातें करना, लिखना हमारे मूड, वक़्त और ज़रूरत के मुताबिक़ एक ख़ास ताल और लय में होता है। हमारा दिल एक ताल पर धड़कता है। हमारी सांस में एक लय है। यहां तक कि हमारे रिश्तों में भी। हर रिश्ते की एक अलग ताल होती है। हम सबके साथ एक जैसा बर्ताव नहीं करते। कुछ लोगों के साथ हमारी ताल और लय जुड़ जाती है। ख़ासकर हमारे क़रीबी दोस्तों या हमारी प्रेमिका के साथ। मैं मानता हूं कि हम सब एक ख़ास ताल और लय के साथ पैदा होते हैं। बस फ़र्क़ ये है कि कुछ लोग अपनी इस ताल या लय के साथ जो डोर बंधी है–उसे भूल जाते हैं। कुछ लोग अपनी इस ताल को किसी वजह से सुन नहीं पाते।

मैंने फसल कटने के उत्सव मनाए हैं, हर मज़हब के त्यौहार मनाए हैं, मेलों में गया हूं, चाँदनी रातों में खुले आसमान के नीचे सोया हूं। हम सर्दियों में अलाव जलाकर उसके इर्द-गिर्द जमा हो जाते थे, नाचते-गाते, बातें करते। रेडियो से तो मेरा जुड़ाव बहुत बचपन से रहा है। मुझे ऐसी फ़िल्में देखना पसंद था जिनमें मारधाड़ हो, कारनामे हों। मैं तो सिनेमा देखने के लिए

स्कूल की अपनी किताबें तक बेच डालता था। मैंने कभी जॉन कावस, नाडिया और बाक़ी मारधाड़ वाली स्टंट फ़िल्में छोड़ी नहीं। मुझे बैंजो बजाना और गाना पसंद था। अपने कुछ दोस्तों के सामने मैं फ़िल्मी गाने, पंजाबी लोकगीत और ग़ज़लें गाया करता था।

सच तो ये है कि अपनी किशोरावस्था से ही मुझे गाने लिखने में जो मीटर होता है- वो समझ में आ गया था। मैं मशहूर गानों की पैरोडी लिखता था। एक दो वाक्यों वाली कविताएं भी लिखता था। स्कूल के दिनों से ही मेरी तमन्ना थी कि मैं फ़िल्मों में एक गायक और अभिनेता बनूं। हालांकि मुझे पता नहीं था कि इसका क्या मतलब होता है और क्या ये करियर बन सकता है, क्या इसके सहारे ज़िंदगी बितायी जा सकती है। मेरे लिए तो बस यही मायने रखता था कि ये काम बड़ा मज़ेदार है। इसके अलावा इस तरह आप पूरे ख़ानदान और दोस्तों की नज़रों में आ सकते थे। पर बाऊ जी को इससे सबसे ज़्यादा नफ़रत थी इसलिए उनकी मौजूदगी में मैंने कभी गाना नहीं गाया। जब सन 1947 में मैं फ़ौज में आ गया तो मुझे जाने क्यों ये अहसास हो गया था कि एक दिन मेरे गाने रेडियो पर बजेंगे। हालांकि मुझे नहीं पता था कि ये कैसे हो पायेगा। बस...मैं तो सपना देखता था कि एक दिन मुंबई जाऊंगा और मुझे फ़िल्मों में काम मिल जायेगा। मुझे नहीं पता था कि ये कब होगा और कैसे होगा।

मेरी पहली कविता तब छपी जब मैं किशोर था, पिंडी में एक अख़बार छपता था जिसका नाम था 'क़ौमी'। हालांकि मुझे नहीं पता था कि इस तरह छपने के क्या मायने हैं पर मुझे ख़ुशी हुई और मैंने अपने कुछ दोस्तों को वो अख़बार दिखाया। मन में ख़्याल आया, अगर आज मां ज़िंदा होतीं तो मैं उन्हें भी दिखाता और वो कितनी ख़ुश होतीं।

पहली छपी कविता :

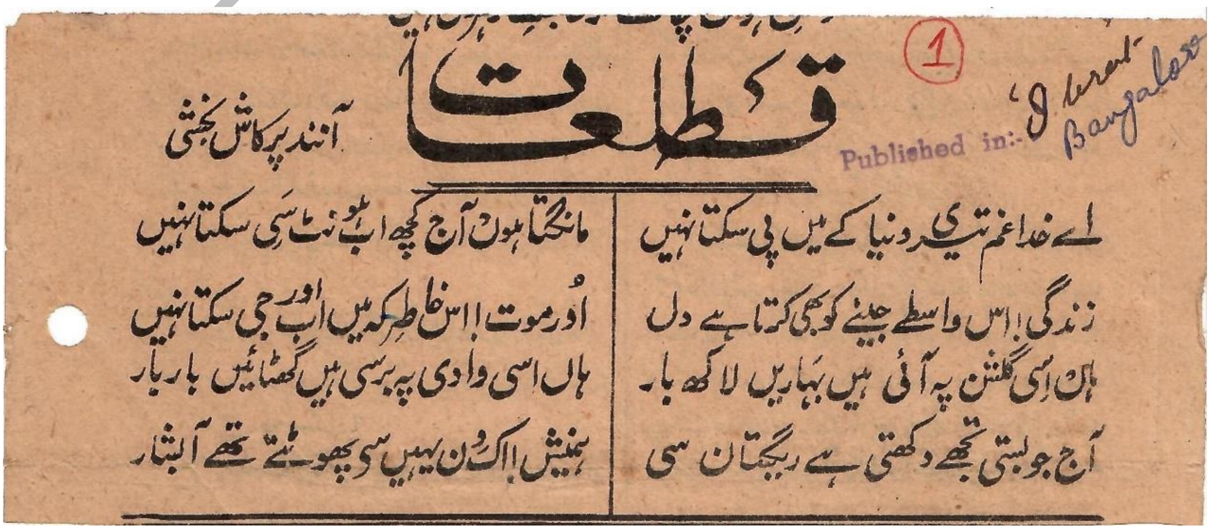
قطعات

آنند پرکاش بخشی

(1)

Published in:-

اے خدا غم تیرے دنیا کے میں پی سکتا نہیں
زندگی! اس واسطے جینے کو بھی کرتا ہے دل
ہاں اسی گلشن پہ آئی ہیں بہاریں لاکھ بار
آج جو بستی تجھے دکھتی ہے ریگستان سی

مانگتا ہوں آج کچھ اب ہونٹ سی سکتا نہیں
او موت! اس خاطر کہ میں اب اور جی سکتا نہیں
ہاں اسی وادی پہ برسی ہیں گھٹائیں بار بار
ہمنشیں! اک دن یہیں سے پھوٹتے تھے آبشار

ऐ ख़ुदा, ग़म तेरी दुनिया के, मैं पी सकता नहीं
मांगता हूं आज कुछ, अब होंठ सी सकता नहीं।
ज़िंदगी इस वास्ते जीने को भी करता है दिल
और मौत इस ख़ातिर, कि मैं और जी सकता नहीं
हां, इसी गुलशन पे आई हैं बहारें लाख बार,
हां, इसी वादी पे बरसी हैं घटाएं बार-बार
आज जो बस्ती तुझे दिखती है रेगिस्तान सी,
हमनशीं एक दिन यहीं पे फूटे थे आबशार

मैं तो फ़िल्मों में बस गाना गाना चाहता था, गाने लिखने का कोई इरादा नहीं था क्योंकि मुझे पता नहीं था कि फ़िल्मों में गाने लिखे कैसे जाते हैं। मैट्रिक करने के बाद मैं काम की तलाश में लाहौर फिल्म-उद्योग में भी गया ताकि मुझे एक अभिनेता और गायक के रूप में काम मिल जाए। बाऊ जी की वहां पोस्टिंग थी तो मेरे पास एक घर था। मुझे बीजी की बड़ी याद आती थी और मैं उनके साथ रहना भी चाहता था। एक वहीं थीं जो मेरे दिल, मेरी तमन्नाओं के समझतीं थीं।

सन 1947 में मैं जब फ़ौज में गया ही था तब मैंने कविताएं लिखनी शुरू कर दीं थीं। तब तक मुझे पता चल गया था कि मैं जो गाने गाता हूं उन्हें किन गीतकारों ने लिखा है। इसके अलावा मुझे ये भी पता चल गया था कि संगीतकार और निर्माता का क्या काम होता है। मैं अपनी कविताओं को मीटर में गानों की तरह लिखता और अपने बैरक में अपने फ़ौजी साथियों अफ़सरों के सामने गाता। अपने अफ़सरों से जब मुझे शाबाशी मिलती, तो ये अहसास बड़ा गहरा होता कि मेरे भीतर एक हुनर है। धीरे-धीरे मैं वार्षिक थियेटर के आयोजनों या बड़ा खाना में भी अपनी पेशकश देने लगा। फ़ौज की चौकियों या कैंप में, सब जगह राष्ट्रीय पर्वों के मौक़े पर बड़ा खाना आयोजित किया जाता था।

बचपन से ही गीत गाने और अपनी कविताओं की धुन बनाने से मेरे भीतर कविता और संगीत का झरना फूटा। बचपन में मैंने जो कुछ देखा और झेला, वो सब मेरे साथ रहा और इसका असर आगे चलकर मेरे गानों पर पड़ा। सन 1950 के बाद से मेरा एक मक़सद बन गया था कि मैं फौज छोड़ूंगा और एक कलाकार बनूंगा। उस ज़माने में जिन लोगों को फ़िल्मों या गानों का शौक़ होता था, वो एक कलाकार को बड़ी इज़्ज़त से देखते थे–'ये एक आर्टिस्ट है, इन लोगों की कुछ और ही तबीयत होती है'। मैंने इसके बाद ऐसे कलाकारों के बारे में उर्दू और हिंदी अख़बारों और पत्रिकाओं में और ज़्यादा पढ़ना शुरू कर दिया था। जहां भी मेरी पोस्टिंग होती, कैंट में जो भी रिसाले या अख़बार मिल पाते, मैं सब पढ़ जाता।

"**पढ़ाई से जान छूटी**."

आनंद प्रकाश, यही नाम था उनका कैंब्रिज कॉलेज में–जहां वो उर्दू मीडियम से पढ़ाई कर रहे थे। हिंदी उन्होंने कभी नियमित रूप से ना लिखी और ना पढ़ी। उन्हें इंग्लिश और उर्दू में लिखने-पढ़ने में ज़्यादा आसानी होती थी। क़रीब दस बरस बाद जब वो फौज में थे और कविताएं लिखने लगे तो वो हमेशा उर्दू में ही लिखा करते थे और ये सिलसिला फ़िल्मी-गीतकारी के शुरूआती दौर तक चलता रहा। उन्हें गाने अपने निर्देशक और संगीतकार को हमेशा पढ़कर सुनाने पड़ते ताकि वो उन्हें देवनागरी या रोमन हिंदी में लिख लें।

सन 1990 के ज़माने में एक बार किसी ने उनकी तारीफ़ करते हुए ये कहा कि बख़्शी साहब आप कितनी कुशलता से रोज़मर्रा के हिंदी शब्दों को गाने में ढाल लेते हैं, उनसे पूछा गया कि ये बेमिसाल काबलियत उनके भीतर कैसे आयी। "मैंने सिर्फ आठवीं कक्षा तक ही पढ़ाई की थी। इसलिए मुझे हिंदी के बहुत ज़्यादा शब्द पता नहीं थे। ज़ाहिर है कि जो शब्द मेरी बोलचाल के थे उन्हीं के ज़रिए मुझे अपनी बात कहनी पड़ती थी। शायद हिंदी को लेकर मेरी जो सीमित जानकारी थी, उसी का मुझे एक गीतकार के रूप में बड़ा फ़ायदा मिला और यही मेरी कामयाबी का आधार बन गया, क्योंकि देश के कोने-कोने के लोगों को मेरे गाने समझ में आये और वो उन्हें गुनगुना सके।"

सन 2001 में उन्होंने ये बात पत्रकार और कवि देवमणि पांडे से बातचीत में कही थी:

मुझे लगता है कि उन्होंने अपनी काबलियत को कम करके आंका, क्योंकि एक वाक्य में आनंद बख़्शी कितनी ख़ूबसूरती से पूरा ग्रंथ ही लिख डालते हैं–"…. तू कौन है, तेरा नाम है क्या, सीता भी यहां बदनाम हुई'। उनके 3300 से ज़्यादा गानों में से ये एक जुमला है जो मैंने निकाला है। ये गाना उनके बहुत ही मशहूर, कालजयी गीतों में से एक है, फ़िल्म 'अमर प्रेम' का गाना–

राकेश आनंद बख़्शी

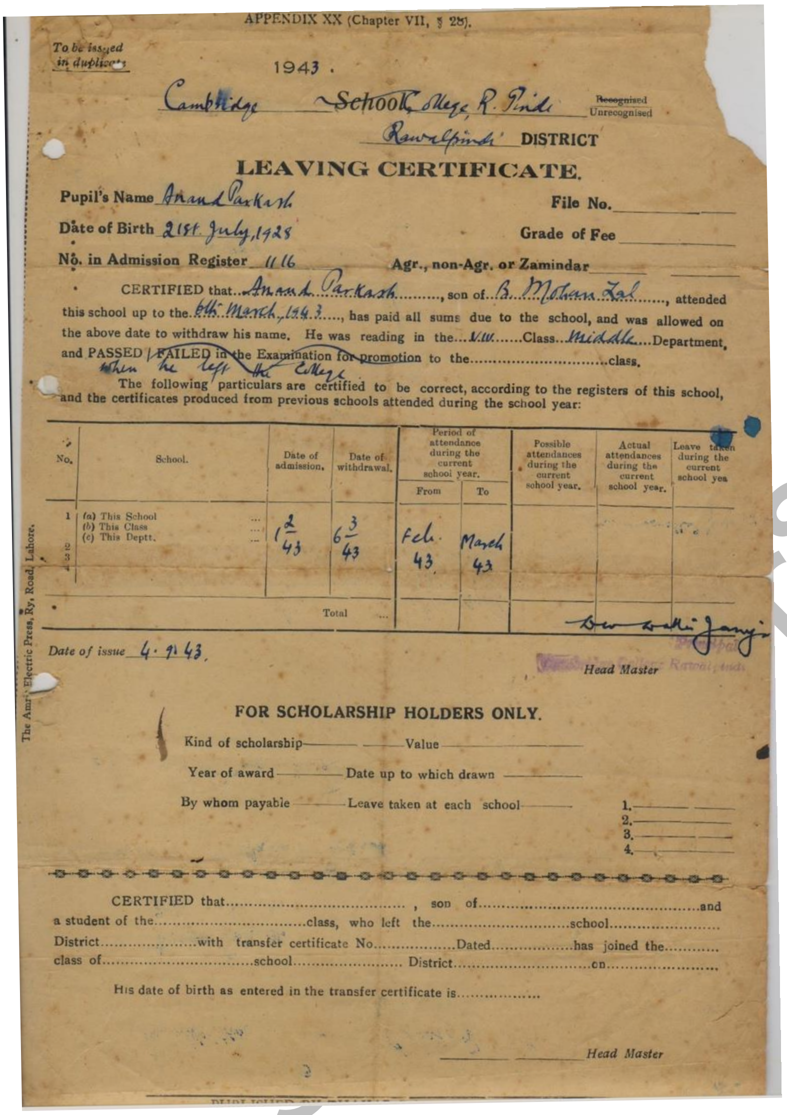
APPENDIX XX (Chapter VII, § 28).

To be issued in duplicate

1943.

Cambridge School College, R. Pindi — Recognised / Unrecognised

Rawalpindi DISTRICT

LEAVING CERTIFICATE.

Pupil's Name Anand Parkash — File No.

Date of Birth 21st July, 1928 — Grade of Fee

No. in Admission Register 1116 — Agr., non-Agr. or Zamindar

CERTIFIED that Anand Parkash, son of B. Mohan Lal, attended this school up to the 6th March, 1943, has paid all sums due to the school, and was allowed on the above date to withdraw his name. He was reading in the VIII Class Middle Department, and PASSED / FAILED in the Examination for promotion to the ....class. when he left the College

The following particulars are certified to be correct, according to the registers of this school, and the certificates produced from previous schools attended during the school year:

No.	School.	Date of admission.	Date of withdrawal.	Period of attendance during the current school year. From	To	Possible attendances during the current school year.	Actual attendances during the current school year.	Leave taken during the current school year
1	(a) This School (b) This Class (c) This Deptt.	1/2/43	6/3/43	Feb. 43	March 43			
2								
3								
4								
	Total							

Date of issue 4.9.43 — Head Master

FOR SCHOLARSHIP HOLDERS ONLY.

Kind of scholarship — Value

Year of award — Date up to which drawn

By whom payable — Leave taken at each school 1. 2. 3. 4.

CERTIFIED that......, son of......and a student of the......class, who left the......school......District......with transfer certificate No......Dated......has joined the......class of......school......District......on......

His date of birth as entered in the transfer certificate is......

Head Master

The Amrit Electric Press, Ry. Road, Lahore.

'कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना'।

"चलो, गायक बन जायें."

जब आनंद प्रकाश किशोरावस्था में थे तो उन्होंने एक सपना देखा, फ़िल्मों में काम करने का सपना। पर वो गीतकार नहीं बल्कि गायक बनना चाहते थे।

पिंडी में मैट्रिक के बाद क़रीब 1943 में मैं लाहौर गया, मक़सद था अपनी प्यारी बीजी के साथ कुछ दिन रहने का। बाऊ जी उस वक़्त लाहौर में महिलाओं की जेल के इंचार्ज थे। मैं लाहौर में भटकता रहता और वो इमारत खोजता, जहां फ़िल्में बनती हैं। मुझे लगता था कि कोई एक इमारत होगी जहां सारे के सारे लोग जमा होते होंगे, गाने गाते होंगे और फ़िल्में बनाते होंगे, पर लाहौर में मुझे कुछ भी पता नहीं लग पाया। मैं निराश हो गया पर दिल में ये तमन्ना तो कायम रही कि कभी मैं बंबई जाऊंगा और वहां अपनी किस्मत आज़माऊंगा।

“काहे को रोये, चाहे जो होये, सफल होगी तेरी आराधना” (फ़िल्म-आराधना)

“मैं कहीं नहीं पहुंचा”

आनंद प्रकाश उन लोगों में से नहीं थे जो आसानी से अपने सपने को किनारे रख देते। उन्होंने एक जल्दी ही एक और कोशिश की। इस बार वो बहुत दूर सपनों की नगरी बंबई आ गये।

पिंडी के मेरे दो दोस्त नाटकों में काम करते थे, उनके साथ मिलकर मैंने योजना बनायी कि हम घर से भाग जायेंगे और ट्रेन से बंबई जायेंगे, ताकि हम फ़िल्मों में काम खोज सकें। हममें से किसी के घर में भी फ़िल्मों को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता था। हमने एक दूसरे से वादा किया कि हम एक साथ रहेंगे और एक साथ बंबई में संघर्ष करेंगे। हमने एक दूसरे को हिम्मत दी, क्योंकि हमारे भीतर कामयाब होने का पक्का इरादा था।

अपनी दोस्ती के बंधन को पक्का करने के लिए और बंबई में एक साथ संघर्ष करने की तमन्ना को और गहरा करने के लिए हमने एक-दूसरे का नाम अपनी बांहों पर गुदवा लिया। योजना तैयार थी। मैंने अपनी स्कूली किताबें तक बेच डालीं और रावलपिंडी रेलवे स्टेशन पहुंच गया, ताकि हम तीनों दोस्त मिलकर सपनों के शहर बंबई की तरफ़ निकल पड़ें। मैं सारा दिन अपने दोस्तों का इंतज़ार करता रहा, पर वो नहीं आये। मेरे भीतर इतनी हिम्मत नहीं थी कि इतनी दूर अंजान शहर बंबई अकेले चला जाऊं। तब मेरी उम्र तेरह चौदह बरस रही होगी। एक बार फिर मेरा सपना चकनाचूर हो गया। सूरज डूबने से पहले मैं घर लौट आया।

ज़ाहिर था कि जल्दी ही पापा जी और बाऊ जी को पता चल गया कि मैंने स्कूल की अपनी किताबें बेच दी हैं। बस इसके बाद बाऊ जी ने मेरी ज़ोरदार पिटाई की। जब उन्होंने मुझे नाटकों में काम करते हुए देखा था जब जो पिटाई हुई थी, ये उससे भी ज़्यादा भयानक थी। असल में हमारे समुदाय के बुज़ुर्गों को पता चल गया था कि मैं नाटक में काम कर रहा हूं, उन्होंने बाऊ जी को मंच के सामने लाकर खड़ा कर दिया। मुझे नाटक बीच में ही छोड़ना पड़ और पापा जी के पास भागना पड़ा।

जल्दी ही सन 1943 में मुझे जम्मू में एक बोर्डिंग स्कूल में भेज दिया गया। परिवार के बुज़ुर्गों का कहना था कि ये पिंडी से दूर एक गुरुकुल में रहेगा तो इसका ध्यान नहीं भटकेगा। ‘पिंडी के कंजर दोस्त ’ छूट जायेंगे- जो मुझे गाने-बजाने और अभिनय की तरफ़ खींच रहे थे। और इस तरह मैं एक शरीफ़ इंसान बन पाऊंगा। पिंडी और बीजी को छोड़ कर जाते हुए मेरा दिल टूट गया। मां की कमी और भी ज़्यादा गहरी हो गयी। आज अगर मेरी मां ज़िंदा होतीं तो वो

मुझे कभी इस तरह दूर नहीं जाने देतीं। बीजी की घर में ज़रा भी नहीं चलती थी। मुझे जाना ही पड़ा।

“आज का ये दिन, कल बन जायेगा ये कल, पीछे मुड़ के ना देख, प्यारे आगे चल” (फ़िल्म नास्तिक)

“मुझे मुफ्त का दूध नहीं चाहिए!”

पहले साल की शुरूआत के कुछ ही दिनों बाद गुरुकुल में मैंने मुक्केबाज़ी में दाखिला ले लिया, ऐसा इसलिए क्योंकि रोज़ाना मुक्केबाज़ों को एक गिलास दूध दिया जाता था। खेलों के हमारे टीचर मुक्केबाज़ी सिखाते थे। उनका तरीक़ा बड़ा ही ज़ालिमाना था। रोज़ाना वो किसी एक बच्चे को चुनते और तब तक उसे मारते, जब तक वो बेहोश नहीं हो जाता। किसी तरह मैं उनकी नज़र से बचता रहा और पिटने की मेरी बारी कभी नहीं आयी। मैं चालाकी से दूर बना रहा और सिर्फ़ मुक्केबाज़ी के दस्ताने पहनने के बदले में रोज़ाना एक गिलास दूध पीता रहा।

इसी तरह कई महीनों तक उनकी नज़रों से बचे रहने और मुफ़्त का दूध पीते रहने के बाद एक दिन आख़िरकार उनकी नज़र मुझ पर पड़ ही गयी। ‘ओए, तुम्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा। क्या तुम नए-नए आए हो? नहीं मास्टर जी!? अच्छा, अपने दस्ताने पहनो। मैं तुम्हें सिखाता हूं कि एक मर्द की तरह कैसे अपना बचाव किया जाता है!’ इसके बाद उन्होंने मुझे तब तक पीटा जब तक कि मैं ज़मीन पर गिर ना गया। वो मुफ्त का दूध पीने का आखिरी दिन था। अगर मैं इस तरह बेदर्दी से पिटाई करवाने से इंकार कर देता तो वो कड़ी धूप में मुर्ग़ा बना देते और तब तक बनाए रखते जब तक मैं थककर गिर नहीं पड़ता। ये जगह मेरे पिछले स्कूल से भी भयानक थी, वहां हेड-मास्टर बच्चे के दोनों कान पकड़ लेते थे और उसे ज़मीन से ऊपर उठा लेते थे। जल्दी ही मैं अधबीच गुरुकुल छोड़कर भाग गया और अकेला पिंडी लौट आया। उसके बाद पढ़ाई छोड़ने के लिए मेरी जो धुलाई हुई कि पूछिए मत।

पापाजी और बाऊ जी को डर था कि अगर नंद पिंडी में रहेगा तो फिर नाटक शुरू कर देगा, इसलिए उन्होंने उसे रॉयल इंडियन नेवी, करांची में भेज दिया। कम से कम वो वहां जाकर सिपाही तो बन ही जायेगा। असल में मोहयाल हिम्मती लोगों का समुदाय था और फ़ौज में जाना उनके बीच शान की बात थी। अब वक़्त आ गया था कि अज़ीज़ पुत्तर अपने ख़ानदान की परंपरा को आगे बढ़ाए।

इस बार नंद घर छोड़ते हुए ख़ुश था, क्योंकि करांची लाहौर या रावलपिंडी से उतना दूर नहीं था जितना कि जम्मू। वो यहां अपने पापा जी और बीजी से अकसर मिल सकता था। जब

बाऊ जी और कुछ बुज़ुर्गों ने मिलकर ने उसका नाम गुरुकुल में लिखवा दिया था तो उसे लग रहा था कि परिवार ने उससे छुटकारा हासिल कर लिया। उसे लगा कि 'जज़्बाती तौर पर' परिवार ने उसे काट दिया है। उसे अजनबियों के बीच 'अकेला' छोड़ दिया गया है। शायद 'अकेला छोड़ दिये जाने' या 'त्याग देने' का जो डर या घबराहट थी–ये आगे चलकर एक फ़ोबिया बनकर उनसे चिपक गयी। 1970 के ज़माने में ये फ़ोबिया उभरा और 1995 के ज़माने तक ये उन पर हावी बना रहा।

नंद को लगा कि उसे अपने पापाजी से वो प्यार नहीं मिल रहा है, जो उसे मिलना चाहिए या जिसका वो हक़दार है। दरअसल एक पिता बच्चे को वो प्यार दे ही नहीं सकता जो मां देती है। दिन में ज़्यादातर वो अपने घर से बाहर रहता और अँधेरा होने पर ही लौटता यानी बाऊ जी और पापा जी के लौटने से पहले। मेरे ख़्याल से ये शायद इकलौती वजह थी, जिसके रहते वो नेवी में जाने को राज़ी हो गया। इसके अलावा करांची के बंदरगाह पर लगा ट्रेनिंग वाला जहाज़ भी उसे अपनी तरफ़ खींच रहा था, जहां उसे हाजिरी देनी थी। उसने सोचा कि यही उसके लिए रास्ता बनेगा। करांची बंदरगाह बंबई के फ़िल्म उद्योग तक उसके पहुंचने का ज़रिया बन जायेगा।

ट्रेनिंग वाला जहाज़ करांची में बंदरगाह पर लगा था, ये उसके दूसरा या ये कहें कि अकेला मौक़ा था बंबई जाकर अपनी किस्मत को आज़माने का। वो ये मौक़ा हाथ से नहीं जाने देना चाहता था।

हालांकि मां के गुज़र जाने के बाद पापाजी ने जिस तरह उसकी परवरिश की, वो नंद को मंज़ूर नहीं थी–इसके बावजूद जब वो कामयाब बन गया, मशहूर हो गया, तो उसने परिवार के लिए अपनी सारी ज़िम्मेदारियां निभायीं। ये रहा उसके कज़िन का एक ख़त, जिसमें उसने लिखा है कि किस तरह आनंद बख़्शी ने दिल्ली में गंभीर रूप से बीमार पड़े उसके पापा जी को बचाने की भरसक कोशिश की

और वो घर के बुज़ुर्गों को दिखा सकें कि नंद किस तरह बिगड़ गया है और उसने उनका क्या हाल किया है। वो नंद के बचपन और किशोर उम्र का सबसे काला दौर था। नंद को ये शक था कि ऐसा उसके साथ इसलिए किया जा रहा है ताकि वो घर और परिवार को छोड़कर भाग जाये। मुझे नहीं पता कि क्यों उनकी पिटाई की जाती थी और क्यों उन पर इस तरह झूठे इल्ज़ाम लगाए जाते थे। पर चूंकि परिवार के बुज़ुर्गों को उनकी बात पर यक़ीन था, इसलिए नंद की एक बार फिर पिटाई होती, या उस पर लानतें भेजी जातीं, जबकि उसने ऐसी कोई ग़लती कभी की ही नहीं होती थी।

राकेश आनंद बख्शी

मुझे नहीं पता कि छह बरस की उम्र में अपनी मां को खो देने का अहसास कैसा होता होगा, क्योंकि मेरी मां ने हमारे साथ एक भरी-पूरी ज़िंदगी जी। नंद एक जज़्बाती, संवेदनशील बच्चा था जिसने छह बरस की उम्र में अपनी मां को हमेशा के लिए खो दिया था। इसके बाद जल्दी ही उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली। मुझे नहीं पता कि इस तरह के बच्चे को अतिरिक्त प्यार-दुलार और ख़्याल रखने की ज़रूरत पड़ती है या नहीं। डैड ने कभी इस बारे में विस्तार से नहीं बताया, क्योंकि उनका कहना था कि इतने सालों बाद भी ये सब बातें करते हुए उनका दिल दुखता है। अकसर ही वो अपनी मां को खो देने के दुःख के बारे में बात करते। अपनी जन्मभूमि पिंडी पीछे छूटने की बात भी करते। ये उनकी ज़िंदगी के दो बड़े नुकसान थे। "किसी भी तरह की दौलत और शोहरत और प्यार इसकी जगह नहीं भर सकता। मेरी मांजी और मेरी मिट्टी। मेरी मिट्टी थी, झेलम में वो बह गयी"

किताब-ए-ग़म में ख़ुशी का कोई फ़साना ढूंढो
अगर जीना है ज़माने में तो ख़ुशी का कोई बहाना ढूंढो
सयाना वो है जो पतझड़ को भी बना ले गुलशन बहारों जैसा
काग़ज़ के फूलों को भी जो महका कर दिखलाए
इक बंजारा गाए...
--जीने की राह

चौदह बरस की उम्र में साल 1944 में आनंद प्रकाश को रॉयल इंडियन नेवी करांची में भेज दिया गया। मक़सद था फ़ौज में जाकर वो मुल्क़ की खिदमत करेगा। बुज़ुर्गों ने मोहयालों की सरज़मीं से उसे दूर
कर दिया। हालांकि तक़दीर और नंद की कोशिशें, उसके काम (तदबीर) ने उसकी ज़िंदगी की दिशा को बदल दिया।

तक़दीर है क्या, मैं क्या जानूं, मैं आशिक़ हूं तदबीरों का (विधाता)

<u>अध्याय 2</u>

<u>1944 से 1947</u>

‘जो नहीं बंट सकी चीज़ वो रह गयी’

रॉयल इंडियन नेवी

नंद को 12 जुलाई 1944 को करांची बंदरगाह पर एच. एम. आई. एस. दिलावर नामक जहाज़ पर आनंद प्रकाश, रैंक–‘बॉय 1’ के रूप में भर्ती कर लिया गया था। उन्होंने वहां 4 अप्रैल 1945 तक काम किया, इसके बाद उनका तबादला एच. एम. आई. एस. बहादुर पर हो गया।

Anand Prakash ‘Boy 1’ Rating

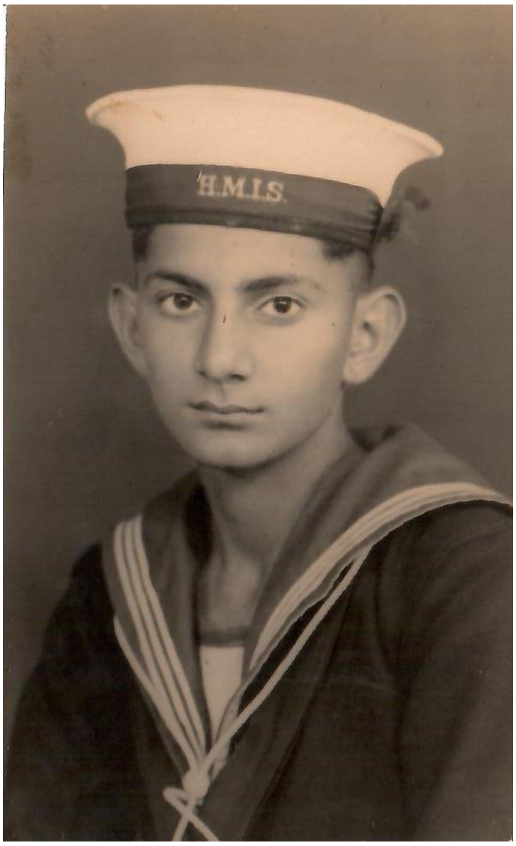

तस्वीर साभार ***<u>https://swarajyamag.com/culture/partition-1947-split-in-royal-indian-navy-had-serious-impact-on-then-geopolitics</u>***

जहाज़ पर पहले ही दिन हमें बाल कटवाने के लिए एक फ़ौजी नाई के पास भेज दिया गया जिसने हमारा ‘मिलेट्री कट’ बना दिया, आप जानते होंगे कि इसमें कलम या कल्ले उड़ा दिये

जाते हैं और हर तरफ़ से बाल इतने छोटे कर दिये जाते हैं कि पूछिए मत। हमारा दिन सुबह चार बजे शुरू होता था और आधे घंटे के अंदर हमें यूनीफ़ॉर्म पहनकर तैयार हो जाना पड़ता था। सुबह पौने पाँच बजे ज़ोरदार कसरत के लिए जमा हो जाना पड़ता था। सुबह नौ बजे से लेकर दोपहर तक हमारी पढ़ाई करवाई जाती थी। आधे घंटे का लंच-टाइम हुआ करता था। दोपहर को दो बजे हमारी क्लास ख़त्म हो जाती थी। दिन में तीन बजे हमें कोई ना कोई खेल खेलने के लिए मैदान में जमा हो जाना पड़ता था। शाम छह बजे से रात नौ बजे तक हमें फिर से पढ़ाई करनी पड़ती थी। साढ़े सात बजे आधे घंटे की डिनर की छुट्टी दी जाती थी। हम बिस्तर पर पड़ते ही सो जाते थे। मेस में खाने का स्वाद तो आता था पर वक़्त के साथ धीरे-धीरे उसका लुत्फ़ ख़त्म होता चला गया। मुझे उस जगह से नफ़रत होने लगी। हम इंतज़ार करते थे कि कब छुट्टी का दिन आयेगा, कब हम किनारे पर जायेंगे और सड़क किनारे की गुमठियों का खाना खायेंगे। समुद्र यात्रा की शुरूआत तीन साल बाद ही हो सकती थी और इसके लिए ख़ास तरह की ट्रेनिंग लेनी पड़ती थी। मैंने अंदाज़ा लगाया कि जल्दी ही मुझे बंबई के बंदरगाह ले जाया जायेगा, फ़िल्मों की और मेरे ख़्वाबों की सरज़मीं पर।

कई महीनों तक ट्रेनिंग इसी तरह से चलती रही और कैडेट आनंद प्रकाश हर बार ये उम्मीद करते कि उनका ये जहाज़ जल्दी ही उन्हें बंबई ले जायेगा। हालांकि सन 1944 से 1946 के बीच उन्हें जिन दो जहाज़ों पर तैनात किया गया—वो कभी करांची के बंदरगाह से बाहर गये ही नहीं। नेवी के सहारे बंबई पहुंचने का उनका सपना पूरा होता नज़र नहीं आ रहा था। पर आगे चलकर एक बहुत ही नाटकीय बात होने वाली थी। ट्रेनी कैडेट आनंद प्रकाश नेवी की बग़ावत में फंस गये। इस बग़ावत की शुरूआत कलकत्ता से शुरू हुई थी और जल्दी ही फ़रवरी 1946 तक इसकी आग बंबई और करांची बंदरगाह तक पहुंच गयी थी।

"बग़ावत" - भारतीय नेवी में हुआ विद्रोह

जब युवा कैडेट आनंद प्रकाश एक जहाज़ पर तैनात थे तो उन्होंने पाया कि उनके साथी और सीनियर ब्रिटिश अफ़सरों के खिलाफ़ एक मुहिम छेड़ने की तैयारी कर रहे हैं।

मेरे डैडी ने एक शाम बांद्रा के अपने घर की बालकनी पर खड़े होकर जो बातें मुझे बतायी थीं वो इस तरह थीं:

इस बग़ावत का नेता था एक तेज़-तर्रार बंगाली लड़का। मेरे जहाज़ को जल्दी ही एक ब्रिटिश कमांडिंग ऑफ़ीसर और उनकी टुकड़ी की निगरानी में ला दिया गया। मेरे जहाज़ के कमांडिंग ऑफ़ीसर ने पड़ोस के जहाज़ पर तैनात बंगाली लड़के से कहा कि वो आत्म-समर्पण कर दे। मैं

अपने दोस्तों के साथ दूसरे जहाज़ पर तैनात होना चाहता था। मैंने सोचा कि ब्रिटिश ऑफ़ीसर की आंखों में धूल झोंककर दूसरे जहाज़ पर तैनात बग़ावत कर रहे फौजियों के साथ शामिल हो जाऊं। मुझे लग रहा था कि हम बग़ावत को दबाने के लिए भेजी गयी ब्रिटिश-फोर्स को दबा सकेंगे। सैकड़ों भारतीय नाविक और अफ़सर 'जय हिंद' का नारा लगा रहे थे, 'आज़ादी' का नारा लगा रहे थे। माहौल में एक ज़ोरदार जोश था। हम सब राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से सराबोर थे।

मैंने अपने ब्रिटिश कमांडिंग ऑफ़ीसर से कहा, 'सर, मैं उस बंगाली लड़के को जानता हूं। वो मेरा दोस्त है। मैं उसे आत्म-समर्पण करने के लिए राज़ी कर सकता हूं। पर इसके लिए आपको मुझे अपने जहाज़ से उसके जहाज़ पर जाने की इजाज़त देनी होगी। शायद कमांडिंग ऑफ़ीसर मेरी कम उम्र और मासूम चेहरे को देखकर इस बात के लिए राज़ी हो गया। उसने मुझे बग़ावती फ़ौजियों वाले जहाज़ पर जाने की इजाज़त दे दी। जैसे ही मैं विद्रोह कर रहे फौजियों वाले जहाज़ पर गया, मैंने ब्रिटिश राज के खिलाफ़ नारे लगाने शुरू कर दिए। मुझे हमेशा लगता था कि एक विदेशी ताक़त हम पर राज कर रही है, ये हमारे लिए शर्मिंदगी की बात है। फ़ौज में जो मेरे साथी थी, उनके ज़रिए मुझे बंबई, दिल्ली, कलकत्ता और बाक़ी जगहों पर चल रही आज़ादी की लड़ाई के बारे में पता चलता रहता था। वो अकसर इस बारे में बातें करते थे। मैं नेवी में देश के लिए लड़ने के लिए नहीं आया था। मेरा मक़सद तो बंबई जाना था। पर उस वक़्त मैं सब भूल गया और जो सबसे बड़ी लड़ाई चल रही थी, उसमें शामिल हो गया। नेवी में आने के बाद ही मेरे दिल में राष्ट्रीयता की भावना जागी थी। बाऊ जी और हमारे परिवार के लोगों को बाहरी लोगों की हुकूमत पसंद नहीं थी। अचानक मेरा मन भी उनकी तरह बनने का करने लगा था।

हालांकि हमारे जोश को बुरी तरह से कुचल दिया गया। नेवी में जो बग़ावत हुई, उसे बुरी तरह से दबा दिया गया। और जिन लोगों ने बग़ावत की थी उन्हें उसी ब्रिटिश ऑफ़ीसर के सामने पेश किया गया जिसकी आंखों में मैंने धूल झोंकी थी। हैरत की बात ये थी कि उसने मुझे पहचान लिया। उसे पता चला कि मैं पंद्रह बरस का हूं। उसने मुझसे कहा, '....तुम इतने छोटे से हो कि मैं तुम्हें गिरफ्तार करके जेल नहीं भेजूंगा। चाहूं तो मैं ऐसा कर सकता हूं, पर अगर मैंने ऐसा किया तो तुम्हारी ज़िंदगी ख़त्म हो जायेगी। पर तुम्हें नौकरी से ज़रूर निकाल रहा हूं।

आनंद प्रकाश को बग़ावत के दो महीनों बाद 5 अप्रैल 1946 को रॉयल इंडियन नेवी निकाल दिया गया।

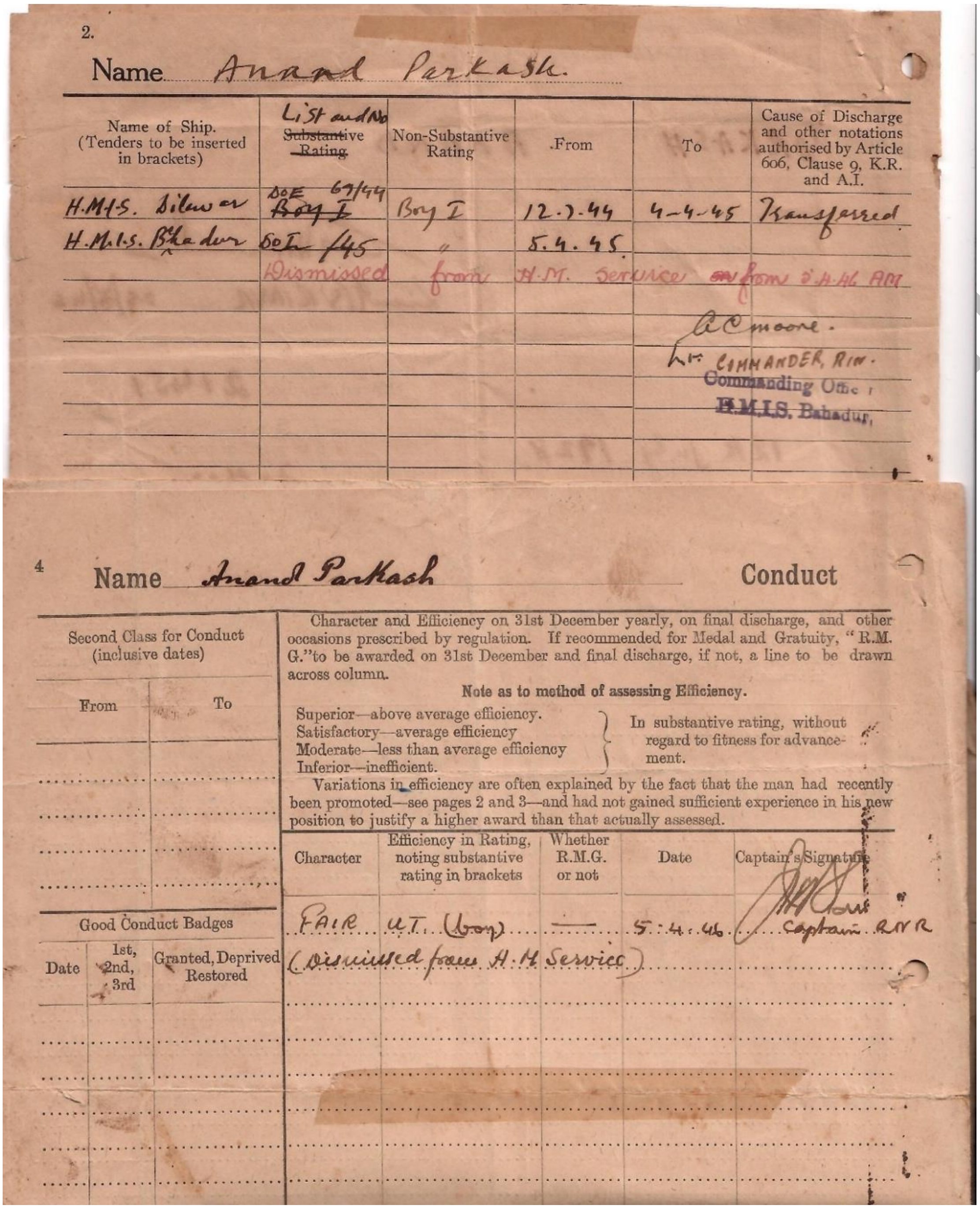

2.

Name Anand Parkash.

Name of Ship. (Tenders to be inserted in brackets)	~~Substantive~~ List and No Rating	Non-Substantive Rating	From	To	Cause of Discharge and other notations authorised by Article 606, Clause 9, K.R. and A.I.
H.M.I.S. Dilawar	DOE 67/44 Boy I	Boy I	12.7.44	4-4-45	Transferred
H.M.I.S. Bahadur	/45	"	5.4.45		
Dismissed	from	H.M. Service	from 5.4.46 AM		

A.C. Moore.
Lt. COMMANDER, RIN.
Commanding Office,
H.M.I.S. Bahadur.

4 Name Anand Parkash Conduct

Second Class for Conduct (inclusive dates)

From	To

Character and Efficiency on 31st December yearly, on final discharge, and other occasions prescribed by regulation. If recommended for Medal and Gratuity, "R.M.G." to be awarded on 31st December and final discharge, if not, a line to be drawn across column.

Note as to method of assessing Efficiency.

Superior—above average efficiency.
Satisfactory—average efficiency
Moderate—less than average efficiency
Inferior—inefficient.
In substantive rating, without regard to fitness for advancement.

Variations in efficiency are often explained by the fact that the man had recently been promoted—see pages 2 and 3—and had not gained sufficient experience in his new position to justify a higher award than that actually assessed.

Character	Efficiency in Rating, noting substantive rating in brackets	Whether R.M.G. or not	Date	Captain's Signature
FAIR	U.T. (Boy)	—	5.4.46	Captain RIN
(Dismissed from H.M. Service)				

Good Conduct Badges

Date	1st, 2nd, 3rd	Granted, Deprived Restored

आज जब इतने सालों बाद मैं उन दिनों को याद करता हूं तो उस ब्रिटिश कमांडिंग ऑफ़ीसर का शुक्रिया अदा करने का मन करता है। ये उनकी समझदारी थी और उनका बड़प्पन था कि उन्होंने ज़िंदगी में मुझे दूसरा मौक़ा दिया। वरना क्या पता, मैं जेल में ही सड़ता या मर जाता। इतना तो तय था कि जेल जाने के बाद मेरी ज़िंदगी की दिशा की कुछ और ही हो जाती। शायद मैं उसके बाद कभी बंबई नहीं पहुंच सकता था और गीतकार तो कतई नहीं बन सकता था।

सन 1983 में आनंद बख़्शी ने अर्ज़ी दी कि उन्हें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी या फ्रीडम फाइटर माना जाए। पर भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने बग़ावत में उनके शामिल होने के 'सुबूतों की कमी' की वजह से उसे ठुकरा दिया।

इस बग़ावत के बारे में ज़्यादा जानकारियां आप यहां पढ़ सकते हैं:
https://swarajyamag.com/columns/the-forgotten-naval-mutiny-of-1946-and-indias-independence
सन 1946 की नेवी की बग़ावत में करांची की भूमिका:
https://www.alterinter.org/?Role-of-Karachi-in-the-1946-Naval-Rebellion)

"मैं फ़िल्म पे फ़िल्म देखता था"
पिंडी वापस लौटकर उन्होंने ना पुराने ज़माने को याद किया और ना ही अपनी नाकामी का अफ़सोस किया। उन्होंने बस अपने जुनून पर ध्यान दिया। उन्हें फ़िल्मों का अपना सपना किसी भी तरह पूरा करना था।

नेवी से निकाले जाने के बाद, नंद ने सन 1946 में रावलपिंडी के एक सिनेमा हॉल में बतौर टिकिट बाबू नौकरी कर ली, ताकि वो मुफ्त में फ़िल्में देखने का मज़ा ले सकें। मुझे नहीं पता कि बाऊ जी ने उनकी आगे की पढ़ाई या करियर के बारे में क्या सोच रखा था।

अगर मुझे ठीक से याद है तो उन्होंने रावलपिंडी में रोज़ सिनेमा में नौकरी कर ली थी। वो या तो टिकिट खिड़की पर तैनात थे या फिर टॉर्च बॉय थे, जो लोगों को उनकी सीट तक ले जाता था। मुझे नहीं पता कि उन्होंने किस तरह अपनी इस नयी नौकरी को अपने परिवारों से छिपाकर रखा था।

राकेश आनंद बक्शी

रोज़ सिनेमा। तस्वीर साभार https://mapio.net/pic/p-20131568/

रावलपिंडी या लाहौर में नंद

वैसे तो मुझे फ़िल्मों की हर बात अच्छी लगती थी पर गाने और लड़ाई वाले सीन मुझे बहुत पसंद आते थे। जब मैं थोड़ा बड़ा हो गया तो कहानी में भी मुझे दिलचस्पी होने लगी। जब बाऊ जी पंजाब की जेलों का दौरा करने जाते थे और पापा काम पर निकल जाते थे तो मैं अपने घर वाली गली में कई घंटे पंजाबी लोकगीत या हिंदी फ़िल्मी गीत गाता रहता। मेरे दोस्त और यहां तक कि गली में सामान बेचने आने वाले फेरीवाले भी रूक कर सुनते और 'वाह जी वाह' कहते। पर इतना तय था कि बाऊ जी और पापा जब घर में नहीं होते तभी मैं गाने गाता था या फ़िल्मी-सीन की नकल करके दिखाता था। इसीलिए मैंने टिकिट बेचने वाले की नौकरी की क्योंकि मेरा एक ही सपना था, बंबई जाना और फ़िल्मों में कोई काम करना। इस नौकरी के दौरान मैंने ख़राब से ख़राब फ़िल्में भी बार बार देखीं। मैंने एक्शन फ़िल्मों और गानों का सबसे ज़्यादा लुत्फ़ लिया। बार-बार देखने के बाद अपने आप मेरी समझ में आया कि गानों का ताल्लुक़ फ़िल्म के सीन, कहानी और किरदारों से बड़ा गहरा होता है। क़रीब बीस साल बाद संगीतकार सचिन देव बर्मन मुझसे कहते थे, 'बख़्शी फ़िल्म की कहानी ठीक से सुनो। कहानी में गाना है'। मेरे कई गाने ऐसे हैं जिनमें मैंने चार अंतरों में फ़िल्म की कहानी का सार शामिल कर दिया है। बहरहाल... दो साल के अंदर ही मेरी वो छोटी सी दुनिया हमेशा के लिए तबाह हो गयी। एक तूफ़ान आया और उसने मुझे और मेरे सपनों को चकनाचूर कर दिया। लाखों लोगों को अपनी जन्मभूमि, अपनी मिट्टी से अलग कर दिया।

सन 1947. पिंडी में मुख्य रूप से हिंदू रहते थे। और वहां उनका कई तरह का कारोबार था। पिंडी के आसपास गांवों में मुस्लिम लोग बड़ी तादाद में थे। चौदह अगस्त को जब बंटवारा हो गया तो उसके बाद दुकानों और घरों को लूटना, जलाना, लोगों को फांसी पर चढ़ा देना, औरतों को अगवा कर लेना आम हो गया। हमने ये भी सुना है कि सरहद के उस पार भी इसी तरह की घटनाएं हो रही थीं। सरहद के दोनों तरफ़ बहुत सारे लोग ऐसे थे, जो 'बाहरी' बन गये थे। बंटवारे के पहले जो उनकी अपनी सरज़मीं थी–उसी पर वो अब रिफ़्यूजी बन गए थे। पुरूषों को मार डाला गया और महिलाओं को अगवा लिया गया। हिंसा की ज़्यादातर घटनाओं में पिंडी के लोग शामिल नहीं थे, बल्कि ये बाहरी लोगों की सोची-समझी साज़िश थी। लूटपाट करने वाले पास के गांवों से या 'भारत' से आए थे, ताकि जो कुछ जमा कर पायें, जमा कर लें। आनंद प्रकाश ने देखा कि दंगाई कुछ औरतों की इज़्ज़त लूट रहे हैं, औरतों और आदमियों को पेड़ या खंभों पर लटकाया जा रहा है। उन्होंने देखा कि आदमियों के हाथ काटे जा रहे हैं। उन्होंने देखा कि उनके रिश्तेदारों और दोस्तों के घर और दुकानों को जलाया जा रहा है, ताकि परिवार डरकर पंजाब से भाग जाएं। इस हिंसा को वो ज़िंदगी में कभी भूल नहीं पाए। सरहद के दोनों तरफ़ के वो लोग, जो किसी तरह ज़िंदा बच पाये, भाग पाए–वो अपने साथ पहने हुए कपड़ों के सिवा कुछ और नहीं ले जा सके।

एक बार मैं धर्मेंद्र से मिला, उनके पिता के गुज़र जाने के बाद का वक़्त था। उन्होंने मुझसे

राकेश आनंद बक्शी

कहा, "....तुम्हारे डैडी मुझसे अकसर ही पिंडी के दिनों के बारे में बात करते थे। इससे मुझे 'जब जब फूल खिले' फ़िल्म का ये गाना याद आ गया--"यहां मैं अजनबी हूं"। उनके इस गाने में गुज़रा हुआ ज़माना प्रतीक के रूप में आता है–'मुझे याद आ रहा है, वो छोटा-सा शिकारा'।

बख़्शी परिवार को जिन हालात में अपनी मातृभूमि को रातों-रात छोड़कर जाना पड़ा, उनका ज़िक्र मैंने शुरूआत में थोड़ा-सा किया है। नंद के बाऊ जी पुलिस सुप्रिन्टेन्डेन्ट थे, पंजाब की जेलों के इंचार्ज थे, इसलिए वो लोग सुरक्षित इस पार आ सके। लाखों दूसरे लोगों के साथ ऐसा नहीं हुआ। जिस डकोटा प्लेन में पूरा परिवार और शायद दूसरे रिफ़्यूजी और पुलिस ऑफ़ीसरों के परिवार भी आए–वो उनकी ख़ुशनसीबी थी। कम से कम बख़्शी परिवार एक साथ तो था। भले ही वो अपनी क़ीमती चीज़ें साथ ना ला सके हों।

डैडी ने अपने प्रिय दोस्त पी. एन. पुरी से बंटवारे से पहले के कुछ हफ्तों के हालात के बारे में बताया था। पुरी साहब सन 1960 में बंबई के उनके शुरूआती ज़माने से उन्हें जानते थे और तब से ही उनके दोस्त थे। डैड ने अपने बच्चों से इस बारे में कभी बात नहीं की। ये बातचीत उसी साल हुई थी, जिस साल डैड इस दुनिया से चले गये। मैंने उनके दोस्तों और रिश्तेदारों से मुलाक़ात करनी शुरू की, फ़िल्मकारों से मिला और उनसे डैडी की यादें जाननी चाहीं- "....जानते हो बेटा, तुम्हारे डैडी को तरह-तरह की चिंताएं थीं, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'एंगज़ाइटी' कहा जाता है। बंटवारे के दौरान उन्होंने जो भयानक ख़ून-ख़राबा देखा था, उसका भी असर था। उन्होंने मुझे बताया कि लोगों का क़त्ल किया गया, इज़्ज़त लूटी गयी, ज़िंदा जला दिया गया और वो यादें उन्हें सारी ज़िंदगी डराती रहीं, परेशान करती रहीं। गांव में उनका एक परिचित परिवार था, उन्होंने अपनी मां का सिर काट दिया था और अपनी बेटियों के लंबे बाल काट दिये थे ताकि वो लड़कों जैसी दिखें। उस दौर में ऐसी घटनाएं हो रही थीं कि उन्हें ये करना पड़ा। इसलिए वो हमेशा जब ट्रेन से लंबी यात्राएं करते तो अपने दोस्तों डॉक्टर नानावटी या कार डीलर चौकसी या रेलवे के अपने दोस्त चित्तरमल से इल्तिजा करते थे कि वो उनके साथ जायें।"

चलिए फिर से बख़्शी परिवार की उस हलचल के बीच सरहद पार करने की बात पर वापस आते हैं। उन्हें पूरी हिफ़ाज़त से गोरखा रेजीमेन्ट के एक फौजी ट्रक के ज़रिए हवाई-पट्टी तक लाया गया था। बख़्शी साहब कहते थे, "और हम दिल्ली में बस गये।" डैड बताते थे कि वो लोग 2 अक्तूबर 1947 को भारत आए थे। (कुछ बरस बाद इसी तारीख़ को लखनऊ में सन 1955 में उनकी शादी हुई थी)। बख़्शी परिवार के भारत आने के दो हफ्तों बाद डिप्टी सुप्रिन्टेन्डेन्ट पुलिस, रिफ़्यूजी ब्रांच पूना के ऑफिस ने उन्हें 'रिफ़्यूजी' का दर्जा दे दिया था। ये चौदह अक्तूबर 1947 की बात है। आनंद प्रकाश को ये अहसास तब हुआ कि वो लोग 'रिफ़्यूजी'

बन गए हैं जब उन्हें रिफ़्यूजी रजिस्टर में अपने नाम और उसके आगे लिखे पुराने पते के सामने दस्तख़त करने पड़े।

तस्वीर साभार: https://www.dailyo.in/politics/jammu-and-kashmir-pakistan-gilgit-baltistan-hindus-sikhs-1947-partition-karan-singh-poonch-muzaffarabad/story/1/12632.html

रावलपिंडी की औरतों की सामूहिक आत्महत्या

Lady Mountbatten with Sikh Ladies of Rawalpindi

आनंद प्रकाश को दीवाली के एक हफ़्ते पहले 3 नवंबर रिफ़्यूजी सर्टिफिकेट भी दे दिया गया।

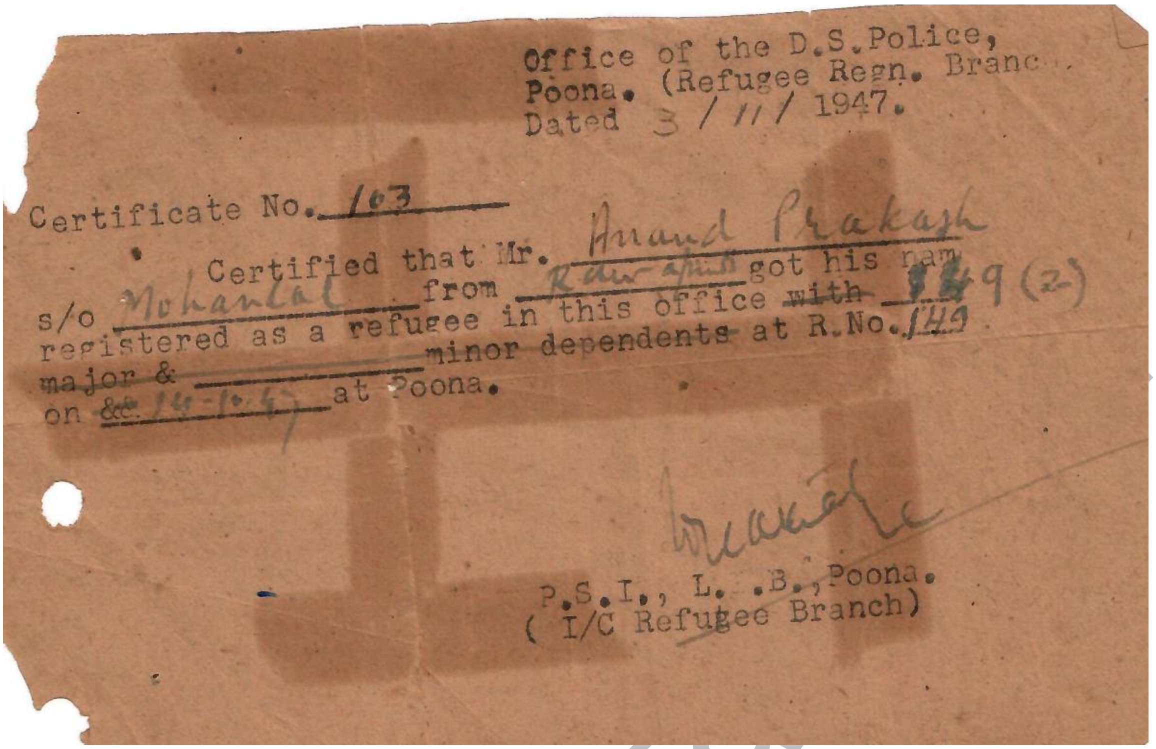
Office of the D.S.Police,
Poona. (Refugee Regn. Branc..
Dated 3/11/1947.

Certificate No. 103

Certified that Mr. Anand Prakash
s/o Mohanlal from Rawalpindi got his nam
registered as a refugee in this office with 149(2)
major & ______ minor dependents at R.No. 149
on 14-10-47 at Poona.

P.S.I., L. B., Poona.
(I/C Refugee Branch)

उस मनहूस साल की दीवाली पर शायद आनंद प्रकाश के लिए यही एक ख़ुशख़बरी रही होगी। जब उन लोगों ने आसपास के लोगों की हालत देखी तो समझ गये कि उनकी हालत दूसरों से बेहतर है। इतने भयानक दौर में भी कम से कम परिवार तो एक साथ था, भले ही चारों तरफ़ पैसों की तंगी, डर, अनिश्चितता और असुरक्षा का माहौल था। बख़्शी साहब हमेशा अपने बच्चों से कहते थे, "आसपास देखो, देखो तुम्हारे पास कितना कुछ है'।

"दुनिया में कितना ग़म है, मेरा ग़म कितना कम है, दुनिया का ग़म देखा तो मैं अपना ग़म भूल गया" (फ़िल्म 'अमृत')

भले ही उनकी इज़्ज़त और उनकी दौलत चली गयी थी, रातोंरात उनकी हैसियत ख़त्म हो गयी थी पर बख़्शी परिवार ने ज़िंदगी की एक नयी और टूटी फूटी शुरूआत तो कर ही दी थी।

रिफ़्यूजी के रूप में बख़्शी परिवार ने ज़मीन लेने से इंकार कर दिया बल्कि पैसों का मुआवज़ा लेना पसंद किया। इस दौरान वो मदद करने वाले एक रिश्तेदार से दूसरे रिश्तेदार के पास जाकर टिकते रहे। आने वाले कुछ सालों तक उन्हें लगातार किराए के घरों में रहना पड़ा। आखिरकार सन 1954 में वो वेस्ट पटेल नगर में आ गये, सन 1961 में वो कालकाजी में रहे,

सन 1971 में परिवार कमला नगर में आ गया और आखिरकार 1972 में बस्ती सराय रोहिल्ला में जा बसा।

उन्हें अब तक यक़ीन हो गया था कि वो कभी पिंडी वापस नहीं जा सकेंगे क्योंकि अब वो वहां बाहरी लोग कहलाएंगे। वहां कोई उनका नहीं होगा। उनके घर पर अजनबी लोगों ने क़ब्ज़ा कर लिया था। पापा जी और बीजी ने दरवाज़े पर ताला लगाने से पहले वहां की ज़मीन को चूमा था और उसके बाद चाभी एक भरोसेमंद पड़ोसी को दे दी थी, उनसे ये कहा था कि जैसे ही ये वहशीपन ख़त्म हो जायेगा, हम वापस आ जायेंगे। बाऊजी ने डकोटा प्लेन के उड़ने से पहले कोलतार की हवाई पट्टी को चूमा था। नंद अपने साथ दवा की एक पुरानी कांच की एक बोतल में पिंडी की मिट्टी लेकर आया था। वो उनकी आलमारी में गोदरेज की स्टील की तिजोरी में ताज़िंदगी उनके साथ बनी रही।

बीजी को अब अपने डरे-सहमे परिवार को दिलासा देना पड़ रही था–*‘हिंदुस्तान में तुम्हें नये लोगों की, नये रिश्तों की और नये रिवाजों की आदत पड़ जायेगी। घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है’।*

फरवरी 2002 में डैड के गुज़रने से महीने भर पहले उन्होंने अपने प्रिय दोस्त और किसी ज़माने में सिंध से आये रिफ़्यूजी श्याम केसवानी के साथ पिंडी जाने की योजना बनायी थी। वो कहते थे, अस्पताल से डिस्चार्ज होकर मैं पिंडी जाऊंगा। पर ऐसा हो ना सका। बहुत वक़्त तक चले अस्थमा की वजह से उनके फेंफड़े लगातार कमज़ोर होते चले गये। जब उन्होंने पिंडी जाने की योजना बनायी, उसके एक महीने के भीतर ही वो दुनिया छोड़कर चले गये। हालांकि उनके गानों को लोगों का प्यार मिलता रहा। सरहद के दोनों तरफ़। उनकी कविता है–‘मेरी पिंडी, मेरा पिंड’। मेरा तो ये मानना है कि वो सन 1965 में ही पिंडी और उसके पार हो आए थे क्योंकि ‘जब जब फूल खिले’ बड़ी कामयाब हो गयी थी। कवि देवमणि पांडे कहते हैं, ‘इस फ़िल्म के गीतों ने सारे हिंदुस्तान में धूम मचा दी थी। आनंद बख़्शी के लोकप्रिय गीत सभी तरह के लोगों के होठों पर आ गये थे’।

अपनी कविता ‘रावलपिंडी’ में वो एक रिफ़्यूजी के तौर पर अपनी प्यारी पिंडी से जुदा होने की तकलीफ़ बयान करते हैं, पर मुझे लगता है कि ये उन सभी लोगों की कविता है जिन्हें अपनी कोई प्रिय चीज़ छोड़कर आगे बढ़ जाना पड़ा है। जिन्हें अपने गांव को छोड़कर निकल जाना पड़ा है।

राकेश आनंद बक्शी

रावलपिंडी

सानेहा ये मेरी ज़िंदगी सह गयी

मैं यहां आ गया, वो वहां रह गयी।

कुछ ना मैं कर सका, देखता रह गया

कुछ ना वो कर सकी, देखती रह गयी।

लोग कहते हैं तक़सीम सब हो गया

जो नहीं बंट सकी चीज़ वो रह गयी।

इन ज़मीनों ने कितना लहू पी लिया

ये ख़बर आसमानों तलक है गयी।

रास्ते पे खड़ी हो गयीं सरहदें

सरहदों पे खड़ी बेबसी रह गयी।

याद पिंडी की आती है अब किसलिए?
मेरी मिट्टी थी झेलम में वो बह गयी।

दे गयी घर, गली, शहर मेरा किसे
क्या पता किस से बख़्शी वो क्या कह गयी

आनंद बक्शी

'रावलपिंडी' कविता आनंद बख़्शी की अपनी हस्तलिपि में-

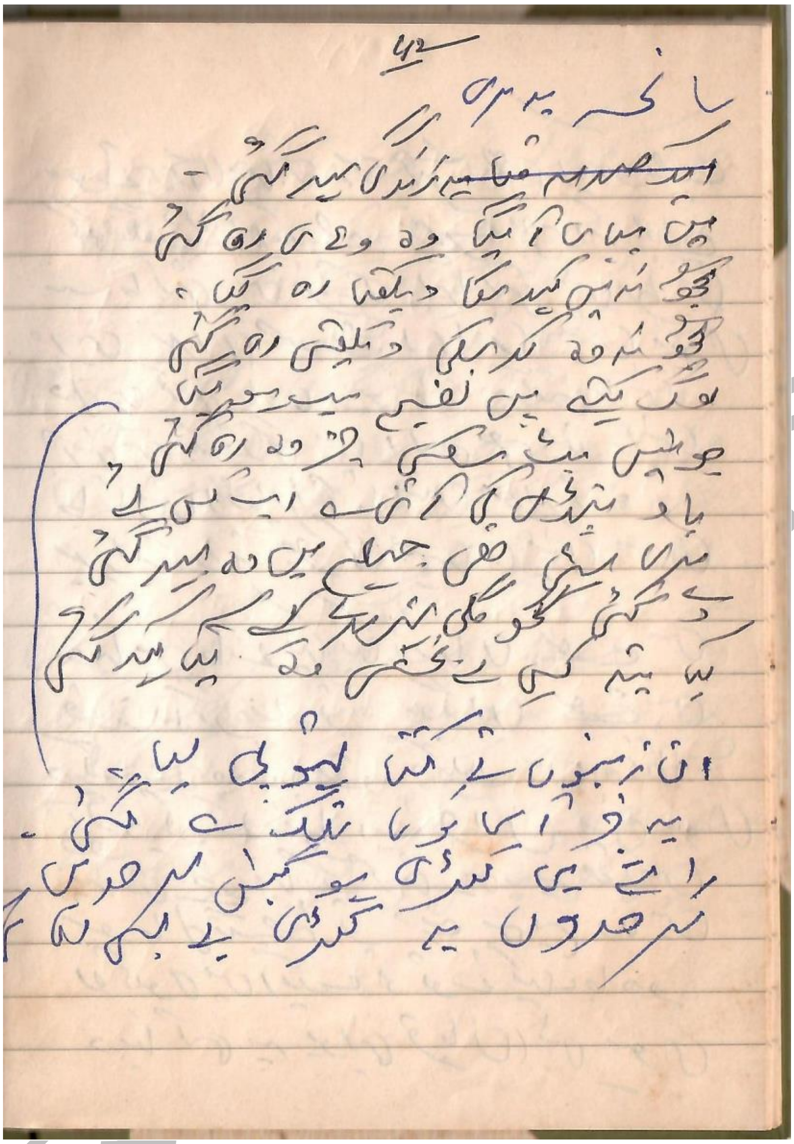

हौसला

छह बरस की उम्र में अपनी मां को खो देना, गुरुकुल में जाना पर किशोर उम्र में आधे सेशन में निकल आना, लाहौर में एक गायक की तरह काम खोजना और नाकाम रहना, इसके बाद एक बहुत ही इज़्ज़तदार नेवी की नौकरी में से सज़ा देकर निकाला जाना, सत्रह बरस की उम्र में अपने पिंड को खो देना.....दस बरस में एक के बाद एक हादसे होते चले गये। नंद के सामने लगातार चुनौतियां आती चली गयीं। पर नंद ख़ुशक़िस्मत थे कि वो ज़िंदा बच निकले। उन्होंने हर चुनौती का सामना डटकर किया।

नंद के जीवन की जो लंबी और मुश्किलों भरी यात्रा थी उसमें नंद के पास जो सबसे बड़ा और मज़बूत सहारा था और जो कोई उससे छीन नहीं सकता था, वो था उनका हौसला, हिम्मत, प्रतिभा, ज़रूरत, अनुशासन, बंसी वाले पर उनकी आस्था, उनकी कविताएं, गाने लिखकर उनकी धुन बनाकर गाने का उनका जज़्बा, उनका अपना परिवार यानी हम सब जो बाद में पैदा हुए वो भी। उन्हें पता था कि अच्छे दिन लाने के लिए उन्हें अपने आज के के बुरे हालात को स्वीकार करना पड़ेगा और वही उन्होंने किया।

बख़्शी परिवार, जो अपनी जड़ों से कटकर यहां आया था, उन्हें काम करने वाले लोग चाहिए थे। आखिरकार बाऊ जी को अंबाला में पुलिस में काम मिल गया। पापा जी को दिल्ली में बैंक में काम मिल गया। नंद ने मोहयाल समुदाय का वो काम अपना लिया, जिस पर सब गर्व करते थे, उन्होंने भारत में आने के चालीस दिन के भीतर फ़ौज में नौकरी कर ली। और अपनी ज़मीन से उखड़े हुए इस परिवार का सहारा बन गये।

“दुनिया में रहना है तो काम कर प्यारे, खेल कोई नया सुब्हो-शाम कर प्यारे’। (फ़िल्म ‘हाथी मेरे साथी’)

राकेश आनंद बक्शी

<u>अध्याय 3</u>

<u>1947-1950</u>

<u>‘मेरी ज़िंदगी का मक़सद’</u>

‘वतन पे जो फ़िदा होगा, अमर वो नौजवां होगा’

–फूल बने अंगारे

आनंद प्रकाश ने भारतीय फ़ौज के सिग्नल कोर में नौकरी कर ली थी, उस वक़्त उनकी उम्र थी केवल सत्रह बरस। 15 नवंबर 1947 को उन्हें सिग्नल्स ट्रेनिंग सेन्टर जबलपुर मध्यप्रदेश में सिग्नल मैन का रैंक दे दिया गया।

सिग्नल कोर फ़ौज के लिए मिलेट्री कम्यूनिकेशन की सेवाएं देती थी। टोलियों, बटालियनों, रेजीमेन्टों और प्लाटूनों को–चाहे वो अमन के दौरान यूनिट लाइनों में हों या फिर अशांत

इलाक़े में पोस्टिंग के दौरान सफ़र में हों। सिग्नल-कोर का गठन लेफ्टीनेन्ट कर्नल एस . एच .पॉवेल के नेतृत्व में सन 1911 में किया गया था। सिग्नल-कोर ने पहले और दूसरे विश्वयुद्ध में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आज इक्कीसवीं सदी में भारतीय सेना की संचार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इसके पास अत्याधुनिक तकनीकें हैं।

चलिए आपको बताते हैं कि अमन के दौरान एक आम फ़ौजी की दिनचर्या कैसी रहती है, ताकि आपको समझ में आए कि फ़ौजी बख़्शीजी के दिन किस तरह से कटे होंगे।

आमतौर पर एक यूनिट यानी कोई बटालियन या रेजीमेन्ट ‘यूनिट-लाइन’ में एक साथ रहती है। ये एक परिसर होता है जिसमें आमतौर पर टुकड़ियों के लिए बैरकें बनी होती हैं। खेल का मैदान, हथियार-घर, दफ्तर की इमारतें और ट्रेनिंग सेन्टर होता है। हर यूनिट का एक छोटा-सा स्कूल होता है जहां जवानों और बिना कमीशन वाले अफ़सरों के लिए क्लासें चलायी जाती हैं। उन्हें अलग-अलग परीक्षाओं के लिए तैयार किया जाता है।

एक फ़ौजी का दिन सूरज उगने से बहुत पहले ही शुरू हो जाता था। जब आमतौर पर बिगुल बजाया जाता था और जवान रैंक के हिसाब से लाइन में जमा हो जाते थे। प्लाटून कमांडर उनका मुआयना करता कि वो एकदम सही तरीक़े से तैयार होकर आए हैं या नहीं। इसके बाद तेज़ चाल से उनका मार्च पास्ट करवाया जाता। फिर धीमी जॉगिंग और फिर बहुत मुश्किल कसरत करवाई जाती। उन्हें दौड़ाया जाता। नाश्ते के एक घंटे बाद वो फिर से ट्रेनिंग और दूसरे कामों के लिए जमा हो जाते थे, जैसे कि हथियारों की ट्रेनिंग, ड्राइविंग या क्लास में पढ़ाई। इसके बाद मेस में जाकर दोपहर का भोजन करना पड़ता था। फिर एक दो घंटे पूरी यूनिट आराम करती थी। और फिर उन्हें खेल के मैदान में जमा किया जाता था ताकि वो कोई खेल खेलें जैसे कि हॉकी, फुटबॉल या बास्केटबॉल या फिर उन्हें मुक्केबाज़ी या तैराकी का अभ्यास करवाया जाता है।

सूरज डूबने से पहले ‘रिट्रीट बिगुल’ बजा दिया जाता था और यूनिट के क्वार्टर गार्ड में झंडा उतार लिया दिया जाता था। रात के गार्ड ड्यूटी पर आ जाते थे। सूरज डूबने के बाद से जवान तकरीबन फुर्सत में रहते थे। और मुफ्ती पहन सकते थे। ये फ़ौजियों की ख़ास तरह के पैटर्न वाली सिविल पोशाक होती थी। अब वो रोल-कॉल के लिए तैयार हो जाते थे। इसमें फ़ौजियों की गिनती की जाती थी और इसके बाद अगले दिन की रूपरेखा बतायी जाती थी। इसके बाद सबको यूनिट की लाइन में भेज दिया जाता था, जहां वो वक़्त बिता सकते थे। अख़बार पढ़ सकते थे या फिर दूसरा कुछ कर सकते थे। क़रीब रात के दस बजे डिनर के बाद फिर बिगुल बजा दिया जाता था जिसका मतलब था ‘बत्तियां बुझा दी जाएं’। इसके बाद नाइट गार्ड के सिवा सारे जवानों को बिस्तर पर चले जाना पड़ता था। एक फ़ौजी की ज़िंदगी

राकेश आनंद बक्षी

का हर घंटा एकदम सख़्त और तयशुदा होता था। बिगुल की आवाज़ से तय होता था कि उन्हें आगे क्या करना है।

डैड आगे चलकर अकसर ये बात कहते थे कि आजकल गानों का जिस तरह फ़िल्मांकन किया जाता है, पचास डांसर पीछे और सामने हीरो-हीरोइन ...तो मुझे फ़ौज वाले वो दिन याद आ जाते हैं। हम पचास फ़ौजी पीछे होते थे और सबसे आगे होता था हमारा चीफ़ फ़िज़िकल ट्रेनिंग ऑफ़ीसर।

आनंद प्रकाश का फ़ौज में शामिल होने का इकलौता मक़सद था, 'आत्मनिर्भर बनना, अपने भरोसे रहना'। 'अपना परिवार चलाने के लिए पैसे कमाना'।

'मुश्किल में है कौन किसी का, समझो इस राज़ को /लेकर अपना नाम कभी तुम ख़ुद को आवाज़ दो'।
-फ़िल्म अंगार

***

आज़ाद

सिग्नल कोर में यूनिट के अंदरूनी टेलीफ़ोन एक्सचेन्ज में हर ऑपरेटर को एक कोड-नाम दिया जाता था, ताकि अगर दुश्मन इस संचार को सुन भी ले तो भी ऑपरेटर की निजी पहचान छिपी रहे। फ़ौजी आनंद प्रकाश का कोड-नाम था--'आज़ाद'। ये नाम ट्रेनिंग में भी रहा और आगे चलकर अमन के दौरान पोस्टिंग में भी। पूरी फ़ौजी नौकरी में उनका यही कोड-नाम बना रहा। बंबई जाकर फ़िल्मों में अपना भाग्य आज़माने का सपना अभी भी उन्होंने संजो रखा था। उन्होंने अपने इस सपने को आगे के लिए मुल्तवी कर दिया था। फ़ौज में एक सिपाही की ज़िंदगी काफी मुश्किल होती है।

फिर भी आनंद प्रकाश ने रोज़ की परेड और मेहनत के बीच भी अपने भीतर के कलाकार को ज़िंदा बनाए रखने के तरीक़े खोज लिए थे।

'ब्रेक के दौरान मैं अपनी नज़्में लिखता था, सन 1949 में राज कपूर और नरगिस के अभिनय वाली फ़िल्म 'बरसात' रिलीज़ हुई और मैंने ये फ़िल्म बीस बार देखी थी। मुझे शैलेंद्र और हसरत जयपुरी के लिखे और शंकर-जयकिशन के संगीत वाले इसके गाने बड़े पसंद आए। मेरे भीतर एक रूमानियत हमेशा से थी। फ़िल्म देखकर जब भी मैं अपनी बैरक लौटता तो उस फ़िल्म के गाने लिख लेता था। कुछ ही महीनों में मैंने 'बरसात' के गाने

राकेश आनंद बक्शी

अपनी तरह से लिख लिए थे। मानो मैं ही उस फ़िल्म का गीतकार हूं। मैं ऐसा उन्हीं फ़िल्मों के लिए करता था जो मुझे पसंद थीं। इसके बाद मैं अपने लिखे इन गानों को अपने साथियों के लिए गाता था। सबको मेरे गाने पसंद आते और जल्दी ही मैं उनके बीच बड़ा लोकप्रिय होता चला गया। यूनिट के बाहर भी लोग मुझे जानने लगे। हमारी ट्रेनिंग बड़ी सख़्त थी। और मैं जो भी लिखता और गाता था, उससे मेरे साथियों का दिल बहलता और वो इसकी राह देखते। जब मैं देशभक्ति के या रूमानी गाने लिखता तो मेरे फ़ौजी दोस्त उन्हें सुनकर तालियां और सीटियां बजाते।

'हालांकि मुझे बड़ा गर्व था कि मैं फ़ौजी था पर मुझे बंदूक की बजाय अपनी कलम से फ़ायरिंग करने में बड़ा मज़ा आता था। हमारे देश को आज़ाद हुए बस दो या तीन बरस हुए थे और फ़ौजी जहां भी जाते, चाहे हम छुट्टी लेकर घर भी जाते तो आसपास के लोग हमारा ऐसा स्वागत करते कि लगता हम कुछ ख़ास हैं'।

'कविताएं और गाने लिखना और उन्हें गाकर अपने साथियों का मनोरंजन करना, ये एक सहारा था जिसने ज़ोरदार ट्रेनिंग, घर और बीजी से दूर रहने में मेरी बड़ी मदद की। 'बड़ा खाना' होता तो मेरी मौज हो जाती। यूनिट-लाइनों में जो भी कलाकार होते वो नाटक करते, गाने गाते। फ़ौज में मैंने दो बार काम किया और इस दौरान ऐसे हर नाटक में हिस्सा लिया। जल्दी ही यूनिट के बाहर के सीनियर भी मुझे पहचान गये। मेरा परिचय कुछ इस तरह करवाया जाता था--"ये है वो फ़ौजी जो नज़्म लिखता है और गाता भी है'। जल्दी ही मुझे ये अहसास गहरा होने लगा कि मुझे अपनी बाक़ी ज़िंदगी फ़ौज में नहीं बितानी है। मैं जो चाहता हूं वो मुझे यहाँ तो करने नहीं मिलेगा'।

'मेरे बंसी वाले ने मेरे रोम-रोम में संगीत का प्रेम भर दिया था। पर फ़ौज में इन जज़्बात की, कलाकारी की कोई जगह नहीं थी। मुझे ये समझ नहीं आ रहा था कि एक अच्छी-ख़ासी नौकरी को छोड़कर मैं अपने परिवार की मदद के बिना कैसे एक बड़े शहर में चला जाऊं। परिवार के बड़े मुझे नौकरी छोड़ने की इजाज़त नहीं देंगे। तब रेडियो मेरा साथी बन गया। मैं रेडियो पर मधोक) गीतकार डी .एन .मधोक (के लिखे गाने सुनने का इंतज़ार करता। बतौर गीतकार मुझ पर पहला असर उनका ही था। महाकवि दीनानाथ मधोक (1902-1982), किदार शर्मा और प्रदीप भारतीय सिनेमा के पहली पीढ़ी के गीतकार थे'

***

राकेश आनंद बक्शी

शुरूआती असर

जब आनंद बख़्शी ने डी .एन .मधोक के लिखे फ़िल्मी गाने बड़े चाव से सुने तो उनके भीतर फ़िल्मी-गानों की समझ पैदा हुई। इस तरह महाकवि मधोक फ़िल्मी-गीतकारी में उनके पहले गुरु बने।

'मधोक साहब ने 1950 के ज़माने में फ़िल्मी गीतों को एक ऊँचाई दे दी थी। हम आज के ज़माने के गीतकार उन्हीं के नक्शे-क़दम पर चल रहे हैं। कम से कम मेरे बारे में तो ये बात एकदम सही है। मैं डी .एन .मधोक साहब का फ़ैन था। वो जनता के लिए गाने लिखते थे। उन्हीं ने मुझे सिखाया कि एक गीतकार का पहला मक़सद है जनता तक पहुंचना और इसमें सबसे आसान शब्द सबसे असरदार बन जाते हैं। आसान शब्दों की वजह से धुन भी आसान बनती है और लोगों की ज़ुबां पर चढ़ती है। मधोक साहब का रंग ही कुछ और था। गीतकारी में उनकी जो सादगी थी उसने गाने लिखने की शैली बनाने में मुझे प्रेरणा दी। उन्होंने मुझे सलाह दी थी, 'बख़्शी, आसान शब्द चुनो। ये मत भूलो कि तुम्हारे गाने तरह-तरह के लोग सुनेंगे और उन्हें सराहेंगे"। अगर लोगों को मेरे गानों की सादगी पसंद आती है तो सिर्फ इसलिए ही नहीं क्योंकि मैंने सिर्फ आठवें दर्जे तक ही पढ़ाई की है या फिर हिंदी अलफ़ाज़ का ख़ज़ाना मेरे पास बहुत कम है, क्योंकि मेरी पढ़ाई उर्दू में हुई है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि मधोक साहब की सलाह ने मुझे हमेशा आसान शब्दों के इस्तेमाल की आदत डाल दी। उन्हीं से मैंने एक ही लाइन में तुकबंदी वाले शब्द रखने सीखे। जैसे कि "छुप गए सारे नज़ारे, ओए क्या बात हो गयी", इस गाने में मैंने कई मानीख़ेज़ शब्दों को जोड़ा, "छोड़ मेरी बैयां, पड़ूं तेरी पैयां, तारों की छैंयां में सैंयां"। मैंने मधोक साहब से ये भी सीखा कि मुझे अपने संगीतकारों को अपने गाने के साथ सुझाव में पंजाबी लोक-धुन सुनानी चाहिए क्योंकि कई बार मैं पंजाबी संगीत के मीटर इस्तेमाल करके लिखता हूं।

राकेश आनंद बक्शी

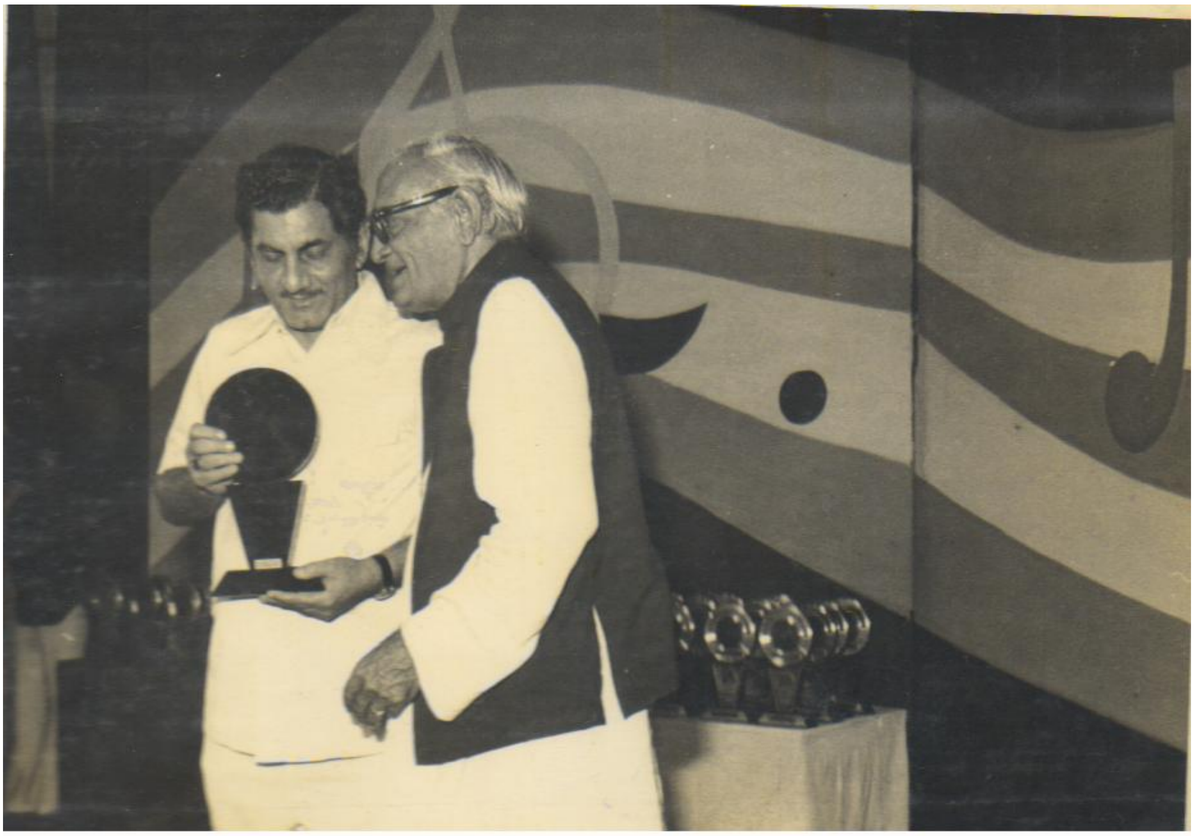

आनंद बख़्शी पर जिन दूसरे गीतकारों का असर पड़ा वो थे साहिर लुधियानवी और शैलेंद्र।

'साहिर लुधियानवी ने मुझे कुछ प्रोड्यूसरों से मिलवाया। इसी तरह शैलेंद्र ने भी मिलवाया। साहिर साहब मुझे इसलिए पसंद थे क्योंकि वो एक बड़े दिल वाले शख़्स थे और शायरी को अपने फ़िल्मी गानों की सिचुएशन में ढाल दिया करते थे। उनसे मैंने सीखा कि कैसे आसान शब्दों को शायरी में ढाला जाता है। एक बार जब मैं काम की तलाश कर रहा था, मुझे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूं, कैसे आगे बढ़ूं, मैं हताश था। तब मैंने साहिर साहब से पूछा कि कैसे फ़िल्म जगत में अपनी जगह बनायी जाये। कैसे काम खोज जाए। इसके जवाब में साहिर साहब ने कहा, "बख़्शी, या तो तुम लोगों से मिलो या लो तुम्हें बुलाएं। इसके सिवा काम हासिल करने का दूसरा तरीक़ा नहीं है!" उनकी इस सलाह पर मैंने तय कर लिया कि मैं रोज़ाना पाँच से छह फ़िल्मी लोगों से मिलूंगा और उनसे काम मांगूंगा। क़रीब दो से तीन साल तक मैं इसी तरह रोज़ाना पाँच-छह फ़िल्मी लोगों से मिलता रहा – फिर चाहे वो कलाकार हों, प्रोड्यूसर हों, निर्देशक हों, संगीतकार हों या उनके सहायक, मैनेजर, साउंड रिकॉर्डिस्ट, साज़िंदे कोई भी। धीरे-धीरे मुझे कुछ ऐसे प्रोड्यूसर और निर्देशक मिले, जिन्होंने तसल्ली से मेरी बात सुनी। मुझे उनकी फ़िल्मों में एक या दो गाने मिलने लगे। पर मुझे साहिर साहब का गानों में शायरी को ढाल लेना बड़ा पसंद आता था। मैंने उनसे ये सीखा कि कैसे शायरी या कविता को फ़िल्मी-गीतों में ढाल लिया जाए।

'शैलेंद्र और उनके सीधे-सादे लोकगीत भी कमाल के थे। पहली बार सुनकर ही वो आपके दिल में जगह बना लेते हैं। क्या बात है उनकी। लोकगीत सीधे-सादे होते हैं पर ज़रूरी नहीं कि उनमें हमेशा गहरी कविता हो, ये बात मैंने शैलेंद्र के लिखने की शैली से सीखी। यहां तक कि उन्होंने कुछ प्रोड्यूसरों से मेरी सिफ़ारिश भी की। ऐसे बड़े दिलवाले शख़्स थे वो भी। मैं समझता हूं कि जो गीतकार ख़ुद को कवि कहते हैं, सिर्फ उन्हीं के गीतों में साहित्य की ऊँचाई नहीं थी, शैलेंद्र के गीत कविता की ऊँचाई तक पहुंचे हैं"।

'ये तीन तो मेरे गुरु रहे ही हैं इसके अलावा बिस्मिल सईदी साहब। आज मैं जो भी हूं, उसके लिए मैं उनका शुक्रगुज़ार हूं। गीतकार रामप्रकाश अश्क़ ने मुझे काम खोजने के लिए प्रेरित किया। अपने कई गानों की कामयाबी के लिए मैं इन कवियों और गीतकारों का शुक्रगुज़ार हूं। हसरत, साहिर, नीरज, मजरूह, जांनिसार अख़्तर, पं .नरेंद्र शर्मा, शैलेंद्र वग़ैरह के सामने मैं कहीं भी नहीं हूं। मुझे कैफ़ी आज़मी के गाने भी बहुत पसंद रहे हैं'।

'कुछ लोगों ने मेरी आलोचना करते हुए कहा है कि मैं सिर्फ तुकबंदी करता हूं। पर मैंने कभी कवि होने का दावा नहीं किया। मैं तो बस गानों का माहिर हूं, गीतकार हूं। अब कुछ लोग मुझे कवि मानते हैं तो मानते रहें। साहिर साहब सही मायनों में शायर थे। मैं तो बस एक गीतकार हूं। मैंने तो फ़िल्म 'बॉबी' में कहा भी है–"मैं शायर तो नहीं"– और इसके अलावा

शक्ति सामंत की 'अजनबी' में कहा–"जानेमन, जाने-जिगर, होता मैं शायर अगर, लिखता ग़ज़ल तेरी अदाओं पर"।

'जब मैं बंबई आया और मैंने गाने लिखना बस शुरू ही किया था और तब तक फ़िल्म-उद्योग की नज़र मुझ पर नहीं पड़ी थी, तब मधोक साहब और उनके बाद शैलेंद्र ने मुझे आसान शब्दों के इस्तेमाल की सलाह दी थी। उन्होंने बताया था कि गानों में उर्दू नहीं बल्कि सरल हिंदुस्तानी का इस्तेमाल करने की प्रेरणा दी, ताकि देश भर में मेरे गाने सुनें जायें और सराहे जायें'।

'इससे पहले मैं गानों में बहुत उर्दू अल्फ़ाज़ का बहुत इस्तेमाल करता था। इसकी वजह ये थी कि मैंने उर्दू मीडियम से पढ़ाई की थी। और शायद मेरे मन में कहीं पचास के दशक के कामयाब गीतकारों से मुक़ाबला करने की बात भी थी, जो उर्दू के जाने-माने शायर भी थे और बहुत उर्दू का इस्तेमाल करते थे। इसलिए 1960 के दौर में अपने शुरूआती गानों में मैंने बहुत उर्दू लफ़्ज़ इस्तेमाल किए। पर 1965 में' जब जब फूल लिखे 'और 1967 में 'फ़र्ज़ 'की कामयाबी के बाद मुझे ये अहसास हुआ कि गानों में अपनी सीमित हिंदी और सरल शब्दों के इस्तेमाल का क्या महत्व है। जिसे मैंने अपनी कमज़ोरी समझ रखा था उसे आने वाले सालों में लोगों ने 'जीनियस' कहना शुरू कर दिया। जब मैं फ़ौज के' बड़े खाने 'के लिए नज़्म और नाटक लिख रहा था तो उनमें भी उर्दू अलफ़ाज़ बहुत होते थे। मेरे बहुत सारे साथी पंजाब में पले बढ़े थे। वो उर्दू मीडियम से पढ़े थे। उन्हें मेरी उर्दू कविताएं पसंद आती थीं इसलिए मुझे अहसास ही नहीं हुआ कि गाने लिखते हुए मुझे सरल हिंदुस्तानी का इस्तेमाल करना चाहिए'।

'जब' फ़र्ज़ 'के गाने सुपरहिट हो गए, जिनमें मैंने बोलचाल की हिंदुस्तानी का इस्तेमाल किया था, बस उसके बाद मैं बोलचाल वाली हिंदी में ही अपने गाने लिखने लगा। पर साथ में मैंने फ़िल्म के किरदारों को भी ध्यान में रखा, ताकि सुनने वालों को ये ना लगे कि ये गाना इस किरदार का हो ही नहीं सकता। ये गाना तो इस गीतकार के लिए ही है। अगर गाने में मैं नज़र आ रहा हूं तो एक फ़िल्मी गीतकार के रूप में ये मेरी हार है। मैं इसलिए बड़ी सहजता से आसान शब्दों में लिख पाता हूं क्योंकि मेरे पास हिंदी के शब्दों का बड़ा भंडार नहीं है। जब मैं पचास के दशक में बंबई आया तो मुझे पता नहीं था कि जिसे मैं अपनी कमज़ोरी मानता हूं–कि मैं उर्दू मुशायरों का शायर नहीं बन सका, वो यहां मेरी ताक़त बन जाएगी। इसी बात ने मेरे गानों को आम आदमी का गाना बना दिया। और कुछ पत्रकार मुझे आम आदमी का गीतकार कहने लगे।

***

राकेश आनंद बक्शी

‘फ़ौजी ज़िंदगी और नज़्म लिखना जारी रहा। जल्दी ही 18 जून 1949 को मैं सिग्नल ट्रेनिंग सेन्टर जबलपुर से “स्विच बोर्ड ऑपरेटर” क्लास थ्री बनकर निकला’।

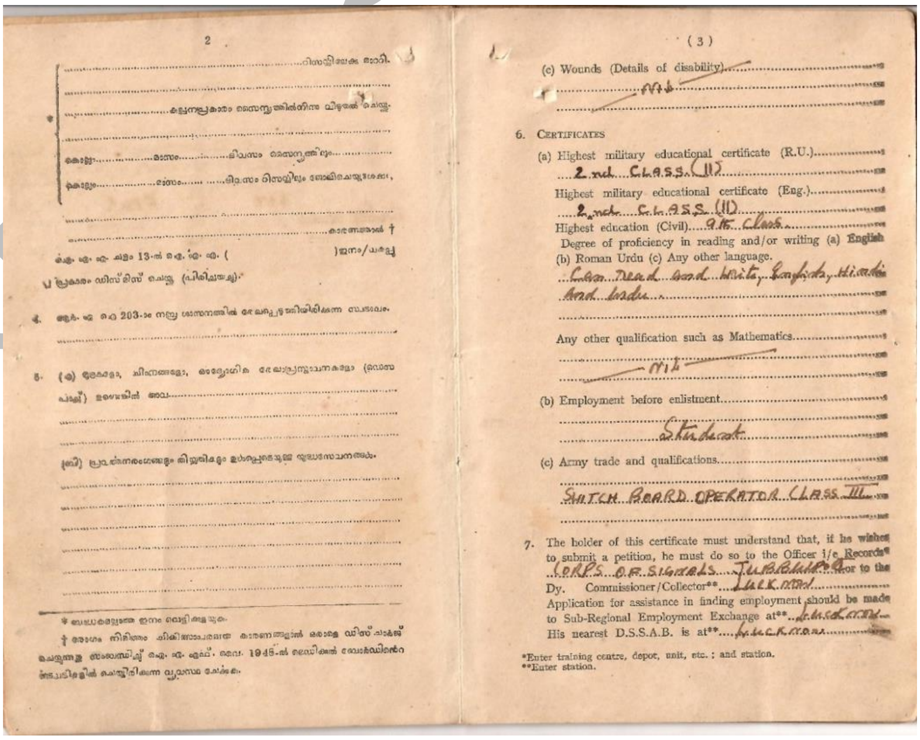

(3)

(c) Wounds (Details of disability) ... Nil ...

6. CERTIFICATES

(a) Highest military educational certificate (R.U.) ... 2nd CLASS (II)

Highest military educational certificate (Eng.) ... 2nd CLASS (II)

Highest education (Civil) ... 9th Class

Degree of proficiency in reading and/or writing (a) English (b) Roman Urdu (c) Any other language. ... Can read and write, English, Hindi and Urdu ...

Any other qualification such as Mathematics ... Nil ...

(b) Employment before enlistment ... Student ...

(c) Army trade and qualifications ... SWITCH BOARD OPERATOR CLASS III ...

7. The holder of this certificate must understand that, if he wishes to submit a petition, he must do so to the Officer i/c Records* ... CORPS OF SIGNALS ... JUBBULPORE ... or to the Dy. Commissioner/Collector** ... Lucknow ... Application for assistance in finding employment should be made to Sub-Regional Employment Exchange at** ... Lucknow ... His nearest D.S.S.A.B. is at** ... Lucknow ...

*Enter training centre, depot, unit, etc. ; and station.
**Enter station.

सन 1949 तक वो वयस्क हो गए थे। उनके जो साथी और सीनियर थे, उन्हें प्रेरित करते कि वो फ़ौज की नौकरी छोड़ दें। नंद ने गाने लिखने पर ध्यान देना शुरू किया और फ़ौजी पोशाक के भीतर उनकी जो शख़्सियत थी उसे उन्होंने उभारना शुरू किया। उन्होंने पापाजी को लिखा कि मुमकिन है वो फ़ौज की नौकरी छोड़ें देंगे और फ़िल्मों में काम करना शुरू कर देंगे। उन्होंने लिखा कि फ़ौज में उनका दिल नहीं लग रहा है। बाऊजी ने उन्हें कई चिट्ठियां लिखीं और ख़बरदार किया कि वो फ़ौज की नौकरी कतई नहीं छोड़ें। 21 दिसंबर 1949 को लिखी एक चिट्ठी में पापा जी ने अपने अज़ीज़ को चेतावनी दी कि वो हिंदुस्तानी फ़ौज ना छोड़ें– ये बड़ा इज़्ज़तदार काम है और इसमें भविष्य सुरक्षित है। कंजर वाले काम का कोई भरोसा नहीं है। उन्होंने नंद से कहा कि एक अंजान शहर में जाना बेवक़ूफ़ी होगी, वहां भला कौन हमारी जान-पहचान वाला है। उन्होंने नंद को समझाया कि वो इस बेकार के पेशे में अपनी क़िस्मत आज़माने का ख़्वाब छोड़े–क्योंकि वहां नाकामी ही हाथ लगनी है। जितनी जमा-पूंजी है, वो भी ख़र्च हो जायेगी। अभी तक बंटवारे में जो कुछ खोया है–हम उसकी भरपाई तक नहीं कर पाए हैं। अगर वो नाकाम हो गया तो फ़ौज की नौकरी दोबारा मिलने से रही।

'ज़ाहिर बात है कि वो मेरे भविष्य को लेकर फ़िक्रमंद थे और नाराज़ भी। एक पिता के रूप में मेरी भी यही राय होती। तीन बरस से हम बेघर थे और अब मेरे पास एक सरकारी नौकरी थी। मैं उनकी राय की इज़्ज़त करता था, पर मैं अपना ख़्वाब नहीं छोड़ सकता था। मुझे बहुत ज़्यादा मेहनत करनी थी ताकि मैं एक दिन उन्हें ग़लत साबित कर सकूं!'

ठीक उन्हीं दिनों उनके मामा डब्ल्यू .एम .मेजर बाली जोधपुर में तैनात थे उन्होंने अपने भांजे से कहा कि वो फ़ौज ना छोड़े, वरना बाद में पछताएगा। इस तरह जल्दबाज़ी में फ़ैसले लेना ठीक नहीं है। पर उनके मामा ने ये भी कहा कि अगर वो फ़ौज छोड़ना ही चाहता है तो इंग्लिश में पहले दर्जे में पास होकर दिखाए, क्योंकि शहरों में जो ऊँचा तबका है उसकी भाषा इंग्लिश ही है। इस तरह वो बंबई में लोगों पर अच्छा असर डाल सकेंगे और अगर फ़िल्मों में काम नहीं भी मिल पाया तो अंग्रेज़ी की वजह से एक भूतपूर्व फ़ौजी के लिए वहां अच्छी तनख़्वाह वाली नौकरी खोजना आसान हो जायेगा।

'मेरे सपने को लेकर उनके गुस्से और उनके कड़वे शब्दों ने ना सिर्फ़ मेरा बहुत दिल दुखाया बल्कि मेरे गुस्सा भी भड़का दिया। मुझे पता था कि मैं अच्छा लिख सकता हूं पर इस बात को कोई मानने को तैयार नहीं था। मेरे परिवार में ख़ानदान की इज़्ज़त और परंपरा मायने रखती थी, उनका मानना था कि फ़ौज की सुरक्षित भविष्य वाली नौकरी इस वक़्त मध्य-वर्ग के हम रिफ़्यूजी लोगों के लिए बहुत सही है। दो साल पहले हम पिंडी के सबसे रईस परिवारों में से एक थे। मैं अपने कपड़ों की जेबों में महंगे मेवे ठूंस लेता था ताकि दिन भर

राकेश आनंद बक्शी

खाता रहूं और दोस्तों को भी खिलाऊं। बंटवारे की त्रासदी ये थी कि रातोंरात हमारी सारी दौलत, इज़्ज़त और हमारी शान छिन गयी और मुझे लगता है कि मेरे परिवार के बड़े-बुज़ुर्ग मजबूरी में डरपोक बन गए। हालांकि मेरा ये मानना था कि फ़ौज में मामूली कपड़ों और खाने पर गुज़ारा करने की आदत पड़ गयी थी और इसलिए मैं बंबई में आराम से गुज़र-बसर कर सकता था। 'मैं सहारों पे नहीं, ख़ुद पे यक़ीन रखता हूं। गिर पडूंगा तो हुआ क्या, मैं संभल जाऊंगा। मैंने फ़ैसला किया कि अपने सपनों की इबारत लिखूंगा और उसके नीचे दस्तख़त करूंगा। उसे दीवार पर चिपका दूंगा। ताकि मैं रोज़ उसे देख सकूं और कभी अपना सपना भूल ना पाऊं। मुझे आगे का रास्ता हमेशा नज़र आता रहे। इस तरह वो मेरी ज़िंदगी का पहला मक़सद बन गया।'

नंद की रिश्ते की बहन शुभी खेम दत्त याद करती हैं, 'छुट्टियों में जब नंद दिल्ली के हमारे पारिवारिक घर में आता था तो दीवार पर वो बस एक ही शब्द लिखता था–बंबई'

***

'मेरी ज़िंदगी का मक़सद'

24 जनवरी 1950 को जब आनंद प्रकाश बख़्शी फ़ौज में थे तो उन्होंने अपना एक घोषणा-पत्र तैयार किया–जिसे उन्होंने नाम दिया 'ज़िंदगी का मक़सद' :

राकेश आनंद बक्शी

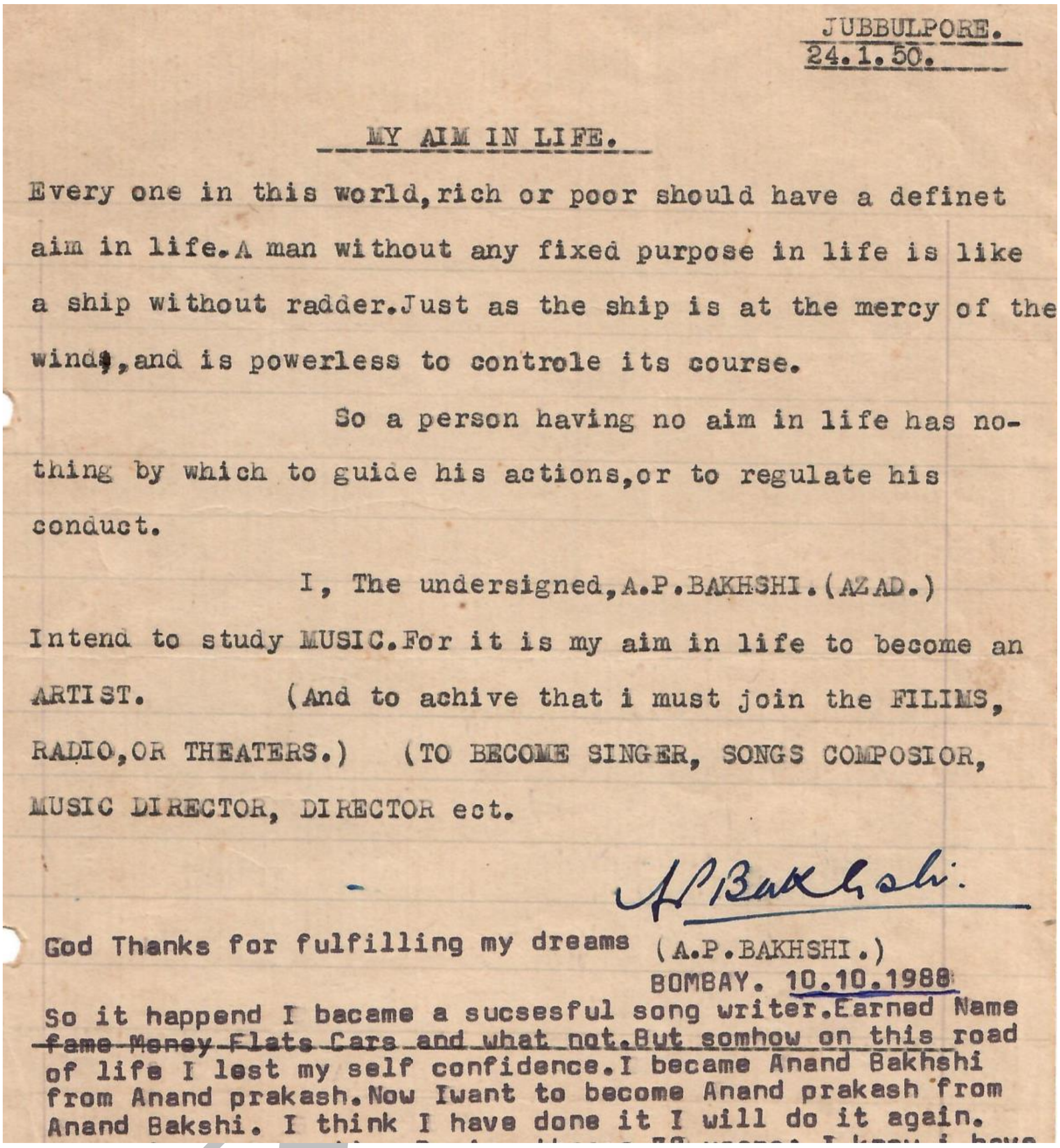

JUBBULPORE.
24.1.50.

MY AIM IN LIFE.

Every one in this world, rich or poor should have a definet aim in life. A man without any fixed purpose in life is like a ship without radder. Just as the ship is at the mercy of the winds, and is powerless to controle its course.

So a person having no aim in life has nothing by which to guide his actions, or to regulate his conduct.

I, The undersigned, A.P. BAKHSHI. (AZAD.) Intend to study MUSIC. For it is my aim in life to become an ARTIST. (And to achive that i must join the FILIMS, RADIO, OR THEATERS.) (TO BECOME SINGER, SONGS COMPOSIOR, MUSIC DIRECTOR, DIRECTOR ect.

A.P. Bakhshi.

God Thanks for fulfilling my dreams (A.P. BAKHSHI.)
BOMBAY. 10.10.1988

So it happend I bacame a sucsesful song writer. Earned Name ~~fame Money Flats Cars and what not.~~ But somhow on this road of life I lest my self confidence. I became Anand Bakhshi from Anand prakash. Now Iwant to become Anand prakash from Anand Bakshi. I think I have done it I will do it again.

चाहे कोई ग़रीब हो या अमीर–सबका अपनी ज़िंदगी में एक मक़सद होना चाहिए। अगर किसी इंसान का ज़िंदगी में कोई मक़सद ना हो, तो वो बिना पतवार के एक जहाज़ की तरह होगा, जो हवाओं के थपेड़ों पर यहां-वहां चला जायेगा। अपने रास्ते पर उसका कोई काबू नहीं होगा। अगर किसी इंसान का ज़िंदगी में कोई मक़सद ना हो–उसके काम या उसके बर्ताव को दिशा देने वाली कोई प्रेरणा नहीं रहेगी। मैं आनंद बख़्शी) आज़ाद (ये ऐलान करता हूं कि मैं संगीत सीखने की तमन्ना रखता हूं। और मेरी ज़िंदगी का मक़सद है कलाकार बनना। और इसे पूरा करने के लिए मैं फ़िल्म, रेडियो या थियेटर में जाऊंगा। मैं गायक, संगीतकार, निर्देशक जो मुमकिन होगा, बनूंगा।

तीन दशक से भी ज़्यादा बीते तब उन्होंने 10 अक्टूबर 1988 को 'ज़िंदगी का मक़सद' में एक फुट-नोट और जोड़ दिया -

मक़सद पूरा हुआ: मैं एक कामयाब गीतकार बन गया। मैंने नाम, दाम, शोहरत, मकान, कारें सब कमाया। और ज़िंदगी के इस रास्ते पर मैंने अपना आत्मविश्वास जाने कब खो दिया। मैं आनंद प्रकाश से आनंद बख़्शी बन गया। अब मैं आनंद बख़्शी से फिर आनंद प्रकाश बनना चाहता हूं। मुझे लगता है कि मैं एक बार ये कर चुका हूं तो दोबारा इसे कर सकता हूं। ऊपर वाले मेरी मदद करना। इन तीस सालों में मैंने ग़लतियां की। मैं इन ग़लतियों के लिए माफ़ी चाहता हूं। मुझे नहीं पता था कि मैं क्या कर रहा हूं।

चलिए इस फुट-नोट को एक नज़र देखा जाए। शायद इसमें उनके भीतर एकदम अकेले छोड़ दिये जाने का डर समाया हुआ है, सत्तर के दशक में उन पर ये डर हावी हो रहा था। उनके मामाजी मेजर बाली मानते थे कि चूंकि नंद ने अपनी मां को खो दिया था और बहुत कम उम्र में उसे घर से दूर रहना पड़ा, इसलिए उसे सदमा लगा है। बख़्शी के दोस्त पी .एन . पुरी भी मानते थे कि सत्रह बरस की उम्र में बंटवारा देखना का नंद को बड़ा सदमा पहुंचा है। सच क्या है, अब ये हम कभी नहीं जान सकेंगे।

नब्बे के दशक में, अकेले छोड़ दिये जाने या अकेलेपन के साये में फंस जाने के अपने डर से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने हर हफ्ते मुंबई की लोकल ट्रेन में अकेले सफ़र करना शुरू किया। ये उनकी कोशिश थी दोबारा फ़ौजी आनंद प्रकाश बनने की। इस मक़सद से उन्होंने क़रीब तीस साल बाद 9 मार्च 1995 को लोकल ट्रेन में सफ़र किया। उन्होंने खार से बांद्रा सफ़र किया और अपना ही गीत गाते चले गए:

'गाड़ी बुला रही है, सीटी बजा रही है। चलना ही ज़िंदगी है, चलती ही जा रही है'। –फ़िल्म 'दोस्त'

***

एक शायर का जन्म

अब फिर से नंद के फ़ौज के दिनों की बातें ,उनके बाऊजी और पापाजी ने ये मान लिया था कि उनके अज़ीज़ को फ़ौज में ज़िंदगी का मक़सद मिल गया है। उन्हें तो अंदाज़ा तक नहीं था कि उनका फ़ौजी बेटा लगातार कविताएं और नाटक लिख रहा था और उसने अपना एक नाम भी रख लिया है ,आनंद प्रकाश बख़्शी। दिलचस्प बात ये है कि ज़िंदगी के हर मोड़ पर

राकेश आनंद बख़्शी

उन्होंने ख़ुद को अलग नज़रिए से देखा। माता-पिता ने उनका नाम रखा, आनंद; पर माता-पिता, परिवार के लोग और वो ख़ुद अपने आप को नंद बुलाते रहे। दूर के रिश्तेदार नंदो कहते रहे। स्कूल में वो कहलाए आनंद प्रकाश। और नेवल कैडेट आनंद प्रकाश बने। फ़ौज में बख़्शी आनंद प्रकाश वैद। कवि आनंद प्रकाश बख़्शी। और आखिरकार जब वो गीतकार बन गये तो आनंद बख़्शी कहलाए। (एक फ़िल्म प्रोड्यूसर ने उनके सरनेम बख़्शी में 'h' शब्द हटा दिया था। बस आगे चलकर वही नाम रह गया। हालांकि जो उनके क़ानूनी दस्तावेज़ थे, तस्वीरों पर जो दस्तख़त अपने फ़ैन्स के लिए उन्होंने किए, उसमें उन्होंने हमेशा 'एच' अक्षर के साथ बख़्शी लिखा।

भारतीय सेना की सिग्नल कोर में उन्होंने लिखने की अपनी प्रतिभा को निखारा और संवारा। उनके साथियों और सीनियर्स ने उनका हौसला बढ़ाया, उन्हें प्रेरणा दी कि वो फ़ौज की नौकरी छोड़कर बंबई जायें और अपना भाग्य आज़माएं। फ़ौज की नौकरी में उन्होंने बहुत सारा वक्त जबलपुर डिवीजन में सिग्नल कोर में बिताया। वे 1947 से 1950 तक वहां रहे। और बैंगलोर में जलहल्ली पूर्व में दूसरी टैक्टिकल और टेक्निकल ट्रेनिंग बटालियन डिवीजन में थे। वहां वो एक 'बिलेट' में रहते थे। ये फौजियों का अस्थायी घर होता है। यहां वो सन 1951 से 1953 तक रहे। इसके बाद वो जम्मू और भारत की दूसरी डिवीजनों में तैनात रहे। उन्होंने हमेशा अपनी सीनियरों की इज़्ज़त की और उनकी नज़रों में अच्छा बनने की कोशिश की। एक फ़ौजी का मिज़ाज ऐसा ही होता है। जब एक बहुत ही लोकप्रिय और इज़्ज़तदार अफ़सर जनरल दुबे ने आनंद प्रकाश बख़्शी का हौसला बढ़ाया कि वो फ़ौज छोड़ें और बंबई जाकर फ़िल्मों में अपना भाग्य आज़माएं—तो आनंद बख़्शी को बहुत उत्साह बढ़ा। पर बख़्शीजी को लगा कि उन्हें किसी कामयाब कवि से अपनी लेखनी के बारे में राय लेनी चाहिए। हालांकि वो डी. एन. मधोक और शैलेंद्र को अपना गुरु मानते थे—पर अपने लिखे पर उनसे राय कैसे लेते, वो तो उनकी पहुंच में नहीं थे।

अब उन्हें तलाश थी एक कामयाब और पेशेवर कवि की, जो उनकी कविताओं पर अपनी राय दे और उन्हें सिखाए कि उस्ताद शायर किस तरह लिखते हैं। जल्दी ही उनकी मुलाक़ात एक संपादक और कवि से हुई, जिनकी पुरानी दिल्ली और पूरे भारत में काफ़ी इज़्ज़त थी। उनका नाम था बिस्मिल सईदी। बख़्शीजी सईदी को जानते थे और वो सईदी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'बीसवीं सदी' को नियमित रूप से पढ़ते थे। आगे चलकर सईदी और बख़्शी पक्के दोस्त बन गए। उनकी दोस्ती की शुरूआत तक हुई जब सईदी साहब इस नौजवान शायर और फ़ौजी के उस्ताद बन गये। अगर आप आनंद बख़्शी के फ़ैन रहे हैं तो आपके लिए ये जानना ज़रूरी है कि आनंद बख़्शी की शायरी में सईदी साहब का कितना योगदान था।

'बिस्मिल सईदी साहब वो पहले शख़्स थे जिन्होंने मुझसे कहा कि मैं उर्दू और फ़ारसी के उस्ताद शायरों की किताबें पढ़ूं। जब मैं फ़ौज में था वो मुझे नियमित रूप से चिट्ठियां लिखते थे और जब मैं छुट्टी लेकर दिल्ली जाता तो पुरानी दिल्ली जाकर उनसे मिलता था। वो मेरी शायरी पढ़कर मश्क़ करते यानी मुझे सलाह देते, मेरा हौसला बढ़ाते। और अगले दस बरस तक उन्होंने ये सिलसिला जारी रखा। पचास के दशक में जब मैंने ज़ोरदार तरीक़े से शायरी लिखना शुरू किया तो उन्होंने लगातार मेरा मार्गदर्शन किया'।

मैं इस पुस्तक के पांचवें अध्याय में इस ख़ास रिश्ते के बारे में आपको विस्तार से बताऊंगा। ये उस दौर की बात है जब सन 1951 से 1956 के बीच बख़्शी दूसरी बार फ़ौज में गए थे। इसी दौर में उनका ताल्लुक एक गहरी दोस्ती में बदल गया, जिससे फ़ौजी आनंद प्रकाश को वो आत्मविश्वास मिला कि उन्होंने अपनी बंदूक और अपनी फ़ौजी वर्दी छोड़ दी और अपनी कलम से ज़िंदगी भर के लिए मुहब्बत का रिश्ता कायम कर लिया।

ये उभरता हुआ शायर फ़ौज छोड़ने की क़सम खा चुका था पर क़िस्मत में उसका ज़बर्दस्त भरोसा था और वो अपनी ख़ुशनसीबी के दिनों का इंतज़ार कर रहा था। 'ज़िंदगी का मक़सद' वाला नोट लिखने के दो महीने के अंदर एक ऐसी घटना घटी जिसने उन्हें इशारा कर दिया कि अब क़िस्मत हरी झंडी दिखा रही है। इस तरह वो रूकावट ख़त्म हो गयी -जिसने उन्हें फ़ौज से बाँध रखा था।

***

क़िस्मत का साथ -'लक भी ज़रूरी है'

फ़ौजी आनंद प्रकाश बख़्शी की दूसरी कविता 25 मार्च 1950 को प्रतिष्ठित पत्रिका 'सैनिक समाचार' में छपी थी। पहली कविता तब छपी थी जब वो रावलपिंडी में थे। उन्होंने 'सैनिक समाचार' के संपादक से अनुरोध किया था कि उनके नाम के साथ उनका रैंक भी लिखा जाए ताकि वो अपने साथी फ़ौजियों और सीनियरों के सामने शान बघार सकें।

राकेश आनंद बख्शी

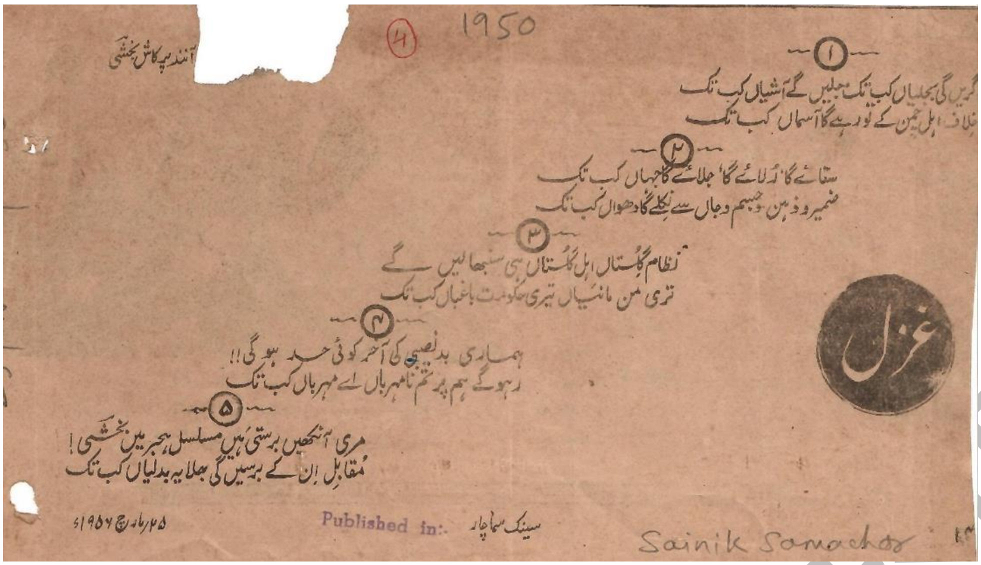

इस कविता में उस शख़्स का अफ़सोस और तकलीफ़ दिखायी गयी है जो अपनी बदक़िस्मती से परेशान है। लंबे समय से लगातार बुरे दिन उसे ठोकरें दिलवा रहे हैं। यहां शायर ईश्वर, कुदरत और हालात तीनों को चुनौती दे रहा है। वो एक सवाल पूछ रहा है: 'आख़िर कैसे मेरी प्रतिभा और मेरी प्रार्थनाओं को ठुकराया जा सकता है?' वो दिन ज़रूर आएगा, जब वो सारी ताक़तें जो आज उसके ख़िलाफ़ हैं, एक दिन उसका लोहा मानेंगी और उसकी सपनों को पूरा करने में उसकी मदद करेंगी।

गिरेंगी बिजलियां कब तक, जलेंगे आशियाने कब तक,
ख़िलाफ़ अहल-ए-चमन के तू रहेगा आसमान कब तक?

सताएगा, रुलाएगा, जलाएगा जहां कब तक,
ज़मीर, ज़हनो-जिस्म, जां से, निकलेगा धुंआ कब तक?

निज़ाम-ए-गुलिस्तां, अहल-ए-गुलिस्तां ही संभालेंगे
तेरी मनमानियां, तेरी हुकूमत बाग़बां कब तक?

हमारी बदनसीबी की आखिर कोई हद होगी,
रहोगे हम पर तुम, ना-मेहरबां ऐ मेहरबां कब तक?

मेरी आंखें बरसती हैं, मुसलसल हिज्र में बख़्शी
मुकाबिल इनके बरसेंगी भला ये बदलियां कब तक?

दो दशक बाद सन 1976 में 'सैनिक समाचार' में आनंद बख़्शी पर एक फ़ीचर छपा। इसमें बख़्शी साहब ने बताया कि सन 1950 में इसी पत्रिका में छपी उनकी कविता उनके लिए

ख़ुशनसीबी का इशारा लेकर आए थे और इसी ने उन्हें फ़िल्मों में क़िस्मत आज़माने की प्रेरणा दी थी

***

‘लोगों का काम है कहना’

10 अप्रैल 1950 को यानी अपनी ‘ज़िंदगी का मक़सद’ वाली बात लिखने के तीन महीने के अंदर और सैनिक समाचार में अपनी कविता छपने के एक महीने के अंदर फ़ौजी आनंद प्रकाश ने अपने बुज़ुर्गों की राय को ना सुनते हुए इल्तिजा की कि उन्हें फ़ौज से आज़ाद कर दिया जाए।

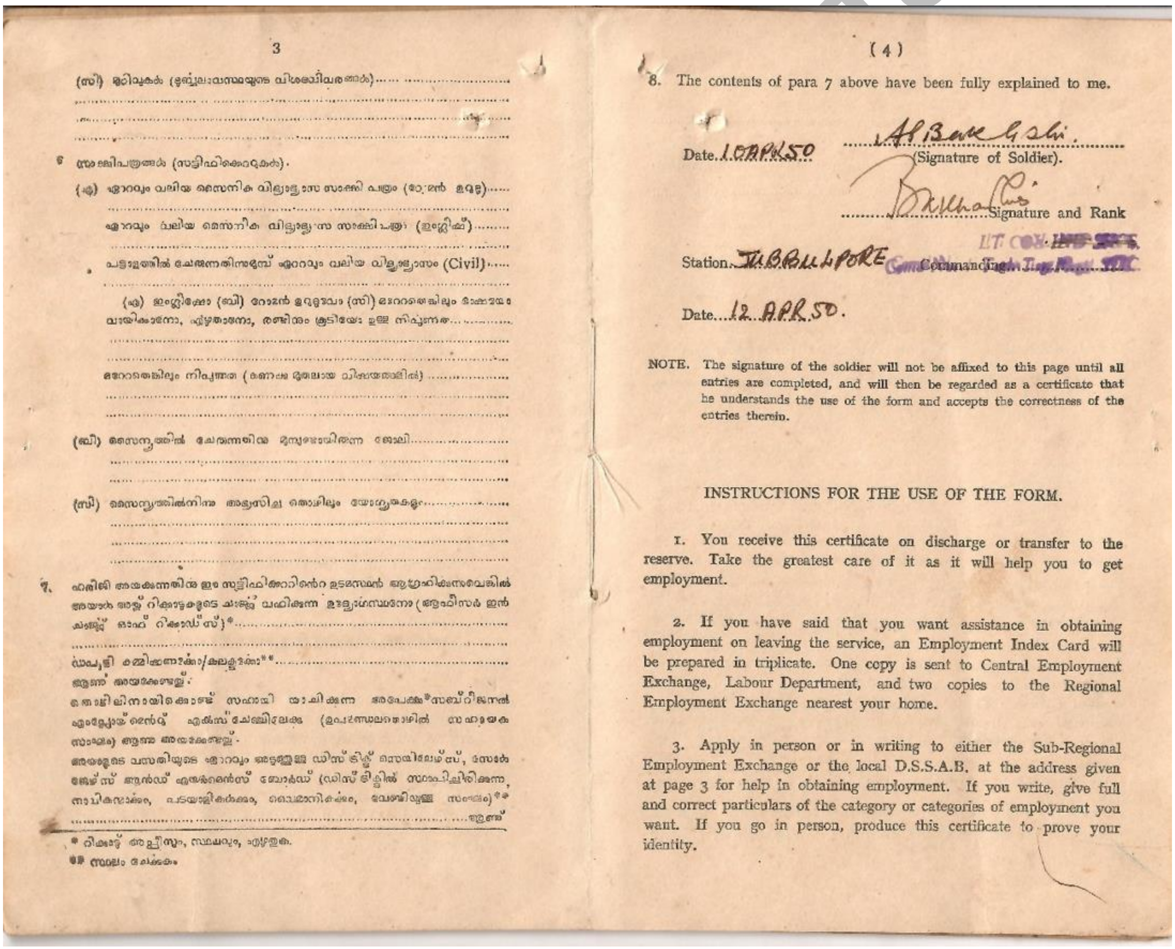

3

(4)

8. The contents of para 7 above have been fully explained to me.

Date. 10 APR 50 .... (Signature of Soldier).

.... Signature and Rank

Station. JUBBULPORE .... Commanding ....

Date... 12 APR 50.

NOTE. The signature of the soldier will not be affixed to this page until all entries are completed, and will then be regarded as a certificate that he understands the use of the form and accepts the correctness of the entries therein.

INSTRUCTIONS FOR THE USE OF THE FORM.

1. You receive this certificate on discharge or transfer to the reserve. Take the greatest care of it as it will help you to get employment.

2. If you have said that you want assistance in obtaining employment on leaving the service, an Employment Index Card will be prepared in triplicate. One copy is sent to Central Employment Exchange, Labour Department, and two copies to the Regional Employment Exchange nearest your home.

3. Apply in person or in writing to either the Sub-Regional Employment Exchange or the local D.S.S.A.B. at the address given at page 3 for help in obtaining employment. If you write, give full and correct particulars of the category or categories of employment you want. If you go in person, produce this certificate to prove your identity.

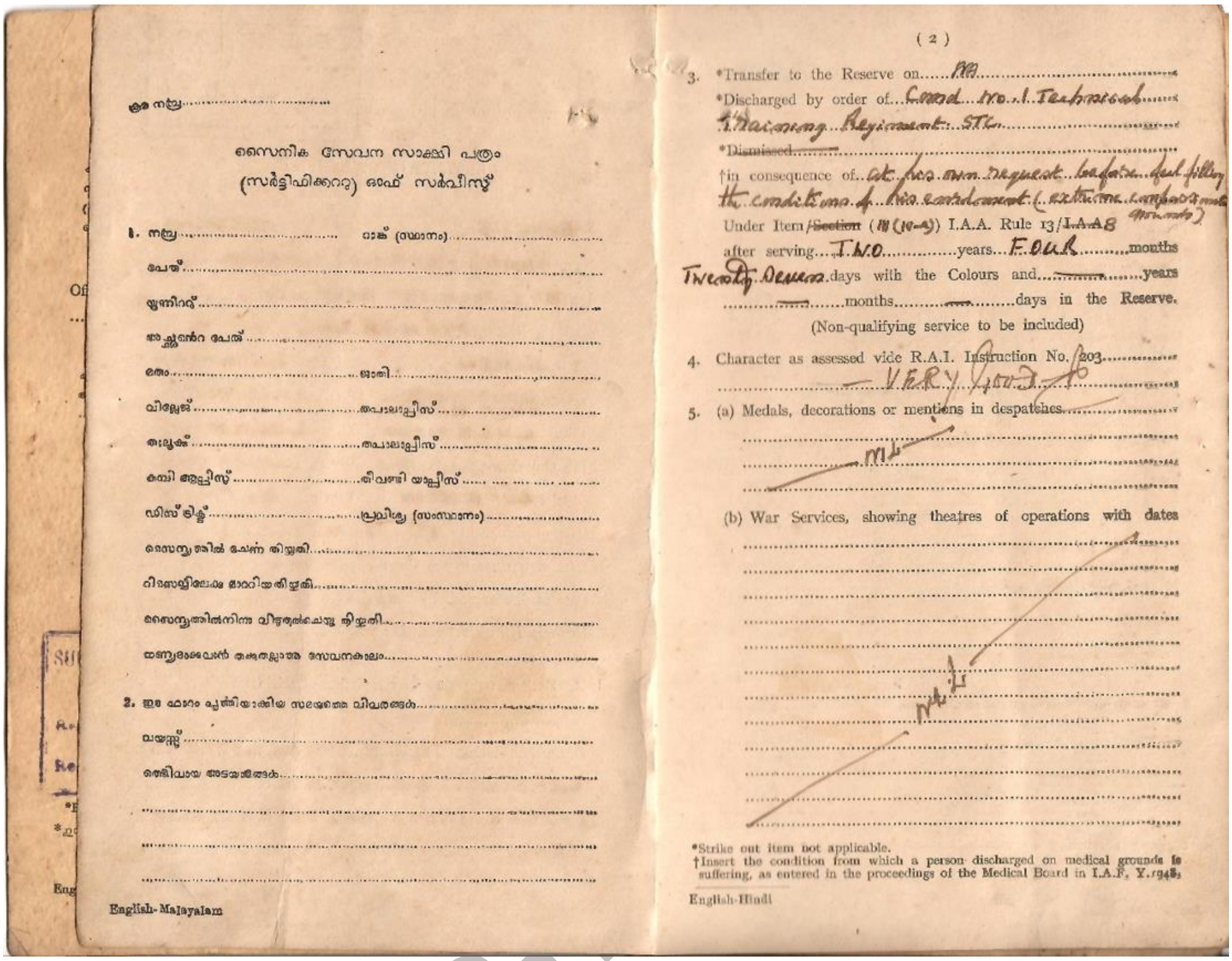

സൈനിക സേവന സാക്ഷി പത്രം

(സർട്ടിഫിക്കറ്റ്) ഓഫ് സർവീസ്

English-Malayalam

(2)

3. *Transfer to the Reserve on......Nil

*Discharged by order of...Comd. No. 1 Technical Training Regiment STC

*~~Dismissed~~

†in consequence of...at his own request before fulfilling the conditions of his enrolment (extreme compassionate grounds)

Under Item/~~Section~~ (III (10-A)) I.A.A. Rule 13/~~I.A.A.8~~

after serving...TWO...years...FOUR...months Twenty Seven days with the Colours and.........years ....months.........days in the Reserve.

(Non-qualifying service to be included)

4. Character as assessed vide R.A.I. Instruction No. 203... VERY GOOD

5. (a) Medals, decorations or mentions in despatches... Nil

(b) War Services, showing theatres of operations with dates... Nil

*Strike out item not applicable.

†Insert the condition from which a person discharged on medical grounds is suffering, as entered in the proceedings of the Medical Board in I.A.F. Y.1948.

English-Hindi

नंद ने अपने परिवार के ख़िलाफ़ ये अब तक का सबसे हिम्मती क़दम उठाया था। ये तो पहला क़दम था। आगे चलकर उन्होंने ज़िंदगी में और भी ज़्यादा हिम्मती और जोखिम भरे क़दम उठाए क्योंकि वो ‘तक़दीर’ से ज़्यादा ‘तदबीर’ पर भरोसा करते थे।

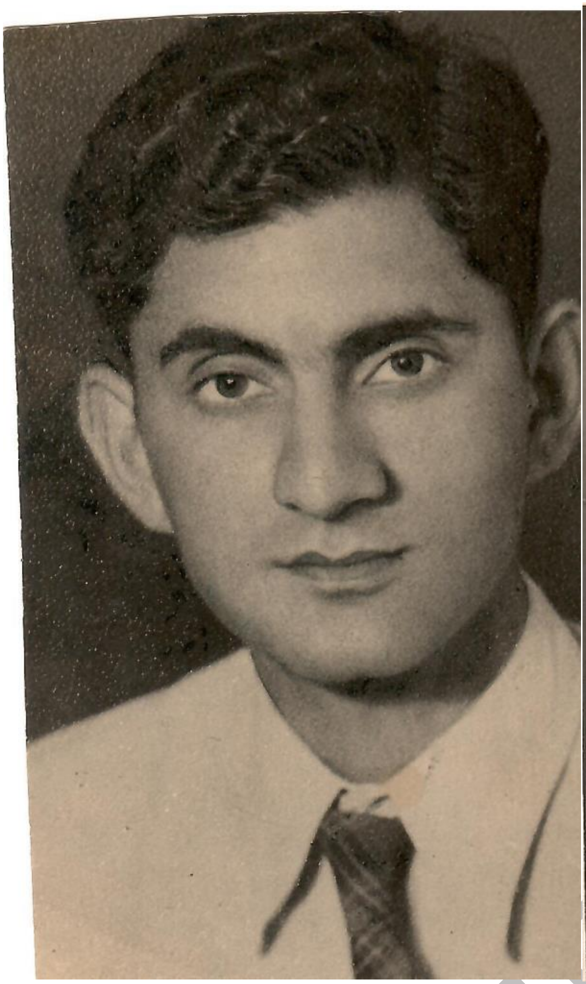

एक अभिनेता (लेखक, गायक और अपनी कविताओं के संगीतकार) के तौर पर नाटकों में अपनी पेशकश देते हुए इन नाटकों में दो या तीन अंतरों के छोटे छोटे गाने भी होते थे। सन 1947 से 1950 के बीच फ़ौज में होली के दौरान सिग्नल कोर में हुए आयोजन की तस्वीर।

अध्याय 4

सन 1950 से 1951

'यहां मैं अजनबी हूं'

हमारे पास आनंद बख़्शी की लिखते हुए ये पहली तस्वीर है–जिसमें वो अपनी डायरी में कुछ लिख रहे हैं। ये 1950 के ज़माने की तस्वीर है।

'कैसे कोई जाने भला, ख़्वाबों की ताबीर
आकाश पे बैठा हुआ, लिखता है वो तक़दीर
किस रंग से जाने बने, जीवन की तस्वीर
आकाश पे बैठा हुआ, लिखता है वो तक़दीर'

(फ़िल्म: तक़दीर)

आनंद प्रकाश बख़्शी अक्तूबर 1947 में एक बार पहले भी बंबई आ चुके थे, जब बख़्शी परिवार को नायगाम में सुपरिन्टेन्डेन्ट के ऑफिस में अपने रिफ़्यूजी सर्टिफिकेट रजिस्टर कराने थे।

'मुझे गाने का शौक़ बचपन से था, लेकिन मैं गीतकार बनने का सपना लिए सन 1950 में बंबई आया था'।

मैं दादर स्टेशन पर उतरा। मेरे पास अपनी बचत के तीन-चार सौ रूपए थे और कुछ कविताएं। उनमें से कुछ कविताएं कई साल बाद फ़िल्मी-गानों के तौर पर रिकॉर्ड हो गयीं थीं। मेरी हिम्मत, मेरा हौसला, मेरी प्रतिभा और मेरी ज़रूरत मेरे साथ थी। मुझे यक़ीन था कि दो साल नेवी और तीन साल आर्मी की ट्रेनिंग ने मुझे कहीं भी ज़िंदा रहना सिखला दिया है।

राकेश आनंद बक्शी

दादर स्टेशन:

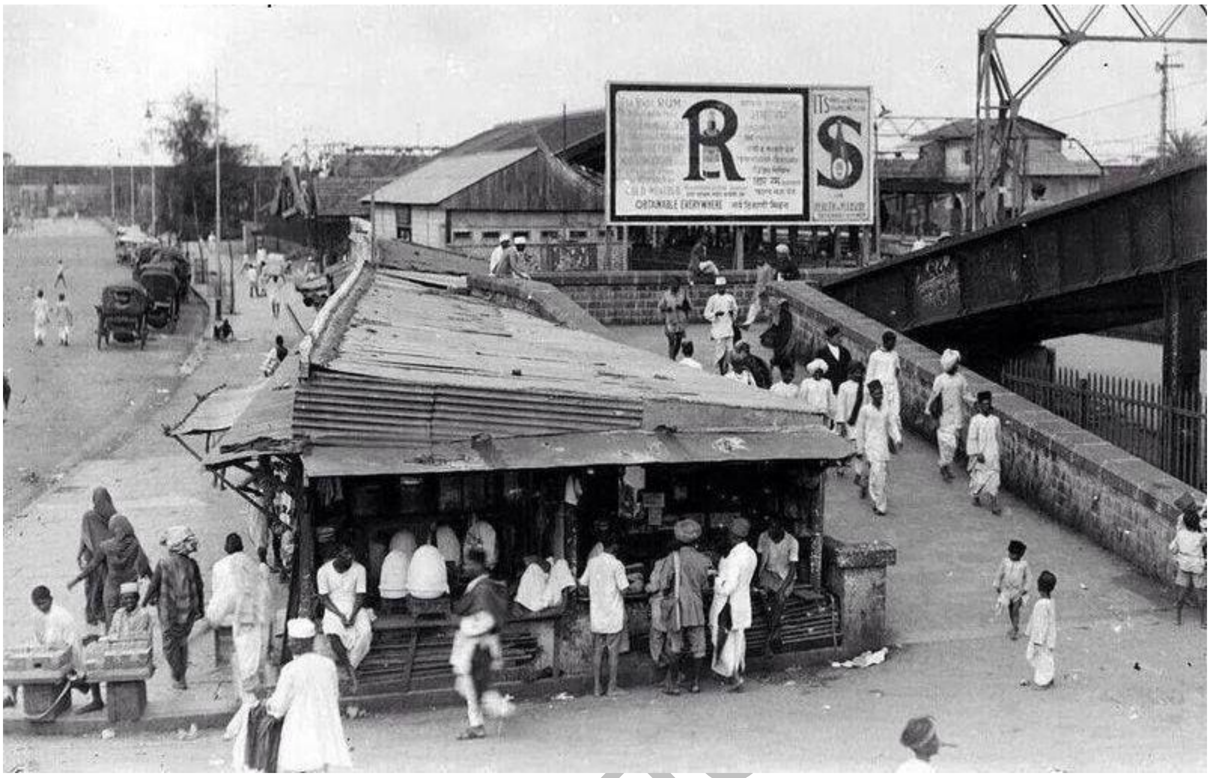

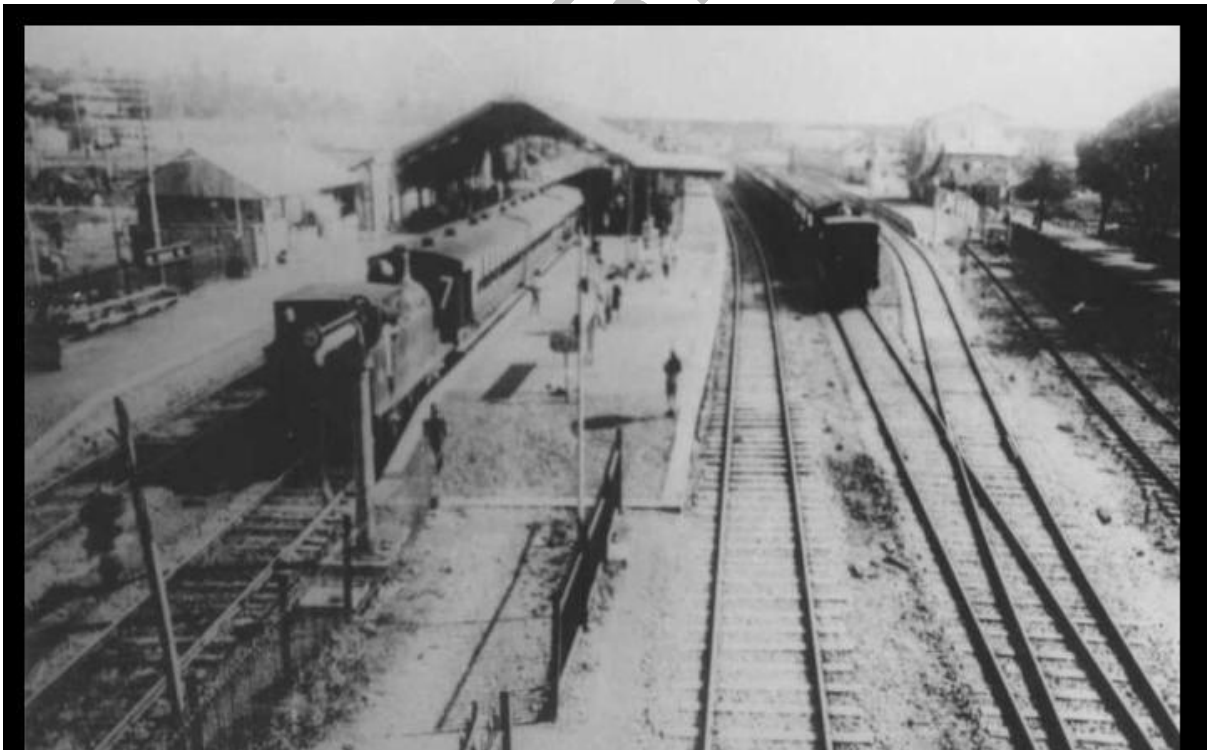

Train standing at Dadar Railway Station

टीन का उनका बक्सा। आज भी मुंबई के हमारे घर में ये बक्सा महफ़ूज़ है।

दादर स्टेशन पर पहले दिन लोगों की इतनी भीड़ देखकर मैं हैरान रह गया, दहशत में आ गया। यहां तो मैं किसी को नहीं जानता था। इतनी भीड़ मैंने ना तो पिंडी में देखी थी और ना ही फ़ौजी ज़िंदगी में कभी देखी थी। जब फ़ौजी वर्दी में होता था तो अजनबी भी इज़्ज़त करते थे। पर यहां तो किसी ने मुझ पर नज़र नहीं डाली। ऐसा लग रहा था कि जैसे सब अपनी मंज़िल पर जाने के लिए बदहवास थे। मुझे अकेलेपन का अहसास हुआ। लगा कि इस बड़े शहर में मैं कैसे रहूंगा इसलिए मैंने अपने बंसी वाले से मदद मांगी। स्टेशन से बाहर निकलने से पहले मैंने एक प्रार्थना लिखी–ताकि मुझे वो हौसला और हिम्मत दें।

मेरे भगवान, बंसी वाले
तू ने मुझे जज़्बात दिए,
संगीत का प्रेम मेरे जिस्म के कोने-कोने में भर दिया,
मैं तेरा अहसानमंद हूं।
और अब मैं तेरे सामने झुककर,
अपने उन हसीन ख़्वाबों की ताबीर मांगता हूं
जो तूने मेरी मासूम आंखों में बसाए
-तेरा नंद।

जब उनका निधन हो गया, उसके बाद उनके बटुए में मुझे ये तस्वीरें मिलीं:

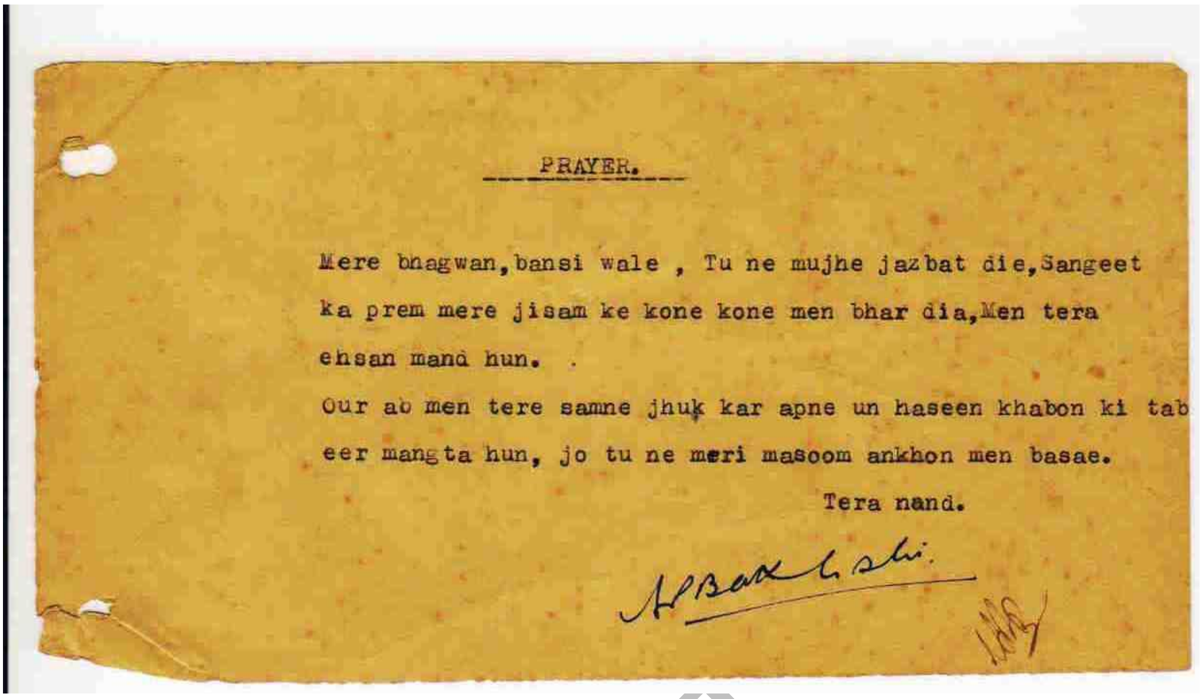

PRAYER.

Mere bhagwan, bansi wale , Tu ne mujhe jazbat die, Sangeet ka prem mere jisam ke kone kone men bhar dia, Men tera ehsan mand hun. .

Our ab men tere samne jhuk kar apne un haseen khabon ki tab eer mang ta hun, jo tu ne meri masoom ankhon men basae.

Tera nand.

ये तस्वीर बंसी वाले भगवान कृष्ण के नाम लिखी उनकी उसी कविता की एक स्कैन कॉपी है। उन्होंने 1970 के ज़माने में जब टाइपराइटर ख़रीद लिया तो खुद इसे टाइप किया था।

इसके तकरीबन बीस साल बाद 12 फ़रवरी 1971 को गीतकार आनंद बख़्शी ने अपनी दूसरी प्रार्थना लिखी। उन्होंने अपने मक़सद को हासिल करने में मदद के लिए भगवान कृष्ण का शुक्रिया अदा किया। ध्यान देने वाली बात ये है कि जहां उन्होंने पहली प्रार्थना के नीचे अपना नाम 'नंद' लिखा था, वहीं दूसरी प्रार्थना में उन्होंने अपना नाम लिखा, आनंद प्रकाश बख़्शी। उन्होंने आनंद बख़्शी नहीं लिखा था। ये वो नाम था जो 1959 में फ़िल्म-संसार में आने के बाद उनकी पहचान बन गया था। जब भी वो अपनी जड़ों से जुड़ना चाहते थे, तो ख़ुद को 'नंद' के नाम से पुकारते थे। और जब वो अपने भीतर के फ़ौजी से जुड़ना चाहते थे और ईश्वर से मदद चाहते थे तो ख़ुद को आनंद प्रकाश बख़्शी कहते थे। आनंद बख़्शी कभी अपने इस नाम 'आनंद बख़्शी' को स्वीकार नहीं पाए–जो फ़िल्म उद्योग ने उन्हें दिया था।

भगवान बंसी वाले, मैं तेरा बच्चा हूं। ये शायद मेरी दूसरी प्रेयर है। मुझे अपने aim in life में कामयाबी मिली। ये तेरी कृपा से हुआ। वरना मैं इस काबिल कहां कि मैं इतना मशहूर आदमी बन जाऊं। हज़ारों लाखों रूपए कमाऊं।

आज मैं तेरे सामने झुक के एक प्रार्थना करता हूं। मेरे दिल से ये डर और वहम निकाल दे। मुझे हौसला, हिम्मत दे। मैंने अपने पाँव में आप ही जो डर की बेड़ी डाली है जल्द काट के फेंक दे। मुझे आज़ाद कर दे।

मुझे मेरे बीवी-बच्चों के साथ सुख से जीने दे।

मेरा खोया हुआ विश्वास वापस दे।

12 फ़रवरी .1971आनंद बख़्शी।

बंबई आने के बाद वो काफ़ी देर तक दादर रेलवे स्टेशन पर मुसाफिरों के लिए बने वेटिंग रूम में ही रूके रहे। इसके बाद उन्होंने दादर पश्चिम में एक डॉरमीटरी में आसरा लिया, जहां अमूमन बाहर से आए लोग डेरा डालते थे।

राकेश आनंद बक्शी

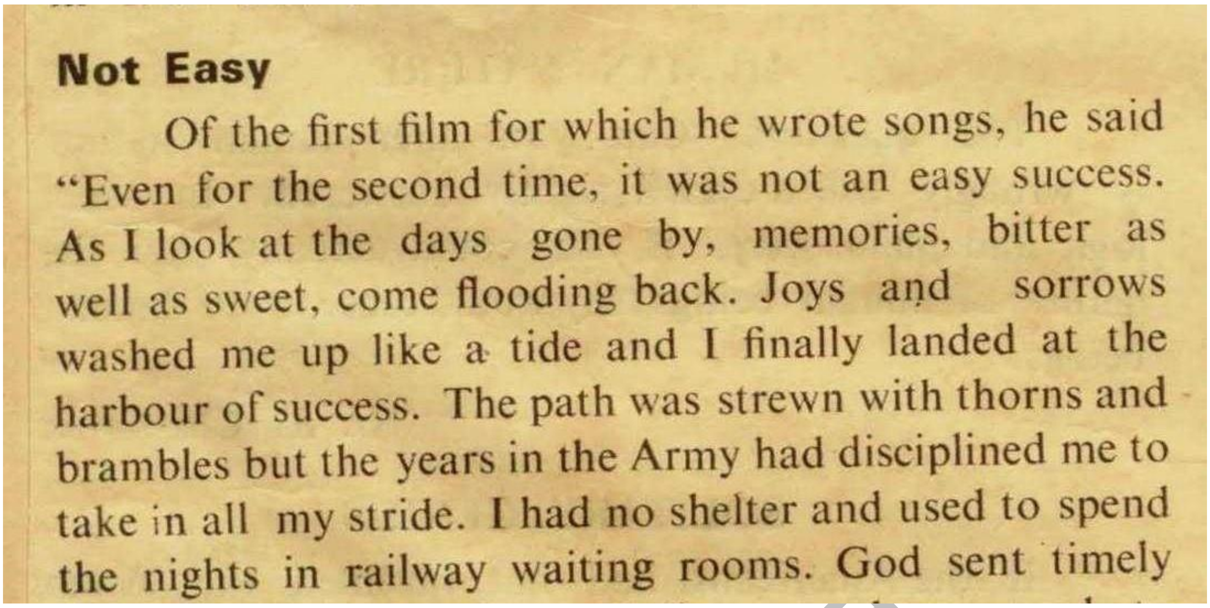

Not Easy

Of the first film for which he wrote songs, he said "Even for the second time, it was not an easy success. As I look at the days gone by, memories, bitter as well as sweet, come flooding back. Joys and sorrows washed me up like a tide and I finally landed at the harbour of success. The path was strewn with thorns and brambles but the years in the Army had disciplined me to take in all my stride. I had no shelter and used to spend the nights in railway waiting rooms. God sent timely

'इससे पहले या तो मेरे आसपास मेरे फ़ौजी साथी होते थे या घर जाता तो परिवार के लोग। बंबई को इससे पहले मैंने फिल्मों में देखा था और पत्रिकाओं में इसके बारे में पढ़ा था। मुझे लगा था कि बंबई खुली बाँहों से मेरा स्वागत करेगा, जैसे फ़ौज में मेरे साथियों ने किया था। उन्होंने मुझे जंग लड़कर आए एक हीरो जैसा अहसास दिलाया था, मेरी कविताओं और गायकी को सराहा था। पर जब मैं काम की तलाश में बंबई आया तो जैसे विशाल समंदर में एक मामूली बूंद की तरह था। किसी को मेरी मौजूदगी का अहसास तक ना हुआ। मेरे लिए तो मौजूद गीतकारों से मिलना तक मुमकिन नहीं हो पा रहा था, ये लोग जाने-माने शायर भी थे।

'गीतकार बनने का मासूम सपना लिए मैं बंबई की सड़कों पे घूमता था। फ़िल्म स्टूडियो ढूंढता था। आंखों में मासूम सपना और दिल में छोटा-सा हौसला लिए'।

'जल्दी ही मुझे बंबई में एक अजनबीयत का अहसास होने लगा। उस पर सिफ़त ये कि मैंने सोचा था जो रिश्तेदार मुझे एक-दो हफ्ते के लिए पनाह देंगे, जब तक कि मुझे काम ना मिल जाए–पता नहीं क्यों वो इस बात के लिए राज़ी तक नहीं हुए। मुझे अपना घर और अपनी फ़ौजी-ज़िंदगी याद आने लगी। ये बिलकुल 'जब जब फूल खिले' के गाने जैसा अहसास था–'कभी पहले देखा नहीं ये समां /कि मैं भूल से आ गया हूं कहां /यहां मैं अजनबी हूं'।

आनंद बख़्शी ने मुंबई जैसी अंजान जगह पर एक अजनबीयत का गहरा अहसास किया था। उन्हें अपने घर की आत्मीयता बहुत याद आती थी। एक और गाने में उन्होंने इस अहसास

को पिरो दिया था, फ़िल्म थी 'दर्द का रिश्ता' :'इस शहर से अच्छा था, बहुत अपना वो गांव, पनघट है यहां कोई ना पीपल की वो छांव'।

'मेरी एक क़रीबी रिश्तेदार बंबई में रहती थीं, मैंने सोचा था कि कुछ दिन उनके घर रहूंगा और फिर नये शहर में ठिकाना मिल ही जायेगा। मैं फ़िल्म स्टूडियोज़ के के आसपास ही कोई गेस्ट-हाउस खोज लूंगा। उनके परिवार के लोग मेरे पापा जी और बाऊ जी के क़रीबी रिश्तेदार थे। जब मैं उनके घर पहुंचा तो उन्होंने स्वागत किया, पर जब उन्हें ये अहसास हुआ कि मैं कुछ दिन उनके यहां टिकने का सोच रहा हूं तो बड़े नाटकीय तरीक़े से उनका बर्ताव बदल गया। जब मैंने उनके घर हाथ-मुंह धोए ताकि खाना खा सकूं तो उन्होंने मुझसे कहा, देखो, तुमने वॉश-बेसिन कितना गंदा कर दिया है, तुम्हें थोड़ा ऊंची सोसाइटी की तरह रहना सीखना चाहिए। उन्हें अंदाज़ा भी नहीं था कि फ़ौज के जवान कितनी अनुशासित और कितने साफ़-सफ़ाई वाले होते हैं। मुझे फ़ौरन ही समझ में आ गया कि उनका ये कड़ा बर्ताव इसलिए है ताकि मैं उनके घर से चला जाऊं। मैंने उनसे कहा कि मुझे फ़ौज के अपने एक पुराने साथी के घर रहने की जगह मिल गयी है और वहां से निकल गया। अजीब बात ये है कि क़रीब बीस साल बाद वो हमारी पारिवारिक मित्र बन गयीं, पर मैंने उन्हें कभी ये अहसास नहीं दिलाया कि जब मैं कुछ भी नहीं था तो उन्होंने मेरे साथ कैसा बर्ताव किया था।

'मुझे पता चला कि दादर में एक बहुत ही मशहूर स्टूडियो है। जब मेरी रिश्तेदार ने एक रात के लिए भी मुझे अपने घर में नहीं रखा तो मैं दादर के एक गेस्ट हाउस में रहने लगा। जल्दी ही मैंने पास में एक फ़िल्म-स्टूडियो भी खोज निकाला। पर चौकीदार मुझे अंदर नहीं जाने देता था। मैंने उसकी ड्यूटी बदलने का इंतज़ार किया और स्टूडियो में घुसने के लिए टैक्सी भी ली। असल में कुछ दिन तक मैं गेट के बाहर इंतज़ार करता रहा और मैंने पाया कि चौकीदार टैक्सियों को बिना सवाल पूछे अंदर जाने देता है। मैंने ऐसा ही किया और टैक्सी लेकर अंदर घुस गया। मेरी किस्मत अच्छी थी कि मेरी मुलाक़ात कारदार स्टूडियो के मालिक अभिनेता, निर्माता और निर्देशक अब्दुल रशीद कारदार से हो गयी। मैंने एकदम सलीक़ेदार पोशाक पहन रखी थी। ये सब फ़ौज का असर था। मैं बहुत ही आत्मविश्वास के साथ उनके पास गया और उनसे कहा, 'मैं शायर हूं, दिल्ली से आया हूं। गीत लिखना चाहता हूं'। निजी रूप से ये मेरी उनसे पहली मुलाक़ात थी।

मुझे लगा था कि ये काम बड़ा आसान होगा। मुझे अब पता चल गया है कि फ़िल्म-संसार के किले में किस तरह घुसपैठ की जा सकती है। पर जब कारदार साहब को पता चला कि मैं तो महज़ एक 'स्ट्रगलर' हूं और फ़िल्मों में काम तलाश कर रहा हूं, तो उनका मूड बदल

राकेश आनंद बक्शी

गया। पर उन्होंने मुझे अपने मैनेजरों या सहायकों के हवाले कर दिया और निकल गये’।

‘उनके मैनेजर ने मेरी कविताएं सुनीं, और मुझसे कहा कि वो कारदार साहब को बता देंगे। मैं फ़िल्मकारों और संगीतकारों से मिलता रहा। चौकीदारों से सुराग़ लेता रहा। इनमें से कुछ अच्छे थे, उन्होंने मुझे पता दे दिया, जबकि कुछ ने मुझे भगा दिया। पर उसके बाद मैं फ़िल्मी दुनिया की किसी शख़्सियत से नहीं मिल पाया। तीन महीने बाद जब मेरे पैसे भी ख़त्म हो गये तो मेरी हिम्मत जवाब देने लगी। मैं टिकिट-चेकरों की नज़रों से बचते हुए दादर स्टेशन पर मुसाफिरों के लिए बने वेटिंग रूम में रहने लगा, ताकि रहने का ख़र्चा बचाया जा सके।

‘फ़िल्मों ही नहीं थियेटर की दुनिया में भी मुझे किसी तरह प्रवेश नहीं मिल रहा था। मेरी जान-पहचान के किसी भी व्यक्ति ने मुझे नहीं बताया कि थियेटर के लोगों से किस तरह मिला जा सकता है। ऐसे दौर में ‘मेरी ज़िंदगी के मक़सद’ ने मुझे बचाया। ये बात मेरे ज़ेहन पर छप गयी थी और मुझे पता था कि फ़िल्मों से जुड़ने का एक और मौक़ा मेरे पास है। भले ही इसके लिए मुझे बंबई छोड़कर वापस दिल्ली जाना पड़े। मैंने सोचा कि क्यों ना रेडियो अनाउंसर बन जाऊं। अब मेरे सामने एक नया रास्ता था। मैंने दिल्ली का टिकिट लिया। मुझे लगा कि रेडियो मुझे अपनी ‘ज़िंदगी के मक़सद’ से जोड़े रखेगा। जब मुझे रेडियो में नौकरी मिल जाएगी और मैं वहां जम जाऊंगा तो दोबारा बंबई वापस लौटने की कोशिश करूंगा।

आनंद प्रकाश बख़्शी फ़ौरन दिल्ली के लिए रवाना हो गए। मुझे उनकी सौतेली बहन ने ये बताया था कि उन्होंने इसी सफ़र में एक गाना लिखा–‘गाड़ी बुला रही है’। मुझे लगता है कि ये गाना उसी वक़्त लिखा गया होगा। अगर आप इस गाने की इबारत को ध्यान से देखें या इसे ग़ौर से सुनें तो आपको भी मेरी बात पर यक़ीन हो जायेगा।

राकेश आनंद बख़्शी

नंद जानते थे कि परिवार इस बात से नाराज़ होगा कि उन्होंने फ़ौज की अच्छी-ख़ासी नौकरी क्यों छोड़ी, लेकिन जनरल दुबे ने उनसे कहा कि जब कोई फ़ौजी निजी कारणों से नौकरी छोड़ता है तो उसे मियाद ख़त्म होने से पहले नौकरी पर वापस लिया जा सकता है। हालांकि नंद को पूरा यक़ीन था कि उन्हें रेडियो की नौकरी मिल जायेगी, क्योंकि वो तो बचपन से ही गाने गाते आ रहे हैं।

दिल्ली पहुंचने के बाद उन्होंने परिवार के बुज़ुर्गों से झूठ बोला कि वो दोबारा सिग्नल कोर जॉइन कर लेंगे। उन्होंने घर में बताया कि चूंकि उन्होंने अपनी मरज़ी से इस्तीफ़ा दिया था, नेवी की तरह यहां उन्हें नौकरी से निकाला नहीं गया था, इसलिए वापस लौटना मुमकिन है। अब किसी को भी ख़बर किए बिना, बड़ी उम्मीद से आनंद प्रकाश बख़्शी ने आकाशवाणी में ऑडीशन के लिए अरज़ी दे दी। उनके मामा मेजर बाली ने ऑडीशन का अपॉइंटमेन्ट दिलाने में उनकी मदद की।

22 दिसंबर 1950 को आनंद प्रकाश बख़्शी इंडिया गेट के पास आकाशवाणी के स्टूडियो में ऑडीशन के लिए हाज़िर हुए और फ़ेल हो गए। उन्हें झटका लगा, यक़ीन ही नहीं हुआ कि बचपन से उनकी गायकी को लोग पसंद करते आ रहे थे, फ़ौज के 'बड़े खाने' में भी उन्हें सबकी तारीफ़ मिलती रहे -फिर ये क्या हो गया।

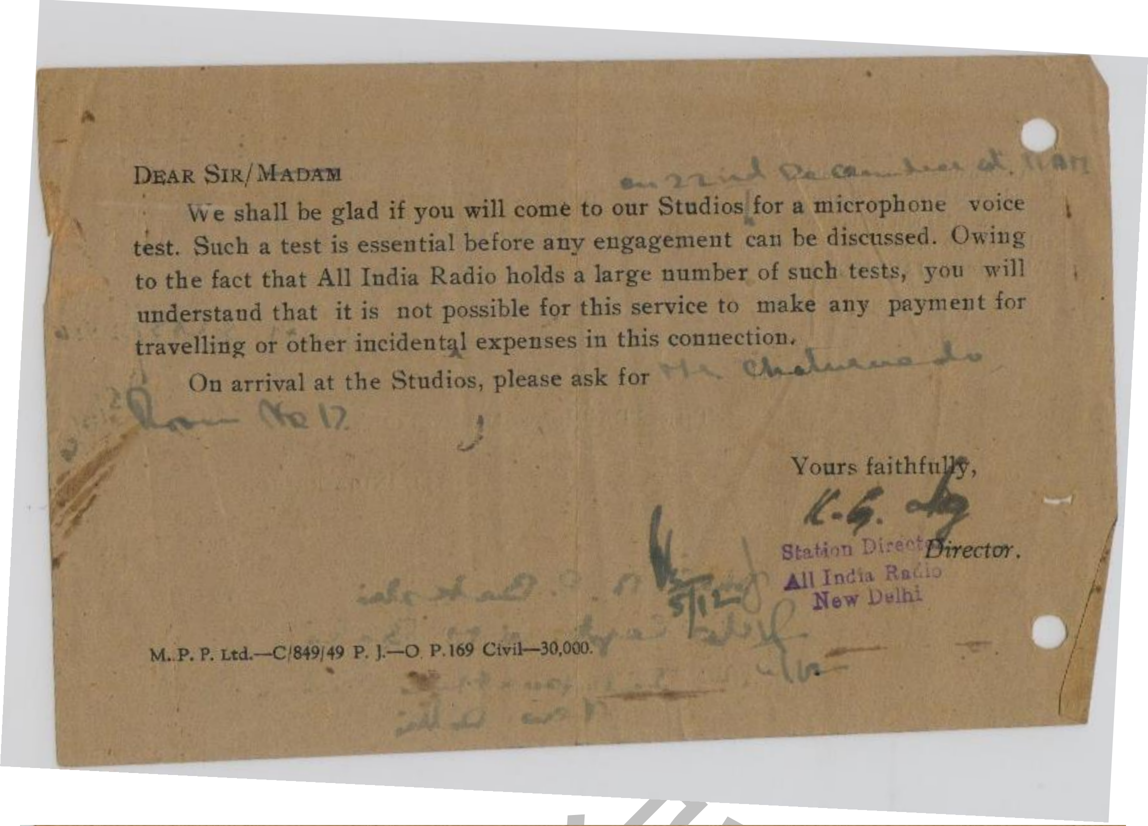

DEAR SIR/MADAM on 22nd December at 11 AM

We shall be glad if you will come to our Studios for a microphone voice test. Such a test is essential before any engagement can be discussed. Owing to the fact that All India Radio holds a large number of such tests, you will understand that it is not possible for this service to make any payment for travelling or other incidental expenses in this connection.

On arrival at the Studios, please ask for Mr. Chaturvedi Room No 17.

Yours faithfully,

K. G.

Station Director, *Director*.
All India Radio
New Delhi

M. P. P. Ltd.—C/849/49 P. J.—O. P. 169 Civil—30,000.

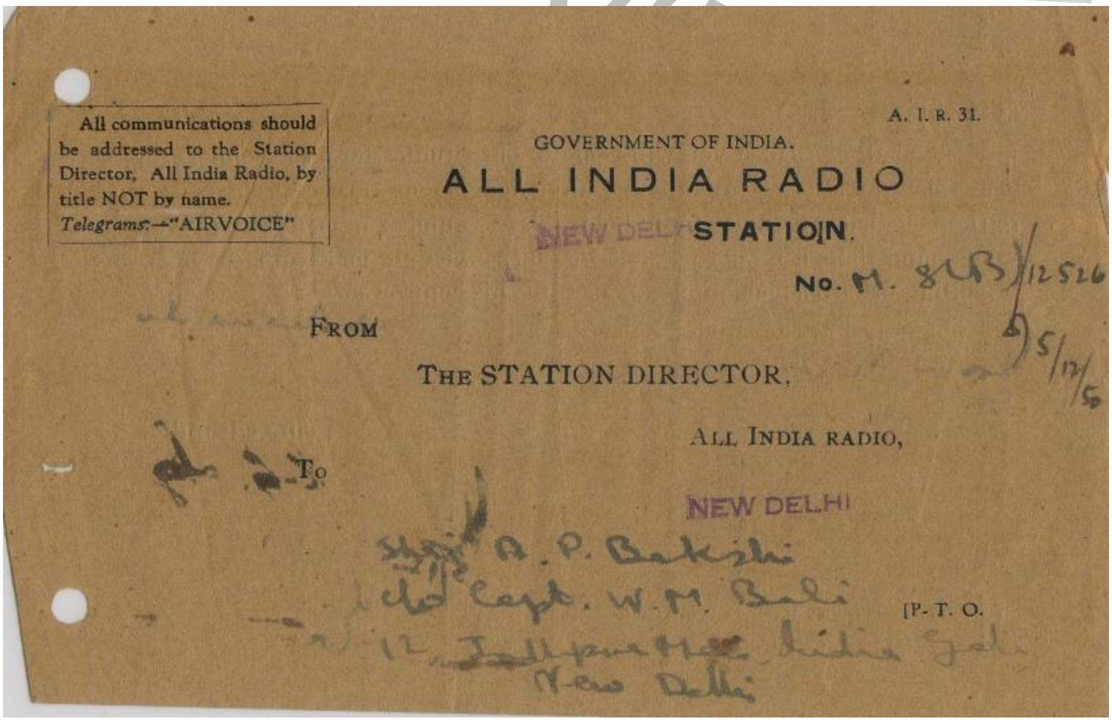

All communications should be addressed to the Station Director, All India Radio, by title NOT by name.
Telegrams:—"AIRVOICE"

A. I. R. 31.

GOVERNMENT OF INDIA.

ALL INDIA RADIO

NEW DELHI STATION.

No. M. 8(B)/12526
5/12/50

FROM

THE STATION DIRECTOR,

ALL INDIA RADIO,

NEW DELHI

To

Shri A. P. Bakshi
c/o Capt. W. M. Bali
12, ... India Gate
New Delhi

[P. T. O.

'फ़ौज छोड़ने के बाद पहली बार मुझे लगा कि मुझे वापस लौट जाना चाहिए। मैंने जबलपुर का ट्रेन का टिकिट भी बुक कर लिया था।'

'मैं शायर बदनाम, मैं चला।
महफ़िल से नाकाम, मैं चला।
मैं चला।
मेरे घर से तुमको, कुछ सामान मिलेगा
दीवाने शायर का एक दीवान मिलेगा
और एक चीज़ मिलेगी, टूटा ख़ाली जाम
मैं चला, मैं चला।
मैं शायद बदनाम।।
(–फ़िल्म नमक हराम)

आकाशवाणी इसी वजह से मेरे लिए एक नॉस्टेलजिया रहा है। सन 2018 में मैं आकाशवाणी दिल्ली गया, ठीक वैसे ही जैसे मेरे डैड 1950 में ऑडीशन के लिए आकाशवाणी दिल्ली गये थे। मैं उन दिनों रेडियो प्रेजेन्टर्स पर अपनी किताब Let's Talk On Air लिख रहा था, जिसे 2019में पेंग्विन ने छापा। इसमें अमीन सायानी और यूनुस ख़ान के इंटरव्यू शामिल हैं। यूनुस ख़ान ने ही बख़्शी साहब की इस जीवनी का हिंदी अनुवाद किया है।

राकेश आनंद बक्शी

राकेश, आकाशवाणी दिल्ली में।

CONVERSATIONS
WITH RADIO PRESENTERS
Let's talk
ON AIR
RAKESH ANAND BAKSHI

DO YOU WANT TO BE AN RJ AND ENTERTAIN COUNTLESS LISTENERS?

THEN THIS BOOK IS FOR YOU!

Tune in to the lives of fourteen eminent radio presenters and learn about the people behind the iconic voices that have been entertaining us via the airwaves. Gain some insight into these media influencers' life stories—on- and off-air—as you get to know their challenges, ideals, inspirations and even their favourite songs.

Featuring popular radio jockeys of our time, including the legend Ameen Sayani, this book bares all about life behind the microphone. Who knows, maybe this can be the career for you!

'Radio presenters contribute so much knowledge and history about music. I'm really looking forward to this book'
Salim Merchant, music composer, singer and radio presenter

Cover image © Shutterstock
Cover design by Akangksha Sarmah

FSC

Non-fiction

₹299

www.penguin.co.in

E-book available

अध्याय 5

सन 1951 से 1956

एक बेटी ने जन्म दिया एक पिता और गीतकार को।

आनंद प्रकाश वैद बख़्शी 16 फ़रवरी 1951 को आर्मी सिग्नल कोर की जबलपुर डिवीजन में वापस लौट गये। वो दूसरी बार सिग्नल कोर में नौकरी पर आए थे। इस बार उन्हें ई .एम . ई. या इलेक्ट्रिकल एंड मेकेनिकल इंजीनियर्स डिवीजन भेज दिया गया। अगले दो सालों में वहां उनकी ट्रेनिंग हुई और वो 11 सितंबर 1953 को 'इलेक्ट्रीशियन क्लास3 ' बन गये।

बक्शी

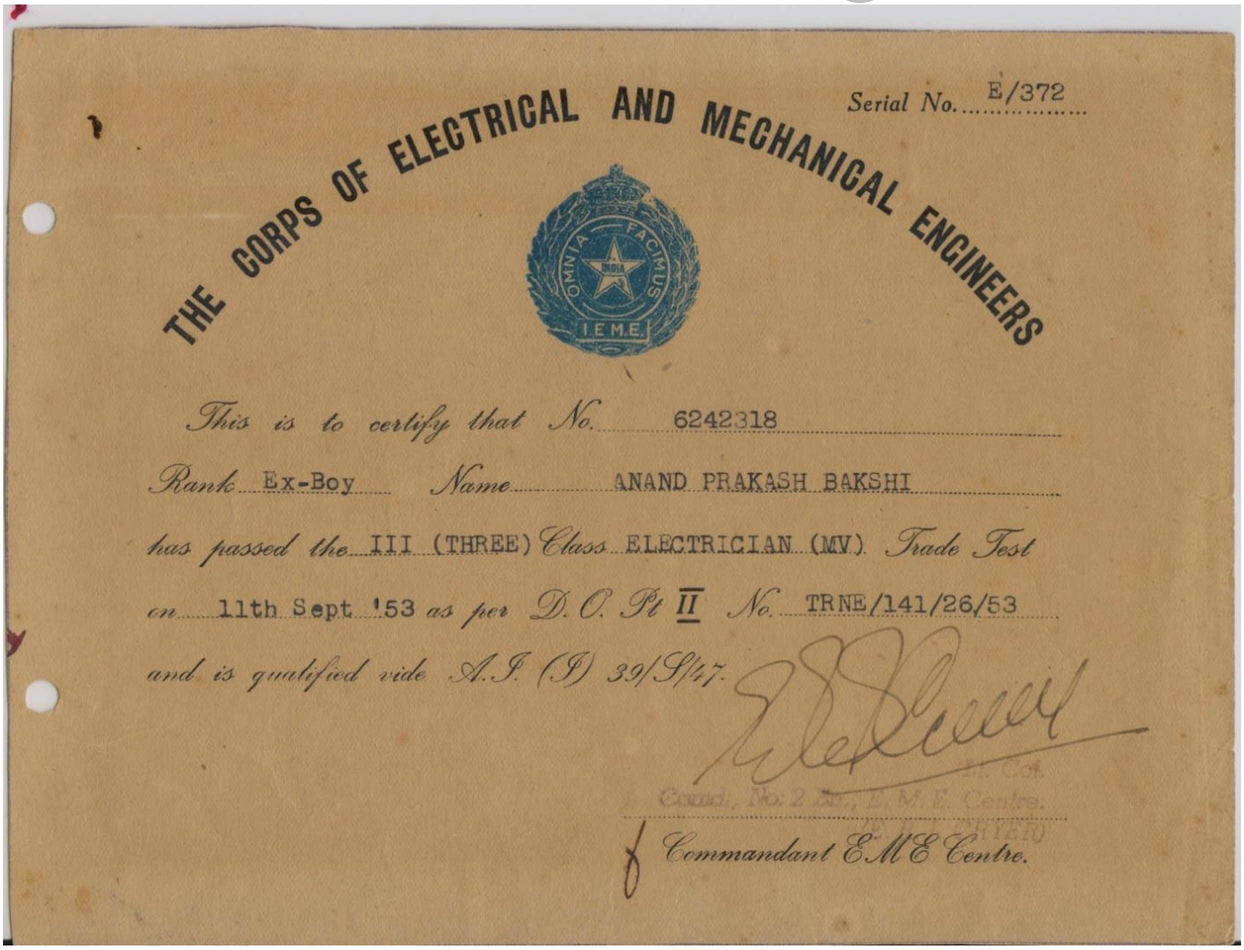

Serial No. E/372

THE CORPS OF ELECTRICAL AND MECHANICAL ENGINEERS

OMNIA FACIMUS
INDIA
I.E.M.E.

This is to certify that No. 6242318

Rank Ex-Boy Name ANAND PRAKASH BAKSHI

has passed the III (THREE) Class ELECTRICIAN (MV) Trade Test

on 11th Sept '53 as per D.O. Pt II No. TRNE/141/26/53

and is qualified vide A.I. (I) 39/S/47.

Lt. Col.
Comdt, No. 2 Bn., E. M. E. Centre.

Commandant E.M.E. Centre.

ई .एम .ई .फ़ेयर बुक

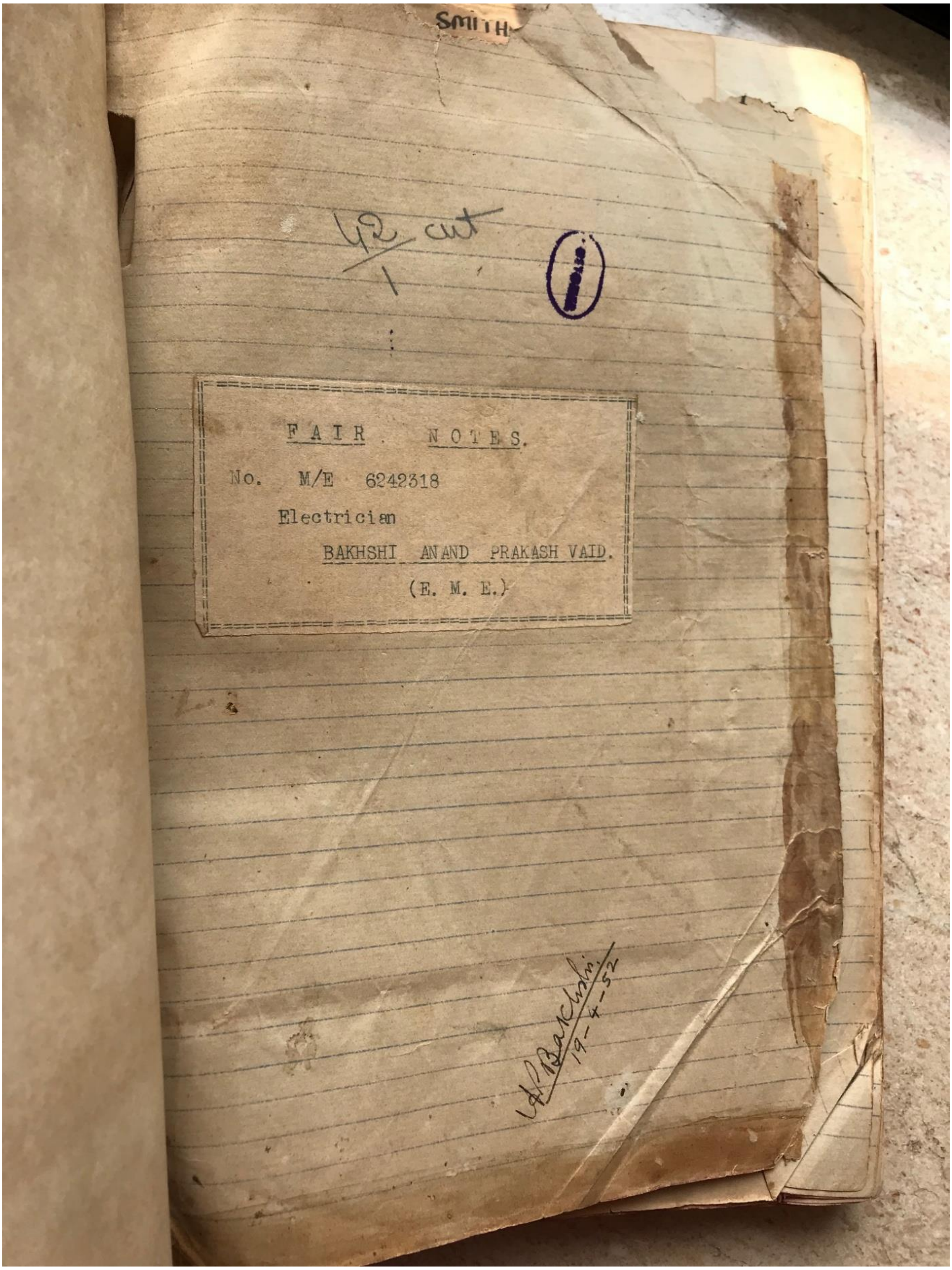
SMITH
FAIR NOTES.
No. M/E 6242318
Electrician
BAKHSHI ANAND PRAKASH VAID.
(E. M. E.)
19-4-52

‘मैं बंदूकों की आवाज़ बर्दाश्त नहीं कर पाता था’

एक ऑटोमोबाइल इलेक्ट्रीशियन बनने के बाद फ़ौजी बख़्शी को इन्फ़ैन्ट्री या पैदल सेना में 75 रूपए की तनख़्वाह पर रख लिया गया। उन्हें जम्मू कश्मीर में भी तैनात कर दिया गया था। पैदल सेना में फ़ौजी का पहला सामना बंदूकों की आवाज़ों से होता है। इन आवाज़ों से उन्हें नफ़रत थी। आज मुझे याद आता है कि जब वो घर पर होते थे, और गाने लिख रहे होते थे...उन्होंने अपने ज़्यादातर गाने या तो अपने बेडरूम में लिखे या फिर हमारे लिविंग रूम में...अगर अचानक कोई ज़ोर की आवाज़ होती, तो वो विचलित हो जाते थे। वो फ़ौरन लिखना छोड़ देते और पता लगाते कि ये आवाज़ कहां से आयी है। डोर-बेल की आवाज़ किचन में कुकर की सीटी, हम बच्चों का ज़ोर से चिल्लाना या गाना–ये सब भी उन्हें तंग कर देता था।

शोर उन्हें ज़रा भी पसंद नहीं था। 1975 के ज़माने में हम पाँच बेडरूम के एक नये बड़े-से घर में बांद्रा पश्चिम में रहने आए। और तीन महीनों के अंदर हमें यहां से हटना पड़ा, क्योंकि वहां मुंबई की सिटी बस यानी ‘बेस्ट’ की आवाज़ उन्हें काफ़ी परेशान कर रही थी। हमारी बिल्डिंग मेन रोड के पास मौजूद थी इसलिए हमें वो घर छोड़कर मेन रोड से दूर एक सुनसान रोड वाले मकान में जाना पड़ा -जहां गाड़ियों की कोई आवाज़ नहीं आती थी।

‘फ़ौज में हमें सारा दिन ‘लेफ़्ट राइट, लेफ़्ट राइट’ करते रहना पड़ता था। यहां तक कि मुझे तो मार्च-पास्ट के सपने भी आते थे। पैदल सेना में भारी आर्टीलरी गन की आवाज़ें मुझे बहुत परेशान करती थीं। इससे मुझे बंटवारे के वक़्त देखा वो ख़ून-ख़राबा याद आता था जो मैंने सत्रह बरस की उम्र में देखा था। उन दिनों में मुझे ये बहुत शिद्दत से महसूस होने लगा कि फ़ौज में काम करना मेरे बस का नहीं है। मुझे ये भी लगा कि अगर मैं इसी तरह फ़ौज में काम करता रहा तो मेरे भीतर की एक कलाकार बनने की ललक ख़त्म ही हो जायेगी। जब मैं पिछली बार बंबई गया था तो मुझसे मिलने में किसी की दिलचस्पी नहीं थी। मुझे लगा कि अगर मुझे फ़ौज में अपनी सीनियर अफ़सर का ‘रिकमंडेशन लेटर’ मिल जाए तो इससे मुंबई के फ़िल्मी लोगों को मेरी प्रतिभा पर यक़ीन हो जायेगा और शायद वो मेरी कविताएं सुनना चाहेंगे। इसलिए मैंने इसकी कोशिश शुरू कर दी। मैंने सोचा कि किसी ऐसे बड़े अफ़सर से सिफ़ारिश की चिट्ठी मिल जाए, जिसे सही मायनों में यक़ीन हो कि मुझे दूसरी बार फ़ौज छोड़कर अपने सपने को साकार करने और गीतकार बनने मुंबई जाना चाहिए।

कैप्टन वर्मा की जय हो।

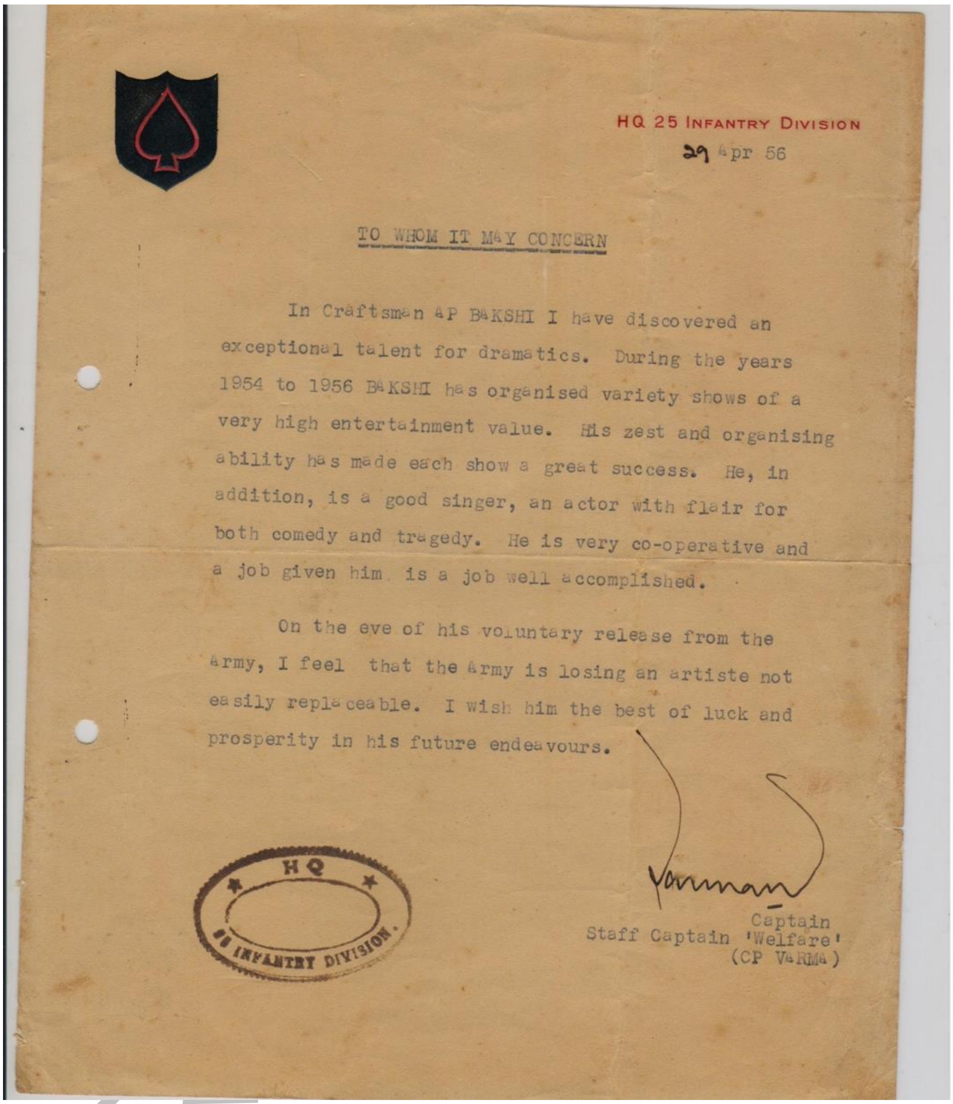

HQ 25 INFANTRY DIVISION

29 Apr 56

TO WHOM IT MAY CONCERN

In Craftsman AP BAKSHI I have discovered an exceptional talent for dramatics. During the years 1954 to 1956 BAKSHI has organised variety shows of a very high entertainment value. His zest and organising ability has made each show a great success. He, in addition, is a good singer, an actor with flair for both comedy and tragedy. He is very co-operative and a job given him is a job well accomplished.

On the eve of his voluntary release from the Army, I feel that the Army is losing an artiste not easily replaceable. I wish him the best of luck and prosperity in his future endeavours.

Varman

Captain
Staff Captain 'Welfare'
(CP VARMA)

HQ
25 INFANTRY DIVISION

'मुझे याद है कि बख़्शी साहब फ़िल्म ताल (1999) के अभी-अभी रिकॉर्ड हुए गाने सुन रहे थे, ये फ़िल्म और उसके गानों के रिलीज़ से काफ़ी पहले की बात है। वो एक मोनो-कैसेट-प्लेयर पर गाने सुन रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि वो क्यों नहीं एक अच्छे से बेहतर साउंड वाले म्यूज़िक-सिस्टम पर नहीं सुनते। उन्होंने कहा कि उनके कान आवाज़ के लिए कुछ ज़्यादा ही संवेदनशील हैं। वो सबसे मामूली कैसेट प्लेयर में भी संगीत को गहराई से समझ लेते हैं। ये एक बहुत बड़ी क्वालिटी है। क्योंकि हमारे देश में ज़्यादातर लोग वैसा ही कैसेट-प्लेयर ख़रीद पाते हैं, जिस पर वो इस वक़्त गाने सुन रहे हैं। उन्होंने बताया कि अगर लक्ष्मीकांत प्यारेलाल या ए .आर .रहमान का कोई गाना उनके इस मामूली कैसेट प्लेयर पर अच्छा लग सकता है तो वो भारत के लाखों-करोड़ों आम लोगों को पक्का पसंद आयेगा। और फिर वो रिक्शे और टैक्सियों में भी आराम से बजेगा।

मुझे याद आ गया कि जब वो दूसरी बार फ़ौज में गए थे तो क्या हुआ था। बख़्शी साहब को एक रिश्तेदार से मिलने के लिए हैदराबाद जाना पड़ा। उन्होंने सोचा कि जब ट्रेन रेलवे यार्ड में हो तभी ट्रेन में बैठ जाते हैं ताकि जनरल डिब्बे में एक सीट मिल जाए। लेकिन वो चढ़ते इससे पहले ही ट्रेन चलने लगी। वो डिब्बे की सीढ़ी पर खड़े हो गए पर अंदर नहीं जा सके क्योंकि बोगी का दरवाज़ा अंदर से बंद था।

एक हाथ से उन्होंने अपना टीन का सूटकेस पकड़ रखा था और दूसरे हाथ से ट्रेन के दरवाज़े की रेलिंग को थाम रखा था, इस तरह वो बोगी की सीढ़ी पर लटके हुए थे। जब उन्होंने सामने आते प्लेटफ़ार्म की तरफ़ देखा तो जैसे उनकी जान ही निकल गयी। प्लेटफ़ार्म तो उन सीढ़ियों से ऊँचा था, जिन पर वो तकरीबन लटके हुए थे। ट्रेन तेज़ी से प्लेटफ़ार्म की तरफ़ बढ़ रही थी, तभी उन्होंने चिल्लाना शुरू किया। वो चीख़ रहे थे ताकि डिब्बे के अंदर मौजूद लोग दरवाज़ा खोल दें। डिब्बा इसलिए बंद किया गया था ताकि ट्रेन के प्लेटफ़ार्म पर पहुंचने से पहले कोई डिब्बे में ना घुस पाए। उन्होंने फ़ौजी फ़टीग पोशाक पहन रखी थी। उनके चीख़ने से किसी को दया आ गयी और उसने दरवाज़ा खोल दिया ताकि बख़्शी बोगी के अंदर दाखिल हो पायें। जैसे ही वो बोगी में घुसे, ट्रेन प्लेटफ़ार्म पर पहुंच गयी। उन्हें अहसास हुआ कि अगर दरवाज़ा कुछ और पल बंद रहता, तो हो सकता था कि उन्हें अपने दोनों पैर खोने पड़ जाते। उनके दोनों पैर कट भी सकते थे। बाद में उन्होंने बताया कि ये उनकी ज़िंदगी के सबसे ख़तरनाक लम्हों में से एक था। उनका टिन का सूटकेस आज भी हमारे लिविंग रूम में रखा है और फ़ौज में बख़्शी साहब के दिनों की याद दिलाता है।

***

एक गुमनाम हीरो

जब आनंद प्रकाश बख़्शी दूसरी बार फ़ौज में पहुंचे तो उन्होंने कवि और संपादक बिस्मिल सईदी से जुड़े रहने की ज़ोरदार कोशिशें कीं। ये परिचय अब दोस्ती में बदलने लगा था। बख़्शी साहब को लग रहा था कि बंबई जाकर दूसरी कोशिश करने से पहले उन्हें अपनी लेखनी में सुधार करना पड़ेगा।

बिस्मिल सईदी के मार्गदर्शन से एक फ़ौजी और शौकिया कवि आनंद प्रकाश बख़्शी का जोश बना रहा और उनके भीतर का कवि और ज़्यादा 'तैयार' होता चला गया। बख़्शी मानते थे कि बिस्मिल ना सिर्फ़ एक मेहरबान दोस्त थे बल्कि उनकी कामयाबी में शामिल दो गुमनाम हीरोज़ में से एक थे। दूसरे हीरो थे एक 'भले आदमी' 'उस्ताद' चित्रमल स्वरूप, पश्चिम रेलवे

राकेश आनंद बक्शी

के एक टिकिट-कलेक्टर। मैं इस फ़रिश्ते से आपका परिचय अगले अध्याय में करवाऊंगा, जिन्हें मैं नंद की दूसरी मां मानता हूं। असल में चित्रमल जी की भलाई का ही नतीजा था कि दुनिया को आनंद बख़्शी नाम का गीतकार मिला।

“मेरे मेहरबान दोस्त, बिस्मिल सईदी–

बिस्मिल सईदी साहब का ताल्लुक़ टोंक राजस्थान से था। वो दिल्ली में जामा मस्जिद के पास रहते थे। वो एक संपादक और उर्दू शायर थे और ज़्यादातर ग़ज़लें ही लिखते थे। सईदी उर्दू रिसाले ‘बीसवीं सदी’ से जुड़े हुए थे जो पुरानी दिल्ली से शाया होता था। डैडी इस रिसाले को ताज़िंदगी मंगवाते रहे। मैं कभी-कभी डैडी के साथ हर महीने खार और बांद्रा के उनके पसंदीदा पेपर-स्टॉल पर ‘बीसवीं सदी’ का ताज़ा अंक ख़रीदने जाता था। वो इस रिसाले को ख़ूब डूबकर पढ़ते थे। जब फौज से छुट्टियों में वो दिल्ली गये तो उन्होंने ठान लिया था कि वो सईदी साहब से मिलेंगे और अपनी ताज़ा नज्मों पर उनकी राय लेंगे।

आनंद बख़्शी के अड़सठवें जन्मदिन पर फ़िल्म-निर्देशक सुभाष घई ने एक पार्टी आयोजित की थी जिसमें गीतकार जावेद अख़्तर ने आनंद बख़्शी को हमारे समय का नज़ीर

अकबराबादी कहा था। नज़ीर अकबराबादी अठारहवीं सदी के शायर थे और उन्हें अपनी नायाब नज्मों के लिए याद किया जाता है। उन्होंने ग़ज़लें और नज़्में लिखी हैं। उस वक़्त तक लोगों को पता नहीं था कि कवि आनंद प्रकाश बख़्शी बिस्मिल सईदी के शागिर्द थे और सईदी ख़ुद को नज़ीर अकबराबादी का शागिर्द मानते थे। तो मुझे लगता है कि इस तरह जावेद साहब ने उनकी 'नज़ीर' से एकदम सही तुलना की थी।

अपनी चिट्ठियों में बिस्मिल सईदी बख़्शी साहब को प्यार से 'अज़ीज़ी-ओ-मेहबूबी' पुकारा करते थे और बख़्शी अपनी चिट्ठियों के आख़िर में लिखते–'तुम्हारा तालिम'। आप समझ गये होंगे तालिम का मतलब होता है शागिर्द'। मुझे लगता है कि बिस्मिल सईदी साहब ने एक फ़ौजी और शौकिया कवि आनंद बख़्शी को उन दिनों में बड़ा सहारा दिया। जल्दी ही बख़्शी के जीवन में एक और ऐसी शख़्सियत आने वाली थी–जिसने उन्हें हमेशा सहारा दिया, इसलिए बख़्शी उन्हें 'मेरी ज़िंदगी का सहारा' कहते थे। वो थीं कमला, जिनकी बातें आगे चलकर।

<u>सईदी का ख़त आनंद बख़्शी के नाम</u>

जो मेरा ख़्याल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं,
तो मेरी मजाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
कोई दिल भुला सका हो अगर अपनी धड़कनों को
तो कोई मिसाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
ये ज़मीन, ये आसमान क्या मेरे भूलने को कम हैं
ये कोई सवाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
मैं जहान-ए-शोर-ओ-शर में कभी रह सकूं ना ज़िंदा
अगर एहतेमाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
जो कभी ये हाल भी हो कि मैं आप को भुला दूं
तो कभी वो हाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
ये ज़वाल-ए-अक़्ल बेहतर कि भुला सकूं ना तुझको
वो अगर कमाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
तेरी याद ज़ख़्म है तो ये ज़ख़्म और यही दिल
जो वो अंदमाल भी हो तुझे मैं भूल जाऊं
तेरी याद हिज्र है तो तेरे हिज्र में मरूंगा
वो अगर विसाल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं
मेरी मौत बनकर आए ये ख़्याल जान-ए-बिस्मिल
जो कभी ख़्याल भी हो कि तुझे मैं भूल जाऊं

राकेश आनंद बख़्शी

आनंद प्रकाश बख़्शी फौज के दिनों में अपनी सौतेली बहनों के साथ दिल्ली में

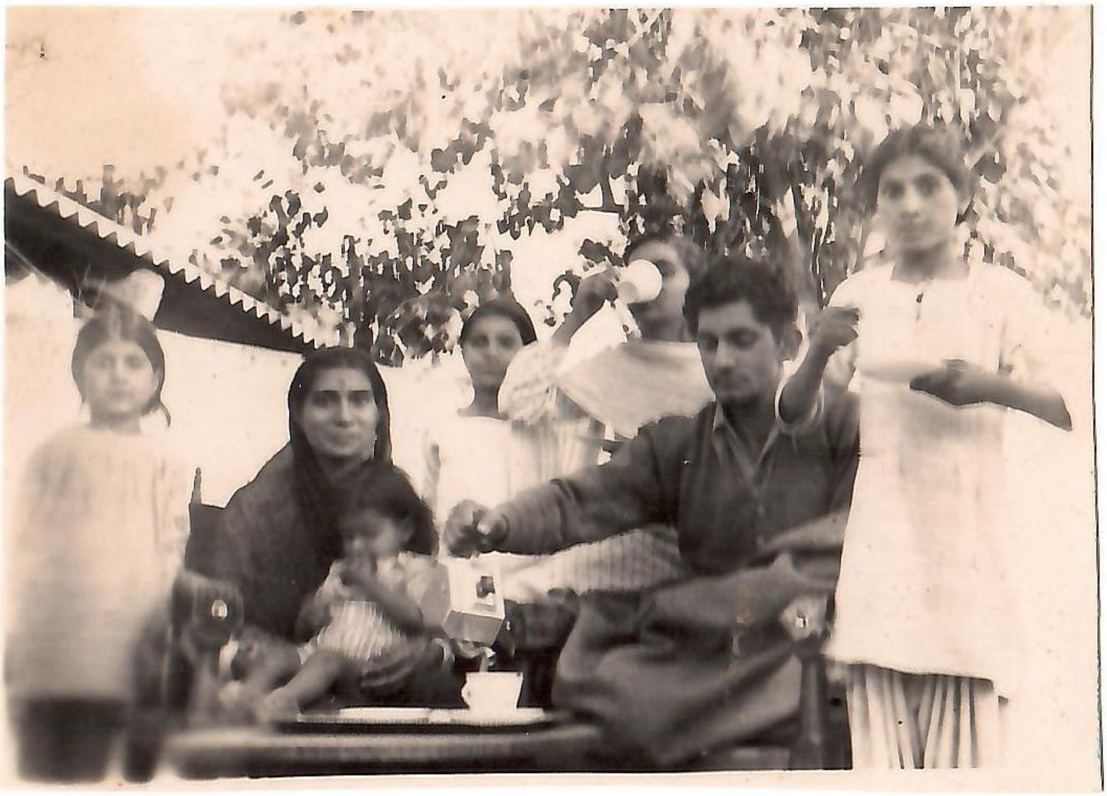

***

"लड़की साइकल वाली, ओए लड़की सायकल वाली"

सूबेदार अमर सिंह मोहन और इनका परिवार सन 1947 में एक रिफ़्यूज़ी के तौर पर भारत आया था। पिंडी में वो उसी सड़क पर रहते थे, जिस पर बख़्शी परिवार रहता था और दोनों परिवारों में परिचय था क्योंकि दोनों ही मोहयाल समुदाय से ताल्लुक़ रखते थे। बंटवारे के बाद अमर सिंह मोहन और उनका परिवार पहले गया और उसके बाद नागपुर लेकिन आखिर में वो लखनऊ में बस गये। अमर सिंह नागपुर में फौज में सूबेदार थे और उनका परिवार आलमबाग़ लखनऊ में रहता था। आगे चलकर ये आनंद प्रकाश बख़्शी का फ़ौजी ससुराल बनने वाला था।

बख़्शी साहब की शांता बुआ की शादी अमर सिंह मोहन के एक रिश्तेदार से हुई थी। शांता बुआ एक बार अमर सिंह मोहन के घर गयीं और उनका परिचय उनकी सबसे छोटी बेटी कमला से करवाया गया। बस शांता बुआ को लगा कि उनके फ़ौजी भतीजे बख़्शी के लिए ये एकदम सही दुल्हन साबित होगी। शांता बुआ ने 2 सितंबर 1954 को बख़्शी परिवार को एक

पोस्टकार्ड भेजा, जिसमें लिखा था–'मैंने एक मोहयाल लड़की नंद के लिए देखी है। उसका नाम है कमला। वो फ़ौज के एक रिटायर सूबेदार की बेटी है और लखनऊ में रहती है। उसके पिता अमर सिंह मोहन मेरे समधी के साथ साझेदारी में सायकल की एक दुकान चलाते हैं। कमला तीन बेटियों में सबसे छोटी और कुंवारी है, गोरी है और मुझे थोड़ी-सी ज़्यादा तंदुरूस्त लगी। वो सिलाई-कढ़ाई जानती है और साइकिल भी चलाती है।

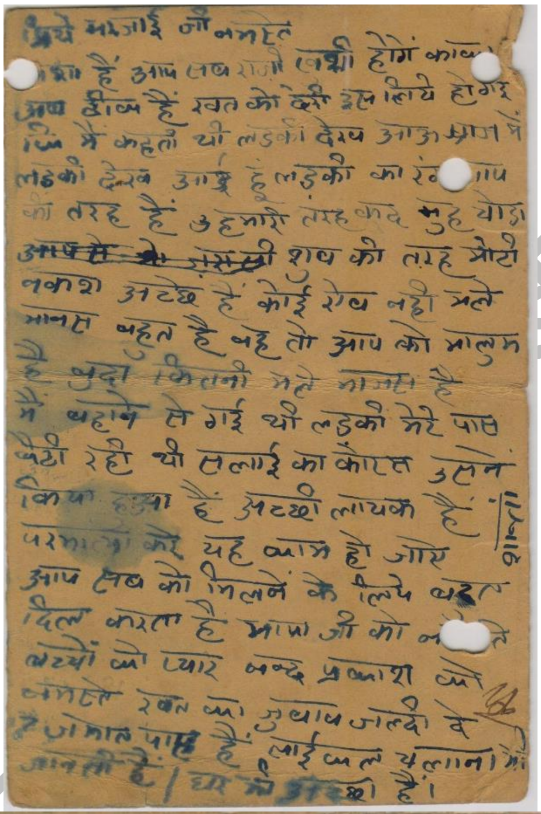

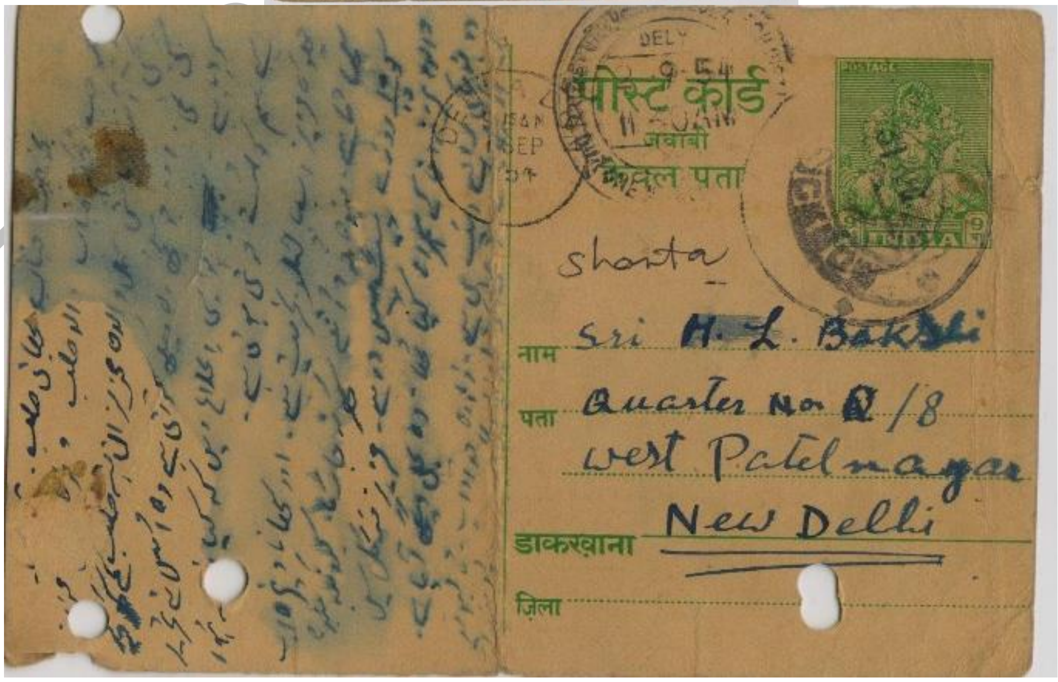

फ़ौरन ही लड़की पसंद कर ली गयी और कुछ ही दिनों के बाद शादी की तारीख़ भी तय कर दी गयी। शादी एक महीने से भी कम वक्त में होने वाली थी, क्योंकि फ़ौजी बख़्शी के पास बहुत कम छुट्टियां थीं। अपनी शादी के दौरान लखनऊ में आनंद बख़्शी की मुलाक़ात उनके पुराने दोस्त और पिंडी के पड़ोसी भगवंत मोहन से हुई। बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी उन्होंने अपने पिंडी वाले दोस्त से पूछा, 'इस शादी में तुम क्या कर रहे हो'। दोस्त ने जवाब दिया--"आज मेरी बहन कमला की शादी है, तुम यहां क्या कर रहे हो?'। बख़्शी ने जवाब दिया–'ओह, इसका मतलब ये कि मेरी शादी तुम्हारी बहन के साथ हो रही है'।

भगवंत मामा ने आगे चलकर मुझे बताया कि जब तुम्हारे डैडी छोटे थे तो वो अपने घर के बाहर चबूतरे पर बैठकर हम सब दोस्तों के मनोरंजन के लिए फ़िल्मी गानों की पैरोडियां गाते थे। इसके अलावा अपने ही लिखे और ट्यून किए गाने भी। रास्ते में आते-जाते लोग भी रूककर उनके गाने सुनते। मेरे मम्मी-पापा को इस बात से झटका लगा था कि उनके जमाई ने फ़ौज छोड़ दी और फ़िल्मों में भाग्य आज़माने चले गये हैं। पर मुझे इस पर ज़रा भी हैरत नहीं हुई थी।

राकेश बक्शी

बख़्शी साहब के ख़रीदे पहले घर में

श्रीनगर

लंदन

भीलर महाबलेश्वर वाले हमारे घर में।

उनकी आखिरी तस्वीर

***

“दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे”

आनंद प्रकाश बख़्शी और कमला मोहन की शादी लखनऊ में 2 अक्टूबर 1954 को हुई। ठीक आठ साल पहले इसी दिन आनंद प्रकाश और उनका परिवार पाकिस्तान से ‘रिफ़्यूजी’ के तौर पर भारत आया था।

बख़्शी परिवार शादी के बाद दुल्हन कमला मोहन बख़्शी के साथ:

शादी के बाद शुरूआती कुछ सालों तक आनंद बख़्शी की पत्नी कमला की तबीयत ठीक नहीं रहती थी। ऐसे में फ़ौजी बख़्शी को छुट्टियां लेकर बार-बार अपने पिता के घर दिल्ली आना पड़ता था, ताकि अपनी पत्नी का ख़्याल रख सकें। चूंकि वो जंग के दिन नहीं थे इसलिए छुट्टियां मिल जाती थीं। दिन में वो फ़ौज की अपनी ड्यूटी निभाते या अगर घर में होते तो अपने पिता और अपनी पत्नी का ख़्याल रखते और रात को वो अपने दोस्तों को अपनी लिखी कविताएं गाकर सुनाते और उनका मनोरंजन करते।

कई साल बाद सन 1967 में गीतकार आनंद बख़्शी को छठी महार रेजीमेन्ट के सरहद पर तैनात मेजर गुरमीत सिंह सेखों का एक इनलैंड लेटर मिला, जो ई .एम .ई .में उनके साथ रहे थे। मेजर गुरमीत ने लिखा था कि जब उन्होंने बख़्शी जी का रेडियो पर इंटरव्यू सुना और 'स्टार एंड स्टाइल' मैग्ज़ीन में उनकी तस्वीर देखी, तो सोचा कि चलो ख़त लिखा जाए।

उन्होंने लिखा–'मुझे याद है कि आप एक फ़ौजी के रूप में हमारे साथ कैंप में रहते थे और हम दोनों को गाने का शौक़ था। हम एक-दूसरे को अपने गाने सुनवाते थे। आप गाना गाते वक़्त अपना सिर बहुत हिलाते थे और हमेशा उत्साह में आकर कहते थे, 'गुरूमीत पाजी, आज की रात मैं आपको अपनी एक नयी कविता सुनाता हूं'। आपको लिखना बहुत पसंद था। हमने नाटक में भी एक साथ काम किया था और आप कहते थे कि जब तक मेरा चेहरा एक वयस्क आदमी का नहीं लगता, नाटक में मुझे महिला किरदार निभाने चाहिए। एक बात कहूं, जब आप चले गये उसके बाद मैंने नाटक में तब तक काम नहीं किया जब तक कि मेरी दाढ़ी-मूंछें नहीं आ गयीं और मर्द नहीं नज़र आने लगा। ई.एम.ई .के दिनों में आप मेरी डायरी में भी गीत लिखा करते थे। मेरे पास आपका पता नहीं है, इसलिए मैंने ये ख़त फ़िल्मफ़ेयर मैग्ज़ीन के पते पर लिखा है, उम्मीद है कि ये आप तक पहुंच जायेगा'।

ई. एम. ई. के दिनों में ही आनंद बख़्शी ने फ़ौज के वार्षिक उत्सव यानी बड़े दिन और दूसरे मौक़ों के लिए नाटक तैयार करने शुरू कर दिये थे। वो अपने फ़ौजी दोस्त कश्मीरी लाल दत्ता से कहते— 'चल बंबई चलते हैं, सुना है कि बंबई में मेहनत करने से सब का कुछ ना कुछ अच्छा हो जाता है' । ये बात मुझे कश्मीरी लाल जी ने अप्रैल 2021 में बतायी थी। अब वो अपने बेटे राकेश के साथ जम्मू में रहते हैं।

बख़्शी जी की बिस्मिल सईदी के साथ कविताओं की ट्रेनिंग बढ़िया चल रही थी इसलिए बख़्शी ने सोचा कि दोबारा बंबई जाकर अपना भाग्य आज़माने की तैयारी की जाए। हालांकि उनका मानना था कि किस्मत अभी भी उनका साथ नहीं दे रही है। वो एक बार नाकाम हो चुके थे, इस बार नाकाम नहीं होना चाहते थे। इसलिए वो सिर्फ ख़ुद पर भरोसे के सहारे दूसरी बार फ़ौज छोड़कर नहीं जाना चाहते थे। अब वो शादीशुदा थे और उनकी पत्नी कुछ ही महीनों में अपने पहले बच्चे को जन्म देने वाली थीं। उनका किस्मत और ऊपर वाले पर अटूट भरोसा था। ये कहा जा सकता है कि वो तदबीर और तकदीर दोनों को मानते थे। बख़्शी ऊपर वाले की तरफ़ से मिलने वाले इशारे का बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे ताकि दूसरी बार बंबई जा सकें।

आनंद और कमला बख़्शी की पहली संतान थीं सुमन) पप्पी(, जो 14 मई 1956 को पैदा हुईं। बख़्शी को याद आया, एक बार उनकी बी-जी ने कहा था–'बेटियां पियो दे वास्ते अच्छा

नसीब लांदी हैं’। सुमन की पैदाइश ही वो संकेत या वो करिश्मा था जिसके लिए वो लगातार प्रार्थना कर रहे थे।

राकेश बक्शी

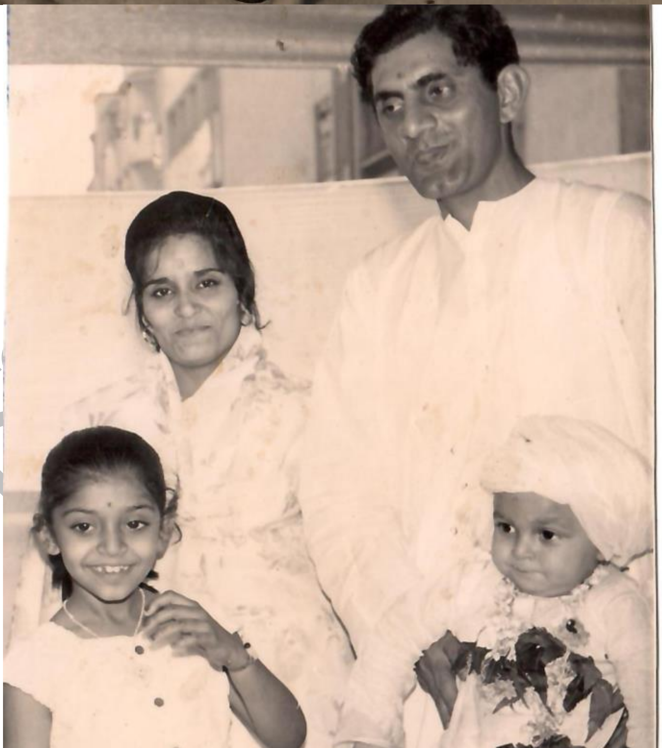

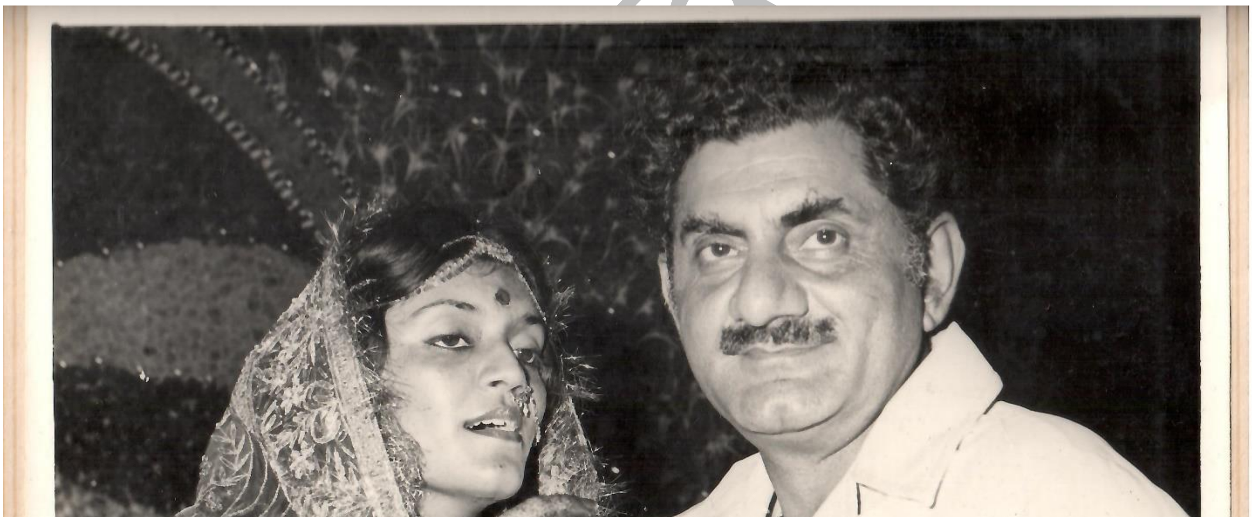

1970के ज़माने में शादी के बाद अपने पति विनय दत्त के साथ

डैड अकसर मुझसे कहते थे, 'तुम्हारा सपना एक मौक़ा है। अगर मौक़े का फ़ायदा उठाते हो तो इसमें जोखिम है। अगर आप मौक़े का फ़ायदा नहीं उठाते, तो ये ख़तरनाक हो सकता है। लेकिन फ़ौज ने हमें यही सिखाया है कि जब तक पुल के सामने नहीं पहुंच जाते, उसे पार नहीं कर सकते। इसलिए उन पुलों पर नज़र रखो, जिन्हें आप एक दिन पार करना चाहते हो। और ऐसा कोई पुल नहीं है जिसे पार नहीं किया जा सकता हो'।

बेटी का जन्म उनके लिए एक पुल बन गया, जिसे उन्हें पार करना था। पुल के एक तरफ़ थी उनकी फ़ौजी ज़िंदगी और दूसरी तरफ़ था गीतकार बनने का सपना -जो वो जाने कब से देखते आ रहे थे। जब वो छोटे थे, तभी से चाहते थे कि उनके गाने रेडियो पर बजाए जाएं। "हिम्मत का मतलब है मुश्किल इलाक़े की तरफ़ अपना क़दम आगे बढ़ाना। जबकि आपके पास कोई उपाय तक ना हो। आपको बस यक़ीन होना चाहिए कि रास्ते में कहीं मदद मिल जायेगी"। इसलिए दूसरी बार बख़्शी ने फ़ौज से इस्तीफ़ा दे दिया। उन्होंने लिखा कि उनकी

इल्तिजा है कि उन्हें फ़ौज से छुटकारा दे दिया जाए। 'बंबई वापस आ रहा हूं मैं'। इस बार उनकी बचत भी कम थी, परिवार, अपनी पत्नी और अपनी ससुराल की इजाज़त तक नहीं थी। उन्होंने आखिरी बार अपनी यूनीफ़ार्म छोड़ दी।

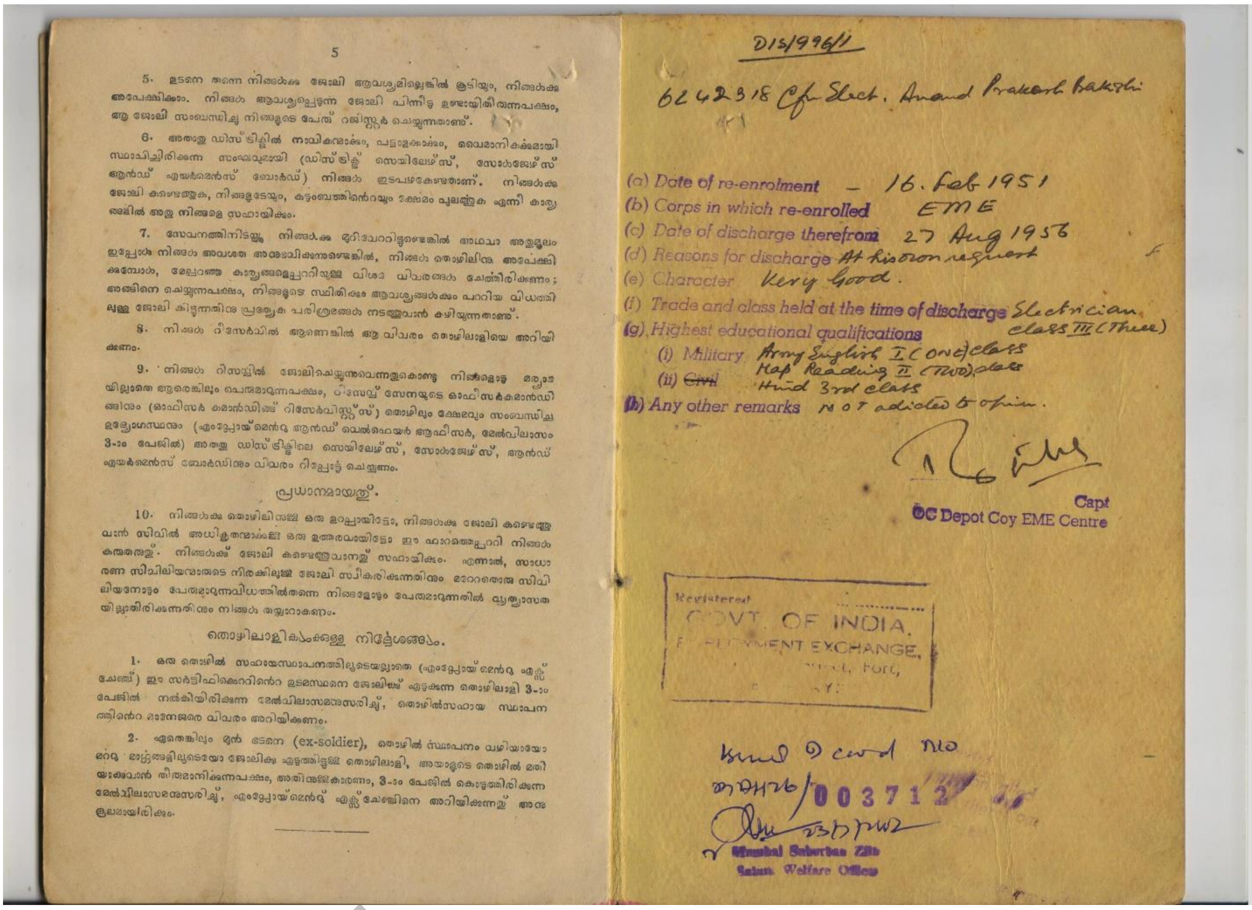

5

DIS/996/1

6642318 Cfn Elect. Anand Prakash Bakshi

(a) Date of re-enrolment – 16. Feb 1951
(b) Corps in which re-enrolled EME
(c) Date of discharge therefrom 27 Aug 1956
(d) Reasons for discharge At his own request
(e) Character Very Good.
(f) Trade and class held at the time of discharge Electrician class III (Three)
(g) Highest educational qualifications
(i) Military Army English I (One) class, Map Reading II (Two) class
(ii) ~~Civil~~ Hind 3rd class
(h) Any other remarks NOT adicted to opium.

Capt
OC Depot Coy EME Centre

Registered
GOVT. OF INDIA.
EMPLOYMENT EXCHANGE,

003712

Mumbai Suburban Zilla
Sainik Welfare Office

एक बार मैंने डैडी से पूछा था कि चारों बच्चों में कौन आपके सबसे क़रीब है? उन्होंने जवाब दिया, "पप्पी) सुमन(। तुम चारों में एक वही है, जिसने मेरे सबसे ग़रीबी वाले दिन देखे हैं। मेरे गुस्से और निराशा भरे दिन देखे हैं। कामयाबी से पहले का संघर्ष देखा है। बाक़ी के तुम तीन बच्चे मेरे बेहतर दिनों में आए। मेरी शुरूआती दिक्कतों को उस इकलौती लड़की ने सहा।

इससे पहले कि हम उनकी ज़िंदगी के अगले अध्याय की तरफ़ बढ़ें, फ़िल्मों में उनके जमने की बात करें, मैं आपको बताना चाहता हूं कि फ़ौज में नौकरी ने उन्हें क्या दिया।

'फ़ौज और यहां तक कि भारतीय रेल जिससे मैंने अपने फ़ौजी दिनों में देश भर का सफ़र किया, दोनों ने मुझे समय की क़ीमत सिखलाई और समर्पण सिखलाया। मैंने इन दोनों आदर्शों को आज भी ज़िंदगी में कायम रखा है इसलिए वक़्त पर अपने निर्माता और

निर्देशकों को गाने वक़्त पर लिखकर देता हूं। सीनियरों की इज़्ज़त करता हूं। हुक्म की तामील करता हूं। मैं अपने निर्माता की हिदायत पर लिखता हूं क्योंकि वही मुझे इस काम के पैसे दे रहा है, जैसे फौज में सीनियर अफ़सर आपको हिदायत देते हैं। फ़ौज और रेलवे ने मुझे वक़्त की पाबंदी सिखलाई है। मुझे नहीं लगता कि किसी भी गाने की रिकॉर्डिंग में मेरी वजह से कभी देर हुई हो या वो रद्द हुई हो। मेरे निर्माता और निर्देशक मेरी इज़्ज़त इसलिए नहीं करते कि हमारी फ़िल्में बॉक्स-ऑफिस पर सबसे ज़्यादा कामयाब हुई हैं बल्कि अनुशासन की वजह से वो मेरी सबसे ज़्यादा इज़्ज़त करते हैं। फ़ौज ने मुझे धर्मनिरपेक्षता सिखलायी। मैं वहां सभी धर्मों के फौजियों के साथ मज़े से रहता था। बिना इस बात की परवाह किए कि सन 1947 में रातों-रात राजनीति और नफ़रत ने मुझे 'रिफ़्यूजी' बना दिया था। फ़ौज की तरह हम फ़िल्मों वाले लोग भी एक साथ हंसते-रोते हैं, गाने गाते हैं। हम राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी मिसाल हैं। फ़िल्म-उद्योग में बस एक ही कमी है—कामयाबी का सेहरा सब बांधना चाहते हैं पर नाकामी की ज़िम्मेदारी कोई नहीं लेना चाहता। फ़ौज छोड़ने के बाद भी मैं फ़ौज की मदद करता रहा, फ़िल्म-कलाकारों, गायकों, संगीतकारों वग़ैरह को उनके मनोरंजन के लिए उनके पास भेजता रहा क्योंकि फ़ौजियों को अपनी ज़िंदगी के तनावों और जान के ख़तरों के बीच मनोरंजन और सुकून की ज़रूरत होती है। इन्फ़ैन्ट्री डिवीजन में मेरे कमांडिंग ऑफ़ीसर कहते थे, फ़ौज में कोई उप-विजेता नहीं होता। केवल विजेता होता है। विजेता बनो या क़ैदी। फिर मौत पक्की है। मैंने हमेशा विजेता बनना चाहता। नंबर वन बनना चाहा। ये सब सीखें मैं बतौर गीतकार अपने काम में इस्तेमाल करता हूं। मेरे लिए हर गीत फ़ौज के रोज़ के अभ्यास की तरह होता है।

दूसरी बार फ़ौज छोड़ने का फ़ैसला करने के बाद आनंद बख़्शी ने अपने गुरु बिस्मिल सईदी से आर्शीवाद और निर्देशन लेना चाहा। 12 जुलाई 1956 को बिस्मिल सईदी ने एक बहुत ही हौसला बढ़ाने वाला ख़त अपने अज़ीज़ी दोस्त को लिखा :

अज़ीज़ी व मुहा-हबीबी आनंद प्रकाश साहब बख़्शी
क़ुदरत ने आपको शायराना सलाहियतें) ability) अता की हैं। जहां तक आपकी फ़िक्र का ताल्लुक़ है, वो बंद के बयान पर मुनहसिर) निर्भर) है। मुतालबा) दावा) भी निहायत ही ज़रूरत चीज़ है। अल्फ़ाज़ का इंतख़ाब) चुनाव)और उन की नशिस्त) बनावट) में शेर की असर-अंगेज़ी का राज़ मुज़्मर) छिपा) है। ख़ुदा आपको उर्दू शाइरी के क़ाबिल-ए-फ़ख़्र शायर होने का मक़ाम अता फ़रमाए।

दुआगो
बिस्मिल सईदी
दिल्ली।

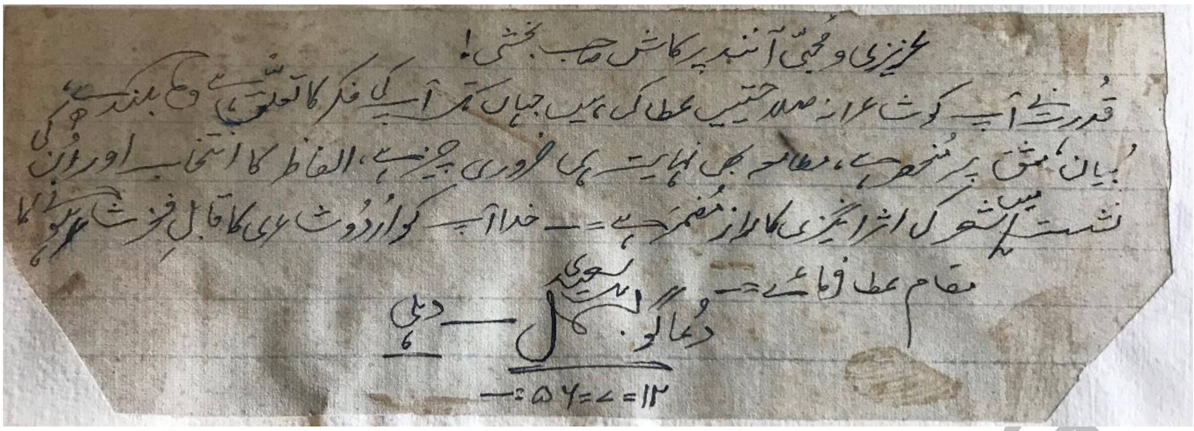

ज़िंदगी के इस मुकाम पर जब बख़्शी ने फ़ौज छोड़ने का फ़ैसला तो कर लिया था पर अभी तक इस्तीफ़ा नहीं दिया था, जिस चीज़ से बख़्शी का सबसे ज़्यादा हौसला बढ़ाया वो था बिस्मिल सईदी की तारीफ़:

'अज़ीज़ी व मुहा-हबीबी बख़्शी,
तुमको फ़ारसी नहीं आती, लेकिन तुम्हारी तबीयत में फ़ारसी है। तुम्हारे मिज़ाज में फ़ारसी है। और ये तुम्हारे बहुत काम आयेगी'।

फ़िल्म वालों से काम मांगने वाले दौर से बहुत पहले बख़्शी को मिली ये ज़िंदगी की सबसे बड़ी तारीफ़ थी। एक जाने-माने शायर ने उनकी तारीफ़ की थी। पांच दशकों के उनके करियर और उनके दुनिया से विदा होने के बीस बरस बाद आज भी ये उनकी सबसे बड़ी तारीफ़ ही है।

***

हथियारों को आखिरी सलामी

27 अगस्त 1956 को आनंद प्रकाश बख़्शी ने अपनी मरज़ी से फ़ौज छोड़ दी। उस वक़्त वो सिग्नल-कोर में तैनात थे। ये बंबई में गीतकार बनने की उनकी दूसरी पक्के इरादे वाली कोशिश थी। कुल मिलाकर उन्होंने भारतीय सेना में आठ साल काम किया। इससे पहले उन्होंने रॉयल इंडियन नेवी में दो साल काम किया था।

राकेश आनंद बख्शी

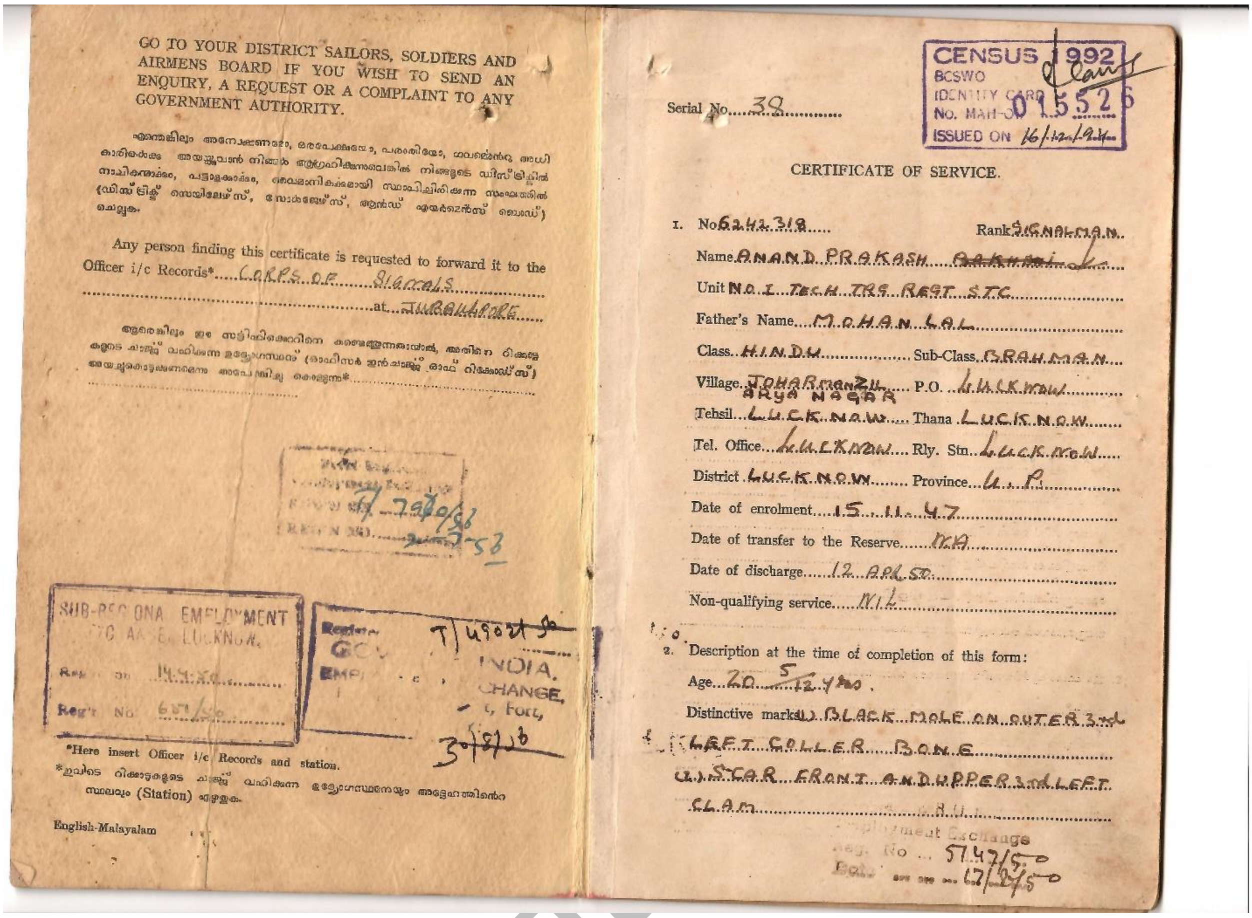

GO TO YOUR DISTRICT SAILORS, SOLDIERS AND AIRMENS BOARD IF YOU WISH TO SEND AN ENQUIRY, A REQUEST OR A COMPLAINT TO ANY GOVERNMENT AUTHORITY.

Any person finding this certificate is requested to forward it to the Officer i/c Records*.....CORPS OF SIGNALS..... at...JUBBULPORE.....

SUB-REGIONAL EMPLOYMENT EXCHANGE, LUCKNOW.

*Here insert Officer i/c Records and station.

(Station)

English-Malayalam

CENSUS 1992
BCSWO
IDENTITY CARD
No. MAH-O 015526
ISSUED ON 16/12/94

Serial No....39.......

CERTIFICATE OF SERVICE.

1. No.6242319..... Rank SIGNALMAN..

Name ANAND PRAKASH ......

Unit NO. 1 TECH TRG REGT. S.T.C.

Father's Name....MOHAN LAL

Class..HINDU........ Sub-Class..BRAHMAN....

Village..JOHAR MANZIL ARYA NAGAR.... P.O. ..LUCKNOW.........

Tehsil...LUCKNOW.... Thana .LUCKNOW.......

Tel. Office...LUCKNOW.... Rly. Stn...LUCKNOW.....

District .LUCKNOW....... Province...U. P.......

Date of enrolment....15. 11. 47.......

Date of transfer to the Reserve.......N.A.......

Date of discharge......12 APL 50.......

Non-qualifying service......NIL.......

2. Description at the time of completion of this form:

Age...20 5/12 yrs .

Distinctive marks(1) BLACK MOLE ON OUTER 3rd LEFT COLLER BONE

(2) SCAR FRONT AND UPPER 3rd LEFT CLAM.

Employment Exchange
Reg. No ... 5747/50
Date 17/2/50

सितंबर 1956 में वो दूसरी बार बंबई आ गये। एक भूतपूर्व फ़ौजी जिसके पास कैप्टन वर्मा की सिफ़ारिश की चिट्ठी थी, क़रीब साठ कविताओं का ख़ज़ाना था और साथ में था ढेर सारा हौसला और हिम्मत....जो उनके साथियों, सीनियरों और सबसे ज़्यादा उनके गुरु बिस्मिल सईदी ने दिया था। आगे का रास्ता साफ़ नहीं था, पर बख़्शी का इरादा पक्का था।

बख़्शी की पत्नी कमला शादी के बाद क़रीब चार साल तक अपने ससुराल में दिल्ली में ही रहती रहीं। सन 1958 में वो अपनी पहली बेटी के साथ अपने मायके गयीं। बख़्शी को लगा कि उनका वहीं रहना सही रहेगा, क्योंकि उनका अपना परिवार दूसरी बार फ़ौज छोड़ने के उनके फ़ैसले के खिलाफ़ था। अगर वो ससुराल में ही रहतीं तो उन्हें ससुराल में काफ़ी ताने सुनने पड़ते। हालांकि बख़्शी के ससुर अमर सिंह मोहन भी फ़ौज छोड़ने के उनके फ़ैसले के खिलाफ़ थे। पर बख़्शी को लगा कि उनकी पत्नी की देखभाल मायके में ही ठीक से हो पायेगी।

अमर सिंह मोहन 1958 में रिटायर हो गये अब वो पेंशन पर थे। उन्हें बड़ा अफ़सोस था कि उनके दामाद ने ऐसा लापरवाही से भरा फ़ैसला लिया है और अपनी बीवी को नन्हीं से बेटी

के साथ हालात पर छोड़ दिया है। जबकि ये भी पक्का नहीं है कि फ़िल्मों में उनका कुछ हो पायेगा या नहीं। वो ख़ुद एक मोहयाल थे और इस बात को स्वीकार नहीं पा रहे थे कि एक मोहयाल फ़ौजी नौकरी छोड़कर फ़िल्मों में अपना भाग्य आज़माने जा सकता है। हालांकि उन्होंने दो बार बख़्शी को ज़रूरत के वक़्त कुछ पैसे भी भेजे। उन्होंने जितनी भी चिट्ठियां लिखीं उन सबमें वो बख़्शी को भला-बुरा ही कहते रहे। एक वक़्त ऐसा भी आया जब उन्होंने बख़्शी को एक भी पैसा भेजने से इंकार कर दिया।

आगे चलकर डैडी ने ये बात स्वीकार की कि उन्होंने अपने सपने को पूरा करने के लिए अपने परिवार को दांव पर लगा दिया था। पर ये भी एक बड़ी वजह बना, कि बंबई में उन्हें अपनी पूरी ताक़त लगानी है और कामयाब गीतकार बनना है। उनके पास कोई और रास्ता नहीं था।

'ज़माने में अजी ऐसे कई नादान होते हैं, वहां ले जाते हैं कश्ती जहां तूफ़ान होते हैं' (फ़िल्म - जीवन मृत्य)

कई दशकों बाद उन्होंने भारतीय फ़ौज के लिए तीन कविताएं लिखीं।

सिगनल कोर गीत -आनंद बख़्शी

पूरब-पश्चिम उत्तर दक्षिण गूंज है चारों ओर।
देश की सेवक, देश की रक्षक मेरी सिगनल कोर।।
एक जमाने में कबूतर करते थे यह काम।
दे जाते थे, ले जाते थे वो सारे पैगाम।।
उसके बाद ज़माना बदला, ख़त का पड़ा रिवाज।
यह उस वक्त की बात है जब था अंग्रेजी राज ।।1।।

तार बनी फिर टेलीफोन हुई तरक्की और।
शुरु हुआ उन्नीस सौ ग्यारह में सिगनल का दौर।।
उन्नीस सौ सैंतालीस में फिर देश हुआ आज़ाद।
इस के पीछे मुड़कर फिर ना देखा उस के बाद।।2।।

हर युद्ध में हम भागीदार जन्म उन्नीस सौ ग्यारह।
जिम्मी है चिन्ह हमारा "तीव्र-चौकस" नारा।।
नगाड़ा, शंख-पताका, ही-लियो और अनेकों वादन।

समय समय पर हमने सीखे नये संचार के साधन।।3।।

बाधाओं से कभी न विचलित सीमाओं पर डेरा।
एवरेस्ट और अंटार्कटिका का बांधा हमने सेहरा।।
घुड़सवार डेयर-डेविल्ज, दूतों ने पाई ख्याति।।
भूमंडल पर विचरे हम पवनपूत की भांति ।।4।।

युग बदला युद्धनीति बदली बदले यंत्र हमारे।
तार-बेतार अनेकों माध्यम कंप्यूटर के द्वारे।।
पथप्रदर्शक नई सदी के तकनीकी राज हमारा।
इलेक्ट्रॉनिक युद्ध में माहिर "तीव्र-चौकस" नारा।।5।।

सन 2001 में उन्हें सिग्नल कोर ने आमंत्रित किया था ताकि वो 'कोर गीत' लिखें और फौजियों का हौसला बढ़े। बख़्शी साहब को बताया गया कि इस गीत का प्रदर्शन सिग्नल कोर, भारतीय सेना के मौजूदा म्यूजियम में 'बख़्शी कॉर्नर' पर इसे प्रदर्शित किया जाएगा। बख़्शी ने ये कविता लिखी। जिसकी तस्दीक हमें लेटर नंबर 1059/01/ 26 तारीख़ 15 जनवरी 2001 के ज़रिए मिली। ये पत्र है कर्नल के .भट्टाचार्य कमांडिंग ऑफ़ीसर सिग्नल कोर, 1टेक्निकल ट्रेनिंग रेजीमेन्ट और 1 सिग्नल ट्रेनिंग सेन्टर जबलपुर का।

कोर गीत -आनंद बख़्शी

मैं इक हिंदुस्तानी बस, यह है मेरी पहचान- आनंद बख्शी

मुखड़ा

मैं इक हिंदुस्तानी बस, यह है मेरी पहचान
जान है सबसे प्यारी, जान से प्यारा हिंदुस्तान

1. *मेरे मन में बहती गंगा*
   मेरे सर पे उड़े तिरंगा.
   इस पावन धरती को चूमे झुक कर आसमान
   मैं इक हिंदुस्तानी बस, यह है मेरी पहचान
   जान है सबसे प्यारी, जान से प्यारा हिंदुस्तान।।

राकेश आनंद बख्शी

2. हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई
हम सब इक दूजे के भाई
अलग-अलग है नाम हमारे एक मगर है जान।

3. ये मत समझो मैं डरता हूँ
जंग से मैं नफरत करता हूँ
आ ही जाए आंधी तो मैं बन जाऊं तूफ़ान।

4. प्रेम का पंछी अमन का राही
मैं बन जाऊं एक सिपाही
मेरा नाम पुकारे, जब रणभूमि का मैदान।

5. यह ना सोचा यह ना देखा
मेरा देश मुझे क्या देगा ?
अपना देश अगर मांगे, तो दे दूँ हंस के जान

6. इस धरती पर जनम लिया है
इस धरती को वचन दिया है
इस धरती पर हंस के मैं हो जाऊँगा कुर्बान

7. मेरे जीवन का यह सपना
सरे जग में नाम हो अपना
सारी दुनिया में ऊँची हो मेरे देश की शान

8. जिस्म से जान अगर निकले तो मेरा
नाम शहीदों में हो
ऐसे जीने ऐसे मरने में है कितनी शान.

9. यह धरती, खुशबू ही खुशबू
ये अम्बर, जादू ही जादू
इन गलियों में खेल के मेरा बचपन हुआ जवान

10. ऋषियों सूफियों की यह धरती, सारी दुनिया याद है करती

राकेश आनंद बक्शी

अपने पुरखों के इतिहास पे, मुझको है अभिमान
मैं इक हिंदुस्तानी बस, यह है मेरी पहचान
जान है सबसे प्यारी, जान से प्यारा हिंदुस्तान।।

आनंद बख़्शी साल 2001

हम पुराने फौजियों को आपने
याद रखा, प्यार का तोहफ़ा दिया।
सरहदों पे फिर खड़े हो जायेंगे
वक़्त ने अगर हमको मौक़ा दिया।
शुक्रिया ऐ मेहरबानो शुक्रिया
शुक्रिया ऐ मेहरबानो शुक्रिया

-आनंद बख़्शी ने अस्सी के दशक में ये कविता लिखी थी।

राकेश आनंद बक्शी

अध्याय 6

1956-1959

‘ ज़िंदगी हर क़दम इक नयी जंग है ’

सन 1956 में आनंद प्रकाश बख़्शी ने बंबई में अपनी किस्मत आज़माने की दूसरी कोशिश की, उन्हें पता था कि उनके सामने किस तरह की चुनौतियां मौजूद हैं। ‘या तो मैं एक कलाकार बन जाऊंगा या फिर मैं टैक्सी चलाऊंगा, पर मैं इज़्ज़तदार तरीक़े से रोज़ी-रोटी कमाए बिना यहां से वापस नहीं लौटूंगा।’ उनके पास पहले से ही ड्राइविंग लाइसेंस था क्योंकि फ़ौज में अपनी ट्रेनिंग के दौरान वो ट्रक चलाया करते थे। उनका ड्राइविंग लाइसेंस फौजी और पेशेवर गाड़ियों के लिए था। उन्होंने सोचा था कि अगर कुछ ना हुआ तो मुंबई में टैक्सी चलाकर रोज़ी-रोटी चला लूंगा और साथ में फ़िल्मों में काम पाने की कोशिश भी करता रहूंगा। ‘ना तो मेरी पढ़ाई इतनी हुई है और ना ही परिवार पैसे भेजेगा जिनके सहारे यहां टिक सकूं, इसलिए मुझे दूसरों से ज़्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है’।

बख़्शी सबसे पहले दादर रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम में रूके। कुछ ही दिन बाद उन्होंने दादर गेस्ट हाउस, तुलसी पाइप रोड में एक कमरा किराए पर ले लिया। इसके बाद वो खार पश्चिम के ‘होटेल एवरग्रीन’ में चले गए, जिसका नाम आगे चलकर ‘होटल गुरु’ हो गया था। वो सारा दिन बस गाने ही लिखते रहते थे। उनका वो कमरा कुछ नामी संगीतकारों के घर के आसपास था। सचिन देव बर्मन खार में रहते थे, रोशन सांताक्रूज़ में रहते थे, पंडित हरिप्रसाद चौरसिया और उनकी पत्नी होटल एवरग्रीन में ही रहते थे और बतौर बांसुरी वादक रोज़ काम की तलाश में निकलते थे। बख़्शी बातें कम करते थे और लिखते ज़्यादा थे। कभी-कभी वो अपनी कविताएं और गाने गाकर अपने आसपास के लोगों का दिल बहलाते थे। वो पास की ही मिठाई की एक दुकान पर खाना खाते और फिर पान भी खाते। जो बंदा उनके कमरे की सफ़ाई करता था वो हमेशा कहता कि बख़्शी बहुत सारे पन्नों पर उर्दू में जाने क्या क्या लिखते हैं और फिर फेंक देते हैं और वो पान बहुत खाते हैं।

बंबई में वो अकेले जी रहे थे, रात को खाना खाने के बाद वो लिखना शुरू कर देते थे। वो खार स्टेशन के पास मिठाई की एक दुकान के बाहर स्ट्रीट-लैंप के नीचे बैठकर लिखते थे।

राकेश आनंद बक्शी

मिठाई की दुकान के मालिक को शायरी पसंद थी, इसलिए जल्दी ही बख़्शी साहब से उनकी दोस्ती हो गयी थी। कुछ महीनों बाद उसने बख़्शी साहब से कहा 'बख़्शी देखो, मुझे तुम्हारी शायरी भी पसंद और तुम भी। इसलिए मैं एक ऐसी बात कहना चाहता हूं जो मैंने आज तक किसी से नहीं कही। हम अपनी रबड़ी को गाढ़ा बनाने के लिए ब्लोटिंग-पेपर मिलाते हैं। मुझे पता है तुम्हें रबड़ी बहुत पसंद है। पर मैं तुम्हें धोखा नहीं देना चाहता। इसलिए मेरी बात मानो और यहां रबड़ी मत खाया करो'।

'1950 के ज़माने में जब मैं पहली बार बंबई आया था तो मेरे लिए फ़िल्मों में अपनी जगह बनाना बड़ा ही मुश्किल था। गीतकार, संगीतकार और फ़िल्म-लेखकों की एक टीम थी। सबके अपने-अपने पसंदीदा लोग थे, और कोई नये लोगों के साथ प्रयोग नहीं करना चाहता था। फ़िल्में बनाना महंगा कारोबार है और मैं समझता हूं कि फ़िल्म निर्माता भी बहुत अंधविश्वासी होते हैं। अकसर वो वो हिट फ़िल्मों के पीछे एक अंधी दौड़ लगाते हैं और उन लोगों को नहीं आज़माते जिनकी फ़िल्में फ्लॉप हो गयी हैं'। पचास और साठ के दशक में संगीतकार और गीतकार का एक बड़ा गहरा साथ होता था और उसमें किसी नये गीतकार का घुस पाना आसान नहीं था। उन दिनों में बख़्शी ने ये ठान लिया था कि वो रोज़ाना तीन-चार लोगों से मिलेंगे। वो रोज़ाना फ़िल्म-स्टूडियो में भी जाते, जैसे महालक्ष्मी में फ़ेमस स्टूडियो, दादर में कारदार स्टूडियो और गोरेगांव में फ़िल्मिस्तान वग़ैरह। कई ऐसे संगीतकार थे जो बतौर गीतकार उन पर ध्यान ही नहीं देते थे। और जब उन्हें पता चलता कि वो गायक भी बनना चाहते हैं तो ये बात उनके और भी खिलाफ़ जाती।

पंडित हरिप्रसाद चौरसिया जी की पत्नी अनुराधा राय ने मुझे बताया था—'पचास के दशक के आख़िर और साठ की शुरूआत में बख़्शी जी उसी गेस्ट हाउस यानी एवरग्रीन होटल खार में थे, जहां हम रहते थे। उन्होंने मुझे बताया था कि उनकी पत्नी लखनऊ में रहती हैं। वो इसलिए बंबई में अकेले रहते थे क्योंकि पत्नी को अपने पास रखने की उनकी तब हैसियत नहीं थी। हमारे कमरे एक ही मंज़िल पर थे। इसलिए जब मैं उनके कमरे से होकर गुज़रती तो अकसर ही कमरे की सफ़ाई करने वाला शिकायत करता मिलता कि बख़्शी जी के कमरे में बहुत सारे मुड़े-तुड़े काग़ज़ मिलते हैं। मैं यही सोचती थी कि बख़्शी जी ऐसा क्या लिखते हैं, जो सफ़ाई करने वाले को रोज़ाना इतने काग़ज़ मिलते हैं कि वो परेशान हो जाता है। बीस साल बाद हम बांद्रा में एक ही बिल्डिंग में रहने लगे थे। बख़्शी साहब से एक मंज़िल

राकेश आनंद बख़्शी

ऊपर हमारा घर था। हम रोज़ देखते थे कि बेहतरीन चमचमाती कारों में बड़े जाने-माने संगीतकार, प्रोड्यूसर, निर्देशक और अभिनेता उनसे मिलने और म्यूज़िक-सिटिंग के लिए घर आया करते थे। हमें आवाज़ें सुनायी पड़ती थीं, क्योंकि रात को नौ दस बजे तक उनके घर म्यूज़िक-सिटिंग चला करती थीं। सोचिए कि उस दौर में होटल के कमरे में सफ़ाई करने वाले उस व्यक्ति को अंदाज़ा भी नहीं था ये आदमी एक दिन इतना बड़ा गीतकार बन जाएगा।’

बंबई में कुछ महीने रहने के बाद जब उन्हें ट्रक या कार ड्राइवर के रूप में काम नहीं मिला तो उन्होंने ये बताकर एक मोटर गैरेज में काम हासिल कर लिया कि वो मोटर-मेकैनिक हैं। पहले ही दिन गैरेज के मालिक को समझ में आ गया कि बख़्शी को काम नहीं आता है और उसने उन्हें निकाल दिया।

ये छोटे-छोटे झटके तो लग ही रहे थे। जल्दी ही बख़्शी को अपनी पहली फ़िल्म मिल गयी, जिसे वो अपनी सबसे बड़ी फ़िल्म मानते थे। यानी बाद के दिनों में आयीं ‘शोले’ और ‘दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे’ से भी बड़ी।

***

मेरी सबसे बड़ी फिल्म’

बख़्शी काम पाने को बेचैन थे, उन्हें डर था कि कहीं उनके जमा-पैसे ख़त्म ना हो जायें। वो बंबई में फ़िल्म-स्टूडियो और रिकॉर्डिंग स्टूडियो बार-बार जाते थे। घंटों इंतज़ार करते कि कोई फ़िल्मकार या संगीतकार उनसे मिलने को राज़ी हो जाये या अनायास ही आते-जाते मुलाक़ात हो जाए। चूंकि वो फ़ौज में रह चुके थे इसलिए उन्होंने इस संघर्ष की भी जंग की तरह एक रणनीति बनायी थी। कमरे में वापस लौटने से पहले कम से कम पांच लोगों से रोज़ मुलाक़ात करनी ही है।

राकेश आनंद बक्शी

ऐसी ही मुलाक़ात की कोशिशों में एक बार वो अभिनेता भगवान दादा यानी भगवान आबाजी पालव का रणजीत स्टूडियो में उनके ऑफिस में इंतज़ार कर रहे थे। उस ज़माने में भगवान दादा बहुत बड़े स्टार थे और वो पहली बार एक फ़िल्म निर्देशित कर रहे थे जिसका नाम था–'भला आदमी'। बृज मोहन इसके प्रोड्यूसर थे। बख़्शी ने ऑफिस के चपरासी से दोस्ती कर ली थी और इस तरह उन्हें पता चला कि भगवान दादा काफी टेन्शन में हैं क्योंकि गीतकार गाना लेकर सिटिंग पर नहीं आए हैं और भगवान दादा को गाना हर हालत में

चाहिए है। बख़्शी ने फ़ौरन मौक़े का फ़ायदा उठाया और सीधे भगवान दादा के कमरे में घुस गए।

भगवान दादा हैरान रह गए। उन्होंने पूछा कि क्या चाहिए तुम्हें। बख़्शी जी ने कहा कि वो एक गीतकार हैं और काम की तलाश में हैं। भगवान दादा बोले, ठीक है, देखते हैं कि तुम गाना लिख पाते हो या नहीं। उन्होंने बख़्शी को फ़िल्म की कहानी सुनायी और उन्हें गाने लिखने के लिए पंद्रह दिन का वक़्त दिया।

पंद्रह दिन के अंदर बख़्शी जी ने चार गाने लिख डाले। ये उनके लिए मुश्किल काम नहीं था क्योंकि फ़ौज के दिनों में वो अपनी कुछ पसंदीदा फ़िल्मों के सारे गानों को अपने शब्दों में लिखते थे। भगवान दादा को चारों गाने पसंद आ गये और उन्होंने आनंद बख़्शी को फ़िल्म के दूसरे गीतकार के रूप में साइन कर लिया। वो एक एक्शन फ़िल्म थी और नंद को अपने शुरूआती सालों में ऐसी फ़िल्में देखना काफी पसंद था।

उन्हें उन चार गानों के लिए डेढ़ सौ रूपए मिले। पहला गाना था–'धरती के लाल, ना कर इतना मलाल, धरती तेरे लिए, तू धरती के लिए'। ये गाना 9 नवंबर 1956 को रिकॉर्ड किया गया था। संगीतकार थे निसार बज़्मी–जो कुछ साल बाद पाकिस्तान चले गए थे।

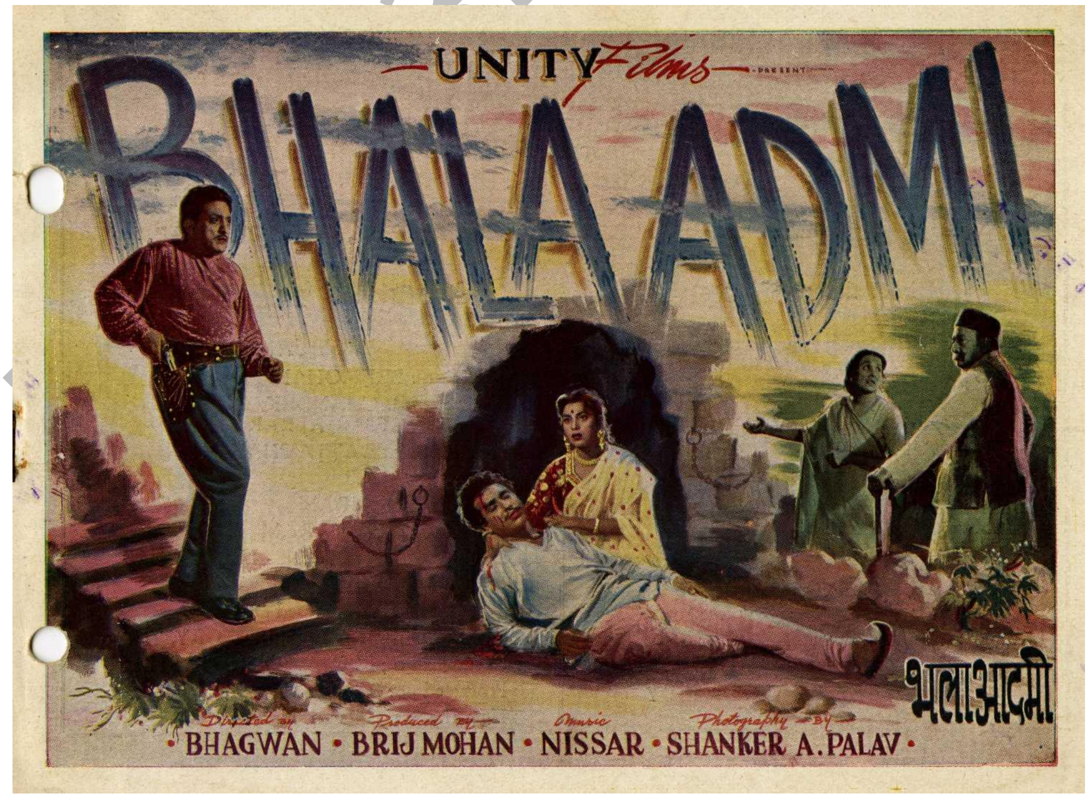

अख़बार में छपा विज्ञापन, जिसे आनंद बख़्शी ने संभाल कर रखा था।

Bhala Aadmi (Bala Admi/Bhala Admi 1958)
(Unity Films/ Brij Mohan) (Director Master Bhagwan) (Cast: Anita Guha, Chandrashekhar)
Four songs lyrics by AB.
Date of first recording 9.11.1956
Lyrics: Dharti Ke Lal Na Kar Itna Malaal, Tu Dharti Ke Liye, Dharti Tere Liye.
Singers Bhooshan (Bhushan) and Party (Sound recordist: Minoo Katrak)
Music Nissar Bazmi.
Music Company: HMV/Saregama.
1959.

इन गानों को चोटी के रिकॉर्डिस्ट मीनू कात्रक ने रिकॉर्ड किया था। ये है आनंद बख़्शी का लिखा एक नोट-

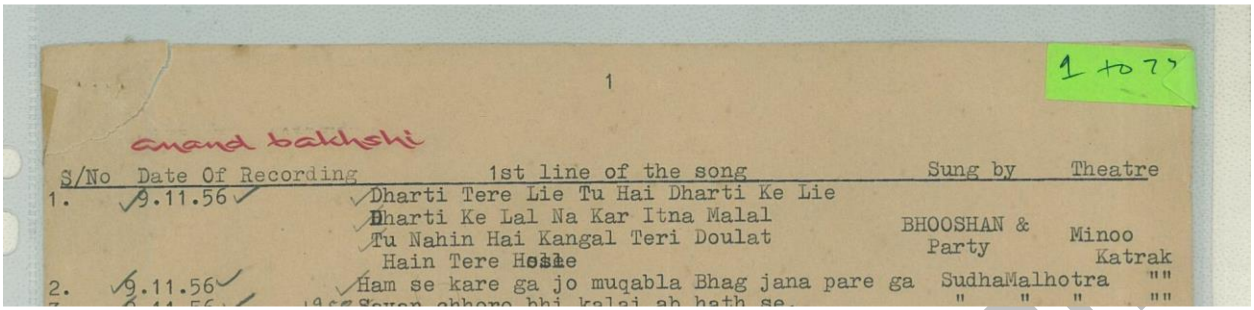

1

anand bakhshi

1 to 7

S/No	Date Of Recording	1st line of the song	Sung by	Theatre
1.	9.11.56	Dharti Tere Lie Tu Hai Dharti Ke Lie Dharti Ke Lal Na Kar Itna Malal Tu Nahin Hai Kangal Teri Doulat Hain Tere Hosle	BHOOSHAN & Party	Minoo Katrak
2.	9.11.56	Ham se kare ga jo muqabla Bhag jana pare ga	SudhaMalhotra	""

मीनू कात्रक, लता मंगेशकर, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल और आनंद बख़्शी।

दूसरी बार बंबई आने दो महीने के अंदर आखिरकार गीतकार के रूप में आनंद बख़्शी की शुरूआत भी हो गयी। 'मैंने सोचा कि मैंने दुनिया जीत ली है। मुझे लगा कि मेरी सारी समस्याएं ख़त्म हो जायेंगी। मुझे अहसास नहीं था कि ये तो बस एक शुरूआत है'। इस फ़िल्म को बनने में दो साल लग गए और बॉक्स-ऑफिस पर ये नाकाम हो गयी। किसी का ध्यान तक नहीं गया। गीतकार आनंद बख़्शी पर भी किसी का ध्यान नहीं गया। आने वाले छह सालों तक उनके पास ज़्यादा काम नहीं था। एक बार उन्होंने बताया था, 'फ़िल्म-इंडस्ट्री में या तो आपके पास ज़रा-भी काम नहीं होता या फिर आपके पास ज़रूरत से ज़्यादा काम होता है'। मैंने दोनों तरह के दौर देखे हैं। ये मेरी ख़ुशनसीबी है कि अपने करियर के शुरूआती आठ सालों में मैंने बेकारी का लंबा दौर देखा है।'

दस साल बाद, सन 1965 में 'जब जब फूल खिले' की कामयाबी के कुछ महीने बाद भगवान दादा एक फ़िल्म-पार्टी में गीतकार आनंद बख़्शी से मिले। बतौर अभिनेता उस वक़्त वो बहुत बुरे दौर से गुज़र रहे थे। उन्होंने बख़्शी को सलाह दी, 'आनंद बख़्शी साहब, ख़ुशी की बात है कि आपका बहुत नाम हो गया है। मगर एक बात याद रखना कि इस दुनिया में आदमी को नाम से ज़्यादा उसका काम ज़िंदा रखता है'। डैडी ने हमें बताया था कि उन्होंने फ़िल्म-इंडस्ट्री में पहली बार काम देने वाले इस शख़्स की सलाह को हमेशा सिर-माथे पर रखा।

'भला आदमी' सन 1958 में रिलीज़ हुई थी। गाने रिकॉर्ड होने के दो साल बाद। बख़्शी को अभी भी फ़िल्मों में काम नहीं मिल रहा था। उन्हें कुछ महीनों में एक या दो गाने ही मिल पा रहे थे। कुछ गानों के लिए उन्हें पैसे तो मिल गए पर फ़िल्म में क्रेडिट नहीं दिया गया।

'जब मैंने परदे पर अपना नाम देखा तो ख़ुशी के मारे मैं रो पड़ा, आज अगर मैं एक कामयाब गीतकार माना जाता हूं तो वो भगवान दादा की वजह से है। एक स्टार अभिनेता और प्रोड्यूसर...जिसने मुझे काम दिया। मेरे सपनों, प्रार्थनाओं और उम्मीदों को एक राह दिखायी। 'भला आदमी' सन 1958 में रिलीज़ हुई। बॉक्स ऑफिस पर नाकाम हो गयी और मेरे करियर में इस फ़िल्म से कोई फ़ायदा नहीं पहुंचा लेकिन फिर भी मेरे लिए वो सबसे बड़ी फ़िल्म है और हमेशा रहेगी, क्योंकि उसने ही तो मुझे एक गीतकार के रूप में इस दुनिया में जन्म दिया'।

आनंद बख़्शी

फ़िल्म के अख़बार में छपे पोस्टर में आनंद बख़्शी ने लाल स्याही से अपना नाम अंडरलाइन कर दिया था। वो कितने ख़ुश थे। इस पोस्टर पर उनके नाम की स्पेलिंग है 'बक्शी', जबकि होनी चाहिए थी 'बख़्शी'। स्पेलिंग की ये ग़लती उनके साथ चिपक गयी। पर उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि उनकी प्राथमिकताएं अलग थीं। उनके अपने शब्दों में–'मुझे तो बस लिखने का एक और मौक़ा चाहिए था'। सन 1950 से 2002 तक उनकी ज़िंदगी का फ़लसफ़ा यही रहा।

सन 1956 में अपने पहले चार गानों की रिकॉर्डिंग के बाद सन 1959 तक उन्हें कोई काम नहीं मिला। वो हमेशा कहते थे कि बंबई में उनकी ज़िंदगी का सबसे मुश्किल दौर यही था। उनका धीरज ख़त्म हो रहा था, उनके पैसे भी ख़त्म हो रहे थे और परिवार उन्हें बहुत बुरा-भला कह रहा था कि उन्होंने फ़ौज की इतनी अच्छी नौकरी छोड़ दी और अब बंबई में धक्के खा रहे हैं। एक बार फिर उन्होंने ख़ुद को प्रेरित करने के लिए एक निजी स्टेटमेन्ट लिखा, एक कविता–जिसका शीर्षक था–'वो तदबीरें होती हैं'। तकरीबन बीस साल बाद सन 1980में ये दिल्ली की रूबी पत्रिका में छपा।

'भला आदमी' के बाद भी काम नहीं मिल रहा था। ऐसे में किसी ने उनसे कहा था कि उन्हें फ़ौज में लौट जाना चाहिए। फ़ौज में उनकी ज़रूरत है, बंबई में नहीं। बख़्शी को ये बात एक पत्थर की तरह लगी थी पर उन्होंने इसे अपने लिए एक चुनौती की तरह लिया और ज़ोरदार कोशिशें शुरू कर दीं ताकि लोगों को दिखा दें कि वो कितने ग़लत थे। बख़्शी पर जो भी पत्थर फेंके गए उन्होंने उनसे अपना पुख़्ता रास्ता तैयार किया ताकि बचपन के अपने सपनों का महल तैयार किया जा सके। 'एक दिन मेरे गाने रेडियो पर बजेंगे'। उन्होंने रेडियो पर अपना पहला गाना सन 1959 में बाज़ार में सुना था। ये गाना था 'ज़मीं के तारे' फ़िल्म का 'चुन्नू पतंग को कहता है काइट, रॉन्ग है या राइट'।

अब उनके पैसे तकरीबन ख़त्म हो गए थे। यहां तक कि उनके ससुर जो लखनऊ से कभी-कभी थोड़े पैसे भेजकर मदद कर दिया करते थे, उन्होंने भी अब पैसे देना बंद कर दिया था और ये कह दिया था कि तुम्हें बंबई में ये बेवक़ूफ़ी बंद कर देनी चाहिए। दिल्ली अपने परिवार के पास वापस लौटकर अपने लिए कोई इज़्ज़तदार काम तलाश करना चाहिए।

राकेश आनंद बख़्शी

भला आदमी

भगवान दादा आनंद बख़्शी की ज़िंदगी में आए पहले भले आदमी थे, जिन्होंने सन 1956 में बख़्शी को पहला ब्रेक दिया था। बख़्शी उनके ऑफिस में गए और उनसे गाने लिखने का मौक़ा देने की बात कही। पहले ब्रेक के दो साल बाद भी 'भला आदमी' रिलीज़ नहीं हुई थी। मरीन लाइंस रेलवे स्टेशन पर बख़्शी की एक और भले आदमी से मुलाक़ात हुई। अकसर वो इस जगह पर बैठकर कविताएं लिखते थे।

बंबई में दोबारा ठुकराए हुए, निराश और मोहभंग का शिकार हो चुके आनंद बख़्शी बहुत परेशान थे। जब वो फ़ौजी थे तो आम ज़िंदगी में कभी उन्होंने इतना बुरा वक़्त नहीं देखा था। टूटी हुई उम्मीदों के साथ आनंद बख़्शी मरीन लाइंस रेलवे स्टेशन पर ख़ामोश बैठे थे। जो कुछ मन में आ रहा था लिख रहे थे और सोच रहे थे कि क्या एक हारे हुए फ़ौजी और कवि की तरह उन्हें घर वापस लौट जाना चाहिए। तभी वेस्टर्न रेलवे का एक टिकिट चेकर उनके पास आकर रूका और उनसे टिकिट दिखाने की मांग की। आनंद बख़्शी के पास टिकट तो नहीं था। टिकिट चेकर ने कहा कि तुम्हें जुर्माना भरना पड़ेगा। आनंद बख़्शी के पास जुर्माना भरने के भी पैसे नहीं थे। टिकिट चेकर ने देखा कि उन्होंने एक नोट-बुक में कुछ उर्दू में लिख रखा है। उन्होंने बख़्शी से इस बारे में पूछा। इत्तेफ़ाक़ देखिए कि ये टिकिट चेकर भी शायरी पसंद करता था। जब उसने देखा कि ये बेटिकट नौजवान प्लेटफार्म पर बैठा कविताएं लिख रहा है, तो उन्होंने उससे कहा, सुनाओ तुमने क्या लिखा है। वो बेंच पर उनके बग़ल में ही बैठ गया ताकि ध्यान से सुन सके। बख़्शी की कविताएं उसे बहुत पसंद आईं और उसने कहा कि और कविताएं सुनाओ। प्लेटफार्म पर पकड़े जाने पर जो भी कविताएं बख़्शी ने टिकट चेकर को सुनाईं वो सब उसे बहुत पसंद आयीं। उसने बख़्शी से पूछा, तुम यहां क्या कर रहे हो? आनंद बख़्शी ने इस टिकिट चेकर को बताया कि किस तरह उनका परिवार रावलपिंडी से रिफ़्यूजी बनकर दिल्ली आया। किस तरह वो दोबारा फ़ौज छोड़कर बंबई आए हैं और दूसरी बार फ़िल्मों में कोशिश कर रहे हैं। कमाल की बात ये थी कि उस टिकिट चेकर ने बख़्शी को समोसा खिलाया और चाय पिलवाई। और इसी दौरान बहुत ही अजीब बात हुई। अचानक इस टिकिट चेकर ने बख़्शी से कहा–'तुम बहुत अच्छा लिखते हो। इसलिए वापस जाने के बारे में मत सोचो। तुम्हें बंबई में कोशिश करते रहना चाहिए। मुझे पूरी उम्मीद है कि तुम्हें ब्रेक मिल जायेगा। तुम्हारी शायरी में आज के ज़माने के बड़े गीतकारों जैसा ही दम है'।

जब टिकिट चेकर को पता चला कि बख़्शी के पास रूकने के पैसे तक नहीं हैं। उन्हें अपने पिता या ससुर से कोई भी मदद नहीं मिल रही है, ना ही उनकी पहली फ़िल्म रिलीज़ हो पायी है। तो टिकिट चेकर ने कहा, "मैं बोरीवली में अकेला रहता हूं। मेरा परिवार आगरा में रहता है। कभी-कभी बड़ा अकेलापन महसूस होता है। तुम जैसा शायर मेरे साथ रहेगा तो मेरा दिल लगा रहेगा। तुम मेरे साथ रह सकते हो, मुझे तुमसे कोई किराया नहीं चाहिए। बस तुम अपनी कविताएं मुझे सुनाते रहना। जब काम मिल जाए तो अपने लिए कोई घर तलाश कर लेना।"

मई 1958 का वही दिन था जब टिकिट कलेक्टर चित्तरमल स्वरूप आनंद बख़्शी नाम के एक अजनबी को 24 एच, ज्वाला एस्टेट बोरीवली पश्चिम के अपने घर में ले आए। आने वाले चार सालों तक चित्तरमल ने इस अजनबी को अपने घर में रखा और इससे एक पैसा नहीं लिया। ना ही ज़िंदगी में कोई दूसरी मदद मांगी। यहां तक कि वो उन्हें रोज़ाना दो रूपए देते थे ताकि वो निर्माता निर्देशकों से मिलने जा सकें और भूख लगने पर कुछ खा सकें। अकसर ही चित्तरमल बख़्शी की जेब में एक दो रूपए रख देते थे ताकि बख़्शी को सहारा रहे और पैसे मांगने में उन्हें जो हिचक महसूस होती थी वो ना हो। बख़्शी साहब ने मुझे बताया था कि उन्हें कभी समझ में नहीं आया कि चित्तरमल जी ने उनकी मदद क्यों की और उनसे पैसे क्यों नहीं लिए। जब मैं कामयाब हो गया तो भी उन्होंने कभी मुझसे किसी तरह की मदद की मांग नहीं की। वो एक ऐसे फ़रिश्ते थे जिसे मेरे बंसी वाले ने ज़िंदगी के सबसे ख़राब दौर में मेरे पास भेजा था।

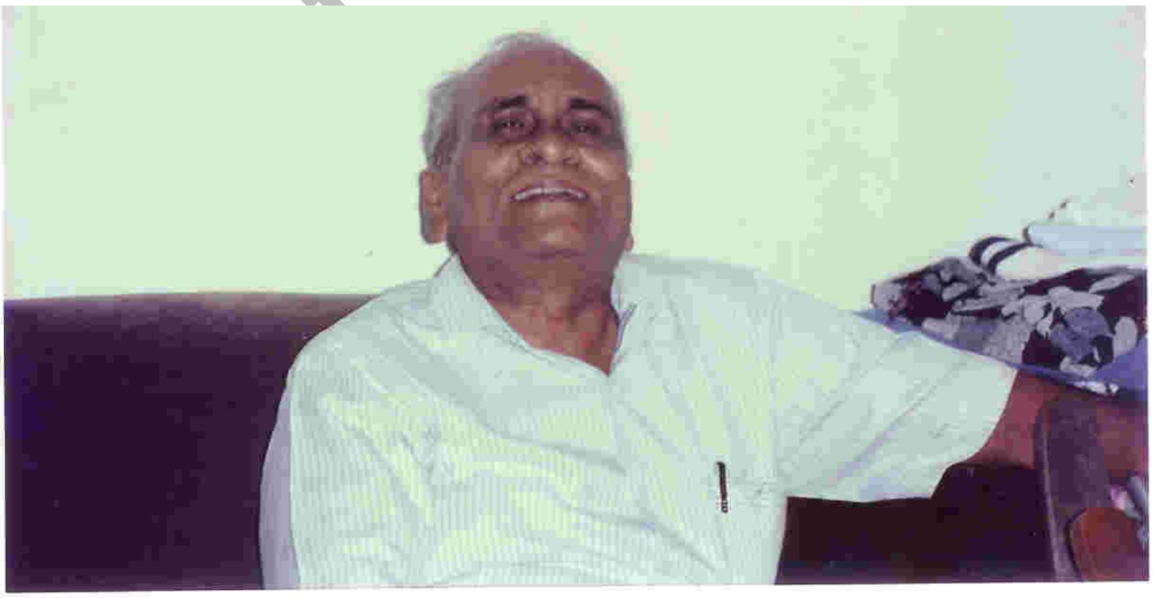

ज्वाला एस्टेट वाला वो घर।

चित्तरमल अंकल हमारे घर साल में क़रीब तीन बार आते थे। वो हमारे लिए आगरे का पेठा लाते थे। डैडी ने हमेशा चित्तरमल जी को 'उस्ताद' कहकर पुकारा। इस नाम से उन्होंने किसी और को कभी नहीं पुकारा। चित्तरमल जी मेरे डैडी को 'बख़्शीजी' कहते थे। कई दशकों बाद जब 1990 के ज़माने में जब डैडी ने अपने इस परोपकारी टिकिट-चेकर 'उस्ताद' का क़र्ज़ चुकाने की कोशिश की और चित्तरमल अंकल से कहा कि रेलवे से साठ बरस की उम्र में रिटायर होने के बाद अगर आप कोई बिज़नेस करना चाहते हैं तो मैं उसे फ़ाइनेन्स कर दूंगा। लेकिन उस्ताद चित्तरमल ने जवाब में कहा--"मुझे रिटायरमेंट के बाद कोई भी बिज़नेस नहीं करना है। इस तरह की पेशकश मुझसे आइंदा कभी मत कीजिएगा। मैंने आपके लिए जो कुछ भी किया उसके बदले में आपसे कभी भी कुछ लेने की कोशिश नहीं की। ये हमारा भाग्य था कि हम मिले, इससे ज़्यादा कुछ नहीं।"

उस्ताद चित्तरमल अंकल, जिन्होंने चश्मा लगा रखा है। हम हर साल गर्मियों में कीं बाहर घूमने जाते थे, ये तस्वीर ऐसे ही किसी सफ़र के दौरान ली गयी है। उस्ताद चित्तरमल जी के अलावा तस्वीर में हमारे पारिवारिक डॉक्टर, डॉक्टर नानावटी भी बख़्शी साहब के साथ नज़र आ रहे हैं।

1970के ज़माने में सिकंदराबाद में ले गयी तस्वीर।

मेरा ये मानना है कि आनंद बख़्शी की दो मांएं थीं। सुमित्रा बाली, जिन्होंने उन्हें जन्म दिया था और उस्ताद चित्तरमल स्वरूप अंकल। "अगर चित्तरमल मुझे दिल्ली या फ़ौज वापस जाने से नहीं रोकते, तो दो साल के बच्चे का बाप ये नौजवान घर वापस लौट जाता। और तीसरी बार बंबई आकर अपना भाग्य आज़माने की हिम्मत उसमें नहीं होती। आनंद बख़्शी की ज़िंदगी में सन 2002 तक फ़िल्मों के जितने भी मौक़े आए, उनके लिए यही भला आदमी ज़िम्मेदार था। उस्ताद चित्तरमल अंकल का निधन सन 2001 में हुआ।

चित्तरमल स्वरूप ने बख़्शी को रहने का घर दे दिया था। इस तरह उन्हें इस अंजान शहर में एक अस्थायी सहारा मिल गया था जिसकी उन्हें सख़्त ज़रूरत थी। काम पाने की उनकी जद्दोजेहद एक साल और चली। फिर बख़्शी साहब की मुलाक़ात हुई जाने-माने संगीतकार रोशन से। रोशन से मुलाक़ात उनके करियर की शुरूआत में एक बहुत अहम मोड़ लेकर आयी, क्योंकि इससे बख़्शी को मिले उनके शुरूआती दो हिट गाने। इस चुनौती भरे दौर में एक और स्टार संगीतकार से उनकी मुलाक़ात हुई और वो थे एस .मोहिंदर। उन्होंने एक साथ कई फ़िल्में कीं और एक दूसरे के दोस्त भी बन गए। मोहिंदर जी ने चार बरस पहले मुझसे अपनी पुरानी यादें बांटते हुए कहा था–'एक दिन मैंने और तुम्हारी डैडी ने बहुत सारी शराब पी ली थी। पर बख़्शी रूकने को तैयार ना थे। ना ही वो लोकल ट्रेन पकड़कर घर वापस जाना चाहते थे। मैं उन्हें स्टेशन छोड़ने गया। प्लेटफार्म पर मैं उन्हें मना रहा था कि अगली लोकल ट्रेन पकड़कर वो घर चले जायें। पर वो तो जाने को तैयार ही नहीं थे। "चल मेरे भाई, तेरे हाथ जोड़ता हूं। पाँव पड़ता हूं। चल मेरे भाई अब ट्रेन पे चढ़ जा"। आगे चलकर क़रीब बीस बरस बाद उन्होंने इन पंक्तियों को फ़िल्म 'नसीब' के अपने एक गाने में इस्तेमाल किया, जिसे ऋषि कपूर और अमिताभ बच्चन पर फ़िल्माया गया। जब मैंने वो गाना सुना तो बड़ी हंसी आयी और मुझे याद आया कि किस तरह हम अपने गानों की रिकॉर्डिंग के बाद मुग़लई खाने की दावतें उड़ाते थे और शराब छलकाते थे।'

***

'रास्ता बना ले अपना'

रोशन लाल नागरथ पचास के दशक के चोटी के संगीतकारों में से एक थे। बहुत सारे कामयाब संगीतकारों से मिलने की नाकाम कोशिशों के बाद सन 1959 में बख़्शी की मुलाक़ात गोरेगांव के फ़िल्मिस्तान स्टूडियो में रोशन से हुई। रोशन को एक गीतकार के रूप में बख़्शी की शैली पसंद आई और उन्होंने कहा कि तुम सांताक्रूज़ में मेरे घर आकर अपनी कविताएं सुनाओ। पर जब मिलने का दिन क़रीब आया तो रोशन साहब ने मीटिंग रद्द कर दी। अगले कुछ हफ्तों में ऐसा तीन-चार बार हुआ। इससे बख़्शी की रोशन साहब से मिलकर अपनी कविताएं सुनाने की बेचैनी और भी बढ़ गयी। रोशन उस वक़्त के बहुत ही लोकप्रिय संगीतकार थे और बहुत ज़्यादा व्यस्त रहा करते थे। एक दिन उन्होंने बख़्शी को वक़्त दे ही दिया: 'बख़्शी तुम ऐसा करो, कल सुबह दस बजे मेरे घर आ जाना। तुम्हारे गाने सुनूंगा'

बख़्शी बड़े ख़ुश होकर बोरीवली अपने कमरे में वापस लौटे और उन्होंने प्रार्थना की कि कहीं इस बार भी मीटिंग रद्द ना हो जाए। उस रात इतनी बारिश हुई कि बख़्शी को लगा सुबह

राकेश आनंद बक्शी

तक मानो सारा शहर डूब जायेगा। लोकल ट्रेनें, बेस्ट की बसें सब चलनी बंद हो गयी थीं। शहर में बाढ़ जैसा आलम था। सुबह बख़्शी को डर था कि ये बारिश उन्हें रोशन साहब से मिलने नहीं देगी। ऐसा लग रहा था मानो किस्मत उनके ख़िलाफ़ साज़िश कर रही है। पर वो ख़ुद को एक फ़ौजी मानते थे। फ़ौज में इतने बरस बिताए थे, उन्होंने तय किया कि चाहे बारिश हो या क़िस्मत–वो आज तो दुश्मन को जीतने नहीं देंगे।

भूतपूर्व फ़ौजी आनंद बख़्शी ने रणनीति बनायी कि बोरीवली पश्चिम से रोशन साहब के घर यानी सांताक्रूज़ पश्चिम तक पैदल चलकर पहुंचने में उन्हें कम से कम तीन घंटे लगेंगे। पैदल चलना उनके लिए कोई दुश्वार काम नहीं था। फ़ौज की ट्रेनिंग ने उन्हें लंबी दूरी तक दौड़ने का भी अभ्यास करवा दिया था। सुबह दस बजे की मुलाक़ात के लिए वो चार घंटे का वक़्त लेकर निकले। उन्होंने अपनी डायरी को भीगने से बचाने के लिए उसे अपनी तौलिया से ढंक लिया था। तेज़ बारिश के बावजूद वो छाता लेकर सांताक्रूज़ तक पैदल ही चल पड़े।

आखिरकार वो तयशुदा वक़्त से पहले ही सांताक्रूज़ पहुंच गए। समय से पहले पहुंचने की ये आदत हमेशा उन्होंने कायम रखी। जाने-माने फ़िल्मकार सुभाष घई ने मुझे बताया था, 'तुम्हारे डैडी की सबसे बड़ी ख़ासियत ये नहीं थी कि वो आसान शब्दों में बड़ी गहरी बात लिख दिया करते थे, उनकी सबसे बड़ी ख़ासियत थी उनका अनुशासन और समय की उनकी क़द्र। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्होंने मेरे लिए कोई भी गाना देर से लिखा हो'।

हां तो हम बात कर रहे थे सन 1959 के ज़माने की। बारिश में बख़्शी पैदल रोशन साहब से मिलने चल पड़े थे। तूफ़ानी बारिश में पैदल सफ़र में उनका छाता टूट गया था। उनकी चमड़े की चप्पल बारिश की भेंट चढ़ गयी थी और डायरी बारिश में भीग गयी थी। पर उन्हें इस बात की ख़ुशी थी कि डायरी के सारे पन्ने और उनकी कविताएं सही-सलामत थीं। उन्होंने टूटे छाते से अपनी डायरी को बारिश से बचाने में कामयाबी हासिल कर ली थी। ये वही डायरी थी जिसमें अपनी साठ कविताएं लेकर आनंद प्रकाश बख़्शी दूसरी बार अपने सपनों की नगरी बंबई में अपना भाग्य आज़माने के लिए आए थे।

उन्होंने क़रीब बीस किलोमीटर का सफ़र तय किया था और रोशन साहब के घर पहुंचकर उन्होंने बेल बजायी। जब रोशन साहब ने बारिश से तर-ब-तर बख़्शी को देखा तो बोले, 'अरे बख़्शी, तुम आदमी हो या भूत? तुम ऐसी तूफ़ानी बरसात में क्यों आए? अरे, तुम्हारा आना इतना ज़रूरी नहीं था'

'आप ने मुझे बुलाया था आज दस बजे, मेरी कविताएं सुनने के लिए!'

राकेश आनंद बख्शी

‘हां, बुलाया तो था। मगर काम इतना ज़रूरी नहीं था’

‘साहब, आपके लिए ज़रूरी नहीं था, मगर मेरे लिए आपका मेरी कविताएं सुनना बहुत ज़रूरी था।’

बख़्शी जी के जुनून से प्रभावित होकर रोशन साहब ने बतौर गीतकार उनसे फ़िल्म सी.आई.डी .गर्ल (1959) के गाने लिखवाए। ये बख़्शी की ज़िंदगी का एक अहम मोड़ था। रोशन साहब के साथ उनका पहला गाना हिट हो गया था। एक नहीं बल्कि दो गाने हिट हो गए थे। इसके बाद दोनों ने एक साथ कई फ़िल्मों में काम किया: मैंने जीना सीख लिया (1959), वॉरंट (1961), वल्लाह क्या बात है (1962), कमर्शियल पायलेट ऑफ़ीसर (1963), बेदाग़ (1965) और देवर (1966).

बक्शी

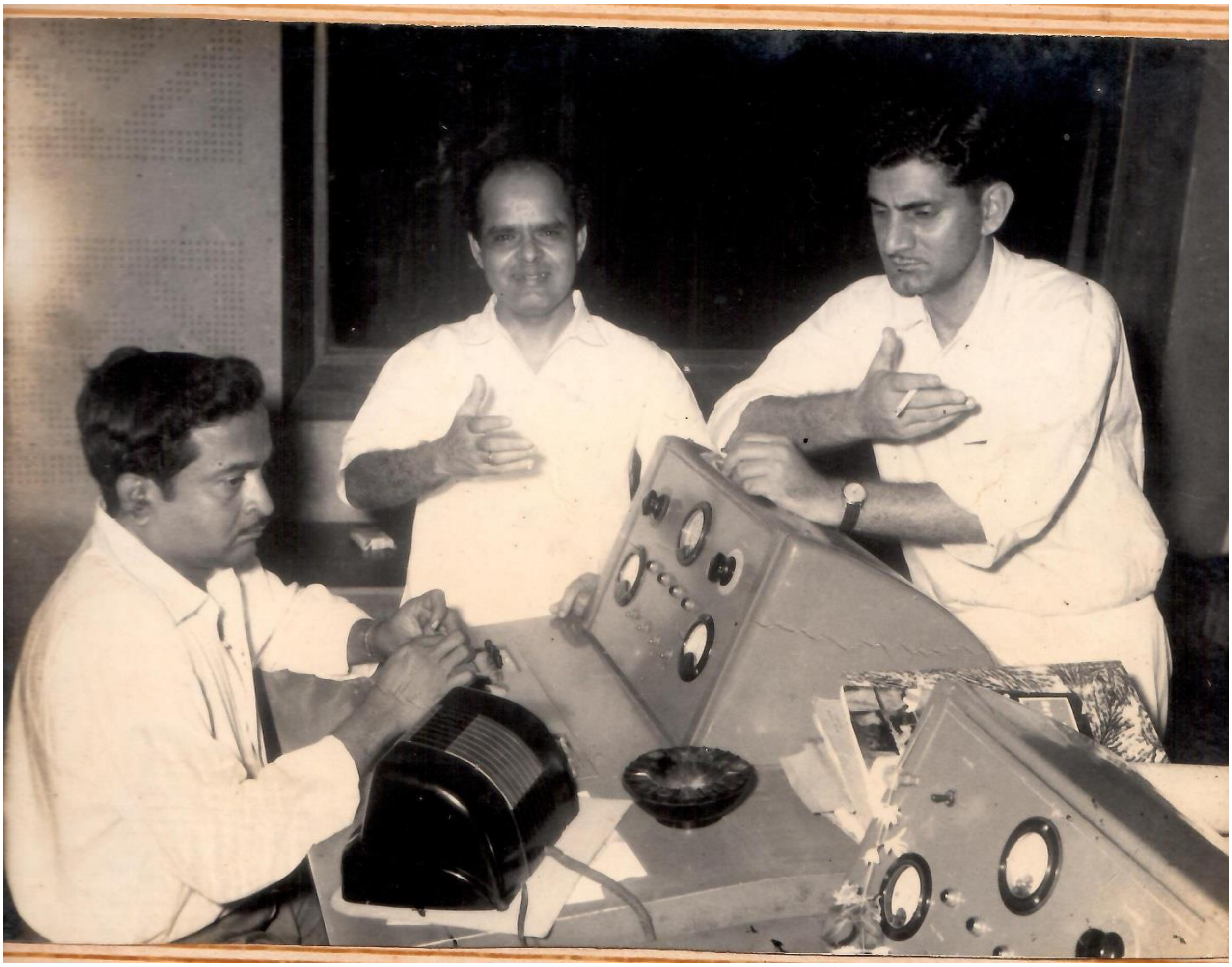

अब जब नये-नवेले गीतकार बख़्शी से रोशन जैसे नामी संगीतकार ने गाने लिखवा लिए थे,

तो इसके बाद कुछ दूसरे संगीतकारों ने भी उन्हें काम देना शुरू किया। पर उस ज़माने के जो चोटी के संगीतकार थे वो अभी भी बख़्शी की प्रतिभा से वाकिफ़ नहीं थे। कई साल बाद जब रोशन साहब के बेटे राजेश रोशन ने बतौर संगीतकार अपना सफ़र शुरू किया तो उस वक़्त आनंद बख़्शी फ़िल्म-संसार के चोटी के गीतकार बन चुके थे जबकि राजेश नये-नवेले थे। ये फ़िल्म थी--जूली (1975) जिसके गाने आनंद बख़्शी ने लिखे थे और संगीत राजेश रोशन का था। इस फ़िल्म के 'भूल गया सब कुछ, याद नहीं अब कुछ' और 'दिल क्या करे जब किसी से किसी को प्यार हो जाए' जैसे गाने आज भी लोकप्रिय हैं।

हालांकि गीतकार आनंद बख़्शी को अब काम मिलने लगा था। वो साल में एक-दो फ़िल्में कर रहे थे। इसके बावजूद वो लखनऊ में अपने परिवार को पालने-पोसने लायक़ नहीं बन सके थे। ये वो दौर था जब उन्होंने 'एक्स्ट्रा' के रूप में अभिनय का काम खोजना भी शुरू कर दिया था। वो स्टूडियोज़ के चक्कर काटा करते थे ताकि गीतकार या अभिनेता किसी भी रूप में कोई काम मिल जाए। 'जो भी काम मिले, भगवान का प्रसाद'। मैं अपने दोस्तों से कहता था कि वो काम दिलायें। यहां तक कि संगीतकार एस .मोहिंदर -जिनके लिए मैं गाने लिख चुका था, उनसे भी मैंने कहा कि मुझे पैसों की ज़रूरत है -अगर एक्टिंग का काम मिल सके, तो बताईयेगा। सन 1966 में मैंने फ़िल्म 'पिकनिक' में एक फ़कीर का किरदार निभाया और एक गाने में पर्दे पर होंठ भी हिलाए।

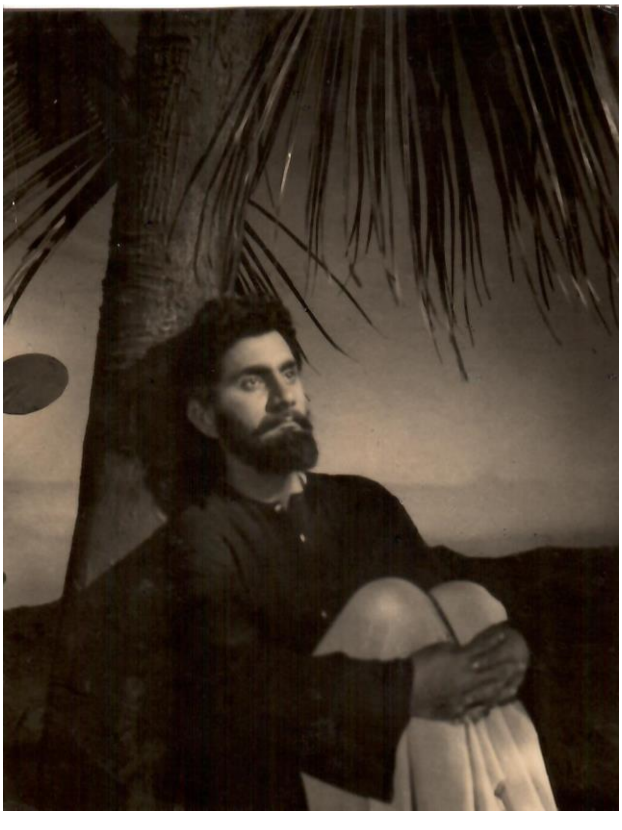

कमला के मायके लखनऊ में बख़्शी के ससुर अमर सिंह मोहन अब सूबेदार पद से रिटायर हो चुके थे और पेंशन पर गुज़ारा चला रहे थे। उन्हें इस बात का बड़ा अफ़सोस था कि पिंडी के इतने इज़्ज़तदार परिवार का बेटा बंबई में अपना पैसा, वक़्त और जवानी किस तरह बर्बाद कर रहा है। फ़िल्मों में भाग्य आज़माने के लिए वो फ़ौज की सुरक्षित नौकरी भी छोड़ चुका है। अपनी बीवी और बच्ची को मायके में छोड़कर वो अपने परिवार के लिए अपने 'धर्म' का निर्वाह भी नहीं कर रहा है और जाने किस मायाजाल में उलझ गया है।

सन 1959 में अमर सिंह ने अपने दामाद को चिट्ठी लिखी और कहा कि वो अपनी पत्नी कमला और बेटी सुमन को लखनऊ आकर ले जाये और बंबई में अपने साथ ही रखे। उन्होंने काफ़ी सख़्ती से ये लिखा था कि अपनी बीवी-बच्चों को पालने की ज़िम्मेदारी एक पति के रूप में उनकी ही है।

बख़्शी

सन 1958 में कमला ने लखनऊ में आई .टी .आई .में एडमीशन ले लिया, ताकि कटिंग और टेलरिंग में डिप्लोमा हासिल कर लें। उनका मक़सद था अपना ख़र्च निकालना। 'मैं क़रीब तीन-चार साल तक लखनऊ नहीं जा सका था। उतने पैसे ही नहीं होते थे। मुझे बड़ी शर्म आती थी कि अभी तक मुझे बतौर गीतकार काम नहीं मिल पाया है और मैं अपने परिवार का लालन-पालन नहीं कर पा रहा हूं। मेरी सबसे बड़ी बेटी सुमन का बचपन और उसकी किशोरावस्था इस बहुत ही मुश्किल दौर में बीती। इसलिए वो मेरे चारों बच्चों में मुझे सबसे ज़्यादा प्रिय रही है'।

'कमला और उसके माता-पिता मुझसे बहुत ज़्यादा नाराज़ थे, क्योंकि मैं अपने परिवार पर ध्यान नहीं दे रहा था। तीन साल बाद जब मैं सन 1960 में लखनऊ उनके पास गया तो मेरी बेटी सुमन मुझे पहचान ही नहीं पायी और उसने कमला से पूछा कि क्या ये मेरे डैडी हैं। कमला ने नाराज़ होकर जवाब दिया, 'ये तुम्हारे डैडी नहीं हैं, हमारे घर कोई अजनबी आ गया है"। चार दशक तक मैं बतौर गीतकार इसलिए डटकर काम कर सका, क्योंकि कमला ने बिना शर्त मुझे सहारा दिया। वो मेरे करियर और मेरे परिवार का आधार रही है।

'मुझे इस बात का हमेशा अफ़सोस रहा है कि शादीशुदा ज़िंदगी के शुरूआती सालों में मेरे परिवार को, मेरी पत्नी और बेटी को मेरे संघर्ष की क्या क़ीमत चुकानी पड़ी थी। वो मायके में रहती आयी ताकि मैं बंबई में फ़िल्मों में अपना भाग्य आज़मा सकूं। मुझे अकसर ही

उनकी याद आती थी और मैं उनकी तस्वीरें देखकर आहें भरता था क्योंकि मेरी इतनी हैसियत नहीं थी कि मैं महंगे एस.टी.डी .कॉल करके उनसे बात कर पाऊं या फिर लखनऊ जाकर उनसे मिल पाऊं'।

'मैंने गाने लिखे क्योंकि ये मेरा जुनून था। ये मेरे लिए पेशे से कहीं बढ़कर था। पर मैं इसके ज़रिए पैसे कमाने के लिए बेक़रार था ताकि मेरे परिवार को इसकी भारी क़ीमत ना चुकानी पड़े। मैं गुस्सा था कि मेरी प्रतिभा की सही पहचान नहीं हो पा रही है, मैं निराश था कि बंबई में मुझे काम नहीं मिल पा रहा है, मेरी कमाई नहीं हो पा रही है। पर इस तरह मेरा इरादा और भी पक्का होता जा रहा था, मुझे ना सिर्फ बहुत सारे पैसे कमाने थे बल्कि एक बड़ा गीतकार बनना था, ज़िंदगी में जीतना था। फ़ौज में हमारे कमांडिंग ऑफ़ीसर ट्रेनिंग के दौरान ये बात कहकर मेरा हौसला बढ़ाते थे, "फ़ौज में कोई रनर-अप नहीं होता, या तो आप दुश्मन को मार देते हैं या फिर आप क़ैदी बन जाते हैं। आपको नंबर वन बनना है। आपको विजेता बनना है"। आख़िरकार तेरह मई 1963 को मैं अपनी पत्नी, बेटी और पहले बेटे को बंबई अपने साथ रहने के लिए ले आया।

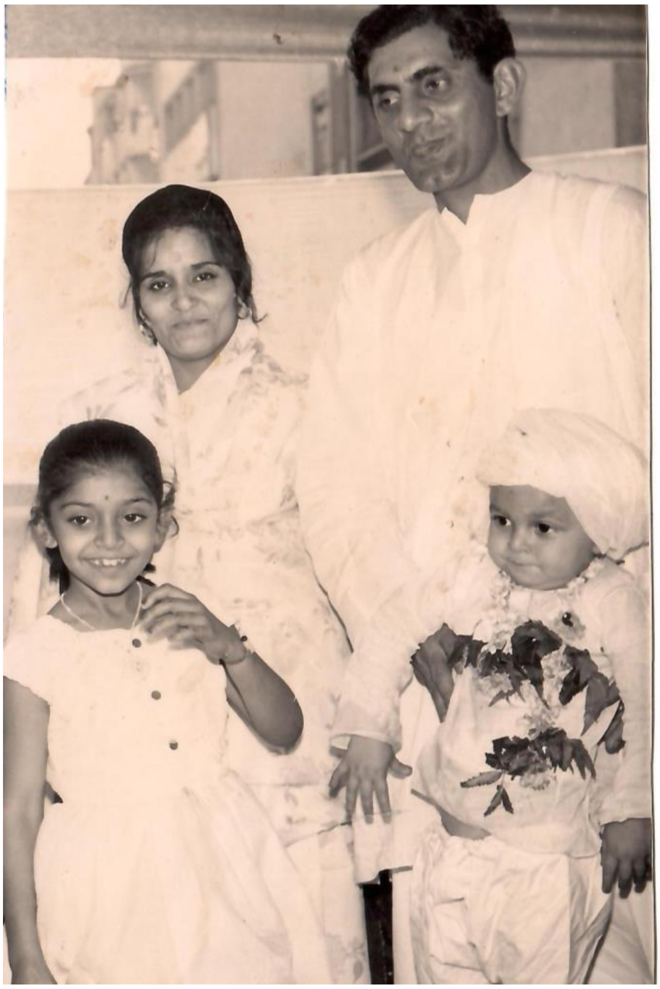

‘मैंने ये तारीख़ अपनी डायरी में नोट कर ली थी, ये मेरे लिए इतना ज़्यादा मायने रखता था। मैं जब लिखूं तो मेरा परिवार मेरे साथ रहे। सारी ज़िंदगी मैंने गाने अपने बेडरूम में बेड पर बैठकर लिखे। मुझे कभी मेज़ की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। ना ही मैंने कभी गाने लिखने के लिए किसी होटल में कमरा बुक किया। इसलिए मुझे मेरे प्रोड्यूसर बड़ा प्यार करते थे क्योंकि उनका पैसा भी बचता था’।

ऐसा बहुत कम होता था कि डैडी हमें अपने लिखे गाने सुनवाएं। हां कभी-कभी वो लिखते हुए कोई रूमानी गाना मम्मी के लिए गुनगुनाया करते थे। मां बहुत सारा वक़्त बेडरूम में बितातीं। घर-गृहस्थी के कमा निपटाया करतीं। डैडी हमेशा ये चाहते थे कि या तो मां या फिर कोई ना कोई बच्चा उनके साथ घर पर बना रहे। अगर कोई भी घर पर मौजूद ना रहा तो उन्हें घबराहट सी होने लगती थी। कई बार ऐसा भी होता था कि जब घर पर कोई भी ना हो, तो मुझे बिना किसी वजह के वो घर पर रोक लेते थे और मैं इस बात से नाराज़ हो जाता था। जब वो दुनिया में नहीं रहे और मुझे उनकी डायरियां पढ़ने का मौक़ा मिला तो मुझे अहसास हुआ कि अकेले रहने से उन्हें अजीब तरह की घबराहट होती है। काश, तब मैं अपने डैडी को ज़्यादा अच्छी तरह से समझ पाता।

ये हमारे परिवार की पहली छपी तस्वीर है जो साठ के दशक में फ़िल्मफ़ेयर में छपी थी। इस तस्वीर में मेरी दोनों बहनें नहीं हैं। ये ‘मिलन’ की रिलीज़ के बाद ली गयी तस्वीर थी। ‘मिलन’ ने उन्हें एक नामी गीतकार के रूप में फ़िल्म-संसार में स्थापित कर दिया था।

राकेश आनंद बक्शी

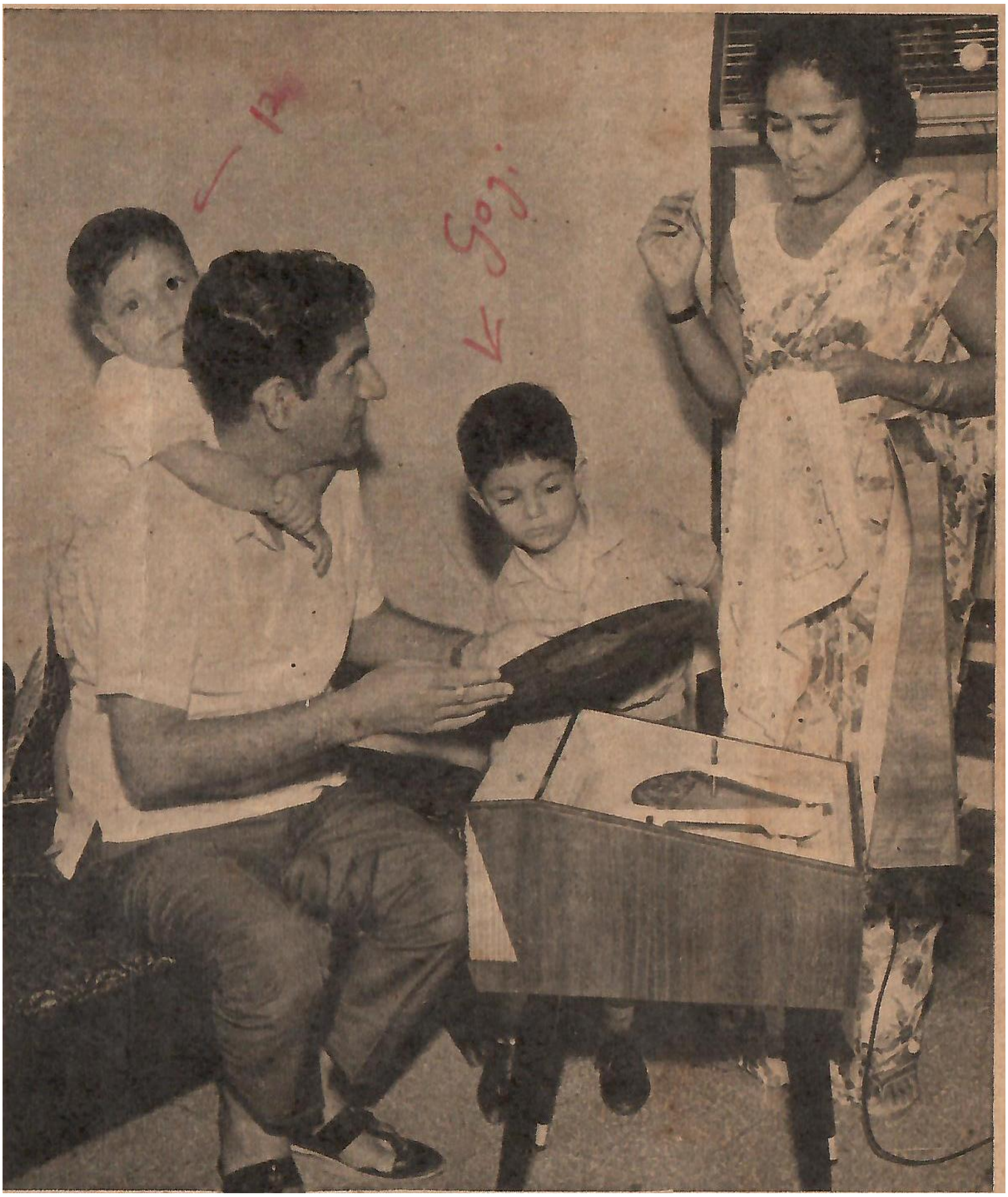
Goji

अध्याय 7

1959-1967

"कागज़ कलम दवात": - कलम के ज़रिए चोटी तक का सफ़र

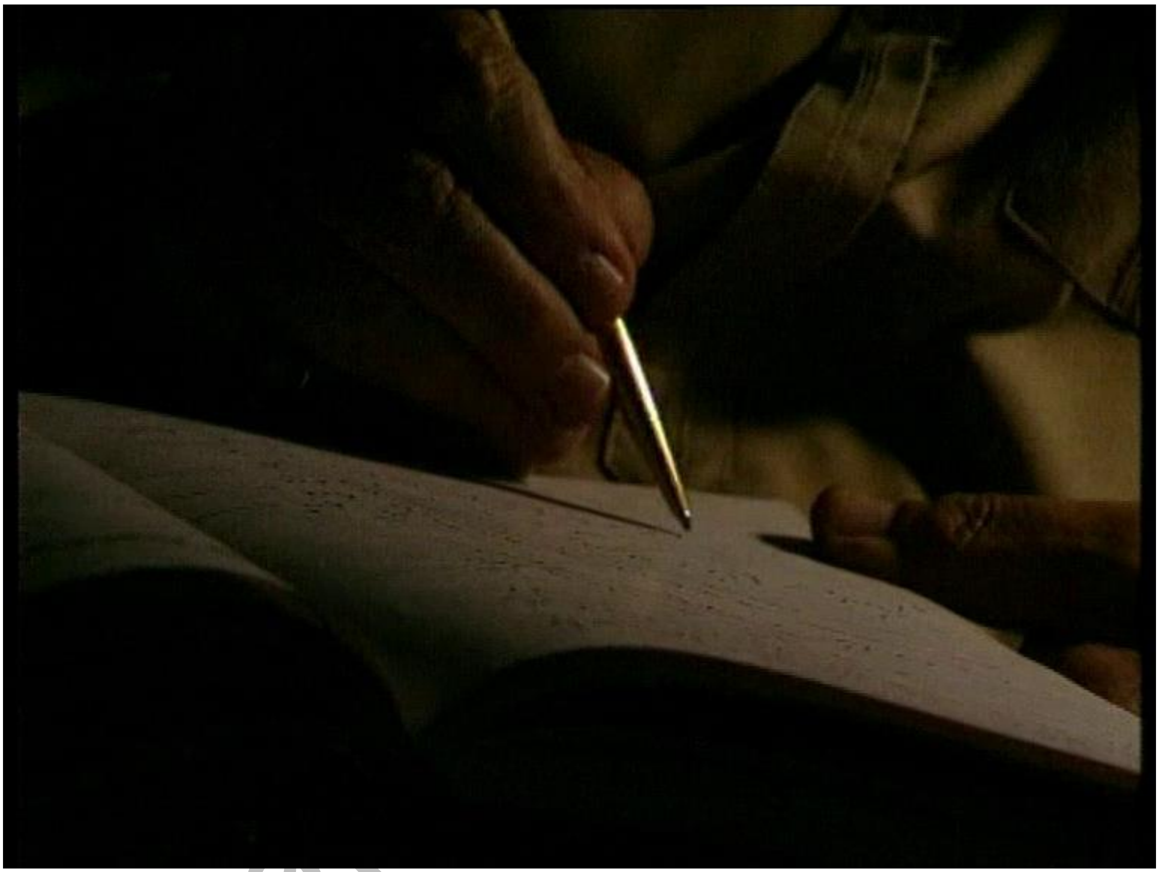

आनंद बख़्शी के इससे आगे के सफ़र को सीधा-सीधा यानी क्रम से नहीं बताया जा सकता। मैं आपको उनके शुरूआती करियर और घरेलू ज़िंदगी के बारे में कुछ ऐसी बातें बताना चाहता था, जिनके बारे में आज तक कभी बात नहीं हुई है यानी कुछ ऐसी बातें, जिनके बारे में ज़्यादातर उनके परिवार के लोग या फिर क़रीबी दोस्त जानते हैं या उनके कुछ बहुत ही दीवाने फ़ैन।

इस अध्याय में उनके कुछ बेमिसाल गानों की बातें और उनके बनने की कहानियां। पर पूरे करियर के नहीं, बल्कि सिर्फ पहले दशक के गानों की बातें। आगे चलकर उन्होंने 95 संगीतकारों और क़रीब ढाई सौ फ़िल्म निर्देशकों के साथ काम किया।

नंद, पिंडी में पला-बढ़ा लड़का, जिसका सपना था गीतकार बनने का–सन 1962 के बाद वो आनंद बख़्शी के नाम से मशहूर हुआ। उनके गाने 'बिनाका गीत माला' जैसे रेडियो प्रोग्राम में दिन-ब-दिन और हफ्ते-दर-हफ्ते बजते रहे। और ये सिलसिला क़रीब चालीस साल तक जारी रहा।(बिनाका गीत माला अमीन सायानी करते थे और ये तकरीबन पचास साल तक चलता रहा। ये भारत का पहला गानों की हिट परेड वाला शो माना जाता है)। लेकिन आनंद बख़्शी ने अपने हिट गानों की फ़ेहरिस्त ख़ुद बना रखी थी। ये इकतालीस गाने थे, जो उन्होंने सन 1959 से 1967 के बीच लिखे थे और उन्हें उस दौर में 'हिट' और 'पॉपुलर' माना गया।

मैं आपको उन इकतालीस गानों के बारे में बताऊंगा, जिनकी फ़ेहरिस्त उन्होंने अपने हाथों से तैयार की थी। हर गाने के 'मुखड़े' के साथ उन्होंने रिकॉर्डिंग की तारीख़, संगीतकार और गायक का नाम दर्ज किया था। मुझे लगता है कि ये इस बात की मिसाल है कि वो अपनी टीम को कितना महत्व देते थे। जब सन 2001 में अस्थमा ने उन्हें परेशान करना शुरू कर दिया तो उन्होंने ये नोट लिखने बंद कर दिए। मैं यहां इस फ़ेहरिस्त का एक हिस्सा ही पेश कर रहा हूं। पर इससे आपको आठ-नौ सालों में चोटी तक पहुंचने का उनका धीमा पर लगातार जारी सफ़र नज़र आयेगा।

आनंद बख़्शी गीतकारी में अपने शुरूआती गुरु डी .एन .मधोक के साथ। यहां मधोक साहब 12 दिसंबर 1977 को हुए बिनाका गीत माला की सिल्वर जुबली के आयोजन में उन्हें एक स्मृति चिन्ह भेंट कर रहे हैं। उन्होंने अनुरोध किया था कि ये स्मृति चिन्ह वो मधोक साहब के हाथों ही लेना चाहते हैं।

राकेश आनंद बख़्शी

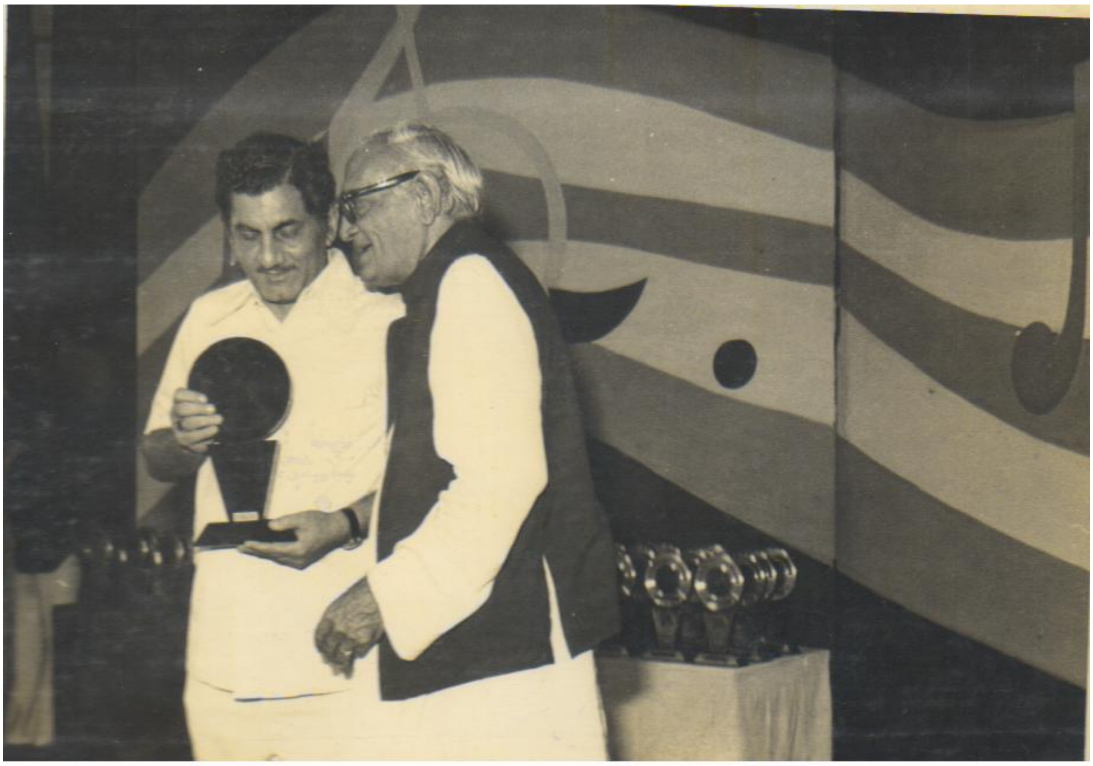

***

सन 1959

1. 'बड़ी बुलंद मेरी भाभी की पसंद, पर कम नहीं कुछ भैया भी, क्या जोड़ी है' फ़िल्म :सी . आई .डी .गर्ल .(1959) संगीतकार रोशन।

ये उनका पहला लोकप्रिय गीत था। यहां ये भी बता दें कि संगीतकार रोशन के साथ ये उनका पहला गाना था।

ये बतौर गीतकार बख़्शी के करियर की शुरूआत थी। हालांकि उन पर ये ठप्पा लग गया था कि उनकी फ़िल्में बॉक्स ऑफिस पर नाकाम हो जाती हैं। इस फ़िल्म में उनके गाने मोहम्मद रफ़ी जैसे महान गायक ने गाए। हालांकि बंबई आने के बाद पहले तीन साल उनके पास नियमित काम नहीं था। पर अब शायद वक़्त और क़िस्मत उनका साथ निभा रहे थे। रोशन उन दिनों तक बड़े संगीतकार बन चुके थे और आनंद बख़्शी लगातार काम की तलाश में उनसे मिल रहे थे। उन्होंने रोशन साहब से कहा था–सिर्फ एक बार मुझे सुन लीजिए'।

'जब मैं तूफ़ानी बारिश में रोशन साहब से मिलने पैदल चलकर गया और अपनी कविताएं सुनायीं तो उन्हें वो पसंद आयीं और उन्होंने मुझसे गाने लिखवाने शुरू कर दिए। इसके बाद मुझे बीच-बीच में काम मिलता रहा। संघर्ष के दिनों में ये मेरे लिए एक बड़ा मोड़ था। इसके बावजूद मुझे मनमाफिक काम नहीं मिला। ना ही मैं इतने पैसे कमा सका कि अपने बीवी-बच्चों को अपने साथ बंबई में रख सकूं। बीच-बीच में मुझे एक-दो गाने मिल जाते। ये

सिलसिला मेरे अगले बड़े ब्रेक तक जारी रहा। वो फ़िल्म थी 'मेहंदी लगी मेरे हाथ'। इस फ़िल्म में मुझे सारे गाने लिखने का मौक़ा मिला और फ़िल्म भी हिट हो गयी।

गाना 'बड़ी बुलंद मेरी भाभी की पसंद' 4 जुलाई 1958 को रिकॉर्ड किया गया था और इसे मोहम्मद रफ़ी ने गाया था। 'सजेगा दूल्हा सेहरे से, दुल्हन सजेगी घूँघट से, पढ़ेंगे मंतर पंडित जी, फेरे पड़ेंगे झट से'–बख़्शी कुछ ही शब्दों में किरदारों की संस्कृति, शादी की परंपरा और शादी को लेकर उनके रोमांच को बयां करते हैं। करियर की शुरूआत से ही आनंद बख़्शी सही मायनों में एक फ़िल्मी गीतकार थे, कथा, पटकथा और किरदारों में पूरी तरह डूबे और उन्हीं से प्रेरित। उनका दूसरा लोकप्रिय गाना भी इसी फ़िल्म यानी 'सी .आई .डी गर्ल' से ही था।

2. **'हाय दर्द-ए-दिल, ज़रा-ज़रा, देता है जी बड़ा मज़ा, हंस के ले, जिससे मिले हल्का-सा थोड़ा-सा'।**

इस गाने में आनंद बख़्शी प्रेम के महान प्रतीकों पर तंज़ भी करते हैं–'रोमियो जूलियट, लैला मंजनू, शीरीं और फ़रहाद, अरे ऐसे कितने नाम मेरी जां होंगे तुमको याद, भरी जवानी इसी कि ख़ातिर कर गये जो बरबाद'।

***

1960

3. **'चुन्नू पतंग को कहता है काइट, बोलो बेटा टिंगू, ये रॉन्ग है या राइट' ... 'ज़मीन के तारे' (1960); संगीतकार एस .मोहिंदर।**

एस .मोहिंदर (मोहिंदर सिंह) उस दौर के एक और जाने-माने संगीतकार थे। इस गाने में आनंद बख़्शी दिखाते हैं कि कैसे एक बड़ा बच्चा, जिसका किरदार हनी ईरानी ने निभाया था, (जो ज़ोया और फ़रहान अख़्तर की मां है-) खेल-खेल में अपने छोटे भाई की अंग्रेज़ी को जांच रहा है। इसके साथ-साथ वो उसको सही और ग़लत का फ़र्क़ भी सिखा रहा है। उसकी पूछी पहेलियां उनकी संस्कृति और उनके इलाक़े से जुड़ी हुई हैं।

राकेश आनंद बक्शी

ये आनंद बख़्शी का ऐसा पहला गाना था, जिसे उन्होंने रेडियो पर बजते सुना था। इस तरह बचपन का एक सपना पूरा हुआ था, वो हमेशा कहते थे–'एक दिन मेरे गाने भी रेडियो पर बजेंगे'।

4. 'होठों पे हंसी, पलकों पे हया, आंखों में शरारत रहती है'–फ़िल्म 'वॉरंट' (1961); संगीतकार -रोशन।

ये उनका पहला 'हिट' गाना था। ये गाना 6 नवंबर 1959 को रिकॉर्ड हुआ था और इसे लता मंगेशकर ने गाया था। उन दिनों वो बहुत ही लोकप्रिय गायिका हो चुकी थीं। इस गाने में आनंद बख़्शी ख़ूबसूरत हीरोईन की आकर्षक आंखों के नशीलेपन की बात करते हैं। 'झांको तो नशीली आंखों में, देखो तो ज़रा, साग़र (प्याले) की भला फिर किसको ज़रूरत रहती है'।

सन 1961 में उनकी दूसरी संतान, उनका बेटा पैदा हुआ। गोगी (राजेश) 13 सितंबर को शाम साढ़े चार बजे लखनऊ में पैदा हुआ। और वो भी आनंद बख़्शी के जीवन में सौभाग्य लेकर आया, क्योंकि उनकी पहली हिट फ़िल्म जिसके सारे गाने उन्होंने लिखे थे इसके अगले ही साल आयी।

राकेश आनंद बक्शी

राकेश आन

मामाजी भगवंत मोहन के साथ दोनों भाई।

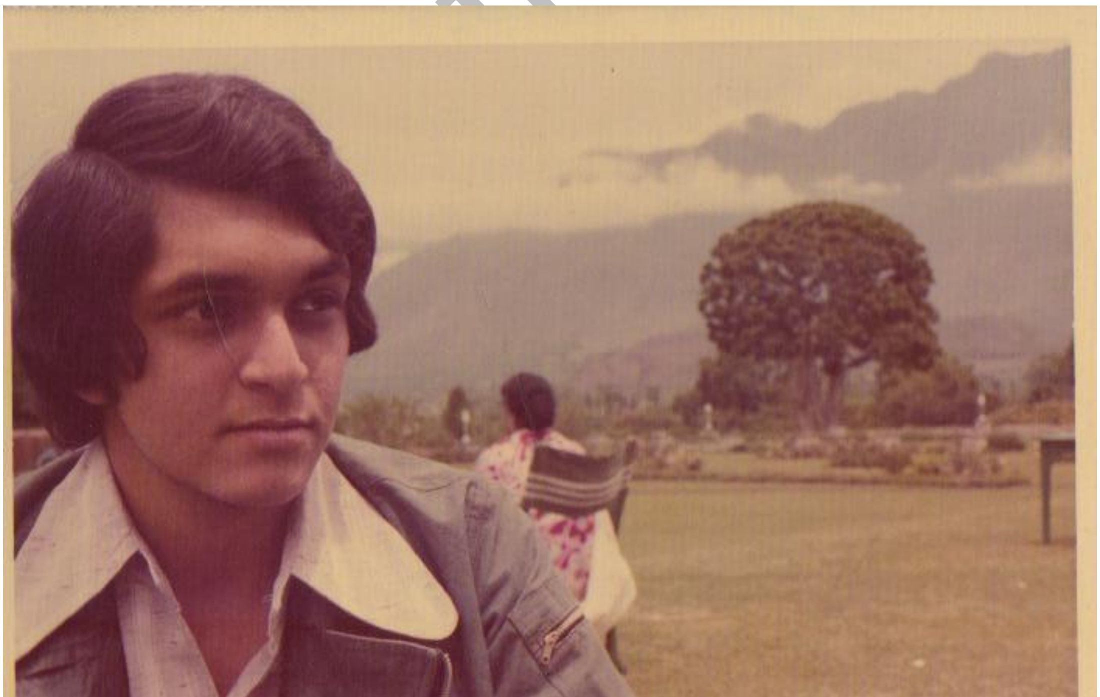

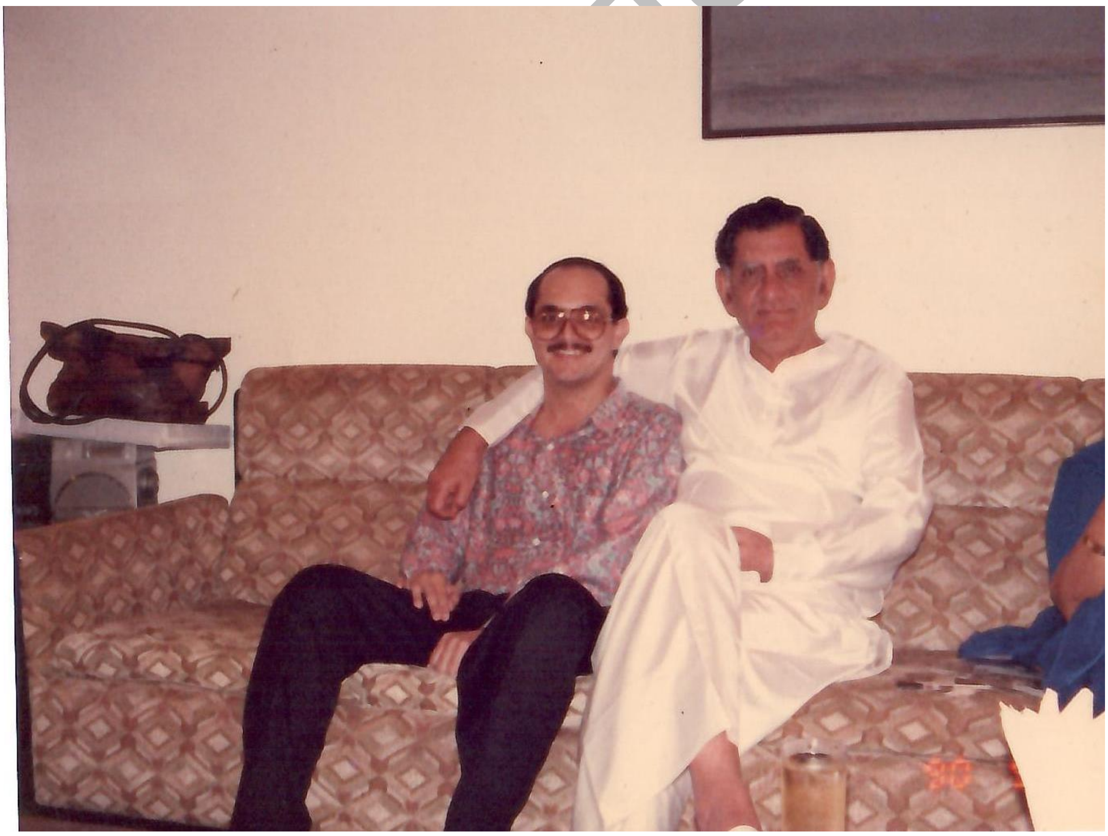

इसी साल एक और गाना आया, जिसका अपनी फ़ेहरिस्त में वो ज़िक्र करना भूल गए। फ़िल्म 'रज़िया सुल्ताना' का गाना–'ढलती जाए रात'। संगीतकार थे लच्छीराम।

***

1962

5. '**मेहंदी लगी मेरे हाथ रे' फ़िल्म 'मेहंदी लगी मेरे हाथ' (1962); संगीतकार कल्याणजी-आनंदजी।**

ये आनंद बख़्शी की कल्याणजी आनंदजी के साथ पहली फ़िल्म थी। आगे चलकर दोनों ने कुल चौंतीस फ़िल्मों में साथ काम किया।

इस फ़िल्म के निर्देशक थे सूरज प्रकाश, जिन्होंने सन 1965 में आनंद बख़्शी की देश भर में पहली सुपर-हिट फ़िल्म 'जब जब फूल खिले' का निर्देशन किया। इस गाने की इन पंक्तियों में आनंद बख़्शी दुल्हन की ख़ुशी को कुछ इस तरह से ज़ाहिर करते हैं–'सरके चुनरिया, सर पे ना ठहरे, लाज बिठाए सौ-सौ पहरे, दिल धड़के दिन रात रे'।

निर्देशक सूरज प्रकाश

प्रोड्यूसर हीरेन खेरा, शशि कपूर, कल्याणजी और आनंद जी फ़िल्म की कामयाबी पर आयोजित पार्टी में

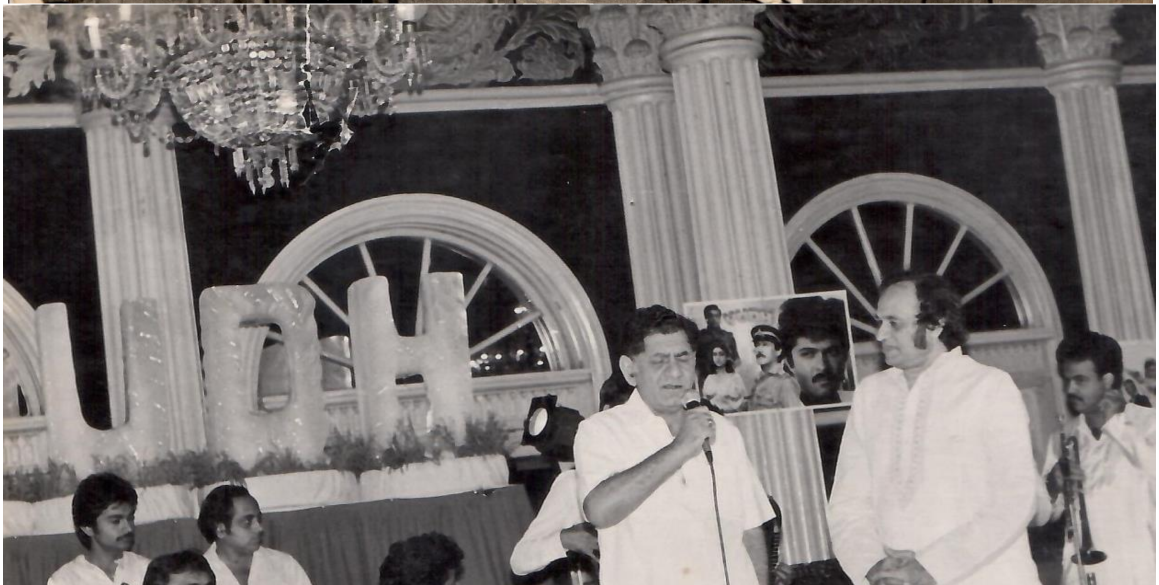

6. ‘**कंकरिया मारे, करके इशारे, बलमा बड़ा बेईमान, खुद को हंसाए, हमको रूलाए, बलमा बड़ा बेईमान’**

7. **आप ने यूं ही दिल्लगी की थी, हम तो दिल की लगी समझ बैठे**
आप ने भी हमें ना समझाया, आप भी तो हंसी समझ बैठे
क्या हुआ आप ने ना पहचाना, और हमें अजनबी समझ बैठे
जल रहा था वो दिल हमारा ही, हम जिसे चाँदनी समझ बैठे।।

8. ‘**तेरी वो चाल है कि तौबा, ऐसा कमाल है कि तौबा, मेरा वो हाल है कि तौबा
तेरी हर अदा मस्तानी, मेरी हर निगाह दीवानी’।**

आनंद बख़्शी को ये फ़िल्म कैसे मिली, जिसमें सारे गाने उनके थे और ये फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर इतनी कामयाब हुई? इसकी वजह थे उनके एक दोस्त और मोहयाल रिश्तेदार, स्टार अभिनेता, निर्माता-निर्देशक सुनील दत्त। सुपर-स्टार सुनील दत्त ने उनसे कहा था - ‘फ़िल्मी दुनिया में कोई किसी की मदद नहीं करता, फिर भी मैं आपको राज-कपूर साहब के नाम एक सिफ़ारिशी चिट्ठी दूंगा। हालांकि राज कपूर शैलेंद्र और हसरत जयपुरी के साथ काम करते हैं, पर आप अपनी क़िस्मत आज़मा सकते हैं’। जब सन 1998 में मैं फ़िल्म संसार में आया तो डैडी ने मुझसे कहा था–‘यहां तुम्हें अपनी ज़िंदगी की कहानी ख़ुद लिखनी पड़ेगी’। मैंने उनकी इस बात का इस्तेमाल बतौर लेखक अपनी पहली किताब ‘डायरेक्टर्स डायरीज़’ में किया था।

राकेश आनंद बख़्शी

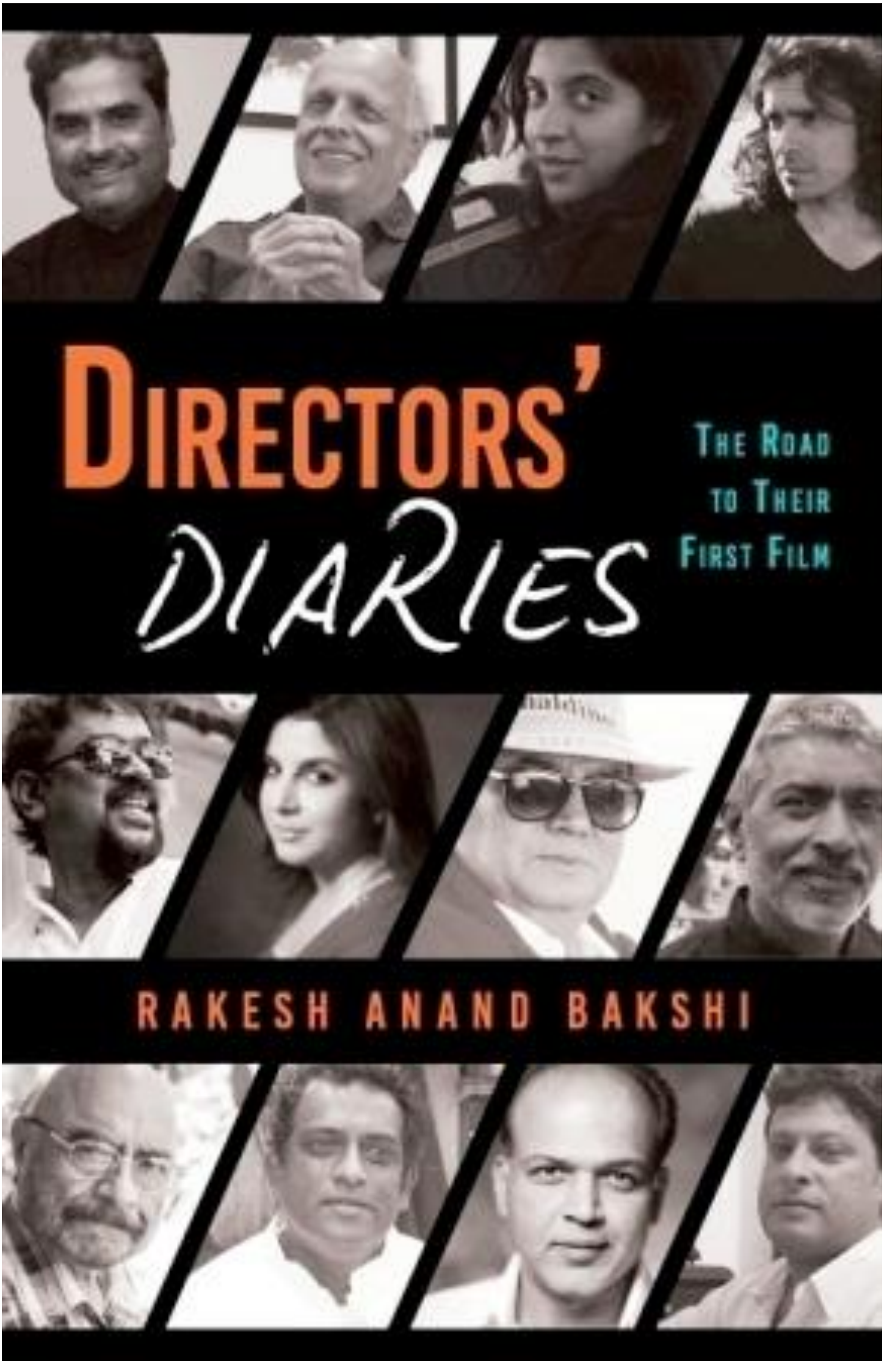
DIRECTORS'
DIARIES
THE ROAD TO THEIR FIRST FILM
RAKESH ANAND BAKSHI

'A must-read for all . . . It gives an incredible insight into the director's mind and the world of movies'
VISHAL BHARDWAJ
DIRECTORS'
DIARIES 2
Conversations with Film-makers
Their Path to Film-making
RAKESH ANAND BAKSHI

ये साल 1959 की बात है। हीरेन खेरा) जिन्होंने पहली बार सन 1961 में मेहंदी लगी मेरे हाथ बनायी थी (उस ज़माने में राज कपूर के सेक्रेटरी हुआ करते थे। जब सन 1959 में आनंद बख़्शी राज कपूर से मिले तो उन्होंने जवाब दिया कि वो सिर्फ़ शैलेंद्र और हसरत के साथ काम करना पसंद करते हैं क्योंकि ये कामयाब टीम बन चुकी है। इस मीटिंग से पहले जब आनंद बख़्शी ऑफिस में राज कपूर का इंतज़ार कर रहे थे तो उन्होंने अपनी कविताएं हीरेन खेरा को सुनायीं थीं। खेरा कविताओं के शौक़ीन थे और उन्हें बख़्शी का लिखा पसंद आया था इसलिए उन्होंने वादा किया कि जब वो प्रोड्यूसर बन जायेंगे तो अपनी पहली फ़िल्म के गाने उनसे ही लिखवाएंगे।

धीरे-धीरे आनंद बख़्शी, हीरेन खेरा और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल (LP) दोस्त बन गए। ये चारों लोग फ़िल्म-इंडस्ट्री में स्ट्रगलर थे और अपने लिए कोई रास्ता खोज रहे थे। ये लोग पाव लेकर चेंबूर में खेरा के घर जाते। खेरा दाल बनाते और कभी-कभी ऊसल-पाव बनाते, जो आनंद बख़्शी और लक्ष्मी-प्यारे दोनों का ही पसंदीदा था।

सन 1960 में जब हीरेन खेरा को अपनी पहली फ़िल्म बनाने का मौक़ा मिला, तो वो अपने दोस्त आनंद बख़्शी को साइन नहीं कर पाए। हसरत जयपुरी और डी .एन. मधोक को गाने

लिखने के लिए चुना गया था पर किसी वजह से जब ये दोनों फ़िल्म के गाने नहीं लिख सके तो हीरेन खेरा ने आनंद बख़्शी से सारे गाने लिखने को कहा। फ़िल्म भी हिट हो गयी और इसके छह में से चार गाने भी हिट हो गए। ये संगीतकार जोड़ी कल्याणजी-आनंदजी के साथ आनंद बख़्शी की पहली फ़िल्म थी। ये उस ज़माने के नामी संगीतकार थे। पूरे भारत में हिट हुई उनकी पहली फ़िल्म इसके भी चार बरस बाद आने वाली थी। वो फ़िल्म जिसने आनंद बख़्शी को घर घर में पहचान दिलवायी।

तीन साल बाद सन 1965 में कल्याणजी-आनंदजी, हीरेन खेरा और आनंद बख़्शी फ़िल्म 'जब जब फूल खिले' के लिए फिर एक साथ आए। ये आनंद बख़्शी की पूरे देश में हिट हुई पहली फ़िल्म बन गयी। इसके सारे गाने देश भर में सुपर हिट हुए थे। आनंद बख़्शी अब बंबई के फ़िल्म उद्योग में बाक़ायदा एक नाम बन गए थे।

'मेहंदी लगी मेरे हाथ' ने मेरे करियर के दरवाज़े खोल दिए। उसके पहले तक मैं बड़ा गुस्सैल हुआ करता था। गुस्सा इस बात पर था कि किसी को मेरी प्रतिभा पर यक़ीन क्यों नहीं हो रहा है। यहां तक कि मेरे घर वालों या ससुराल वालों को भी नहीं। इस वजह से मुझे और ज़्यादा मेहनत करने की प्रेरणा मिली। मेरे भीतर गुस्सा धधकता रहा कि मैं एक दिन ख़ुद को साबित करके दिखाऊंगा। साठ और सत्तर के दशक में मेरी नाकामी की वजह से मेरे परिवार को काफी तकलीफ़ झेलनी पड़ी। पर मैंने अपने गुस्से की ऊर्जा को अपने लेखन में लगा दिया। अगर आप दुनिया में कुछ करना चाहते हैं तो अपने जायज़ गुस्से का रचनात्मक तरीक़े से इस्तेमाल बहुत ज़रूरी है। गुस्सा एक बहुत ज़रूरी अहसास है। सत्तर के दशक में मुझे तब जाकर थोड़ा-सा सुकून मिला जब मैं अपने परिवार को अपने ही ख़रीदे घर में बसा पाया। पर लिखने का जुनून और उसकी प्यास वैसी ही बनी रही। वो कभी ख़त्म नहीं हुई। आज भी हर गाना मेरे लिए एक इम्तिहान की तरह है। आज भी मुझे यही लगता है कि इस बार मैं कहीं नाकाम ना हो जाऊं'।

राकेश आनंद बक्शी

शम्मी कपूर, शशि कपूर, हीरेन खेरा और कल्याणजी-आनंदजी के साथ:

आनंद बख़्शी को इस फ़िल्म के गाने लिखने के लिए ढाई सौ रूपए मिले थे। जब ये फ़िल्म और इसके गाने हिट हो गए तो वो वी.टी .स्टेशन पर शेर-ए-पंजाब रेस्टॉरेन्ट में अपना पसंदीदा खाना तंदूरी चिकन खाने गए। जब वी.टी .स्टेशन पर बेस्ट की बस से उतरे तो उन्हें अहसास हुआ कि उनके कुर्ते की जेब कट चुकी है। उन्होंने जेबकतरे को पकड़ने के लिए कुछ किलोमीटर तक बस का पीछा भी किया पर नाकाम रहे। उन्होंने ये घटना हमें ये अहसास दिलाने के लिए सुनायी थी कि तुम लोग कितने ख़ुशकिस्मत हो, जो उस दौर में आए हो–जब मेरी कमाई अच्छी-ख़ासी हो चुकी है। हमारी बड़ी बहन के अलावा हम बाक़ी सारे बच्चे ये कभी नहीं समझ पायेंगे कि जेब कट जाने का दुःख क्या होता है। इसलिए तो वो मेरी बड़ी बहन को प्यार से 'मेरी सबसे बड़ी कविता' कहकर पुकारते थे।

एक बार जाने-माने ब्रॉडकास्टर अमीन सायानी ने आनंद बख़्शी को रेडियो सीलोन के लिए इंटरव्यू करने बुलाया था। इत्तेफ़ाक़ है कि उस वक़्त मेरी बड़ी बहन सुमन भी बख़्शी साहब के साथ गयी थीं। बख़्शी साहब ने अमीन सायानी से उनका परिचय करवाते हुए कहा, इनसे मिलिए, ये हैं मेरी सबसे बड़ी कविता। सुमन को वो हमेशा 'मेरी सबसे बड़ी कविता' ही कहते रहे।

सन 1980 में उन्होंने फ़िल्म 'क़र्ज़' में लिखा, 'पैसा ये पैसा, पैसा है कैसा, नहीं कोई ऐसा, जैसा ये पैसा, कि हो मुसीबत, ना हो मुसीबत'। मेरी बड़ी बहन सुमन बख़्शी जी की इकलौती संतान थी जिसने उनके बुरे दिन देखे थे और इसलिए वो उनकी सबसे प्यारी संतान बनी रही।

उनके भीतर जो पिता था, उसके बारे में और गहराई से आप जान सकें इसके लिए यहां मैं एक घटना बताना चाहता हूं। उनकी ज़िंदगी के वो आख़िरी हफ्ते थे। भयानक अस्थमा की वजह से वो बुरी तरह कमज़ोर हो चुके थे। मैंने तब उनसे पूछा—'आपने हम सभी बच्चों के साथ अलग-अलग बर्ताव किया, मुझे और रानी को आपने वो आज़ादी दी, जो बाक़ी दो बच्चों को नहीं दी। ऐसा क्यों'? बहुत देर तक ख़ामोश रहने के बाद उन्होंने जवाब दिया, मानो वो अपनी सबसे मज़बूत सांस के ज़रिए मज़बूती से अपनी बात रखना चाह रहे हों—'एक फ़ौजी के रूप में हर बार अभ्यास करने के बाद मैं और ज़्यादा सीखता चला गया और बेहतर तरीक़े से परेड करता चला गया। फ़ौजी ज़िंदगी में मैंने जो कविताएं लिखीं, हर कविता के साथ मैंने ख़ुद को बेहतर बनाया। हर गाने के साथ मैं और बेहतर लिखना सीखता चला गया। इसी तरह हर बच्चे के जन्म के बाद मैं बेहतर पिता बनता चला गया। मुझमें एक अच्छे पिता के गुण नहीं थे। हर बच्चे की पैदाइश के बाद मैं सीखता चला गया। इसका फ़ायदा हर अगली संतान को मिला। पर मेरा मक़सद भेदभाव करने का नहीं था। जिस तरह मेरे गानों ने मुझे इतने सालों में बेहतर इंसान बनाया है, ठीक उसी तरह मुझे उम्मीद है कि हर बच्चे के पैदा होने के बाद मैं एक बेहतर पिता बनता चला गया हूं'।

राकेश आनंद बख़्शी

राकेश अ

9.) **'ग़म-ए-हस्ती से बेगाना होता, ख़ुदाया काश मैं दीवाना होता' फ़िल्म 'वल्लाह क्या बात है' (सन1 962), संगीतकार रोशन।**

यहां आनंद बख़्शी अपने किरदार की तकलीफ़ को बहुत शिद्दत के साथ बयां कर रहे हैं। मुझे लगता है कि उन्होंने ज़िंदगी में जो तकलीफ़ें सही हैं, ये उनका असर भी है। वो यहां कह रहे हैं कि काश ये एक सपना होता–
'जो देखा है, सुना है, ज़िंदगी में,
वो बन के दर्द रह जाता है ना जी में,
फ़क़त एक ख़्वाब, एक अफ़साना होता'।

10. 'मेरी तस्वीर लेकर क्या करोगे तुम, दिल-ए-दिलगीर लेकर, लुटी जागीर लेकर, जली तकदीर लेकर क्या करोगे तुम'।) फ़िल्म काला समुंदर (1961 संगीतकार एन दत्ता।) दत्ता नायक)

ये आनंद बख़्शी की पहली क़व्वाली थी और बहुत ज़्यादा हिट हुई थी। संगीतकार एन .दत्ता ने आनंद बख़्शी को अपने घर बुलवाया। असल में दत्ता किसी फ़िल्म के लिए एक क़व्वाली कंपोज़ कर रहे थे और उसके लिए डमी बोल लिखवाना चाहते थे। बाद में गाने के बोल साहिर लुधियानवी लिखते। आनंद बख़्शी ने मुखड़ा लिखा–'मेरी तस्वीर लेकर क्या करोगे तुम'। दत्ता ने इन डमी बोलों पर धुन बना दी। साहिर साहब आए। उन्होंने ये डमी बोल सुने और बख़्शी से कहा कि वो इस गाने को पूरा करें। जब उन्होंने पूरा गाना सुना तो ख़ुद ही कहा कि इस फ़िल्म के गाने आनंद बख़्शी से लिखवाए जाएं। 'ये साहिर साहब की मेहरबानी थी, उनका बड़प्पन था कि उन्होंने एक नये गीतकार का लिखा सुनकर उसे अपनी पूरी फ़िल्म दिलवा दी। उन्हें कोई ख़तरा तक महसूस नहीं हुआ'।

इस तरह आनंद बख़्शी ने इस फ़िल्म के पाँच गाने लिखे। ये सन 1962 की बात है। साहिर लुधियानवी की तारीफ़ में मैं ये ज़रूर कहना चाहूंगा कि वो फ़िल्मकार यश चोपड़ा के अच्छे दोस्त थे और अकसर उनसे पूछते थे--'आप हमेशा मुझसे ही गाने क्यों लिखवाते हैं? आप आनंद बख़्शी से क्यों नहीं लिखवाते। वो कितना अच्छा तो लिखते हैं'। यश चोपड़ा और आनंद बख़्शी ने साहिर लुधियानवी के इंतकाल के बाद पहली बार सन 1989 में फ़िल्म 'चांदनी' में एक साथ काम किया था।

राकेश आनंद बख़्शी

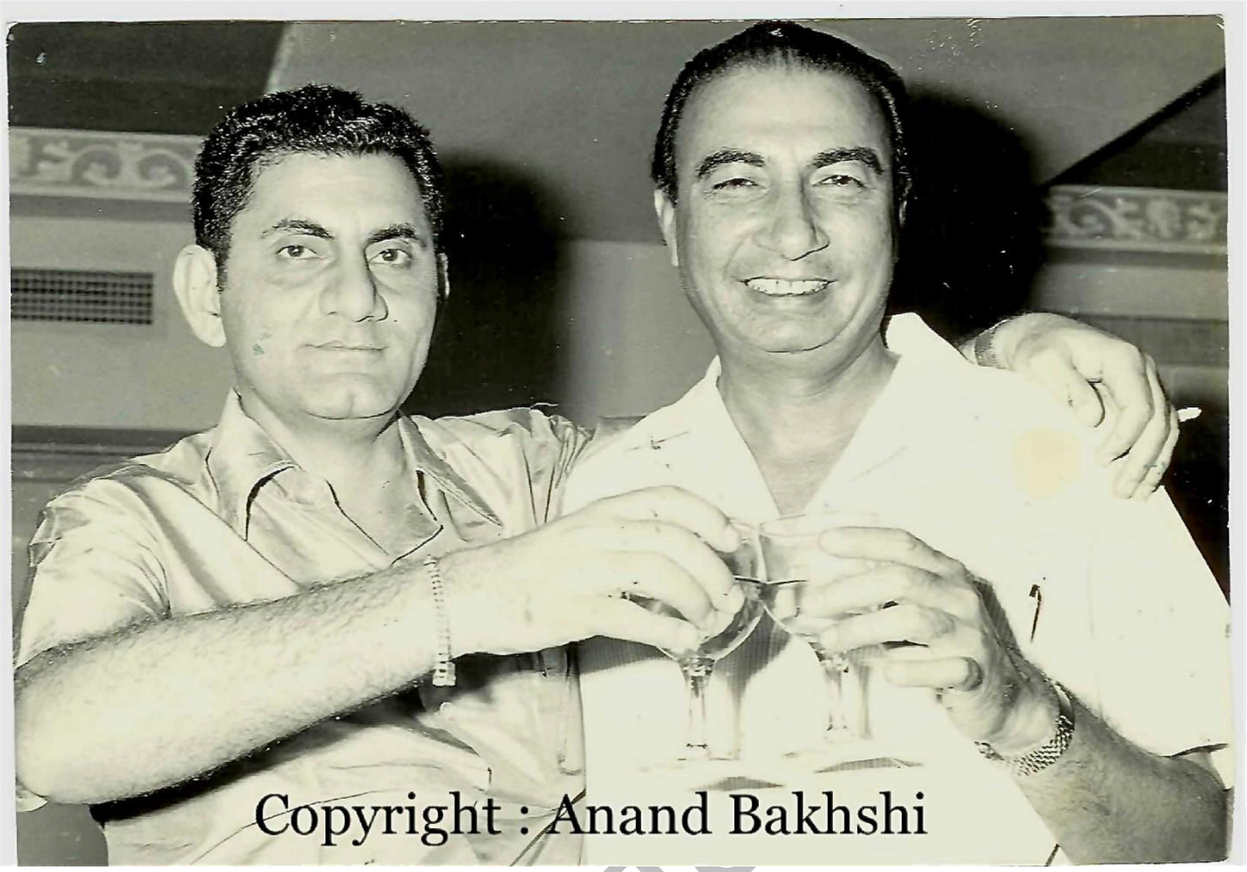

इस क़व्वाली में बख़्शी साहब ने कमाल कर दिया है। इसे उन्होंने सवाल-जवाब की शैली में लिखा है। जो पुरूष किरदार है वो छेड़छाड़ करते हुए ये जानने की कोशिश कर रहा है कि लड़की उसकी तस्वीर क्यों मांग रही है। वो उसे बाक़ायदा चुभने वाला जवाब देती है। और हर अंतरे के साथ दोनों के बीच पलते प्यार का इज़हार भी होता चलता है। इस गाने को सुनने का अपना मज़ा है। अगर आप फ़िल्म देखें तो और ज़्यादा मज़ा आयेगा क्योंकि तब आपको ये भी समझ आयेगा कि कहानी में गाना किस तरह शामिल है। आप किसी भी फ़िल्मी गाने को लीजिए, आपको फ़िल्म देखने के बाद गाने के सही मायने समझ में आयेंगे।

***

1963

11. 'तुम्हें हुस्न देके ख़ुदा ने सितमगर बनाया, चलो इस बहाने तुम्हें भी ख़ुदा याद आया, जी याद आया'। फ़िल्म 'जब से तुम्हें देखा है'। सन1963 , संगीतकार दत्ताराम।

ये भी बख़्शी साहब की लिखी एक बड़ी ही मज़ेदार क़व्वाली है, हीरो और हीरोइन के बीच

एक और रूमानी नोंक-झोंक। ये बख़्शी साहब की क़िस्मत थी कि शशि कपूर और शम्मी कपूर पहली बार इस गाने में एक साथ नज़र आए थे।

12.'पीहू पीहू पपीहे ना बोल, पाँव पड़ूं मैं पपीहे तेरे, भेद ना मेरे खोल, मुश्किल था पहले से जीना, उस पे आया सावन का महीना'। फ़िल्म 'हॉलीडे इन बॉम्बे'। (1963); संगीतकार एन .दत्ता।

आनंद बख़्शी ने इस गाने में हीरोइन की उलझन को दिखाया है, उसे डर है कि उसका राज़ सबको पता चल जायेगा। बारिश के आने से अपने प्रिय के लिए उसकी बेचैनी और भी बढ़ती चली जा रही है। वो अपने अहसास और अपनी इल्तिजा पपीहे को बता रही है, जो प्यार के इस मौसम के आने का ऐलान करता है। वो उसे पुकार लगाने को मना कर रही है।

13. **'चाँद आहें भरेगा, फूल दिल थाम लेंगे, हुस्न की बात चली तो, सब तेरा नाम लेंगे'। फ़िल्म 'फूल बने अंगारे' (1963); संगीतकार कल्याणजी आनंदजी।**

इस गाने में आनंद बख़्शी हीरोइन की ख़ूबसूरती को कुदरत के सहारे बयां कर रहे हैं।
'ऐसा चेहरा है तेरा, जैसे रोशन सवेरा,
जिस जगह तू नहीं है, उस जगह है अंधेरा'
....
'आँख नाज़ुक-सी कलियां, बात मिसरी की डलियां,
होंठ गंगा के साहिल, ज़ुल्फ़ें जन्नत की गलियां,
तेरी ख़ातिर फ़रिश्ते, सर पे इल्ज़ाम लेंगे
.....
'चुप ना होगी हवा भी, कुछ ना कहेगी घटा भी
और मुमकिन है तेरा ज़िक्र कर दे खुदा भी
फिर तो पत्थर भी शायद ज़ब्त से काम लेंगे'

इसी गाने की रिकॉर्डिंग के दौरान आनंद बख़्शी की दोस्ती लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल से हुई थी, जो तब कल्याणजी आनंदजी के सहायक थे। तारीख़ थी 12 सितंबर 1961, जिसका ज़िक्र आनंद बख़्शी के नोट्स में है। आगे चलकर आनंद बख़्शी और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने एक साथ तकरीबन 303 फ़िल्मों में काम किया।

अपनी प्रेमिका की तारीफ़ में लिखे गये गानों के अलावा आनंद बख़्शी ने ऐसे गाने भी लिखे

जिनमें ये सवाल है कि लोग आख़िर क्यों प्यार करते हैं। जैसे सन 1971 में आयी फ़िल्म 'मेहबूब की मेहंदी' का गाना–'जाने क्यों लोग मुहब्बत किया करते हैं, दिल के बदले दर्द-ए-दिल लिया करते हैं'।

'फूल बने अंगारे' में एक देशभक्ति का गाना भी है जो आनंद बख़्शी के फ़ौजी मन की पुकार है–'वतन पे जो फिदा होगा, अमर वो नौजवां होगा, रहेगी जब तलक दुनिया, ये अफ़साना बयां होगा'।
ये गाना दिल को चीर देने वाली एक पुकार से शुरू होता है, ज़रूरत पड़े तो अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपनी जान भी कुर्बान कर देनी है।

'हिमालय की बुलंदी से, सुनो आवाज़ है आयी
कहो मांओं से दे दें बेटे, कहो बहनों से दें भाई'।

ये गाना फ़िल्म की रिलीज़ के कुछ साल बाद लोकप्रिय हुआ था, जब सन 1971 में भारत पाकिस्तान के बीच जंग छिड़ गयी थी।

14. संभल तो ले, दिल दीवाना, ज़रा ठहर जाना, अभी ना सामने आना, ज़रा ठहर जाना'।

'फूल बने अंगारे' का यही गाना उन्होंने सबसे पहले लिखा था, संगीतकार थे कल्याणजी आनंद जी। गाना बहुत बड़ा हिट साबित हुआ। ये 16 जुलाई सन 1962 को रिकॉर्ड हुआ था। इसमें आनंद बख़्शी ने हीरोइन के दिल की उलझन को बयां किया है, जल्दी ही वो अपने प्रिय को देखने वाली है और उसकी ख़ुशी संभल नहीं रही है।
'ख़ुशी भी इतनी अचानक मैं सह ना पाऊंगी,
मैं अपने आप में बस आज रह ना पाऊंगी,
जो तुमसे कहना है मुझको वो कह ना पाऊंगी,
मैं याद कर लूं फ़साना ज़रा ठहर जाना'।।

अब आनंद बख़्शी को यक़ीन हो गया था कि वो बंबई में अपने परिवार को रख पायेंगे। इसलिए वो अपनी पत्नी और बच्चों को लेने लखनऊ गये। पत्नी, बेटी और अपने बेटे के साथ वो 13 मई 1963 को बंबई लौट आए। ये परिवार खार पश्चिम के होटल एवरग्रीन के कमरा नंबर 26 में रूका।

सन 1956 से लेकर सन 1963 तक उनका परिवार सात बरस उनसे दूर रहा। इस दौरान ऐसे लम्हे ज़रूर आए होंगे जब उनकी पत्नी, बेटी और बेटे को उनकी बहुत ज़्यादा याद आयी हो। बख़्शी जी ने भी अहसास किया होगा कि उनके परिवार पर क्या गुज़र रही है। वो उनका कितना इंतज़ार करता है। सन 1968 में उन्होंने फ़िल्म 'तक़दीर' में लिखा–

'सात समंदर पार से, गुड़ियों के बाज़ार से,
अच्छी-सी गुड़िया लाना, गुड़िया चाहे ना लाना,
पप्पा जल्दी आ जाना'।

इस गाने का ये अंतरा मुझे हमेशा जज़्बाती कर देता है --

तुम परदेस गये जब से, बस ये हाल हुआ तब से
दिल दीवाना लगता है, घर वीराना लगता है
झिलमिल चाँद सितारों ने, दरवाज़ों-दीवारों ने
सबने पूछा है हमसे, कब जी छूटेगा ग़म से
कब होगा उनका आना
पप्पा जल्दी आ जाना।।

इस वक़्त एक और गाना मेरे ज़ेहन में आ रहा है, जो परिवार से दूर रहने और फिर आख़िरकार मिल जाने का गाना है। फ़िल्म है 'आमने-सामने':

'कभी रात दिन हम दूर थे दिन-रात का अब साथ है
वो भी इत्तेफ़ाक़ की बात थी, ये भी इत्तेफ़ाक़ की बात है'।

मुझे नहीं पता कि बंटवारे के बाद डैडी को कितनी आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा था, क्योंकि उन्होंने कभी उन दिनों के बारे में विस्तार से बात नहीं की। बस इतना बताया कि उन्होंने और हमारी मां ने बंटवारे के बाद बहुत ही बुरे दिन देखे थे। पर एक बार मुझे सन 1963के बाद उनकी झेली आर्थिक तंगी का अंदाज़ा लगा। उस दौर का जब बख़्शी जी अपना परिवार बंबई ले आए थे। हुआ यूं कि 1990 के शुरूआती दौर में मैंने काम करना शुरू ही किया था। मेरा अपना छोटा-सा बिज़नेस था। नाश्ते की टेबल पर मैंने जो उबले अंडे मंगवाए थे, वो ख़त्म किए बिना ही मैं उठ गया था। डैडी ने मुझसे पूछा कि मैंने अपनी प्लेट का खाना क्यों ख़त्म नहीं किया। मैंने कहा कि मुझे भूख नहीं लगी है और देर भी हो रही है। उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हें पता है एक अंडा कितने का आता है। मैंने उनसे कहा कि शायद पच्चीस या पचास पैसे का आता होगा। डैडी बोले–'जब तुम चारों बहुत छोटे थे, तुम और तुम्हारी छोटी बहन नन्हे बच्चे थे, तब तुम्हारी मां एक अंडा उबालती थी और चारों बच्चों के लिए उसके चार हिस्से करती थी, ताकि तुम सबको अच्छी ख़ुराक मिले। वो अपने लिए अंडा नहीं ख़रीदती थीं। तो अंडे की क़ीमत चाहे जो हो, वो महंगा हो या सस्ता– पर हमारे लिए एक अंडे की क़ीमत वही रहेगी–जो तुम्हारी मां ने अदा की, तुम चारों को एक अंडा बराबर बराबर बांटकर खिलाने के लिए। कभी ज़िंदगी में ये बात मत भूलना और कभी खाना बेकार मत फिंकने देना'। इसके बाद मैंने ज़िंदगी में खाना बरबाद नहीं किया। यहां तक कि अगर मैं पकौड़े खाता था तो प्लेट पर लगा तेल भी चाट जाता था।

***

1964

15. **'आज हमको हंसाए ना कोई, आज रोने को जी चाहता है, और भी मुस्कुराए ना कोई, आज रोने को जी चाहता है, गीत होठों पे ना आये कोई, आज रोने को जी चाहता है'। फ़िल्म 'बादशाह' (1964); संगीतकार एन .दत्ता।**

16. **'मेरे महबूब क़यामत होगी, आज रुसवा तेरी गलियों में मोहब्बत होगी, मेरी नज़रें तो गिला करती हैं, तेरे दिल को भी सनम तुझसे शिकायत होगी'। फ़िल्म 'मिस्टर एक्स इन**

राकेश आनंद बख़्शी

बॉम्बे' (1964); संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल

ये संगीतकार जोड़ी लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के लिए रिकॉर्ड हुआ बख़्शी जी का पहला गाना था और 29 जुलाई 1963 को रिकॉर्ड हुआ था। किशोर कुमार इसे अपने सबसे पसंदीदा गानों में शामिल करते थे।

नायक के प्यार को नायिका ने ठुकरा दिया है। आनंद बख़्शी नायक की इस टूटन और कड़वाहट को बयां करते हैं। नायक अपनी मेहबूबा से कह रहा है :

'मेरी तरह तू आहें भरे
तू भी किसी से प्यार करे
और रहे वो तुझसे परे
तूने ओ सनम, ढाए हैं सितम
तो ये तू भूल ना जाना
कि ना तुझपे भी इनायत होगी
आज रुसवा तेरी गलियों में मुहब्बत होगी'।।

आने वाले चार दशकों में उनके कई गाने और फ़िल्में हिट हुईं। चाहे वो नये संगीतकारों, गायकों, कलाकारों, निर्देशकों या निर्माताओं के साथ हों या फिर पुराने और नामी लोगों के साथ। फ़िल्म उद्योग वो जगह है जहां लोग उगते हुए सूरज को सलाम करते हैं, इसलिए ना जाने कितने फ़िल्मकार और कलाकार उनके साथ काम करना चाहते थे।

यही वो साल था जब उनकी तीसरी संतान पैदा हुई। दाबू–यानी मैं, ये मेरे बचपन का नाम है। मेरा जन्म सोमवार को रात साढ़े दस बजे हुआ था। उनकी दूसरी बेटी रानी) उसे वो कविता कहते थे, मेरी दूसरी बड़ी कविता (अगले साल यानी 1965 में पैदा हुई। एक बार फिर उनकी बीजी के शब्द सही साबित हुए कि बेटियां अपने पिता के लिए सौभाग्य लेकर आती हैं। 'जब जब फूल खिले' उनकी पहली ज़बर्दस्त कामयाब फ़िल्म इसी साल आयी।

राकेश आनंद बक्शी

1978
LENCE

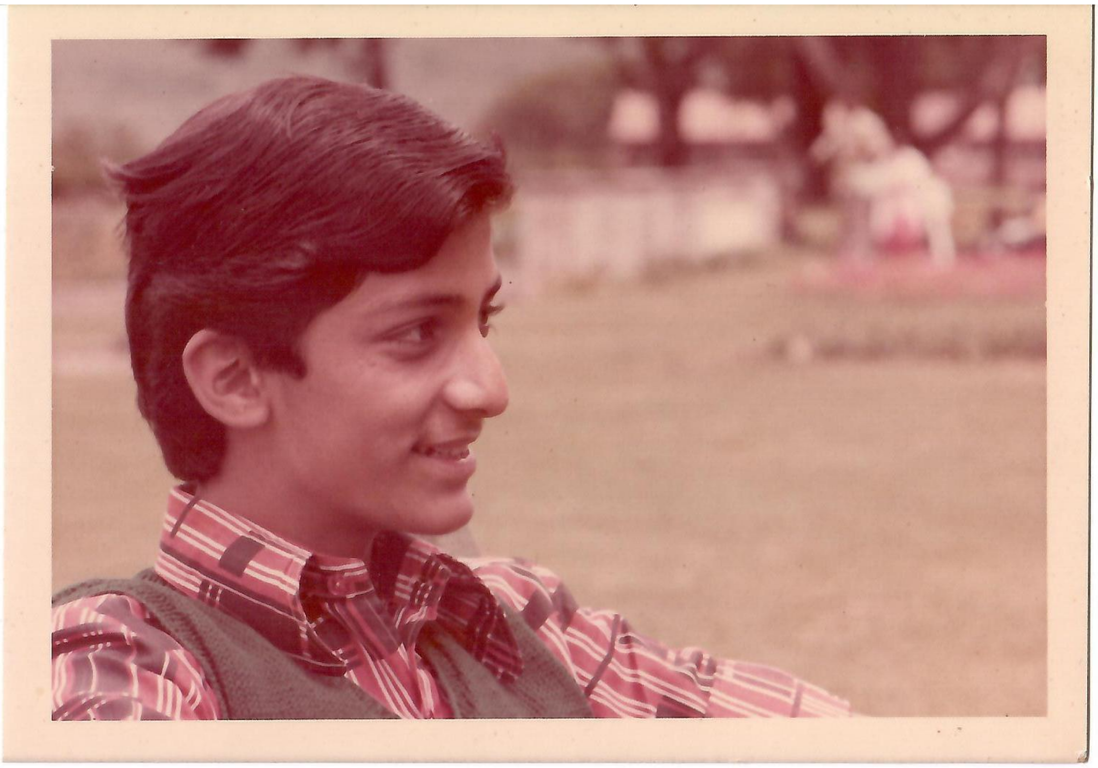

द बक्शी

बक्शी

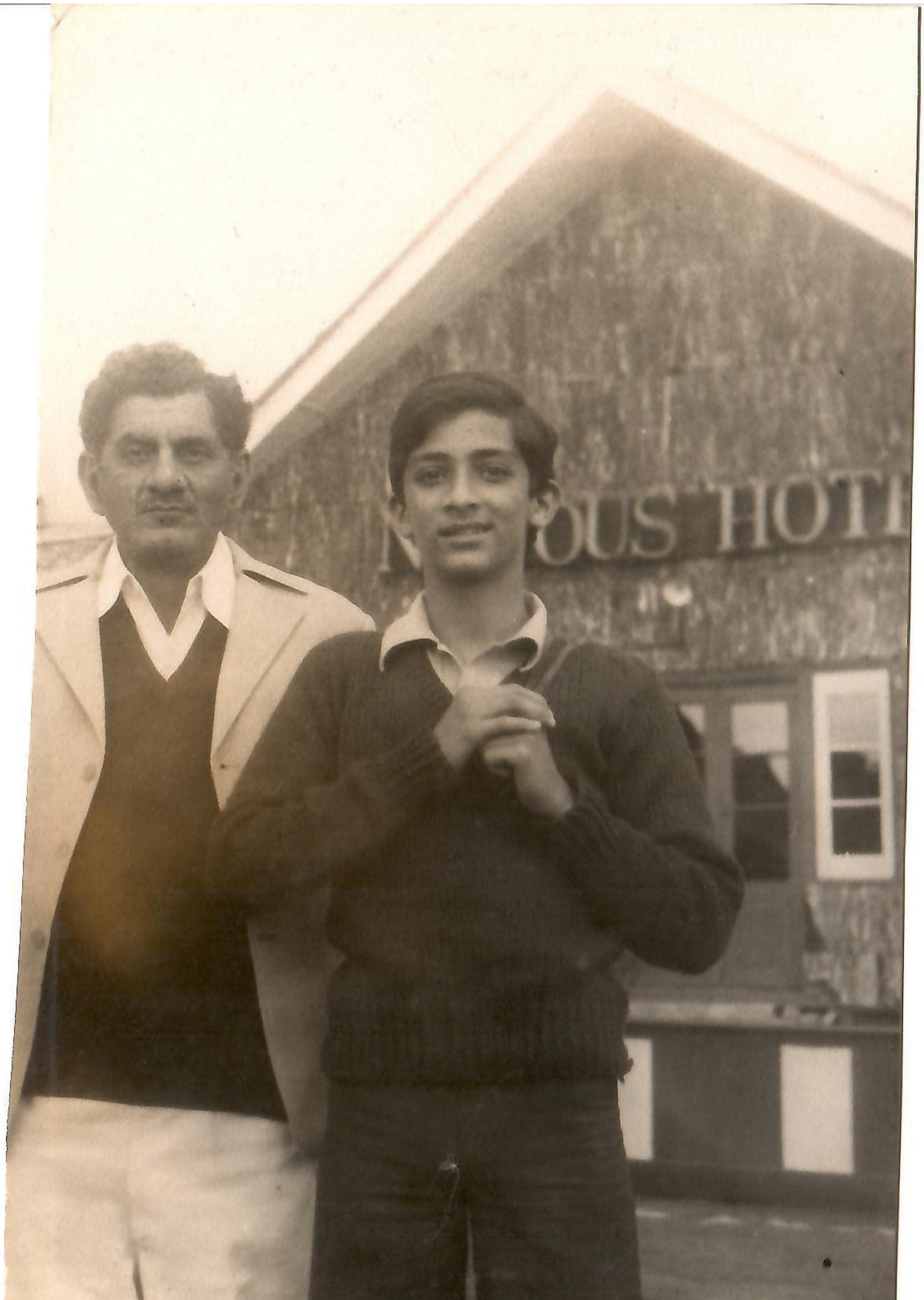
OUS HOT

डैडी ने अपनी पहली कार सन 1964 में ख़रीदी, उनके ख़ानदान की पहली कार। ये एक सेकेन्ड हैंड फियेट थी। और इस गाड़ी में वो जिंदगी भर चलते रहे। उन्होंने इस पर एक कविता भी लिखी थी।

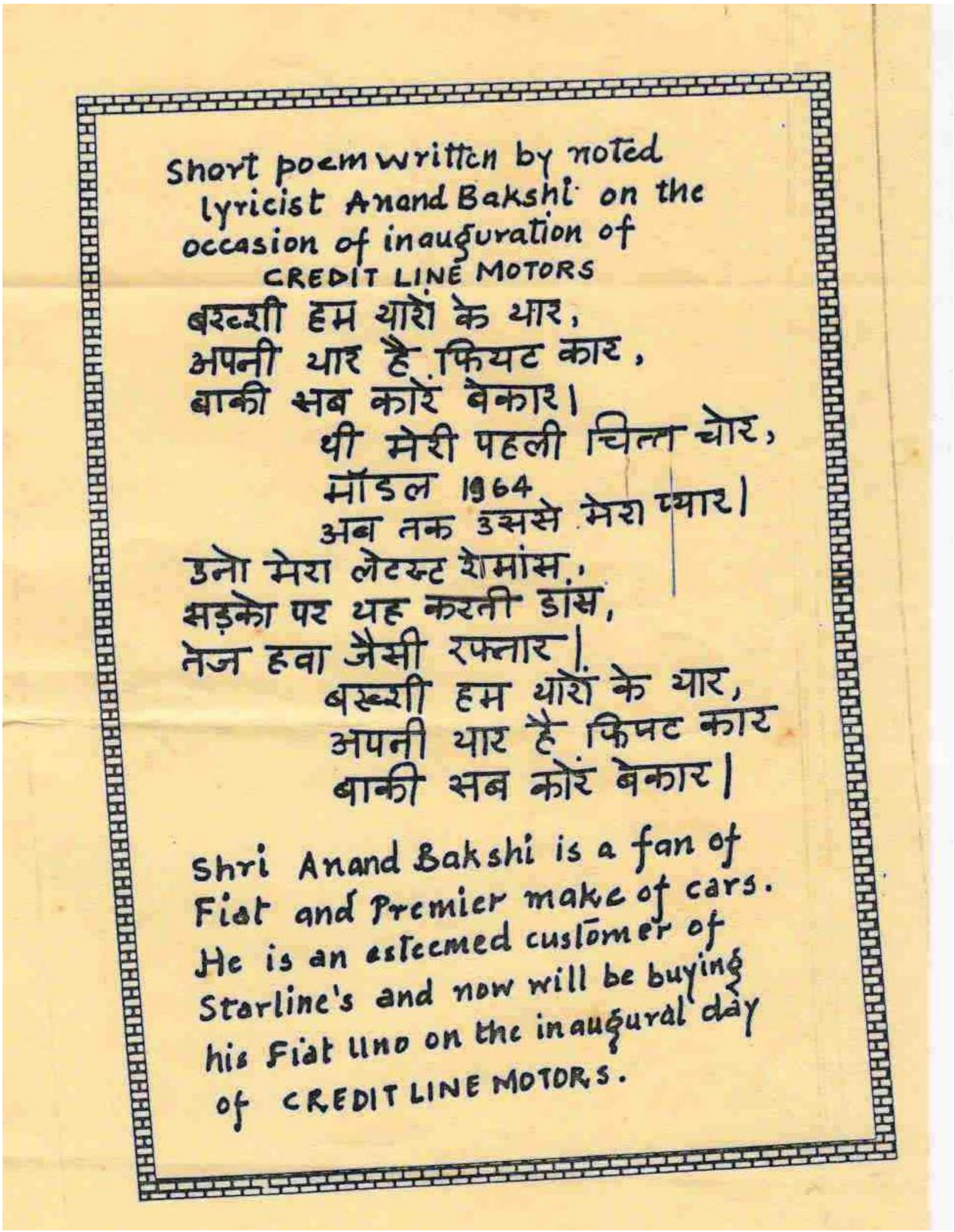

Short poem written by noted lyricist Anand Bakshi on the occasion of inauguration of
CREDIT LINE MOTORS

बख्शी हम यारों के यार,
अपनी यार है फियट कार,
बाकी सब कारें बेकार।
थी मेरी पहली चित्त चोर,
मॉडल 1964
अब तक उससे मेरा प्यार।
उनो मेरा लेटस्ट रोमांस,
सड़कों पर यह करती डांस,
तेज हवा जैसी रफ्तार।
बख्शी हम यारों के यार,
अपनी यार है फियट कार
बाकी सब कारें बेकार।

Shri Anand Bakshi is a fan of Fiat and Premier make of cars. He is an esteemed customer of Starline's and now will be buying his Fiat Uno on the inaugural day of CREDIT LINE MOTORS.

KAMERINA
IND
MRZ
7433

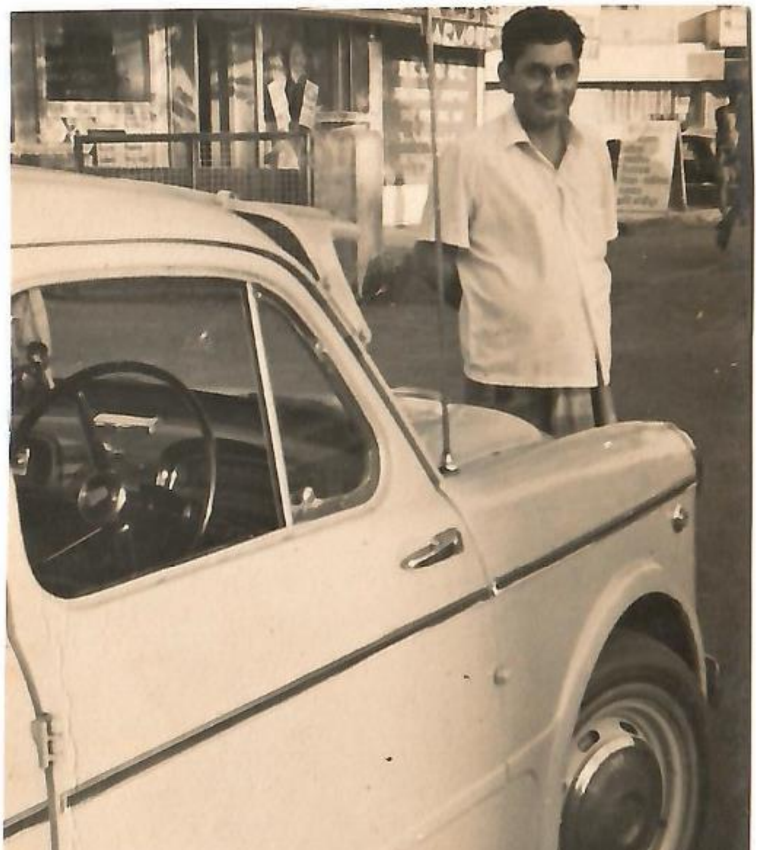

***

1965

इस बरस बुधवार को होली के दिन रात 9 बजकर 38 मिनिट पर बंबई में उनकी चौथी संतान, दूसरी बेटी रानी) कविता (पैदा हुई।

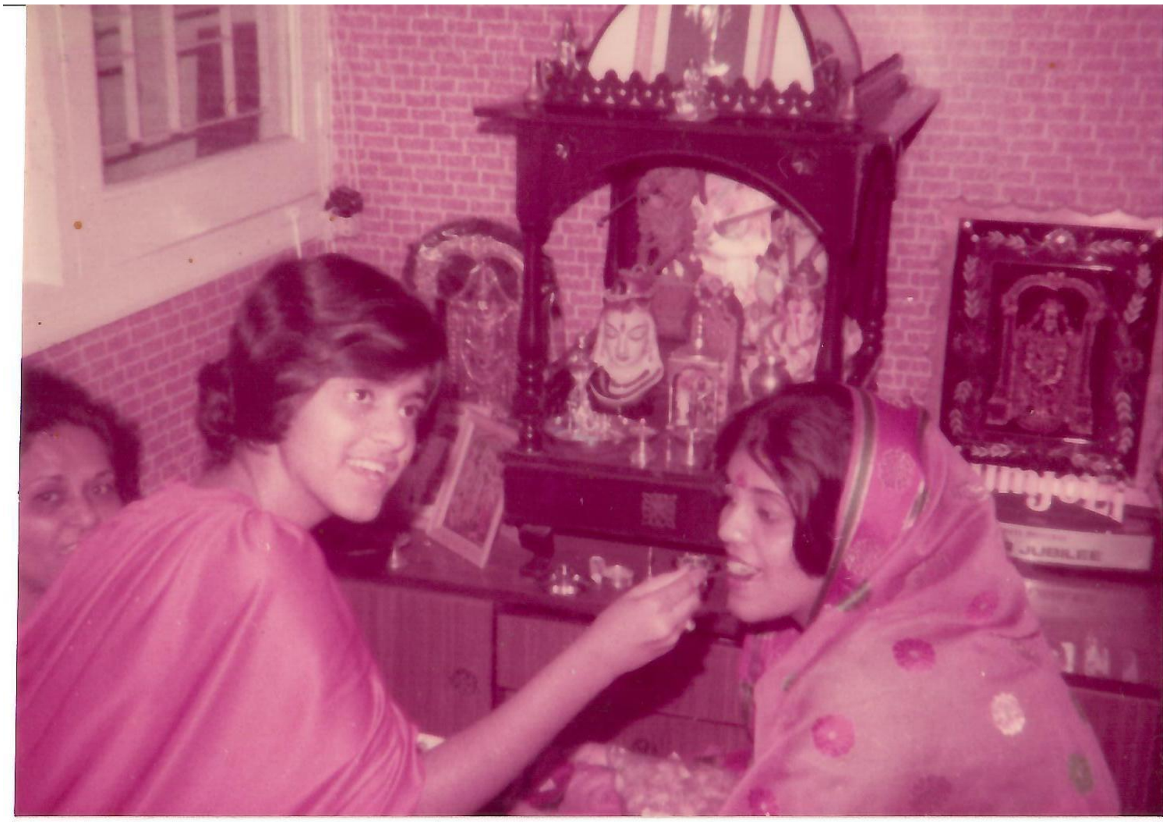
JUBILEE

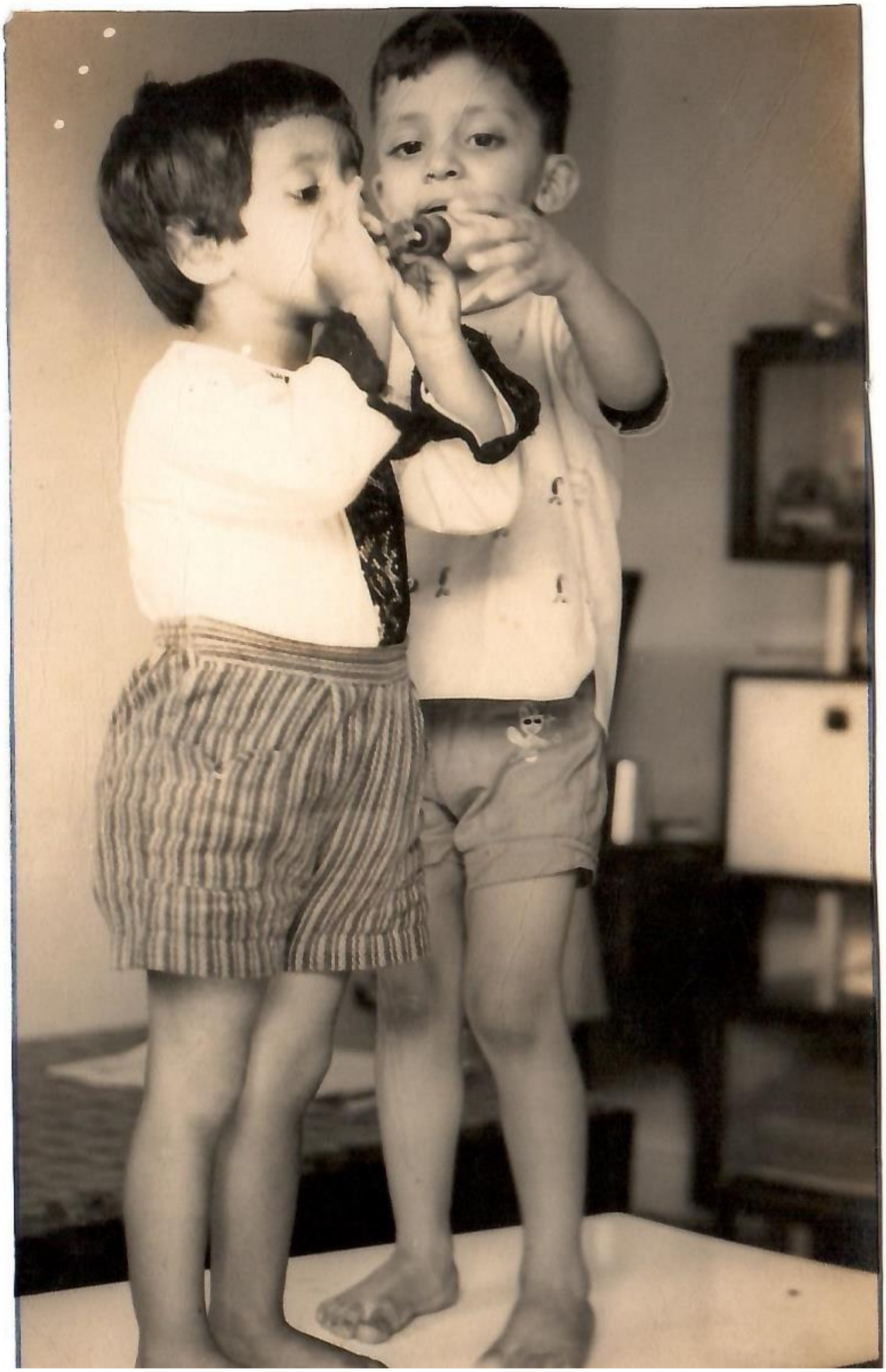

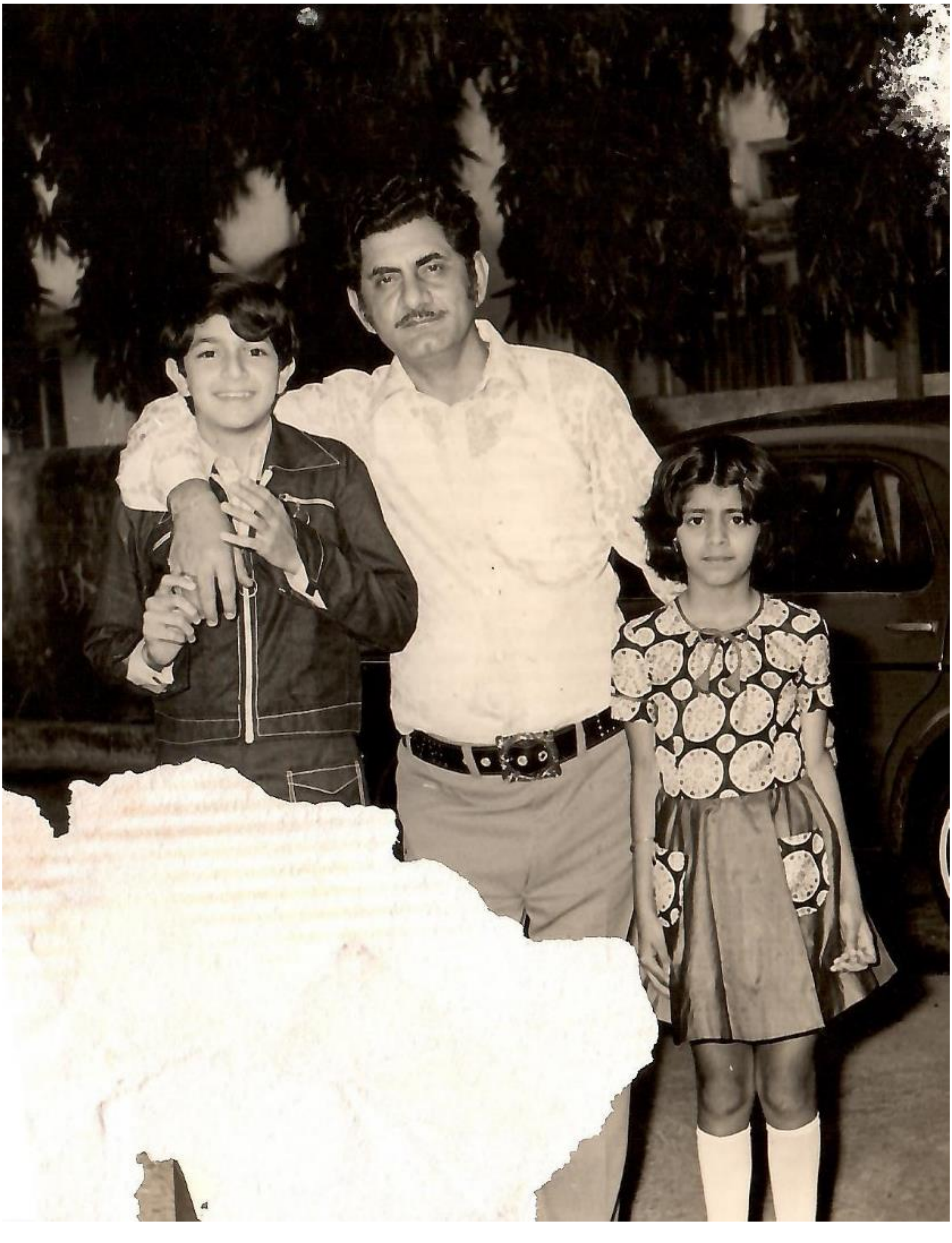

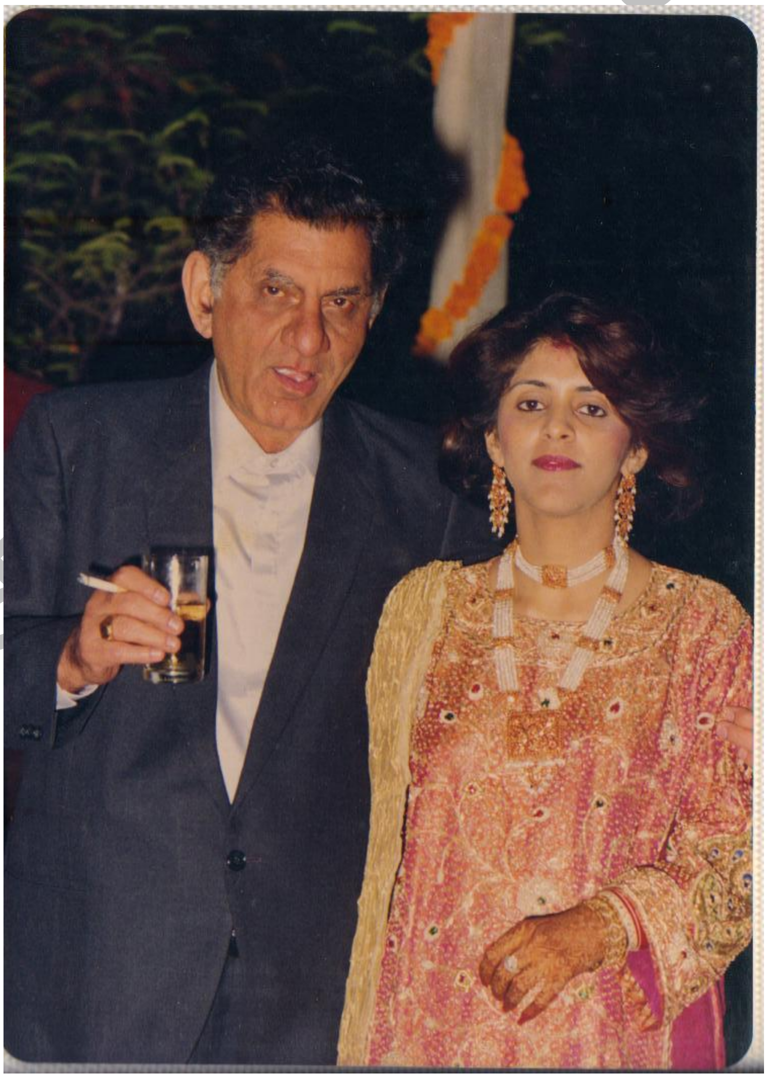

17. **'परदेसियों से ना अंखियां मिलाना, परदेसियों को है एक दिन जाना'।**
फ़िल्म-'जब जब फूल खिले' (1965); संगीतकार कल्याणजी-आनंदजी। निर्देशक सूरज प्रकाश।

इस गाने के उदास संस्करण में हीरो धोखा खाया हुआ है। वो अकेला और उदास है और गा रहा है–

प्यार से अपने ये नहीं होते
ये पत्थर हैं ये नहीं रोते
इनके लिए ना आंसू बहाना।।
 ....
ना ये बादल, ना ये तारे
ये काग़ज़ के फूल हैं सारे
इन फूलों के क्या बाग़ लगाना।।

'मेरा करियर 'परदेसियों से ना अंखियां मिलाना' से कामयाबी के रास्ते पर चल पड़ा था। यहां तक कि जब दूरदर्शन के छायागीत में ये गाना पहली बार दिखाया गया तो मनमोहन देसाई ने भी मुझसे इस गाने की तारीफ़ की थी'।

आनंद बख़्शी और मनमोहन देसाई का साथ 1970 के ज़माने में शुरू हुआ था। उन्होंने एक साथ आठ फिल्मों में काम किया। रोटी, अमर अकबर एंथनी, चाचा-भतीजा, धरम-वीर, सुहाग, नसीब, देशप्रेमी और कुली।

18. **'एक था गुल और एक थी बुलबुल, दोनों चमन में रहते थे, है ये कहानी बिलकुल सच्ची, मेरे नाना कहते थे'। फ़िल्म 'जब जब फूल खिले' (1965)**

इस गाने में जैसे फ़िल्म की पूरी कहानी ही बख़्शी साहब ने उतार दी है। मुझे इस गाने में कहानी के सच्ची होने की नज़ीर बड़ी पसंद आयी, बख़्शी साहब लिखते हैं–'मेरे नाना कहते थे'। मुझे याद है कि बख़्शी साहब मेरे भांजे-भांजियों, भतीजे-भतीजियों को गर्मियों की छुट्टियों में ना जाने कितनी कहानियां सुनाया करते थे, ये लोग छुट्टियां मनाने हमारे पास आते थे। बख़्शी साहब कहानी में बच्चों को कुछ इस तरह फंसाते और कहानी की रफ्तार कुछ यूं धीमी करते कि सारे बच्चे सो जाते।

19 **'ये समां, समां है ये प्यार का, किसी के इंतज़ार का, दिल ना चुरा ले कहीं मेरा, मौसम बहार का'। फ़िल्म 'जब जब फूल खिले' (1965)**

इस गाने का एक अंतरा ऐसा है जिसमें मुझे फ़ौजी आनंद बख़्शी का मासूम सपना नज़र आता है। उनकी ज़िंदगी का मक़सद था एक दिन एक बड़ा कलाकार बनना।

'बसने लगे आंखों में कुछ ऐसे सपने,
कोई बुलाये जैसे नैनों से अपने
ये समां, समां है ये इक़रार का
किसी के इंतज़ार का'।।

20. **'ना ना करते प्यार तुम्हीं से कर बैठे, करना था इंकार मगर इक़रार तुम्हीं से कर बैठे'। फ़िल्म 'जब जब फूल खिले' (1965)**

इस गाने के एक अंतरे में नायिका अपने महबूब प्यार से छेड़ती है और ताना भी मारती है–

राकेश आनंद बक्शी

'कोई दिल ना देगा, अनाड़ी अंजान को, हमने दे दिया है, तो मानो अहसान को'।

इस फ़िल्म का गाना–'यहां मैं अजनबी हूं' उतना लोकप्रिय नहीं हुआ, जितने इस फ़िल्म के ख़ुशनुमा या रूमानी गाने। पर आज भी जानकार लोग इस गाने की तारीफ़ करते नहीं थकते। जब आनंद बख़्शी बंबई में दो बार नाकाम हो गए थे और बस दिल्ली लौटने को ही थे, तो उन्हें जिस तरह की निराशा का अहसास हुआ था–उसे जैसे उन्होंने इस गाने में बयां किया है।

'नहीं देखा पहले कहीं ये समां, मैं भूल से आ गया हूं कहां'। उन्होंने ये गाना अपने लिए कविता के रूप में पहले लिखा था और बाद में फ़िल्म की कहानी के मुताबिक़ ढाल लिया था।

इस फ़िल्म के सारे गाने सुपर हिट थे। जब मैंने सबसे पहले 'एक था गुल और एक थी बुलबुल' सुना तो मुझे पहली बार ये अहसास हुआ कि किस तरह एक गाने में फ़िल्म की पूरी कहानी को उतार दिया था बख़्शी साहब ने'। इसके अलावा मैंने एक और गाने में फ़िल्म की पूरी कहानी को समाए हुए देखा। सन 1980 में आई फ़िल्म 'क़र्ज़' के एक गाने में उन्होंने लिखा–*'इक हसीना थी, इक दीवाना था, क्या उमर क्या समां, क्या ज़माना था'।* सुभाष घई बताते हैं कि उन्होंने ये गाना रातों-रात एक-दो घंटे में ही लिख डाला था, क्योंकि अचानक ही गाने की रिकॉर्डिंग अगले दिन सुबह की तय हो गयी थी।

21. **'ओ दिल वालो, साज-ए-दिल पे झूम लो'। फ़िल्म 'लुटेरा' सन1965 , संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल**

22. **'हमें क्या जो हरसूं उजाले हुए हैं, कि हम तो अंधेरों के पाले हुए हैं'। फ़िल्म 'नमस्ते जी'। सन1965 , संगीतकार जी .एस .कोहली।**

इस गाने में आनंद बख़्शी एक ऐसे शख़्स का हाल बता रहे हैं, जिसका दिल टूटा हुआ है, जो तकलीफ़ों से घिरा हुआ है, पर उसने हिम्मत नहीं हारी है :

किसी और का दिल जो यूं टूट जाता
तो शायद खुदा से भी वो रूठ जाता
हमीं हैं जो ये ग़म संभाले हुए हैं
कि हम तो अंधेरों के पाले हुए हैं।।

राकेश आनंद बख़्शी

23. **'चाँद सी मेहबूबा हो मेरी, कब मैंने ऐसा सोचा था, हां तुम बिलकुल वैसी हो जैसा मैंने सोचा था'। फ़िल्म 'हिमालय की गोद में' सन1965 , संगीतकार कल्याणजी आनंदजी।**

अभिनेता मनोज कुमार ने मुझे बताया था कि ये उनके सबसे पसंदीदा गानों में से एक है।

माला सिन्हा, कल्याणजी आनंदजी के साथ इस फ़िल्म के सिल्वर जुबली के जश्न में:

इस फ़िल्म के सारे गाने बड़े हिट थे। इस गाने में आनंद बख़्शी ने अपने सपनों वाली मेहबूबा को पा लेने की नायक की ख़ुशी का इज़हार किया है :

'इस दुनिया में कौन-था ऐसा जैसा मैंने सोचा था
हां तुम बिलकुल वैसी हो, जैसा मैंने सोचा था'।
....
'मेरी ख़ुशियां ही ना बांटे, मेरे ग़म भी सहना चाहे'
'ऐसा ही रूप ख़्यालों में था, जैसा मैंने सोचा था'

आज भी ये गाना करोड़ों लोगों की पसंद है और यूट्यूब पर जिसने भी इसे पोस्ट किया लोगों ने इसे बड़ी तादाद में देखा।

24. **'तू रात खड़ी थी छत पे, कि मैं समझा कि चाँद निकला, बुरा हो तेरा तुझे देखके कोठे से मेरा पैर फिसला'। फ़िल्म 'हिमालय की गोद में। संगीतकार कल्याणजी आनंदजी।**

आनंद बख़्शी पंजाब के एक घर में पले-बढ़े थे, जहां कोठा यानी एक छत थी। इस गाने में हीरो-हीरोइन एक दूसरे को छेड़ रहे हैं। नायक कहता है, इससे पहले कि मैं बूढ़ा हो जाऊं तुम अपने प्यार का इज़हार कर दो :*'कट जाए ना मेरी ज़िंदगी, हो तेरी कल-परसों में'*। नायिका उसे छेड़ते हुए कहती है–*'कल परसों में बात नहीं बनती, बनती है जाके बरसों में'*। ये तस्वीर पिंडी के उनके घर की छत की है। सन 2012 में इसे इस्लामाबाद के वसीम आरिफ़ ने खींचा था।

25. **'कंकरिया मार के जगाया, कल तू मेरे सपनों में आया, बालमा, तू बड़ा वो है, ज़ालिमा तू बड़ा वो है'। संगीतकार कल्याणजी आनंदजी। फ़िल्म -हिमालय की गोद में।**
इस गाने में नायिका बता रही है कि कैसे कोई उसके दिल में आ बसा है और उसके सपनों में भी उसने घुसपैठ कर ली है। उसका ख़्याल भी उसे परेशान कर देता है। पर हमें साफ़ समझ आ रहा है कि उसे ये अहसास कितना अच्छा लग रहा है।

26.) **'नींद निगाहों से खो जाती है, क्यों कि जवानी में हो जाती है, मुहब्बत, मुहब्बत, मुहब्बत। और मुहब्बत जो हो जाती है, जान ही जाती है, तो जाती है मुहब्बत, मुहब्बत, मुहब्बत।**

फ़िल्म लुटेरा, सन 1965; संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।

With Mohd Rafi and Music Director Lakxmikant and Pyare Lal

इस गाने में एक पंक्ति आती है जिसमें एक वाक्य में आनंद बख़्शी बताते हैं कि जब हमें प्यार हो जाता है तो कैसे हमें हक़ीक़त से दूर रहना अच्छा लगता है --

'दुनिया से जुदाई की बातें,
गुज़री हैं कई ऐसी रातें,
जब चाँद सितारे भी सोए रहे,
हम उनके ख़्यालों में खोए रहे,
हमको जगा के ये सो जाती है,
क्यों जवानी में हो जाती है,
मुहब्बत, मुहब्बत, मुहब्बत।

27. 'किसी को पता ना चले बात का, कि है आज वादा मुलाक़ात का, बुरा हाल है दिल के जज़्बात का, कि है आज वादा मुलाक़ात का'।
फ़िल्म 'लुटेरा'। सन 1965; संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल।

आनंद बख़्शी इस गाने को अपनी ख़ास शैली में दो पंक्तियों से शुरू करते हैं–*'छुपाके रखना मुहब्बत को, इस ज़माने से, कि आज सांस भी लेना किसी बहाने से'*। इसके बाद लड़की अपने भरोसे का इज़हार करती है कि उसका महबूब उसे बचाने ज़रूर आयेगा।

'मुहब्बत की प्यासी, मिटेगी उदासी, बनेगा फ़साना किसी बात का, कि है आज वादा मुलाक़ात का'।

28. 'सुल्ताना, सुल्ताना, तू ना घबराना,, मेरे प्यार को क्या, रोकेगा ज़माना, तोड़ के सब दीवारें, तुझे ले के जायेगा दीवाना.......शमा उसी महफिल में जलेगी जिसमें होगा परवाना'।
फ़िल्म, श्रीमान फंटूश।1965 , संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।

इस गाने में आनंद बख़्शी ने ठीक वही बात कही है जो 90 के दशक की उनकी एक फ़िल्म का शीर्षक कहता है–'दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगे'।

29. प्यार का फ़साना, बना ले दिल दीवाना, कुछ तुम कहो, कुछ हम कहें, छोटी सी है आज की हमारी मुलाक़ात, ये ना हो कि जी में रह जाये जी की बात'।
फ़िल्म तीसरा कौन, सन 1965; संगीतकार राहुल देव बर्मन।

राकेश आनंद बक्शी

ये बख़्शी जी की राहुल देव बर्मन के साथ पहली फ़िल्म थी। ये गाना 24 सितंबर 1964 को रिकॉर्ड किया गया था। इसके बाद उन्होंने पंचम के साथ कुल 99 फ़िल्में कीं।

आनंद बख़्शी की शुरूआती तस्वीर। मुकेश, आनंद बख़्शी, लता मंगेशकर और राहुल देव बर्मन गाने 'प्यार का फ़साना बना ले दिल दीवाना' की रिहर्सल के दौरान।

बीस नवंबर 1965 की तस्वीर।

R.D. Burman with Anand Bakshi.

देव आनंद और राहुल देव बर्मन के साथ। 1970 के ज़माने की तस्वीर।

***

1966

30. **'दुनिया में ऐसा कहां सबका नसीब है, कोई कोई अपने पिया के क़रीब है'। फ़िल्म 'देवर' सन 1966 संगीतकार रोशन।**

रोशन साहब का निधन एक साल बाद सन 1967 में हो गया था। ये गाना आनंद बख़्शी के अपनी पत्नी और दो बच्चों को बंबई लाने के दो साल बाद आया। 1966 तक उनके दो और बच्चे हो गए थे।

इस गाने में वो कहते हैं–
'दूर ही रहते हैं उनसे किनारे, जिनको ना कोई मांझी पार उतारे
साथ है मांझी तो किनारा भी क़रीब है
दुनिया में ऐसा कहां सबका नसीब है
.....
तू है तो ज़िंदगी को ज़िंदगी नसीब है।।

इस गाने में वो एक अच्छे जीवनसाथी के महत्व के बारे में लगातार बताते चलते हैं। 'चाहे बुझा दे कोई दीपक सारे, प्रीत बिछाती जाये राहों में तारे, प्रीत दीवानी की कहानी भी अजीब है'।

31. 'बहारों ने मेरा चमन लूटकर ख़िज़ांओं पे इल्ज़ाम क्यों दे दिया, किसी ने चलो दुश्मनी की मगर, इसे दोस्ती नाम क्यों दे दिया। फ़िल्म 'देवर' सन 1966 संगीतकार रोशन।

यहां गाना गाने वाला किरदार सवाल उठा रहा है कि उसे प्यार क्यों नहीं मिला, वो बहारों पर इल्ज़ाम लगा रहा है कि उन्होंने अपनी सारी ख़ूबसूरती को ख़ुद ही ख़त्म कर दिया और इस सूनेपन का इल्ज़ाम पतझड़ पर लगा दिया है। इस गाने के आख़िरी अंतरे में वो ऊपर वाले पर सवाल उठाते हैं --

'ख़ुदाया यहां तेरे इंसाफ़ के बहुत मैंने चर्चे सुने हैं मगर
सज़ा की जगह एक ख़तावार को, भला तूने इंसाफ़ क्यों दे दिया

32. **'आया है मुझे फिर याद वो ज़ालिम, गुज़रा ज़माना बचपन का, हाय रे अकेले छोड़ के जाना और ना आना बचपन का'। फ़िल्म 'देवर। संगीतकार रोशन।**

राकेश आनंद बक्शी

मैं समझ सकता हूं कि डैडी इस गाने में अपनी मां जी को याद कर रहे हैं और उन सत्रह बरसों को, जो उन्होंने अपने पिंड पिंडी में बिताए। उनकी ये तमन्ना दिल ही में रह गयी कि एक दिन वो वापस वहां लौटेंगे।

33. '**रूठे सैंयां, हमारे सैंयां, क्यों रूठे, ना तो हम बेवफ़ा, ना तो हम झूठे, चैन ना हमें, नींद ना आई, देते रहे सारी रैन दुहाई, कोई उनकी भी यूं ही निंदिया लूटे'। फ़िल्म देवर। संगीतकार रोशन।**

34. '**ख़त लिख दे संवरिया के नाम बाबू, कोरे काग़ज़ पर लिख दे सलाम बाबू' वो जान जायेंगे, पहचान जायेंगे, कैसे होती है सुबह से शाम बाबू'। फ़िल्म -आए दिन बहार के'। सन 1966, संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल।**

इस रूमानी गाने में नायिका काम की तलाश में शहर गए अपने महबूब के नाम एक चिट्ठी किसी से लिखवा रही है। महबूब कई दिनों से वापस नहीं लौटा है। वो सोच रही है कि उसके महबूब की नौकरी ही चली जाए जिसने उसे गुलाम बना दिया है, उसे उससे दूर कर दिया है।

इस फ़िल्म के बाद कई जाने-माने आलोचकों को आनंद बख़्शी के अंदर एक कवि नज़र आने लगा। अपने ही बनाए मानदंडों पर किसी को आंकने वाले इन तथाकथित विशेषज्ञों ने भी बख़्शी की प्रतिभा की तारीफ़ करनी शुरू कर दी। अब तक वो आनंद बख़्शी को हल्का गीतकार ही मानते थे, पर कवि मानने से इंकार करते थे। लेखक सलिल दलाल कहते हैं, *'इस फ़िल्म के गानों ने उन तथाकथित आलोचकों और कवि-गीतकारों को चौंकाया, जो अब तक आनंद बख़्शी को सिर्फ़ तुकबंदी करने वाला गीतकार ही मानते थे। अब वो भी ये मानने लगे कि बख़्शी कविताएं लिख सकते हैं।*

सन 1998 में जावेद अख़्तर ने आनंद बख़्शी के बारे में अपने ख़्यालात का इज़हार किया था, ये वीडियो मेरे यूट्यूब चैनल पर उपलब्ध है। इस भाषण में जावेद साहब कहते हैं कि आने वाले समय में आनंद बख़्शी को फ़िल्मी गीतकारी और साहित्य में अपने योगदान के लिए याद किया जाएगा, अपनी कविताओं और अपने दर्शन के लिए। लोग उनके गीतों पर रिसर्च करेंगे और यूनिवर्सिटीज़ उनके काम पर पी.एच.डी .करवायेंगी। हालांकि इससे चार दशक पहले एक गीतकार, जो एक कवि या शायर के रूप में बहुत लोकप्रिय भी थे, निर्माताओं और निर्देशकों से आनंद बख़्शी के नाम की सिफ़ारिश कर रहे थे। उन्होंने दूसरों से पहले बख़्शी

राकेश आनंद बक्शी

साहब की साहित्यिक ऊँचाई का अहसास कर लिया था और सबके सामने तारीफ़ करनी भी शुरू कर दी थी। और वो थे साहिर लुधियानवी।

35. 'ये कली, जब तलक फूल बनके खिले, इंतज़ार इंतज़ार इंतज़ार करो, इंतज़ार वो भला क्या करे, तुम जिसे, बेक़रार बेक़रार बेक़रार करो'। फ़िल्म 'आये दिन बहार के'। संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।

यहां आनंद बख़्शी दो प्यार करने वालों के बीच खींचतान का इज़हार कर रहे हैं। नायक ये कह रहा है कि उसकी मेहबूबा उसके प्यार के सामने ख़ुद को पेश कर दे जबकि नायिका ये कह रही है कि थोड़ा धीरज रखो और इंतज़ार करो।

36. **सुनो सजना, पपीहे ने कहा सबसे पुकार के, चमन वालों, संभल जाओ, कि आये दिन बहार के'। फ़िल्म 'आये दिन बहार के'। संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।**

इसे आज तक आनंद बख़्शी का सबसे अनमोल प्यार भरा गाना माना जाता है। इस गाने में आनंद बख़्शी दिखा रहे हैं कि नायिका को किसी से प्यार हो गया है और वो अपनी सारी उम्र इस ख़ुशनसीब पल में गुज़ार देना चाहती है। एक बार फिर बख़्शी पपीहे के ज़रिए किरदार के जज़्बात का इज़हार करते हैं। हमारे यहां पपीहे की पुकार सावन का एलान करती है।

'बाग़ों में पड़ गये हैं, सावन के मस्त झूले
ऐसा समां जो देखा, राही भी राह भूले
के जी चाहा यहीं रख दें, उमर सारी गुज़ार के'।

37. '**मेरे दुश्मन तू मेरी दोस्ती को तरसे, मुझे दर्द देने वाले, तू ख़ुशी को तरसे'। फ़िल्म 'आये दिन बहार के'। संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।**

ये एक कालजयी गीत है, शायद आनंद बख़्शी ऐसे इकलौते गीतकार हैं जिन्होंने अपने मेहबूब को कोसने वाला गीत रचा है और इसके लिए उन्होंने कुदरत और रिश्तों के प्रतीकों का इस्तेमाल किया है। पर कमाल की बात ये है कि कोसने वाले इस गाने में वो गाली नहीं देते। अभिशाप नहीं देते। यहां एक बार फिर उन्होंने नज़्म की तरह दो पंक्तियों से गाने की शुरूआत की है–ताकि गाने की एक पृष्ठभूमि तैयार हो जाए :

राकेश आनंद बख़्शी

'मेरे दिल से सितमगर तूने अच्छी दिल्लगी की है
कि बनके दोस्त अपने दोस्तों से दुश्मनी की है'।

उन्होंने दोस्ती पर भी कई गाने लिखे हैं। मिसाल के लिए फ़िल्म 'शोले' का ये गाना, जिसमें दुश्मन भी होली के त्यौहार पर दोस्तों की तरह एक साथ आ जाते हैं–
'गिले-शिकवे भूल के दोस्तो, दुश्मन भी गले लग जाते हैं, होली के दिन दिल खिल जाते हैं, रंगों में रंग मिल जाते हैं'।

और दोस्ताना फ़िल्म का ये गाना–*'बने चाहे दुश्मन ज़माना हमारा, सलामत रहे दोस्ताना हमारा'।*

***

1967

38. **'मुबारक हो सबको समां ये सुहाना, मैं ख़ुश हूं मेरे आंसुओं पे ना जाना, मैं तो दीवाना दीवाना दीवाना'। फ़िल्म मिलन। सन1967 , संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल। निर्देशक अदुर्थी सुब्बा राव।**

इस फ़िल्म के गाने जब पूरे भारत में हिट हो गये तो आनंद बख़्शी की प्रतिभा पर जो सवाल उठाए जा रहे थे, वो बंद हो गए।

राकेश आनंद बक्शी

लक्ष्मीकांत, जमुना, ताराचंद बड़जात्या, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतराव नाइक, आनंद बख़्शी और नूतन। फ़िल्म मिलन की गोल्डन जुबली पर आयोजित पार्टी में। सन.1967

मुकेश के साथ, मिलन की कामयाबी का जश्न मनाते हुए।

ये उनकी पहली ब्लॉक-बस्टर फ़िल्म थी। मुझे ख़ुशी है कि इस फ़िल्म में सुनील दत्त नायक थे, क्योंकि वही थे जिनकी वजह से सन 1961 में राजकपूर के सेक्रेटरी हीरेन खेरा से बख़्शी की मुलाक़ात हुई थी। और खेरा ने उनसे 'मेहंदी लगी मेरे हाथ' के सारे गाने लिखवाए थे। ये बख़्शी की पहली हिट फ़िल्म बन गयी थी।

'मेरे संघर्ष का ज़माना फ़िल्म मिलन तक था। उसके बाद मुझे काम और पैसों की कमी नहीं रही। मेरे बंसी वाले ने मेरे मासूम सपने पूरे किए'।

इस गाने में मेरा पसंदीदा अंतरा है --

'ये बोले समय की नदी का बहाव
ये बाबुल की गलियां, ये मांझी की नाव
चली हो तो गोरी, सुनो भूल जाओ
ना फिर याद करना, ना फिर याद आना
मैं ख़ुश हूं मेरे आंसुओं पे ना जाना'

'मिलन' के बाद सन 1967 में एक पत्रकार ने उन्हें इंटरव्यू लेने के लिए फोन किया तो उन्हें जैसे यक़ीन नहीं हुआ। उन्होंने उससे पूछा कि क्या आप वाक़ई मेरा इंटरव्यू लेना चाहते हैं। मैं इस फ़िल्म का अभिनेता नहीं हूं, मैंने तो बस गाने लिखे हैं।

प्यारेलाल जी ने मुझे बताया था–*'लक्ष्मी, मैं और बख़्शी जी परेल में एक तमिल फ़िल्म का ट्रायल शो देखकर कारदार स्टूडियो से बाहर आए। इसी फ़िल्म को हिंदी में 'मिलन' के नाम से बनाया जाना था। हम प्रभादेवी पर एक पान की दुकान पर रूके, लक्ष्मी हमेशा वहीं पर पान खाते थे। जब पान तैयार हो रहा था तो बख़्शी जी बहुत ख़ुश थे कि इस बड़ी फ़िल्म में हम तीनों को एक साथ काम करने का मौक़ा मिल रहा है। वो जज़्बाती हो गए और बोले– 'मुबारक हो सबको, समां ये सुहाना, मैं ख़ुश हूं मेरे आंसुओं पे ना जाना'। आगे चलकर इन पंक्तियों ने इस फ़िल्म के एक गाने का रूप ले लिया।*

39. **'सावन का महीना, पवन करे सोर, जियरा रे झूमे ऐसे जैसे बन मां नाचे मोर'। फ़िल्म मिलन। सन1967 , संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।**

'मेरे मन में इस गाने का मुखड़ा–सावन का महीना, पवन करे सोर ...तब आया था जब मैं और लक्ष्मीकांत फ़ेमस स्टूडियो के बाहर पान खा रहे थे। पान वाला किसी से बात कर रहा था और वो लगातार 'शोर' की बजाय 'सोर' कहे जा रहा था। मैंने मुखड़ा लक्ष्मीकांत को सुनाया और ये उन्हें पसंद आया। मैंने जल्दी ही इसके सारे अंतरे लिख डाले'।

'मेरी नज़र में मेरा कौन-सा गाना मेरा पहला हिट गाना है? या कब मुझे ऐसा लगा कि मैं एक गीतकार के रूप में स्थापित हो गया हूं? एक सबसे लोकप्रिय गाना वो होता है जो बिना किसी मार्केटिंग के आपके शहरों को पार करके गांव तक जा पहुंचे। ये साठ के दशक के आखिर की बात थी, जब लोग ये कहने लगे थे कि आनंद बख़्शी एक गीतकार के रूप में स्थापित हो चुके हैं। पर मैंने उनकी तारीफ़ों पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। एक दिन मैं फ्रंटियर मेल से बंबई से दिल्ली जा रहा था, रात के दो या तीन बजे थे, दूर-दराज़ के एक

राकेश आनंद बक्शी

गांव में ट्रेन रूक गयी। उस स्टेशन पर केरोसिन के लैंप जल रहे थे। वहां मैंने सुना कि कोई 'मिलन' का एक गीत गा रहा है'।

'मैं दंग रह गया। अपने केबिन से बाहर आया और ट्रेन के दरवाज़े पर खड़ा हो गया ताकि अंधेरे में उस सर्दीली रात में पहचान सकूं कि कौन है जो ये गाना गा रहा है। प्लेटफार्म के किनारे पर बरगद के एक विशाल पेड़ के नीचे एक व्यक्ति बैठा था और गा रहा था–'सावन का महीना पवन करे सोर'। वो एक फ़कीर था जो अपने तंबूरे को बजाते हुए गाना गा रहा था। वो बेचारा एक छोटे से गांव में रह रहा था जहां बिजली तक नहीं थी और वो हमारा गाना गा रहा था। ज़ाहिर है कि गाने की वजह से उसे लोगों से पैसे मिल जाते होंगे और उसके खाने का इंतज़ाम हो जाता होगा। इसका मतलब हमारा गाना कहीं किसी का पेट भर रहा था। यही नहीं, मेरे लिए ये बड़ी बात थी कि गाना देश के बीचोंबीच इस फ़कीर के कानों तक पहुंचा, वे भी बिना किसी प्रचार या मार्केटिंग के, बिना फ़िल्म पत्रिकाओं की मदद के। मैं फ़ौरन ट्रेन से उतर गया और उस फ़कीर को कुछ पैसे दिये और उसका आर्शीवाद लिया। तभी ट्रेन ने सीटी बजायी और मैं प्लेटफार्म पर सरकती ट्रेन में चढ़ गया'।

'गांव अंधेरे में गुम हो गया, सर्दी की कंटीली हवा मेरे चेहरे पर पड़ रही थी। मैंने खिड़की बंद कर ली। उस वक़्त मुझे ये अहसास हुआ कि मैं जिन प्यारे-से लोगों के लिए लिखता हूं, उन्होंने ना सिर्फ़ मुझे स्वीकार कर लिया है बल्कि मुझे गले भी लगाया है। एक फ़कीर, जो लोकगीत गाकर अपना गुज़ारा करता है, वो मेरा लिखा गाना गा रहा था। फ़िल्म-इंडस्ट्री में अपने शुरूआती सालों में ये मेरा सबसे बड़ा ईनाम था, सबसे बड़ा पुरस्कार, जबकि उन दिनों मुझे लगातार ये उलझन रहती थी कि क्या मेरे गाने आम आदमी को लुभा भी पाते हैं'।

'फ़िल्मों में आने से पहले मैं एक आम आदमी था और कई महान कलाकार थे जिन्होंने मुझे इस सफ़र में प्रेरणा दी थी। मेरा मक़सद था अपने गानों के ज़रिए एक आम आदमी का दिल जीत सकूं। लोकगीत और लोक-संगीत बचपन से ही मेरी प्रेरणा रहे थे। मैंने चार दशक के अपने सफ़र में इन दोनों रूपों को अपने गानों में उतारने की कोशिश की है। मेरे कई गाने ऐसे हैं जिनमें लोकगीतों की, गांव की सोंधी मिट्टी की महक है। मैंने मुख्य रूप से पंजाबी लोकगीतों को अपने गानों का आधार बनाया। अगर लोगों को मेरे गाने पसंद आते हैं तो इसकी वजह ये है कि मेरे कई गाने पंजाबी के मशहूर लोकगीतों की शैली में लिखे गए हैं। हालांकि मैं फ़िल्मों में स्थापित हो गया, ऐसा मुझे अभी भी नहीं लगता, मुझे अभी अपना सबसे अच्छा गाना लिखना बाक़ी है'।

मुकेश और आनंद बख़्शी को 'सावन का महीना' के लिए फ़िल्मफ़ेयर अवॉर्ड मिलने की संभावना थी। जब ऐसा नहीं हुआ तो बख़्शी बहुत निराश हो गए थे। उन्हें ये लगा था कि इसके बाद वो कभी फ़िल्मफ़ेयर अवॉर्ड नहीं जीत पायेंगे, क्योंकि वो कभी इससे बेहतर गाना नहीं लिख पायेंगे। डैडी और मुकेश अवॉर्ड के आयोजन के बाद जुहू में सन-एंड-सैंड होटल के बार में गए और उस रात उन्होंने ख़ूब शराब पी।

40. '**राम करे ऐसा हो जाए, मेरी निंदिया तोहे मिल जाए, मैं गाऊं तो सो जाए'। फ़िल्म 'मिलन'। संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।**

ये गाना मुझे अपने बचपन की याद दिलाता है जब डैडी मुझे थपकी देकर सुलाते थे। मुझे अभी भी अपनी पलकों पर उनकी लंबी और नरम उंगलियों का अहसास होता है। छह फुट से ज़्यादा लंबे मेरे डैडी काफी नरमदिल थे। ठीक से याद नहीं पर शायद वो इसी गाने की धुन गुनगुनाया करते थे। जब ये फ़िल्म रिलीज़ हुई तो मेरी उम्र तीन बरस थी। मुझे ठीक से याद नहीं कि वो कौन सी लोरी, किस धुन में गाकर हम बच्चों को सुला दिया करते थे। पर मुझे उनकी चौड़ी और मोटी उंगलियां ज़रूर याद हैं। उनका वो मज़बूत पर नरम हाथ जो वो मेरे माथे पर रखते थे। उन्हीं हाथों ने इस किताब का एक बड़ा हिस्सा लिखा है।

41. **'बोल गोरी बोल, तेरा कौन पिया, कौन है वो जिससे तूने प्यार किया'। फ़िल्म 'मिलन'। संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल।**

ये आनंद बख़्शी का लिखा एक और सवाल-जवाब का गाना है। उन्होंने इस शैली के कई यादगार गाने लिखे हैं। सभी रूमानी गाने हैं। ऐसा एक और गाना है फ़िल्म 'मेरा गांव मेरा देश' का—*'कुछ कहता है ये सावन, क्या कहता है, शाम-सवेरे दिल में मेरे तू रहता है'।* सन 1967 में उनका एक और गाना आया था, जिसे काफ़ी तारीफ़ मिली थी। ये गाना था 'नाइट

राकेश आनंद बख़्शी

इन लंदन' का–*'बाहोशो हवास मैं दीवाना, ये आज वसीयत करता हूं'।*

इसके बाद बॉक्स ऑफिस पर कई सुपर हिट फ़िल्में आयीं। कुछ फ़िल्मों के नाम तो फ़ौरन मेरे ज़ेहन में आ रहे हैं फ़र्ज़ (1967), राजा और रंक (1968), तक़दीर (1968), जीने की राह (1969), आराधना (1969)- वो फ़िल्म जिससे राजेश खन्ना के स्टारडम का रास्ता तैयार हुआ। दो रास्ते (1969), आन मिलो सजना (1970), अमर प्रेम (1971)–एक के बाद एक हिट फ़िल्में आती चली गयीं। इसके बाद गीतकार आनंद बख़्शी को कभी काम मांगने की ज़रूरत नहीं पड़ी। ये उनके बंसी वाले की कृपा थी और उनकी तक़दीर और तदबीर का कमाल था। सन 2002 में उनके निधन तक लगातार उनके पास काम आता चला गया। उन्होंने ज़िंदगी में अपना मक़सद हासिल कर लिया था। सत्तर के दशक के मध्य से आगे तो डिस्ट्रीब्यूटर अकसर प्रोड्यूसरों से पूछते थे कि क्या इस फ़िल्म में आनंद बख़्शी के गीत हैं?

ये जो क़रीब चालीस कामयाब गाने हैं, ये उनके करियर के पहले दशक के गाने हैं, जिन्होंने आनंद बख़्शी को वो इज़्ज़त दिलवायी, जिसकी तमन्ना हर लिखने वाला करता है। अब उनकी कामयाबी को तुक्का और उन्हें तुकबंदी करने वाला गीतकार नहीं समझा जाता था। बल्कि अब तो आनंद बख़्शी का नाम साहित्यिक दायरों में भी बड़ी इज़्ज़त से लिया जाने लगा था।

लेकिन उनके कुछ ऐसे चाहने वाले थे, जिन्हें उनके गीतों की क़ीमत सन 1959 के ज़माने से ही पता थी। उन्होंने अपना करियर कुछ कामयाब संगीतकारों के साथ शुरू किया था, जैसे रोशन, एस .डी .बातिश, एस .मोहिंदर और नौशाद। और आने वाले पैंतालीस सालों में उन्होंने तकरीबन 95 संगीतकारों के साथ काम किया। उन्होंने कुल 303 फ़िल्में लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के साथ कीं। 99 फ़िल्में राहुल देव बर्मन के साथ कीं, 34 फ़िल्में कल्याणजी आनंदजी के साथ कीं और चौदह फ़िल्में सचिन देव बर्मन के साथ कीं।

राकेश आनंद बख्शी

मोहिंदर सिंह (एस .मोहिंदर)

तकरीबन सौ गायकों ने उनके गाने गाए। लता मंगेशकर ने जितने गाने आनंद बख़्शी के गाए हैं, उतने किसी और गीतकार के नहीं गाए। साठ के दशक में अपने करियर की शुरूआत से ही उनके गाने स्टार गायकों ने गाए, जैसे अमीरबाई कर्णाटकी, मुबारक बेगम, शमशाद बेगम, मधुबाला ज़वेरी, ख़ुर्शीद बावरा, आशा भोसले, सुमन हेमाड़ी कल्याणपुर, सुधा मल्होत्रा, (गीता रॉय दत्त,) मन्ना डे, महेंद्र कपूर, किशोर कुमार और मुकेश सहित अन्य कई गायक गायिकाएं।

‘मैं ख़ुशकिस्मत था कि मुझे कुछ स्टार संगीतकारों, गायकों, अभिनेताओं, निर्देशकों और निर्माताओं का साथ मिला। ये सभी फ़िल्में कामयाब रहीं। कामयाबी से बढ़कर कुछ नहीं होता। बॉक्स ऑफिस पर कामयाबी से ही हमारी क़ीमत तय होती है। फ़िल्मकारों के लिए बाक़ी कुछ मायने नहीं रखता।

***

तीन पसंदीदा संगीतकार

सचिन देव बर्मन दा।

एस .डी .बर्मन साठ के दशक के चोटी के संगीतकारों में से एक थे। जब बख़्शी बंबई में नये आए थे तो उन्होंने बहुत कोशिश की थी कि सचिन दा उनकी कविताएं सुन लें।

'शुरूआत में बर्मन दा ने मुझे एक गीतकार के रूप में गंभीरता से नहीं लिया। उन्हें लगा कि मैं तो गायक बनने आया हूं और मुझे सिर्फ़ गाने पर ही फ़ोकस करना चाहिए। मैंने कई बार एस .डी .बर्मन से मिलने की कोशिश की, पर उनके पास कभी भी वक़्त नहीं होता था। वो बहुत बड़ा नाम थे और बहुत व्यस्त थे। मैं खार में उनके घर के बाहर उनसे मुलाक़ात का इंतज़ार करता रहता था।

'एक दिन शैलेंद्र गाने की सिटिंग के लिए नहीं आ सके, बर्मन दा के सहायक ने उनसे कहा कि एक बिलकुल नया गीतकार है जो आपसे मिलना चाहता है। बर्मन दा ने हां कर दी। मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। मैं बर्मन दा के घर में बड़ी उम्मीदों और ख़ुशी के साथ घुसा। आख़िरकार मेरी मुलाक़ात सचिन दा से हो रही है, मैं उन्हें अपनी कविताएं सुनवाऊंगा। उन्होंने मुझसे थोड़ी देर इंतज़ार करने को कहा क्योंकि वो किसी फ़िल्म के गाने की धुन बना रहे थे, जिसके गीतकार शैलेंद्र थे।

'अभी मैं अपनी डायरी भी नहीं खोल पाया था कि तभी बर्मन दा के सहायक आये और बोले, शैलेंद्र की दूसरी मीटिंग रद्द हो गयी है और वो यहां आने के लिए निकल पड़े हैं। अब वो किसी भी पल आ सकते थे। पता नहीं क्यों बर्मन दा एकदम से घबरा गए। उन्होंने मुझसे कहा कि शैलेंद्र के आने से पहले तुम भाग जाओ, क्योंकि जब शैलेंद्र देखेगा कि दूसरे गीतकार के साथ उनके तयशुदा समय पर मीटिंग चल रही है तो वो नाराज़ हो जायेगा। शैलेंद्र बहुत बड़े गीतकार थे, इसलिए मैं भी घबरा गया। मुझे लगा कि अब मैं क्या करूं'।

'जब मैं दरवाज़े से बाहर निकल ही रहा था तो बर्मन दा ने मुझे रोक दिया। उन्होंने कहा कि तुम सामने वाले दरवाज़े से मत जाओ, हो सकता है कि तुम्हें शैलेंद्र मिल ही जाएं। उन्होंने कहा कि तुम पीछे की खिड़की से कूदकर चले जाओ। मैंने ऐसा ही किया। पर मैं बरामदे की ऊंची दीवार पर आसानी से नहीं चढ़ पा रहा था। इसलिए बर्मन दा ने मुझे सहारा दिया ताकि मैं ऊपर चढ़ सकूं।

'आगे चलकर सन 1964 में मैंने बर्मन दा के साथ तीन गाने लिखे। इनमें से दो लता मंगेशकर ने गाए थे :'अनजाने में इन होठों पे' और 'धन वालों का ये ज़माना'। बदकिस्मती

राकेश आनंद बक्शी

से ये दोनों गाने ही रिलीज़ नहीं हो पाये। हमने 'मैंने पूछा चाँद से' सन 1965 में मोहम्मद रफ़ी की आवाज़ में रिकॉर्ड किया था, पर ये फ़िल्म नहीं बन सकी। चौदह साल बाद उनके बेटे राहुल देव बर्मन ने सन 1979 में ये गाना संजय ख़ान की फ़िल्म 'अब्दुल्ला' के लिए दोबारा रिकॉर्ड किया। ये असल में एक कविता थी, जो मैंने यूं ही लिख ली थी। ये उन साठ कविताओं में से एक थी जिन्हें लेकर मैं फौज छोड़कर बंबई आया था। अपना नसीब' आज़माने के लिए।

'बर्मन दा के साथ मेरी पहली रिलीज़ फ़िल्म बनी सन 1969 में आई 'आराधना'। इसके गाने बहुत हिट हुए और राजेश खन्ना इस फ़िल्म के ज़रिए एक बड़े स्टार बन गए। बर्मन दा से मैंने एक बहुत ही ज़रूरी सबक़ सीखा। हालांकि मैं इस बात से वाक़िफ़ था, पर बर्मन दा ने इस बात को मेरे मन पर अच्छी तरह अंकित कर दिया। वो कहते थे–'कहानी का नैरेशन ध्यान से सुनो। जो गाने तुमको लिखने हैं, वो हमेशा कहानी में होते हैं। कहानी में ही गाना है'।

एक दोपहर आनंद बख़्शी और उनके क़रीबी दोस्त हरि मेहरा खार स्टेशन के पास एक दुकान में पान खाने गए। जब वो लौट रहे थे तो रास्ते में एक बड़ी ख़ूबसूरत लड़की जा रही थी। दोनों में से किसी ने कमेन्ट किया–'वाह क्या रूप पाया है'। आनंद बख़्शी ने फ़ौरन सांताक्रूज़ में गुलमोहर के एक पेड़ के नीचे गाड़ी रोक दी और हरि से कहा कि दस मिनिट तक तुम एकदम चुप रहना। उन्होंने वहीं बैठकर गाना पूरा कर लिया। जब फ़िल्म 'आराधना' रिलीज़ हुई तो हरि और बख़्शी दोनों ने फ़िल्म साथ में देखी। बख़्शी ने हरि से बताया कि एक दिन गुलमोहर के पेड़ के नीचे गाड़ी खड़ी करके उन्होंने जो गाना लिखा था, वो यही था

–'रूप तेरा मस्ताना, प्यार मेरा दीवाना, भूल कोई हमसे ना हो जाए'।

इस तस्वीर में, बाईं ओर से एक अंजान व्यक्ति, फ़िल्म सेन्टर के रमेश पटेल, गुलशन नंदा, आनंद बख़्शी, शक्ति सामंत, सुबोध मुखर्जी, विजय आनंद, नासिर हुसैन, अंजान व्यक्ति, प्रमोद चक्रवर्ती, पंचम, मदन पुरी, अंजान व्यक्ति।
खड़े हुए लोग :श्रीमती गुलशन नंदा, श्रीमती नीलिमा सामंत, श्रीमती नीता, सचिन देव बर्मन, श्रीमती रमेश पटेल, श्रीमती प्रमोद चक्रवर्ती, श्रीमती नासिर हुसैन।

राकेश आनंद बख़्शी

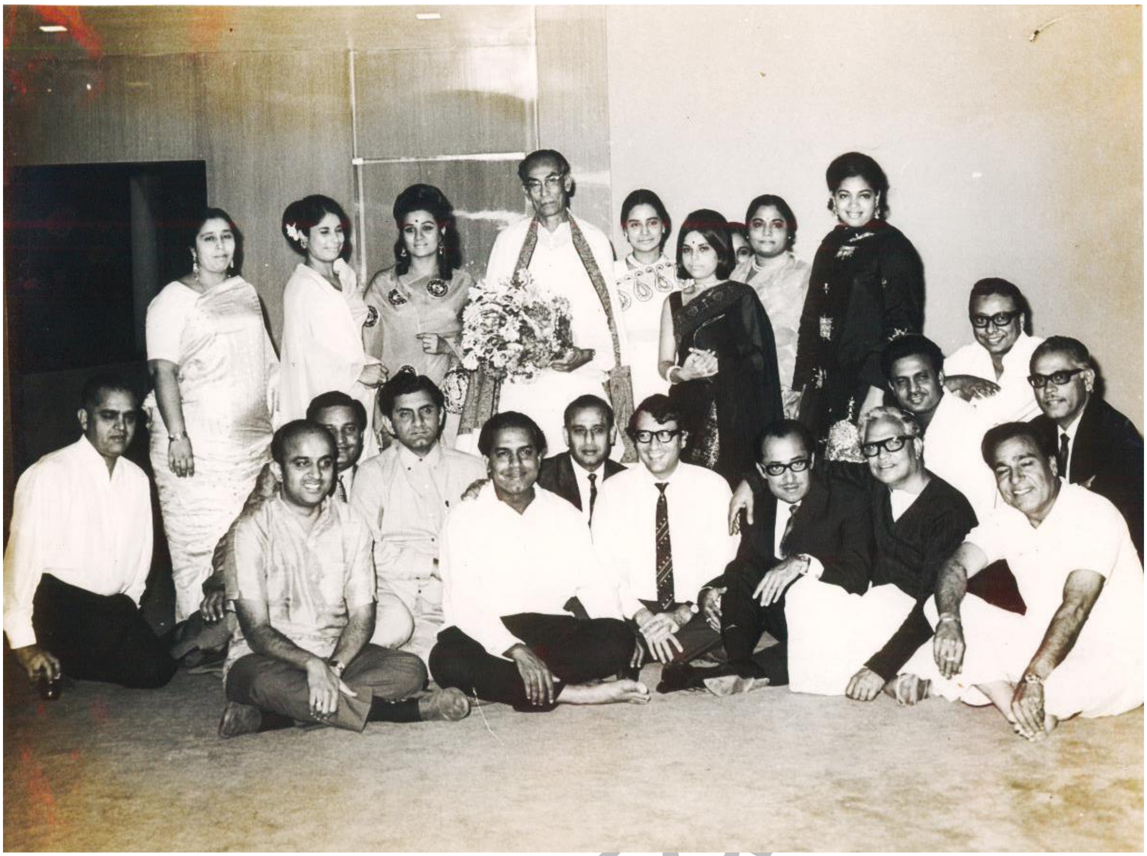

पंचम, राहुल देव बर्मन।

एक बार मैंने पूछा कि आर .डी .बर्मन की कौन सी ख़ासियत आपको सबसे बढ़िया लगती है। उन्होंने जवाब दिया, 'अगर निर्देशक उनकी ट्यून रिजेक्ट भी कर देता है तो पंचम को कोई दिक्कत नहीं होती। वो फ़ौरन दूसरी ट्यून पर काम करना शुरू कर देता है। वो हमेशा नयी से नयी ट्यून बनाने के लिए तैयार रहता था। जब मैंने कुछ धुनों में सुझाव दिये तो उसने ख़ुशी-ख़ुशी उन्हें स्वीकार किया और इस तरह धुनें बहुत बढ़िया बन गयीं। हमारी टीम बहुत शानदार थी'।

'हरे रामा हरे कृष्णा' फ़िल्म के एक गाने पर काम चल रहा था, तभी राहुल देव बर्मन ने डैडी कहा, 'मुझे सिगरेट पीने का आपका स्टाइल बड़ा अच्छा लगता है, ऐसा लगता है कि आप सिगरेट नहीं पी रहे हैं, आप दम मार रहे हैं'। ये सही बात थी। डैडी अलग-अलग वक़्त पर अलग-अलग उंगलियों में सिगरेट फंसाते थे, ये इस बात पर निर्भर करता था कि वो कितना तंबाकू भीतर लेना चाहते हैं। बहरहाल...आनंद बख़्शी को 'दम' वाली बात से याद आया कि कुछ लोग कहते हैं, 'दम मारो और सब भूल जाओ'। उन्होंने फ़ौरन ही लिखा–'दम मारो दम, मिट जाए ग़म, बोलो सुबहो-शाम, हरे कृष्णा हरे राम'।

देव आनंद इस गाने को फ़िल्म में इस्तेमाल नहीं करना चाहते थे क्योंकि ये गाना प्रेरणा देने वाले एक गाने से पहले आ रहा था, 'देखो ओ दीवानो, तुम ये काम ना करो, राम का नाम बदनाम ना करो'। हालांकि आर .डी .बर्मन और आनंद बख़्शी ने देव साहब को इस गाने को फ़िल्म में रखने को राज़ी किया। इसके आगे जो कुछ हुआ, वो एक इतिहास है।

जिस दौर में बंबई में शराब पर पाबंदी थी, राहुल देव बर्मन और डैडी खार डांडा में एक अनजान जगह पर सस्ती देसी शराब पीने जाया करते थे। उस समय दोनों की हैसियत नहीं थी कि वो महंगी शराब ख़रीद सकें। एक बार पुलिस ने उस जगह पर छापा मार दिया। दोनों वहां से भाग खड़े हुए। देखा तो सामने समंदर था। वो अड्डा मछुआरों के गांव के एक किनारे पर था। वो सारी रात दलदल में छिपे रहे। जब सुबह उजाला हुआ तो वहां से निकले और उन्होंने क़सम खायी कि दोबारा कभी उस अड्डे पर नहीं जायेंगे।
एक बार सलीम ख़ान साहब ने मुझसे कहा था,-*'तुम्हारे डैडी पंचम के पक्के दोस्त थे। हालांकि हम बहुत अच्छे दोस्त थे, पर उन्होंने कभी मुझसे कोई मदद नहीं मांगी। एक बार जब वो मदद मांगने आये भी तो राहुल देव बर्मन के लिए। उन्होंने कहा कि आप अपनी जान-पहचान के निर्माता-निर्देशकों से कहें कि वो पंचम को साइन करें। ये आर .डी .बर्मन की मौत से कुछ महीने पहले की बात है। तब उनकी फ़िल्म '1942: ए लव स्टोरी' रिलीज़ भी नहीं हुई थी। मैं समझता हूं कि ये तुम्हारे डैडी की दोस्ती, उनके समर्पण और उनकी हिमायत की निशानी थी'।*

लक्ष्मीकांत प्यारेलाल

लक्ष्मीकांत प्यारेलाल और मेरी टीम ने एक साथ कमाल का काम किया है। इसकी वजह ये थी कि हम एक दूसरे को समझते थे, एक दूसरे की इ़ज़्ज़त करते थे। सबसे बड़ी बात ये कि हमने हर थोड़े दिनों में हिट फ़िल्में दीं। फ़िल्म उद्योग वो जगह है जहां सिर्फ कामयाबी मायने रखती है। यहां उगते हुए सूरज को सलाम किया जाता है। आपकी आखिरी फ़िल्म की कामयाबी ही आपकी असली कामयाबी है बस। एक ज़रा-सी नाकामी कई सालों के प्यार और दोस्ती को ख़त्म कर देती है। यही वजह है कि मैं नहीं चाहता था कि मेरे बच्चे फ़िल्म उद्योग में आएं।

'लक्ष्मी-प्यारे और मैं एक-दूसरे के मिज़ाज को अच्छी तरह समझते थे। हमारे बीच कमाल की ट्यूनिंग थी। हमारे सुर वैसे ही मिले हुए थे जैसे अलग-अलग साज़ों को एक सुर में मिलाया जाता है। इसलिए हमारी जोड़ी तीस बरस से ज़्यादा चलती रही। तीन सौ से ज़्यादा फ़िल्में हमने साथ कीं। इनमें से कई फ़िल्में बॉक्स ऑफिस पर बड़ी कामयाब रहीं, इसलिए फ़िल्मकार हमें साथ में साइन करना चाहते थे। इस इंडस्ट्री में काफी अंधविश्वास चलता है'।

प्यारेलाल शर्मा जी ने एक बार मुझसे कहा था-*'मैंने तुम्हारे डैडी को सबसे पहले सन 1961 में देखा था, तब कल्याणजी-आनंदजी की फ़िल्म 'फूल बने अंगारे' के गाने की रिकॉर्डिंग चल रही थी। मैं तुम्हारे डैडी के लिखे गाने में वायलिन बजा रहा था-'चाँद आहें भरेगा, फूल दिल थाम लेंगे, हुस्न की बात चली तो, सब तेरा नाम लेंगे'। लक्ष्मी जी ने इस गाने के बोल सुने तो हमने फ़ैसला किया कि जब हम स्वतंत्र संगीतकार बन जायेंगे तो हमें आनंद बख़्शी के साथ भी काम करना चाहिए। इसके चार साल बाद हमारी एक साथ पहली फिल्म आई - मिस्टर एक्स इन बॉम्बे (1964)। इस फिल्म का गाना–'मेरे महबूब क़यामत होगी, आज रुसवा तेरी गलियों में मुहब्बत होगी'–सुपरहिट हुआ था। तब से इस गाने को अलग अलग बैंड और संगीतकारों ने बार-बार नया रूप दिया है। सच कहूं तो मैं मानता हूं कि तुम्हारे डैडी गायक और संगीतकार बनने के लिए बंबई आए थे, लिखना तो उनका बस एक शौक़ था'।*
(मुस्कुराते हैं)

राकेश आनंद बख़्शी

आनंद बख़्शी अपने गाने लिखने के लिए ना सिर्फ़ फ़िल्म की कहानी से प्रेरित होते थे बल्कि उनके भीतर जो आध्यात्मिकता थी वो भी उन्हें प्रेरणा देती थी।

NUMBER ONE!

Towering like his height in popularity and demand as a song writer, Anand Bakshi has been enjoying number one position for several years and has beaten his own record in 1977 when almost every fifth film released had lyrics by him (with the next highest scoring not even half of it) Another number one has been Laxmikant Pyarelal whose nine out of every ten films have lyrics by Anand Bakshi. Maintaining their top most positions Anand Bakshi and L. P. have to their credit over a dozen films released in 1977 including top most hits like "Amar Akbar Anthony" and "Dharam-Veer". It appears that wherever there is Laxmi (goddess of wealth) and Pyare (love) there is Anand (happiness and bliss) (Report on page five). Photo :

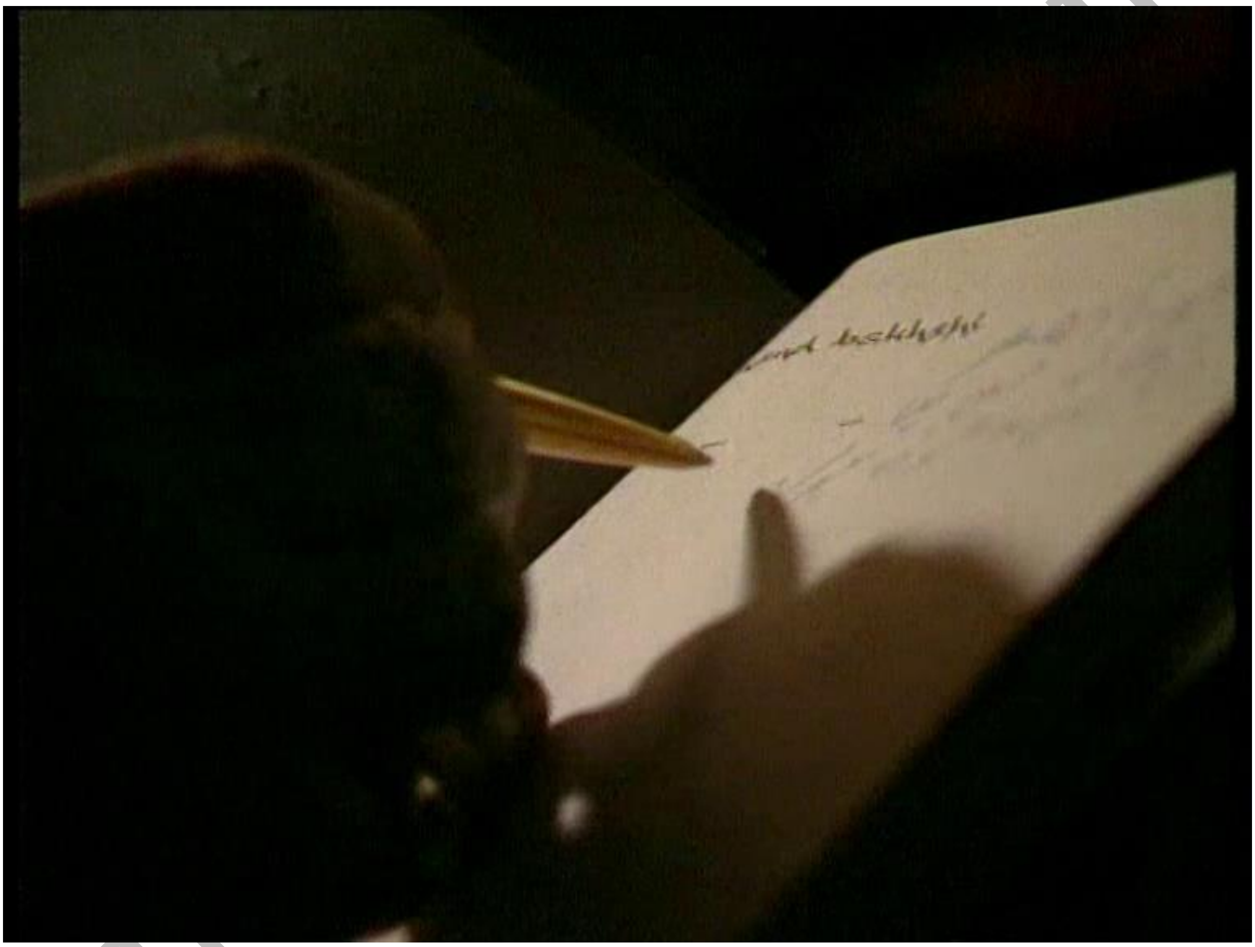

अध्याय 8

रूहानी रोशनी और ताक़त वाली शख्सियत

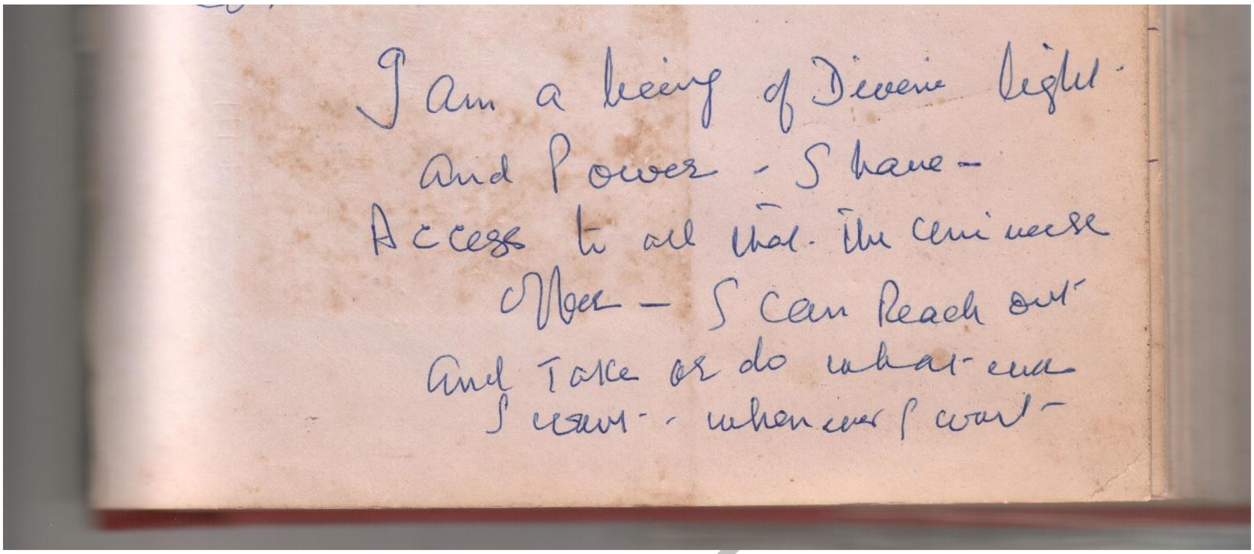
I am a being of Divine light
and Power - I have -
Access to all that the universe
offers - I can Reach out
and Take or do what-ever
I want - whenever I want -

एक बार आनंद बख़एक बार आनंद बख़्शी से पूछा गया कि क्या वो ख़ुद को बीते तीन दशक का सबसे बड़ा या सबसे लोकप्रिय गीतकार मानते हैं, तो उनका जवाब था-

'मैं हमेशा ये समझता आया हूं कि वक़्त सबसे बड़ा फ़नकार है। वही हमें उठाता है, वही गिराता है। इसलिए मैं हमेशा वक़्त का मुरीद रहा हूं'।

इस अध्याय में मैं आपको गाने लिखने के बारे में आनंद बख़्शी के कुछ विचार बताऊंगा। इनमें से उनके कुछ विचार मूल रूप से हिंदी और उर्दू में लिखे गए थे। ये एक गीतकार के रूप में उनकी पूरी पेशेवर ज़िंदगी के दौरान लिखे गए विचारों और बातों का संग्रह है। तो चलिए उन लाइनों से शुरू करते हैं–जो अपनी हर डायरी के पहले पन्ने पर लिखा करते थे।

'I am a being of divine light and power. I have-access to all that the universe has to offer. I can reach out and take or-do whatever I want, whenever I want.'

'मैं दिव्य प्रकाश और दिव्य शक्ति हूं। ब्रह्मांड जो कुछ मुझे देगा, मैं उसे खुले हाथों से स्वीकार करूंगा। मैं जो भी चाहूंगा, जब भी चाहूंगा–उसे हाथ बढ़ाकर ले सकूंगा'।

राकेश आनंद

उनके गीत समय की परीक्षा में खरे उतरे हैं। वे समय के साथ धुंधले नहीं पड़े। पचास के दशक के आख़िरी दौर में कुछ ऐसे शायर थे, जो बड़े कामयाब गीतकार भी थे और आनंद बख़्शी को कम आंकते थे। यहां तक कि जब अपनी कामयाबी की चोटी पर थे, तो पिछली पीढ़ी के कुछ गीतकार उनके लिखे गानों को अपने गानों से हल्का समझते थे। 'आनंद बख़्शी तुकबंदी करता है वो शायर है ही नहीं'। जब इस तरह की बातें सामने आतीं, तो बख़्शी हमेशा कहते–'मैंने कभी ये दावा नहीं किया कि मैं शायर हूं। वैसे भी ख़्याल अपना-अपना, पसंद अपनी अपनी'।

गीतकार आनंद बख़्शी- एक बिलकुल अलग शख़्सियत।

भारतीय फ़िल्मों के गीतों ने भक्ति संगीत, शास्त्रीय संगीत, लोक संगीत और पश्चिमी संगीत के बीच की ख़ाली जगह को भरा। इसलिए हुआ ये कि एक ही फ़िल्मी गीत को अलग-अलग इलाक़ों, भाषाओं और दायरे के लोगों ने पसंद किया। इस तरह अलग-अलग वर्गों, देशों और लोगों के बीच का भेद या लकीरें मिट गयीं। इसके बावजूद कुछ लोग फ़िल्मी-गानों को शायरी से कमतर मानते हैं। भक्ति-संगीत के कई महान गायक और कई नामी शायर एक ज़माने में फ़िल्मी-गानों को सस्ता और भ्रष्ट मानते थे। एक गीतकार भले ही कोई ख़ास इंसान ना होता हो, पर वो एक ख़ास तरह का शायर ज़रूर होता है। उसके लिए फ़िल्म की कहानी एक बहुत ज़रूरी तत्त्व होती है। असल में फ़िल्म की कहानी में ही उसे अपना गीत बुनना पड़ता है, जिसमें उसकी शायरी, उसके रूपक, उसका फ़लसफ़ा सब कुछ पिरोया हुआ हो। अकसर ही बख़्शी जी से उनकी कामयाबी का आधार या उसका राज़ पूछा जाता था। उनसे पूछा जाता था कि उनके इतने सारे गानों के पीछे कौन-सी प्रेरणा रही है। बख़्शी जी अपना राज़ उजागर करते हुए सहजता से और बेहिचक कहते थे, 'कहानी सुनकर ही दिमाग़ चलता है'। वो ये भी कहते थे कि 'रीडर्स डाइजेस्ट' ने मुझे एक लेखक और पिता के रूप में प्रेरित किया है'।

कई निर्देशकों ने मुझे बताया कि किसी फ़िल्म के गानों पर काम शुरू करने से पहले बख़्शी साहब कहते थे, 'मुझे शुरू से आखिर तक पूरी कहानी सुनायी जाए'। वो बार-बार कहानी सुनते थे। जब वो फ़िल्म की कहानी अपने भीतर आत्मसात कर लेते थे तो भूकंप तक उनका ध्यान नहीं डिगा सकता था। हालांकि उनके लिए कहानी सबसे ज़्यादा मायने रखती थी, इसके बावजूद उनके भीतर का गीतकार.... संगीतकार की भूमिका को समझता था और उसका सम्मान करता था। वो जानते थे कि गीतकार, संगीतकार और गायक की जो तिकड़ी है–वही गाने में जान डालती है।

आज के ज़माने में अकसर गायक को बाक़ियों से ज़्यादा महत्व दिया जाता है। कुछ ऐसे प्लेटफ़ार्म हैं, जहां संगीतकारों और गीतकारों का नाम तक नहीं दिया जाता है। एक अच्छा गीत

राकेश आनंद बख़्शी

वो होता है जिसकी जड़ें फ़िल्म की कहानी में अच्छी तरह भीतर धंसी हों, जो स्क्रिप्ट को आगे बढ़ाता हो। आजकल ऐसा कम ही होता है। आनंद बख़्शी के लिए फ़िल्मों के गाने लिखना एक चुनौती थी, क्योंकि गीतकार को स्क्रिप्ट के दायरे में काम करना पड़ता है। ज़ाहिर है कि उसे अपनी बात ख़ूबसूरती से कहने के लिए बहुत कम आज़ादी मिलती है। ये सच है कि एक गीतकार एक शायर की तरह ख़्यालों की उड़ान भर सकता है, पर उसकी उड़ान का दायरा कहानी के आसमान तक सीमित रहता है। यही बात गीतकारी को शायरी की तुलना में कठिन बना देती है। एक शायर या कवि के उलट गीतकार को अपना हुनर खोए बिना दूसरों के साथ तालमेल बैठाकर चलना पड़ता है। पंडित नरेंद्र शर्मा ने फ़िल्मी-गीतकारी की कला के बारे में एक बड़ी शानदार बात कही है–'फ़िल्मी गीतकार सुनने वाले को प्रेरित करता है, उसका मनोरंजन करता है। उसे तकरीबन ये यक़ीन दिला देता है कि वो ख़ुद इस गाने का गीतकार, संगीतकार या गायक हो सकता है'।

गीतकारी का सरोसामां-

'अपने परिवार की सुरक्षा मेरे लिए सबसे बड़ा मक़सद रहा है। नये साल पर मैं हमेशा ख़ुद से यही वादा करता था कि मैं अपने परिवार को ख़ुश और सुरक्षित देखना चाहूंगा, मेरे पास काम हो, जिससे मेरा दिलोदिमाग़ और हाथ व्यस्त रहें-'।

'बचपन में मैंने शौकिया तौर पर लिखना शुरू किया था जो बड़े होने पर एक जुनून और बाद में करियर बन गया और जल्दी ही मेरे परिवार के लिए आर्थिक सुरक्षा का ज़रिया भी बना। आज मैं इसलिए लिखता हूं क्योंकि मैं इसके बिना नहीं रह सकता। कुछ गाने मैंने अपना घर चलाने के लिए लिखे। कुछ मैंने दिल से लिखे। अपने संगीतकारों, फ़िल्मकारों और परिवार के लिए सबसे अच्छा काम करना मेरा परम कर्तव्य रहा है। मुझे अपना काम करने के ही तो पैसे मिलते हैं'।

'एक दिन शो ख़त्म हो जायेगा। मेरी कहानी ख़त्म हो जायेगी। ये कड़वा सच है कि दुनिया में सब चीज़ें एक दिन ख़त्म होती हैं। जैसे मैंने दूसरे गीतकारों के बीच अपनी जगह बनायी वैसे ही नये गीतकार आकर अपनी जगह बनायेंगे। वो अपनी नयी और बेहतर शैली से, अपने अलफ़ाज़ से लोगों पर अपना जादू चलायेंगे। जीवन का ये चक्र लगातार जारी रहता है। अगर मेरे गाने इसी तरह चलते रहें तो मैं ख़ुश रहूंगा। अगर गाने नहीं चलते हैं, तो कोई बात नहीं। दुनिया ख़त्म नहीं हो जायेगी। एक शायर अपने अशआर अमर होने के लिए लिखता है पर मैं बतौर एक फ़िल्मी गीतकार कहानी और फ़िल्म की सिचुएशन के मुताबिक़ लिखता हूं। जब कभी कहानी से मुझे प्रेरणा नहीं मिली, तो मुझे और ज़्यादा मेहनत करनी पड़ी है ताकि

राकेश आनंद बख़्शी

मैं अपने गीतों में जान डाल दूं'।

'मेरे कुछ गानों का रिदम दिल की धड़कनों जैसा लगता है। मैंने कुछ गाने दिल की धड़कनों की ताल पर लिखे हैं। मेरे गाने उसी तरह धड़कते हैं, जैसे दिल धड़कते हैं'।

'गाने लिखने का असर मेरे दिल पर पड़ा है। एक दिन ये हो सकता है कि मैं लिख ही ना पाऊं। या लोगों को मेरी ज़रूरत ही ना रहे। लेकिन इससे पहले कि फ़िल्मी दुनिया मुझे छोड़े, मैं इसे छोड़कर चला जाऊंगा। मैं जब भी जाऊंगा एक विजेता की तरह जाऊंगा। हारे हुए की तरह नहीं। मैं दिलेरी के साथ जिया हूं और दिलेरी से ही मरूंगा। फ़ौज में मुझे यही सिखाया गया है'।

'मैं जब बंबई आया तो मेरी बहुत सारी कमज़ोरियां थीं। यहां मैं किसी को जानता नहीं था और परिवार से मुझे किसी तरह का हौसला या मदद नहीं मिल रही थी। आज मुझे समझ में आता है कि मेरे पास एक बहुत बड़ी ताक़त थी। मैं गा सकता था और अपने गीतों के साथ पंजाबी लोक धुनें सुझा सकता था। मेरी परवरिश इसी माहौल में हुई थी। मैं बचपन से ही दोस्तों के सामने अपने लिखे गानों की धुन बनाकर गाता रहा था। जब फ़ौज में गया तो वहां भी साथियों के सामने गाता रहा। तब मुझे पता नहीं था कि मुझे इसका फ़ायदा मिलेगा। बचपन में मैं जो गाने गाता था, उसी ने किशोरावस्था में मुझे कविताएं लिखने की प्रेरणा दी'।

'मैं फ़िल्मी गाने कैसे लिखता हूं? हमेशा सबसे पहले मैं पूरी कहानी सुनता हूं, प्लॉट को समझता हूं, किरदारों की गहराई में जाता हूं और उसके बाद एक-एक गाने की सिचुएशन के बारे में जानता हूं। मुझे लगता है कि मैं सुनने में माहिर हूं। अच्छी कहानियों में अच्छे गाने छिपे होते हैं। बस आपको सिचुएशन में से उस गाने को निकालने का हुनर आना चाहिए। फ़िल्म-लेखक और निर्देशक से मुझे जो सिचुएशन मिलती है, मैं उसमें से गाने निकाल लेता हूं। इसके बाद मैंने जो कुछ सुना, उसके बारे में संगीतकार और निर्देशक के साथ कई बार बातचीत करता हूं। इसके बाद ही हम एक साथ आगे बढ़ते हैं, धुन बनाते हैं और गाना रचते हैं। कहानी में ही गाने होते हैं। मैं लिखते हुए हमेशा ये कल्पना करता हूं कि गाना स्क्रीन पर कैसा दिखेगा। हालांकि तब मुझे पता नहीं होता कि निर्देशक असल में उसे कैसे शूट करने वाला है। सुभाष घई जैसे फ़िल्मकार मेरे लिखे गीत को बहुत ख़ूबसूरती से फ़िल्मा कर उसे नई ऊँचाई दे देते हैं'।

'अच्छे निर्देशक मुझसे अच्छे गाने लिखवा लेते हैं क्योंकि वो अपनी अच्छी कहानियों से मुझे प्रेरित करते हैं और कई बार अपनी ज़िंदगी के अपने तजुर्बे भी मुझे बताते हैं। एक अच्छा निर्देशक मुझे गाना लिखने से भी पहले अपने मन में उसकी कल्पना करने में मदद करता

राकेश आनंद बक्शी

है। अच्छे निर्देशक गीतकारों और संगीतकारों को प्रेरित करते हैं, इसलिए अच्छे संगीत में उनका अपना भी योगदान होता है। अच्छा संगीत और अच्छी फ़िल्में एकदूस-रे को आगे बढ़ाते हैं। अमूमन मुझे कहानी के बारे में अच्छी तरह जानने में जितना ज़्यादा वक़्त लगता है, गाना लिखने में उतना वक़्त नहीं लगता'।

'मैं कहानी, किरदारों, यहां तक कि उन कलाकारोंजिन पर गाना फ़िल्माया जाने वाला है–, और वो गायक जो गाना गाने वाले हैं, इन सबका ख़्याल रखता हूं। लोक गीतों का रिदम और- उनकी धुन भी अकसर मुझे प्रेरणा देती है। सत्रह बरस जब मैं पिंडी में रहा तो मैंने इतने लोकगीत और फ़िल्मी गाने सुने कि अब जो कुछ लिखता हूं आसानी से उसकी धुन बना सकता हूं। हालांकि कहानी मेरी प्रेरणा की मज़बूत जड़ होती है। उसके बाद ज़िंदगी के मेरे अपने अनुभव और बाक़ी सब चीज़ें आती हैं। मैंने कभी अपनी गीतकारी में शायरी करने की कोशिश नहीं की, अगर शायरी आ भी गयी है, तो सहज रूप से आई है, ख़्याल की उँगली पकड़कर आयी है। कोशिश करने से नहीं आयी। जब मैं लिखता हूं तो कभीक-भी सीटी बजाता हूं, कभी गुनगुनाते हुए लिखता हूं। इस तरह मुझे लिखने में मदद मिलती है, और मेरे शब्द सही मीटर में आ जाते हैं'।

'कभीकभी मैं संगीतकारों को धुन भी सुझाता हूं-, अब ये उन पर निर्भर करता है कि वो उसका इस्तेमाल करते हैं या नहीं। कभीकभी वो मुझसे क-हते हैं कि जो कुछ आपने लिखा है कि उसे गाकर बताइये, पढ़कर नहीं। इस तरह उन्हें समझ आ जाता है कि लिखते वक़्त मेरे मन में कौन सी धुन थी। या तो वो इसे बुनियाद की तरह इस्तेमाल करते हैं या फिर रद्द कर देते- हैं। कुछ गीतकारों को धुन पर लिखना पसंद नहीं है, जबकि मुझे पहले से तय धुन पर गीत लिखने में कोई एतराज़ नहीं होता। मैंने अपने अस्सी प्रतिशत गाने धुन पर ही लिखे हैं'।

'धुन पर लिखने का फ़ायदा ये है कि इससे गीतकार को लिखने के अलग अलग मीटर मिल- जाते हैं। जब आप गीत पहले लिखते हैं और बाद में उसकी धुन तैयार होती है तो इसका नुकसान ये है कि ज़रूरी नहीं गाना सुनने में उतना ही मीठा लगे। एक गीतकार को अपने अलफ़ाज़ और धुन के बीच एक बारीक संतुलन बनाना पड़ता है'।

'मुझे अपनी ज़िंदगी से एक और फ़ायदा मिला है, वो ये कि मैं बहुत घूमा-फिरा हूं। फ़ौज के ज़माने में अलग-अलग राज्यों और गांवों में गया हूं। इस तरह मुझे अलग-अलग लोगों से मिलने का मौक़ा मिला, उनके पसंदीदा गाने मैंने सुने और मैं ये समझ सका कि वो क्या बात है जो किसी गाने को लोकप्रिय बनाती है'।

राकेश आनंद बक्शी

'एक और चीज़ ऐसी थी जिसने मेरी सीधे तो नहीं पर अनायास मदद की है, और वो हैं मेरे डर। जब मेरी मां गुज़र गयीं, उसके बाद से मेरे मन में अकेले रहने का डर बैठ गया। मेरे मन में एक और डर मौजूद रहा है, वो है कहीं पैसों की तंगी ना हो जाए। ऐसे हालात का सामना मैंने पहली बार 2 अक्तूबर 1947 की रात को किया था, जब हम रातों-रात रिफ़्यूजी बन गये थे। अचानक ही हमारा सब कुछ छिन गया। कई बरस बाद 1970 के ज़माने में मैं भले ही कामयाब हो गया, पर मेरे मन में ये डर हमेशा समाया हुआ रहता है कि कि कहीं ऐसा ना हो कि मैं अगला गीत ना लिख पाऊं। कहीं ऐसा ना हो कि मेरा सफ़र यहीं ख़त्म हो जाए। कहीं ऐसा ना हो कि लोग मुझे एक तुक्का समझ बैठें। हैरत की बात ये है कि यही डर मुझे और अच्छा लिखने की शक्ति भी देता है। मैंने एक कविता लिखी थी, ताकि जब भी नाकामी का डर मुझ पर हावी होने लगे तो मैं उसे गाकर ताक़त हासिल कर सकूं, 'मैं कोई बर्फ़ नहीं हूं जो पिघल जाऊंगा'। कई दशक बाद मैंने ये कविता अपने प्यारे दोस्त सुभाष घई को फ़रवरी 2002 में तोहफ़े में दी। पर लिखने का मेरा जो जुनून है वो इसलिए कायम है क्योंकि मुझे अपने जज़्बात का इज़हार करने की ज़रूरत महसूस होती है। सब जानते हैं कि मैं ज़्यादा बात नहीं करता। पर मेरे भीतर बहुत कुछ चलता रहता है, जिसे मैं कहना चाहता हूं। और गीतकारी इसके इज़हार का ज़रिया है'।

मैं कोई बर्फ़ नहीं हूं जो पिघल जाऊंगा
मैं कोई हर्फ़ नहीं हूं जो बदल जाऊंगा।
मैं सहारों पे नहीं, ख़ुद पे यकीं रखता हूं
गिर पड़ूंगा तो क्या, मैं संभल जाऊंगा।
चाँद सूरज की तरह वक्त पे निकला हूं मैं
चाँद सूरज की तरह वक्त पे ढल जाऊंगा।
क़ाफ़िले वाले मुझे छोड़ गए हैं पीछे
क़ाफ़िले वालों से आगे मैं निकल जाऊंगा।
मैं अंधेरों को मिटा दूंगा चिराग़ों की तरह
आग सीने में लगा दूंगा, मैं जल जाऊंगा।
हुस्न वालों से गुज़ारिश है कि पर्दा कर लें
मैं दीवाना हूं, मैं आशिक़ हूं, मचल जाऊंगा।
रोक सकती है मुझे तो रोक ले दुनिया 'बख़्शी'
मैं तो जादू हूं, जादू हूं चल जाऊंगा।

-आनंद प्रकाश बख़्शी (नंद)

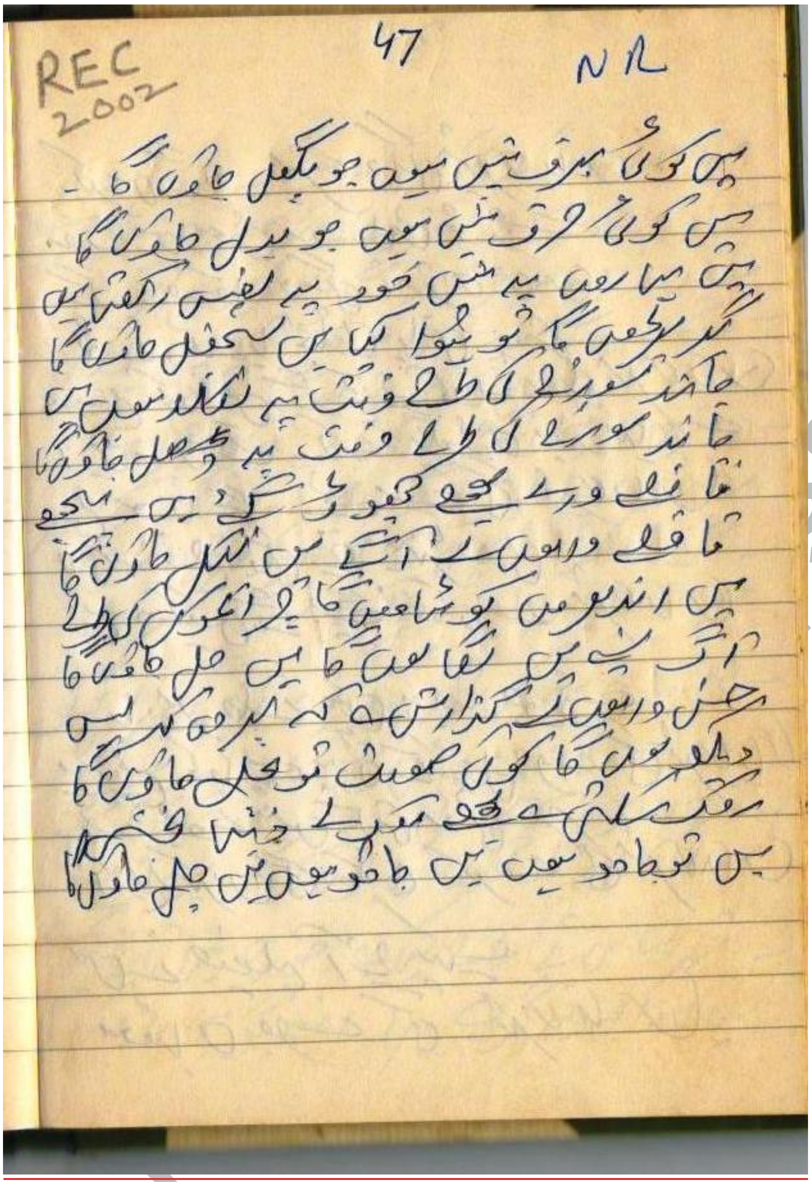

'नौजवानों को मेरी सलाह:

गाने में हमेशा मीटर और रिदम होना ज़रूरी है। मैं ज़्यादातर गाने लिखते हुए सीटी बजाता हूं। कुछ धुनें मुझे संगीतकार देते रहे हैं, कुछ लिखते वक़्त सहज रूप से आ जाती हैं। मैं नौजवानों को सलाह दूंगा कि वो बहुत पढ़ें। रोज़ पढ़ें। साहित्य पढ़ें, चुटकुले पढ़ें, महान शायरों की शायरी पढ़ें। अगर आप गीतकार बनना चाहते हैं तो संगीत सीखिए। हिंदी और उर्दू सीखिए। बॉक्सऑफ़िस का कोई भरोसा नहीं है-, वो रंगीनमिज़ाज भी है-, बिलकुल हम लेखकों की तरह। जब तक आप रोमांटिक नहीं होंगे, संवेदनशील नहीं होंगे, आप लिख नहीं सकते। सबसे बड़ी बात है अपने भीतर आपको हौसला बनाए रखना है'।

'कामयाब हो जाने के बाद मैंने बहुत सारे नये संगीतकारों के साथ काम किया है, उनका हौसला बढ़ाया है, क्योंकि कभी मैं भी तो नया था। जानेमाने फ़िल्मकारों-संगीतकारों और गीतकारों ने जिस तरह मेरा हौसला बढ़ाया, मैं उस अहसान को लौटा रहा हूं'।

'सचिन देव बर्मन दादा बहुत कम उर्दू या हिंदी बोलते थे और मैंने अपने करियर की शुरूआत में ही उनसे एक गुर सीखा। वो कहानी और गीत के बोल समझने पर बहुत ज़ोर देते थे, उसके बाद ही उसकी धुन बनाते थे। मेरा ख़ुद का ये भरोसा उनके ज़रिये ही पक्का हुआ कि कहानी सुनकर आप गाने के साथ इंसाफ़ कर पाते हैं'।

मैं आपको अपनी ज़िंदगी का एक क़िस्सा सुनाता हूं। कॉलेज के दिनों में मुझे एक लड़की से प्यार हो गया था और डैडी को ये बात पता चल गयी। उन्होंने मुझसे कहा कि फ़ौरन ये बकवास बंद कर दो। मैंने उनसे बहस करते हुए कहा, 'डैडी, आप ख़ुद तो जाने कितने प्यार भरे गाने लिखते रहे हैं? आप ही ने तो बेताब में लिखा है, 'जब हम जवां होंगे, जाने कहां होंगे', रॉकी में लिखा है 'क्या यही प्यार है, 'दिल क्या करे जब किसी को किसी से प्यार हो जाए', बॉबी में लिखा है, 'मैं शायर तो नहीं, मगर ऐ हसीं, जब से देखा मैंने तुझको, मुझको शायरी आ गयी'।
उन्होंने जवाब दिया, 'मैंने ये गाने फ़िल्म के किरदारों के लिए लिखे थे। वो कल्पना हैं। मैंने ये गाने तुम्हें प्रेरणा देने के लिए नहीं लिखे। इसलिए नहीं लिखे हैं कि जब पढ़ाई करने की उम्र हो तो तुम प्यार में पड़ जाओ'। इसका मतलब मेरे डैडी के भीतर के गीतकार ने परिवार और काम के बीच एक लकीर खींच रखी थी। यहां एक और बात मैं कहना चाहूंगा, उन्होंने हाई-स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं की थी, तो उन्हें लगता होगा कि जब हमारे पास कॉलेज जाने की सुविधा है, तो ज़िंदगी के इस मुकाम पर हम लड़कियों से दोस्ती तो कर सकते हैं, पर 'गर्लफ्रैंड' बनाने का वक़्त अभी नहीं आया है। मुझे वो शायद यही समझाने की कोशिश कर रहे थे।

उनके रूमानी गानों के बारे में ...

'मैंने बहुत रूमानी ज़िंदगी नहीं जी, इसलिए मैं रूमानी गाने लिख सकता हूं। जब आपको कुछ हासिल हो जाता है, तो उसमें आपकी दिलचस्पी ख़त्म हो जाती है, उसके लिए आपका जुनून कम हो जाता है। चूंकि अभी भी रूमानी ज़िंदगी मेरे लिए एक ख़्वाब है, इसलिए मैं बहुत गाढ़े रूमानी गाने लिख सकता हूं। हो सकता है कि मेरे रूमानी गाने मेरी दबी हुई भावनाओं का नतीजा हों, यानी मेरे भीतर मुहब्बत का जज़्बा भीतर दबा रह गया हो, पर इस बारे में मैं गंभीरता से सोच नहीं पाया। हालांकि मेरे गाने जज़्बाती और जुनूनी रहे हैं, पर कभी मेरा इस बात पर ध्यान नहीं गया कि इनमें एक अनदेखी रूमानियत मौजूद है। मेरे भीतर कई अनकही, छिपी हुई भावनाएं हैं, और मेरा अंदाज़ा है कि मैं इन्हीं का इज़हार अपने गानों में करता हूं'।

राकेश आनंद बक्षी

‘मैं सारे गाने अपने अनुभवों से नहीं लिखता हूं। अपनी बेटियों की शादी से भी मैंने राजपूत फ़िल्म में लिखा, ‘डोली हो डोली’। ‘चिट्ठी आई है’ लिखने के बाद मैंने दिल्ली में एक शादी में ये गाना गया। वहां मौजूद मेहमान मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरे बच्चे किस देश में जाकर बस गए हैं। क्या मैंने उनको मिस करते हुए ये गाना लिखा है? मैंने उन्हें बताया कि मेरे बच्चे तो हमेशा मेरे साथ ही रहे हैं। हम सबकी ज़िंदगी में ऐसी कई परिस्थितियां आती हैं, और जो शायर और लेखक होते हैं वो इन्हीं परिस्थितियों से जुड़े जज़्बात को आवाज़ देते हैं। मैंने इस तरह की कई बातें पढ़ी हैं इसलिए ज़रूरी नहीं है कि किसी भी परिस्थिति पर गाना लिखने से पहले मैं उसे जियूं ही’।

‘डोली हो डोली’ में बख़्शी साहब लिखते हैं, ‘डोली हो डोली, जब-जब गुज़री तू इस डगर से, बिछड़ा कोई हमजोली’। उन्होंने पिता और बेटी के रिश्ते को हमजोलियों की दोस्ती से जोड़ा है। जब भी दोस्तों और रिश्तेदारों के सामने वो ये गाना गाते थे, तो उनकी आंखें भीग जाती थीं और ये उस रात का आख़िरी गाना बन जाता। पहली बार मैंने डैडी को मेरी बड़ी बहन सुमन की डोली जाते हुए रोते देखा था। वो हमारे घर से विदा हुई, कार में बैठी और चली गयी। उस वक्त मैं किशोर था।

इसके बाद मैंने उन्हें पच्चीस साल बाद रोते हुए देखा, सन 2001 में जब वो कई महीनों तक अस्थमा के दौरे झेल-झेलकर बहुत ही कमज़ोर हो गए थे। उनकी ज़्यादातर आज़ादी ख़त्म हो गयी थी। शायद उन्हें लगा होगा कि उम्र की इस लाचारी में उनकी गरिमा चली गयी है।

लोकगीतों की शैली में लिखना

‘लोकगीत ज़िंदगी का आईना होते हैं, इन्हें समझना आसान होता है। सुनने वाले को इनमें एक अपनापन महसूस होता है। ज़्यादातर सुनने वाले इन गीतों से आसानी से जुड़ जाते हैं, इसलिए ये गाने लोकप्रिय हो जाते हैं। सबसे मीठा वो गीत होता है जो आम आदमी के लिए गाया जाता है। मुझे रोज़ाना भारत के कोने-कोने से आनंद बख़्शी की तारीफ़ में ख़त आते हैं, जिनमें गानों की सरलता की तारीफ़ लिखी होती है। यहां तक कि मेरे बहुत कामयाब दोस्त और रिश्तेदार भी यही बात कहते हैं। मैं आसान शब्दों में इसलिए लिखता हूं क्योंकि मैंने बहुत ऊंची पढ़ाई नहीं की है। मैंने बस स्कूल में कुछ ही साल हिंदी सीखी है। मेरे पास गिने-चुने शब्द हैं। मैं अपने गाने उर्दू स्क्रिप्ट में लिखता हूं। मैं सीधी बात लिखता हूं, लेकिन मैंने गहरी बात लिखने की कोशिश हमेशा की है’।

राकेश आनंद बख़्शी

‘कई बार ऐसा हुआ है कि जो धुन मुझ पर असर नहीं डाल पायी, मैंने उस पर गाना लिखने से इंकार कर दिया है। मैंने जिन संगीतकारों के साथ काम किया है, उनमें से ज़्यादातर नयी धुन बनाने के लिए राज़ी हो गए हैं। ये एक अच्छे संगीतकार की निशानी है। अगर कोई गीतकार उनकी धुन को ठुकरा देता है तो वो इसे दिल पर नहीं लेते। कितनी बार आर .डी . बर्मन ने मेरे धुन ठुकरा देने के बाद नयी धुन बनायी और बेहतर गाना लिखने में मेरी ‘गाने की कामयाबी में मेरे अलावा बहुत सारे दूसरे लोगों का भी हाथ होता है। किसी फ़िल्म और उसके गानों की कामयाबी में संगीतकार, गीतकार और गायक सबका योगदान होता है, क्योंकि किसी फ़िल्म को लंबे समय तक उसके संगीत के लिए याद रखा जाता है। मैंने देखा है कि जब कोई फ़िल्मकार या अभिनेता का निधन हो जाता है, तो उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए उनके गाने टीवी और रेडियो पर बजाए जाते हैं, ना कि उनकी फ़िल्मों के सीन दिखाए-सुनाए जाते हैं। अगर कोई गीतकार अच्छा गाना लिखता है तो इसका श्रेय निर्देशक और फ़िल्म लेखक को भी जाता है। अब तक मैंने तकरीबन ढाई सौ निर्देशकों के साथ काम किया है। सबसे ज़्यादा काम किया है रामाराव, राज खोसला और सुभाष घई के साथ। इन तीनों के अलावा यश चोपड़ा को भी संगीत की गहरी समझ है। मुझे तब लिखना आसान लगता है जब मुझे कहानी, सिचुएशन और किरदार बहुत गहराई से समझाए जाते हैं। शायद यही वजह है कि प्रतिभाशाली निर्देशकों ने मुझसे बेहतरीन गाने लिखवाए हैं क्योंकि वो कल्पना करने में मेरी बहुत मदद करते हैं’।

‘कुछ फ़िल्मकारों को संगीत की गहरी समझ होती है, वो दी गयी धुनों में से सबसे शानदार धुन चुनते हैं, इसलिए उन्हें भी श्रेय मिलना चाहिए क्योंकि वो मुझे बेहतरीन काम करने को प्रेरित करते हैं। जो फ़िल्मकार अपना काम नहीं जानते और मेरे काम में दख़लअंदाज़ी करते हैं- मैं उन्हें बर्दाश्त नहीं कर पाता’।

‘मेरे पेशे में कोई भी लेखक या कलाकार तीन चरणों से होकर गुज़रता है। पहला चरण है पहचान और कामयाबी के लिए संघर्ष। दूसरा चरण है, कड़ी मेहनत के बाद कामयाबी हासिल करना। तीसरा चरण है उस कामयाबी को कायम रखना या खो देना। तीसरा चरण सबसे मुश्किल है। पहले चरण में आपका फ़ोकस और आपकी इच्छाशक्ति सबसे ज़्यादा रहती है। दूसरे चरण में आपको अपनी संभावनाओं का अंदाज़ा हो जाता है, पर आपको बहुत सारी तारीफ़ें, शोहरत और चापलूसी मिलती है। सब आपको अपनी पार्टियों में, कार्यक्रमों में बुलवाते हैं। तीसरे चरण में आपको दूसरे चरण की ध्यान भटकाने वाली इन चीज़ों से दूर होना पड़ता है। आप भले इन पार्टियों में जायें, पर उनमें खो ना जाएं। इस वक्त आपका फ़ोकस वैसा ही होना चाहिए जैसा पहले चरण में था। जब आप दूसरे चरण के रास्ते पर क़दम बढ़ा रहे थे। जब कोई व्यक्ति कामयाब हो जाता है तो वो अपनी सेहत और शख़्सियत पर बहुत ध्यान

देता है, पर वो भूल जाता है कि वो कौन-सी चीज़ थी जिसने उसे कामयाबी दिलायी, शोहरत की बुलंदियों पर पहुंचाया। कामयाबी हासिल करना मुश्किल नहीं है, उसे कायम रखना बड़ा ही मुश्किल काम है'।

'अस्सी प्रतिशत ये होता है कि संगीतकार एक मुफ़ीद धुन तैयार करता है, और मैं उस धुन के मुताबिक़ गाना लिखता हूं। कभी-कभी संगीतकार मेरे गाना लिखने के बाद धुन बनाता है। अकसर ही मैं गाना लिखते हुए उसकी अपनी सोची एक धुन पर सीटी बजाता रहता हूं। मिसाल के लिए, मैंने फ़िल्म 'ताल' का गाना–'इश्क़ बिना क्या जीना यारो' बिना किसी धुन के लिखा था'।

'कोई गाना पंद्रह से बीस मिनिट में भी लिखा जा सकता है और उसे लिखने में पाँच-छह दिन भी लग सकते हैं। मेरे पेशे में कोई लेखक प्रेरणा का इंतज़ार करता बैठा नहीं रह सकता, क्योंकि शूटिंग का शेड्यूल पहले से तय कर लिया जाता है। अगर कोई कवि अपनी कविताओं की किताब लिखता है तो उसके पास आज़ादी रहती है। वो एक पेज पूरा करने में कई महीने लगा सकता है। ये आज़ादी गीतकार के पास नहीं होती। मुझे तो तय तारीख़ से पहले गाना लिखकर देना पड़ता है'।

'एक गीतकार के रिदम की अच्छी समझ होनी चाहिए, उसे संगीत से लगाव होना चाहिए। अगर निर्देशक के भीतर संगीत की अच्छी समझ है तो मेरा काम बहुत आसान हो जाता है, क्योंकि वो बिना किसी झोल के अच्छी धुन या गाना चुन सकता है। जब शुरूआती लाइन या मुखड़ा तैयार हो जाता है, तो मुझे बाक़ी गाना पूरा करना बहुत आसान लगता है। एक गाना लिखने में मुझे पंद्रह मिनिट से लेकर पाँच दिन तक लग सकते हैं। पर गाना लिखने में कितना वक़्त लगा.....इससे उसकी क्वालिटी पर कोई असर नहीं पड़ता। कोई इंसान ऐसा होता है जो दस मिनिट में नहाकर साफ़-सुथरा होकर निकल सकता है जबकि दूसरा शख़्स आधा घंटा भी लगा देता है। एक फ़िल्मकार अगर अच्छी कविता का क़द्रदान हो, उसे रिदम की समझ हो और वो ख़ुद एक जज़्बाती इंसान हो तो वो गीतकार को प्रेरित करता है। राज कपूर को "हम तुम एक कमरे में बंद हों और चाभी खो जाए" इतना ज़्यादा पसंद आया था कि उन्होंने इसके लिए बॉबी फ़िल्म में ख़ासतौर पर सिचुएशन निकाली। इसी तरह से जब संजय ख़ान ने ये गाना सुना--"मैंने पूछा चाँद से कि देखा है कहीं, मेरे यार सा हसीं" तो उन्होंने इसे फ़िल्म अब्दुल्ला में इस्तेमाल कर लिया। दोनों ही गाने फ़िल्म के लिए नहीं लिखे गए थे'।

राकेश आनंद बक्शी

'मैं मूड के मुताबिक़ काम करना पसंद नहीं करता। मैं मूड पर यक़ीन नहीं करता। मैं मानता हूं कि जो मैं कर सकता हूं, जब कर सकता हूं, वो मुझे कर देना चाहिए। मैं किसी प्रेरणा या मिज़ाज का इंतज़ार नहीं करता। लिखने का मूड और माहौल दोनों ख़ुद दिमाग़ में बनाना पड़ता है। ये दिमाग़ी बातें हैं, सारा खेल दिमाग़ का है। प्रेरणा, ये क्या होती है? जब काम आपके लिए और आपके निर्माता के लिए महत्वपूर्ण होता है, तो दिमाग़ ख़ुद-ब-ख़ुद काम करने लगता है। तब कोई महान प्रेरणा या फिर दिन का कोई ख़ास वक़्त या मूड आपके लिए ज़रूरी नहीं होता'।

सब कुछ या कुछ नहीं।

'अगर किसी फ़िल्म में केवल एक गीतकार होता है, तो ये फ़िल्म के लिए अच्छा रहता है। फ़िल्म की कहानी और गानों के बीच कोई एक डोर होनी चाहिए, जो सबको एक सूत्र में पिरो दे। इसलिए मैं ज़्यादातर इस बात पर ज़ोर देता हूं कि सारे गाने मुझसे ही लिखवाए जायें। निर्माता, निर्देशक, यहां तक कि अभिनेताओं और संगीतकारों ने मेरी इस बात का ख़ुशी ख़ुशी-मान रखा है।

'मुझे लगता है कि मेरे गाने इसलिए लोकप्रिय हुए हैं क्योंकि मैं जानबूझकर आसान शब्दों में गाने रचता हूं। मैंने ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया जिनका इस्तेमाल कुछ दूसरे लोकप्रिय गीतकार नहीं कर रहे थे। मैंने अनुभव से लिखा, हमेशा कहानी और किरदारों को ध्यान में रखा, ताकि गाना देखने या सुनने वाले पर किरदार का एक असर छोड़ जाए। जाने कैसे, कुछ बहुत ही शानदार गाने इसी तरीक़े से लिखे गए हैं, जैसे "ज़िंदगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मुकाम" या "ज़िक्र होता है जब क़यामत का, तेरे जलवों की बात होती है"। यहां मैं ज़ोर देकर कहना चाहूंगा कि मैं ख़ुशक़िस्मत था कि मुझे कुछ महान संगीतकारों, गायकों, साज़िंदों, निर्देशकों और लेखकों का साथ मिला, जिन्होंने ऐसी स्क्रिप्ट लिखीं जिन्होंने निर्देशक और मुझे प्रेरित किया'।

'मैं प्रेरणा हासिल करने के लिए टहलने नहीं निकलता, पहाड़ों पर घूमने नहीं जाता। मैंने अपने ज़्यादातर गाने अपने बेडरूम में लिखे हैं और उन्हें मैं अपनी म्यूज़िक-सिटिंग के दौरान निर्देशक और संगीतकार के साथ पूरा कर लेता हूं। अकसर मैंने अपने गाने सिटिंग के दौरान ही पूरे कर लिए हैं। फ़िल्म की कहानी और गाने लिखने का मेरा शग़ल मेरी प्रेरणा होते हैं। निर्माता फ़िल्मों पर करोड़ों रूपए ख़र्च करते हैं। वो हम गीतकारों के प्रेरणा हासिल करने का इंतज़ार नहीं कर सकते'।

राकेश आनंद बक्शी

'मुझे कौनसी चीज़ प्रेरित करती है-, ये कोई राज़ नहीं है। ज़िंदगी के इस सफ़र में हर इंसान के दिल में जज़्बात होते हैं। अगर कोई कवि है तो वो इन जज़्बात को अपनी कविता में ढाल देता है। एकतरफ़ा प्यार से बढ़कर रहस्यमय और अबूझ कुछ भी नहीं होता और यही मेरे लिए प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत रहा है। लोकगीत भी मुझे प्रेरणा देते हैं, जैसे कि फ़िल्म 'कर्तव्य' के गाने 'मैं जट यमला पगला दीवाना' की प्रेरणा मुझे एक पंजाबी जुमले से मिली थी। इसी तरह 'मेरा गांव मेरा देश' के गाने "मार दिया जाए या छोड़ दिया जाए" की प्रेरणा मुझे सिकंदर और पोरस के बीच के एक संवाद से मिली थी। सिकंदर ने पोरस से तकरीबन यही जुमला कहा था, 'तुम्हारे साथ क्या सुलूक किया जाए?'

'निर्माता निर्देशक विजय आनंद ने एक बार मुझसे कहा था, 'बख़्शी साहब, आपके गाने कहानी को आगे ले जाते हैं, वो फ़िल्म के संवादों की भूमिका निभाते हैं'। "मार दिया जाए..." ऐसी कई मिसालों में से एक है। 'आन मिलो सजना' के एक गाने की सिटिंग के दौरान लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और मैं कई घंटों तक कोशिश करते रहे, पर नाकाम रहे। थककर मैं सिटिंग छोड़कर ये कहते हुए उठा, "अच्छा तो हम चलते हैं"। लक्ष्मीकांत ने मुझसे पूछा, "फिर कब मिलोगे?" और इस तरह मुझे गाने का मुखड़ा लिखने की प्रेरणा मिली। ये गाना बहुत बड़ा हिट साबित हुआ।

'मैंने फ़िल्म बेताब के गाने 'जब हम जवां होंगे, जाने कहां होंगे' के क़रीब पचास अंतरे लिखे थे। मैं अपने सारे गानों के लिए कम से कम दस अंतरे लिखता रहा हूं और इसके बाद निर्देशक कहानी और गाने की सिचुएशन के मुताबिक़ तीन से चार अंतरे चुन लेता है। मैंने महेश भट्ट को फ़िल्म 'ज़ख़्म' के गाने 'तुम आए तो आया मुझे याद, गली में आज चाँद निकला' के पंद्रह अंतर लिखकर दिए थे। महेश ने मुझसे कहा कि जब मुझे तीन अंतरे ही चाहिए हैं तो आपने इतने सारे क्यों लिखे। पर मेरा मानना है कि एक कारोबारी होने के नाते मुझे अपने ग्राहक को ज़्यादा विकल्प देना चाहिए ताकि वो सही फ़ैसला ले पाए। मुझे ये पसंद नहीं है कि एक व्यापारी अपने ग्राहक पर अपनी चीज़ ख़रीदने का दबाव डाले और उम्मीद करे कि ग्राहक पैसे भी दे। लोग अपनी मेहनत की कमाई मनोरंजन पर ख़र्च करते हैं, तो उन्हें फ़िल्म-निर्माण के हर पहलू से, चाहे वो गीत-संगीत ही क्यों ना हो, सबसे अच्छा मनोरंजन मिलना चाहिए'।

महेश भट्ट ने एक बार डैडी के बारे में मुझसे कहा था, 'बख़्शी साहब एक रोशन शख़्सियत थे। उनमें एक गहराई थी। उन्होंने अपनी ज़िंदगी में जो तजुर्बे किए, उनसे जो समझदारी हासिल की, उसे गानों में पिरो दिया। वो गोल-मोल नहीं लिखते थे। हैरत की बात ये है कि वो आत्ममुग्ध व्यक्ति नहीं थे। उनमें जो गहरा ज्ञान था वो किताबें पढ़ने से नहीं आता। उन्होंने कहानी और कुदरत से प्रेरणा ली। मैंने उनसे 'ज़ख़्म' का गाना लिखने को कहा। बख़्शी साहब

राकेश आनंद बख़्शी

ने मुझसे पूछा कि घर का मुखिया कितनी बार उस औरत के पास घर आता है, जिससे वो प्यार करता है, जिसके बच्चे का वो बाप है, पर उसने औरत से शादी नहीं की। मैंने उनसे कहा कि वो कभी-कभार परिवार से मिलने आ जाता है, अंग्रेज़ी का जुमला मैंने इस्तेमाल किया, 'वन्स इन अ ब्लू मून'। कुछ ही पलों में बख़्शीजी ने लिखा--"तुम आए तो आया मुझे याद, गली में आज चाँद निकला'। उन्होंने 'ब्लू मून' को ईद के चाँद से जोड़ दिया जो कभी-कभी ही निकलता है। ये था उनका कमाल'।

विविधता

'मैं किसी एक संगीतकार के साथ नहीं जुड़ता। मैं हर उस संगीतकार के साथ काम करता हूं, जिसके बारे में मुझे लगता है कि वो फ़िल्म की जरूरत के साथ इंसाफ़ करेगा और जो एक गीतकार के रूप में मुझे तादाद में, विविधता के साथ और बेहतरीन लिखने का मौक़ा देगा। इस तरह के रचनात्मक लोगों के साथ जुड़े रहने से मैं फ़िल्म संगीत के विविधरंगी संसार और- उसे सुनने वालों से जुड़े रह पाता हूं।

बख़्शी साहब ने अलग-अलग पीढ़ी के संगीतकारों के साथ काम किया, पिता के साथ और बेटे के साथ भी। जैसे सचिन देव बर्मन और राहुल देव बर्मन, रोशन और राजेश रोशन, कल्याणजी-आनंदजी और वीजू शाह (कल्याणजी के बेटे), चित्रगुप्त और आनंद मिलिंद, नदीम-श्रवण और संजीव दर्शन (श्रवण राठौड़ के बेटे), अनिल बिस्वास और उनके बेटे अमर-उत्पल।

'मेरी ज़्यादातर संगीतकारों के साथ अच्छी जम जाती है, क्योंकि मुझे अपने लिखने के बारे में कोई अहंकार नहीं है। और चूंकि मैं अपने ज़्यादातर गाने बहुत जल्दी लिख लेता हूं, संगीतकार मेरे साथ काम करते हुए बड़े ख़ुश रहते हैं। मैंने किसी भी निर्माता से ये नहीं कहा कि वो मुझे किसी हिल-स्टेशन पर भेज दे, विदेश भेज दे या फिर नदी के किनारे किसी होटल में रुकवाए ताकि मैं गाने लिख सकूं। इस तरह उनका पैसा बचता है और उन्हें मेरे साथ काम करना अच्छा लगता है'।

शैली में बदलाव

'अगर धुन आकर्षक है, तो अमूमन सुनने वाले शब्दों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं। इसकी वजह से मैंने कई बार पंजाबी शब्दों का इस्तेमाल किया है। यहां तक कि अपने हिंदी गाने का पूरा अंतरा ही पंजाबी शब्दों से बुन दिया है। इसकी मिसाल है "बिंदिया चमकेगी"। ये गाना बहुत ज़्यादा हिट हुआ था। इसके बाद मैंने कई ऐसे गाने लिखे जिनके अंतरों में पंजाबी शब्द अनायास ही चले आए हैं। डी. एन. मधोक, जिनका जन्म गुजरांवाला में हुआ था, ऐसे शुरूआती पंजाबी थे जिन्होंने फ़िल्मों में गाने लिखे। वो ऐसे पहले गीतकार थे जिन्होंने हिंदी गानों में

राकेश आनंद बख़्शी

पंजाबी शब्दों का इस्तेमाल किया। गीत और नज़्म आपस में जुड़े हुए हैं। गीत एक सीधी सादी कविता है, जिसे मेलोडी में पिरोया जा सकता है। चूंकि पंजाबी लोग उर्दू-हिंदी और सरल हिंदुस्तानी में बातें करते हैं, इसलिए वो आसानी से गीत रच पाए। जैसे कि साहिर। यहां तक कि शैलेंद्र भी रावलपिंडी में पैदा हुए थे। हम पंजाबी लोग फ़िल्मी-गानों में टप्पे और काफ़िया लेकर आए'।

'एक तरह से, 'जब जब फूल खिले' (1965) ही नहीं बल्कि 'फ़र्ज़' (1967) भी मेरे लिए बोलचाल की शैली में गाने लिखने के मामले में एक बड़ा मोड़ साबित हुई। इसके बाद मैंने अपने गाने हल्के-फुल्के शब्दों में, रोज़मर्रा की बोलचाल वाली हिंदुस्तानी ज़बान में लिखने शुरू किए। ऐसे गाने और फ़िल्में बड़ी हिट हुईं और इससे मुझे इस शैली को आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिली'। 'फ़र्ज़' का गाना 'बार-बार दिन ये आए, बार-बार दिल ये गाए... हैपी बर्थडे टू ये'...आज तक बड़ा हिट बना हुआ है'।

जब भी डैडी को अपने लिखे गानों की रिकॉर्डिंग में जाने पर ट्रैवल अलाउंस या कन्वेयेन्स मिलता था तो वो या तो किसी ज़रूरतमंद साज़िंदे को या हमारे ड्राइवर को ये रकम पकड़ा देते थे। सत्तर के दशक के आख़िर में मैंने उनसे एक बार पूछा था कि रिकॉर्डिंग में जाने के लिए आपको जो पेट्रोल अलाउंस मिलता है, वो आप अपने पास क्यों नहीं रख लेते'। उन्होंने जवाब दिया-'मुझे इन लोगों की दुआएं भी चाहिए। काम और कामयाबी पाने के लिए सिर्फ़ मेरी मेहनत और मेरी प्रतिभा ही काफ़ी नहीं है। अगर मेरी हर रिकॉर्डिंग से इन लोगों को थोड़ी कमाई हो जाती है, जैसे कि हमारे ड्राइवर को सैलेरी के बाद भी अलग से कुछ रकम मिल जाती है या किसी म्यूज़ीशियन को मेहनताने के अलावा भी कुछ मिल जाता है तो वो ऊपर वाले का शुक्रिया अदा करते होंगे और दुआएं करते होंगे कि मुझे इसी तरह गाने मिलें और मेरी रिकॉर्डिंग होती रहें। सबको साथ लेकर चलना पड़ता है। शायद इन लोगों की दुआओं की वजह से मेरी ख़ुशक़िस्मती कायम है। ये सिर्फ ऊपर वाले की मेहरबानी नहीं है'।

कवि या गीतकार?

'फ़िल्मों के गाने लिखना कविताएं लिखने से ज़्यादा मुश्किल काम है, क्योंकि आपको सीमाओं में काम करना पड़ता है। गीतकारी में आपके सामने समय, विचारों और उन किरदारों की सीमाएं होती हैं, जिनके लिए गाने लिखा जा रहा है। हम इन दोनों के बीच भले ही भेद करें पर असल में एक गीतकार भी कवि या शायर होता है....'।

'एक शायर कहलाने के लिए आपके भीतर कुछ ख़ास हुनर होने चाहिए। आपको मुशायरों में पढ़ना चाहिए और हिंदी या उर्दू साहित्य में अपना योगदान देना चाहिए। हमारे फ़िल्मी गीतकारों

राकेश आनंद बक्शी

को एक कवि का दर्जा नहीं मिलता और कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी ये नहीं मानते कि हमारा साहित्य में कोई योगदान हो सकता है'।

'कविताओं के उलट, फ़िल्मी गाने फ़िल्मों के लिए लिखे जाते हैं जिन्हें बनाने में लाखों-करोड़ों रूपए ख़र्च होते हैं। ऐसे में गाने का लोकप्रिय होना ज़रूरी है ताकि फ़िल्म बार-बार देखी जा सके और इस तरह उसकी लागत निकल आए। फ़िल्मी गाने लिखना एक चुनौती होती है'।

'एक कवि या शायर अकेला लिखता है, जबकि एक गीतकार पूरे ऑर्केस्ट्रा के साथ काम करता है। एक कवि और गीतकार के बीच सबसे बड़ा फ़र्क़ ये है कि कवि का अपना मिज़ाज, अपनी तबीयत होती है, वो अपनी रचनात्मक भूख मिटाने के लिए लिखता है जबकि गीतकार के सामने चुनौती ये होती है कि एक ही फ़िल्म में उसे एक प्रेमगीत-, एक प्रार्थना, एक कैबेरे डांस और बैकग्राउंड में चलने वाला एक गाना भी लिखना पड़ सकता है जो कहानी को आगे बढ़ाता हो। ऐसा गाना लिखने की चुनौती सबसे बड़ी होती है, जो कहानी को आगे बढ़ाए, वो भी किरदारों और कहानी के दायरे में रहकर। हज़ारों रंग मिलाके एक रंग बनता है। आपको स्टूडियो में ही लिखना पड़ सकता है। जहां निर्देशक, संगीतकार और म्यूज़ीशियन बड़ी उम्मीदों से आपकी तरफ़ और अपनी घड़ी की तरफ़ भी देख रहे होते हैं। एक अच्छे गीतकार को एक अच्छा कवि होने की बजाय एक अच्छा शिल्पकार होना पड़ता है। मेरे लिए तुकबंदी बहुत महत्व रखती है। पर एक गीतकार को फ़ौरन मुद्दे पर आना पड़ता है। एक कवि या शायर की तरह उसके पास इतना वक़्त या इतनी जगह नहीं होती कि वो लंबीलंबी बात कर सके। जैसे फ़ि-ल्म 'आए दिन बहार के' में हीरो अपनी बेवफ़ा प्रेमिका पर अपना गुस्सा सीधे मुखड़े से ही निकालता है--"मेरे दुश्मन तू मेरी दोस्ती को तरसे"। और यहां कविता की ख़ूबसूरती अंतरे में नज़र आती है–'तू फूल बने पतझड़ का, तुझ पर बहार ना आए कभी'।

प्यार के लिए लिखना

'मुझे जोड़ियों के लिए लिखना अच्छा लगता हैजैसे दिलीप कुमार और सायरा बानो–, शशि कपूर और नंदा, राजेश खन्ना और मुमताज़, ऋषि कपूर और डिम्पल, कुमार गौरव और विजेता, सनी देओल और पूनम ढिल्लन, देव आनंद और ज़ीनत अमान, सनी देओल और अमृता सिंह, राजेश खन्ना और शर्मीला टैगोर, धर्मेंद्र और हेमा, अमिताभ बच्चन और परवीन बाबी, कमल हासन और रति अग्निहोत्री, फ़रदीन और अमृता अरोरा, हृतिक और करीना और ऐशा देओल, संजय दत्त और टीना मुनीम, अनिल कपूर और पद्मिनी कोल्हापुरे वग़ैरह। मैंने धर्मेंद्र की क़रीब सत्तर फ़िल्मों में गाने लिखे हैं। जीतेंद्र की बासठ, राजेश खन्ना की पैंतालीस, चवालीस फ़िल्में अमिताभ बच्चन की, बयालीस हेमा मालिनी की, छत्तीस रेखा की, छब्बीस मुमताज़ की, तेईस माधुरी दीक्षित की और इक्कीस श्रीदेवी की'।

'मैं क़िस्मत पर यक़ीन करता हूं। आपको इसकी एक मिसाल देता हूं। सचिन देव बर्मन दादा ने मेरी मुलाक़ात महान निर्देशक गुरूदत्त से करवाई, ताकि मैं 'काग़ज़ के फूल' के गाने लिख सकूं पर गुरूदत्त ने कैफ़ी आज़मी साहब के साथ काम करना पसंद किया। मुझे लगा कि मेरी क़िस्मत कितनी ख़राब है, मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे इस फ़िल्म के गाने नहीं लिखने मिल पाये। उस बरस मैंने अपनी क़िस्मत को कितना कोसा। फ़िल्म रिलीज़ हुई और वो नाकाम हो गयी। मुझे लगा कि ऊपर वाले ने मुझे बचा लिया। मेरी क़िस्मत ने मुझे बचा लिया। इससे पहले मेरी एक फ़िल्म भला आदमी' पहले ही नाकाम हो चुकी थी। अगर 'काग़ज़ के फूल' के गाने मैंने लिखे होते तो दूसरी फ़्लॉप फ़िल्म भी जुड़ जाती और मेरा करियर शुरू होने से पहले ही ख़त्म हो गया होता। फ़िल्म इंडस्ट्री उगते सूरज को सलाम करती है। वो आपको सलाम नहीं करती, आपकी प्रतिभा को सलाम नहीं करती, आपके हिट होने को सलाम करती है'।

'जब भी मैंने राजेश खन्ना के लिए गाने लिखे, तो किशोर कुमार की आवाज़ को ध्यान में रखकर लिखे। मैंने जानबूझकर बहुत ही आसान शब्दों वाले गाने उनके लिए लिखे। कुछ लोग कहते हैं कि मैंने राजेश खन्ना को हिट गाने दिये। यहां तक कि काका भी यह कहता था कि बेहतरीन गाने लिखकर मैंने उनकी ज़िंदगी बना दी, पर मेरा मानना है कि राजेश खन्ना ने परदे पर होंठ हिलाकर मेरे लिखे गानों को हिट बना दिया। ये बात नहीं भूलनी चाहिए कि अदाकार हमारे गानों का चेहरा होते हैं। हम गीतकारों का अदृश्य रहना ही अच्छा रहता है। फ़िल्म देखने वालों को लगना चाहिए कि ये उस किरदार का गाना है, मेरा नहीं है, ना ही राहुल देव बर्मन का है'।

कामयाबी और नाकामी

'कामयाबी पर आपको फूलना नहीं चाहिए। अगर आप एक रेस जीत गये हैं तो कोई गारंटी नहीं है कि अगली बार भी आप रेस जीत ही जाएं। मुमकिन है कि अगली रेस के लिए आपको ज़्यादा कोशिश करनी पड़े। अपने गानों में मैंने कभी भी कहानी से समझौता करके अपनी कोई बात ठूंसने की कोशिश नहीं की। मेरे लिए फ़िल्म की कहानी बतौर गीतकार मेरी कामयाबी या मेरी शैली से ज़्यादा मायने रखती है। अगर सुनने वाले ये पहचान जायें कि ये मेरे बोल हैं, तो एक गीतकार के तौर पर मैं इसे अपनी नाकामी मानता हूं, भले ही गाना हिट क्यों ना हो जाए। मेरे शब्द उस फ़िल्म, उस कहानी के किरदारों के होने चाहिए। ना कि एक गीतकार के तौर पर मेरे। मैंने फ़िल्म 'मिलन' का प्रीमियर देखने के बाद सुझाव दिया था कि मेरा एक गाना फ़िल्म से हटा दिया जाना चाहिए, क्योंकि मेरे लिखे शब्द किरदार से मेल नहीं खा रहे हैं। ये गाना था–'आज दिल पे कोई ज़ोर चलता नहीं, मुस्कुराने लगे मगर रो पड़े'। मैंने इसे कविता की तरह लिखा था, किरदार को ध्यान में रखते हुए नहीं लिखा था। जब मैंने ये गाना पर्दे पर देखा

राकेश आनंद बक्शी

तो मुझे लगा फ़िल्म का किरदार इस तरह की गहरी शायरी कैसे गा सकता है। फ़िल्म बनाने वालों को मेरी राय पसंद आयी और ये गाना फ़िल्म से निकाल दिया गया'।

डैडी को एक बार और फ़िल्म देखकर ऐसा लगा था कि एक गीतकार के तौर पर उन्होंने ठीक काम नहीं किया है, वो फ़िल्म थी 'अंधा क़ानून'। इस फ़िल्म का हीरो गाता है–'रोते रोते हंसना सीखे, हंसते हंसते रोना, जितनी चाभी भरी राम ने, उतना ही चले खिलौना'। हीरो हिंदू नहीं है और वो हिंदू देवता का नाम लेता है। डैडी ने हमें बताया था, 'मुझसे ग़लती हो गयी थी कि गाना लिखने से पहले मैंने निर्देशक से हीरो के किरदार का नाम और उसका मज़हब नहीं पूछा था। निर्देशक जब मुझे कहानी सुना रहा था तो वो अमिताभ बच्चन के नाम से सुना रहा था। मुझे अगर पता होता कि अमिताभ बच्चन फ़िल्म में एक मुसलिम किरदार निभा रहे हैं तो मैं उस किरदार की तहज़ीब और उसके मज़हब के मुताबिक़ गाना लिखता'।

वैसे ये माना जाता है कि एक मुस्लिम किरदार अगर किसी हिंदू भगवान का नाम लेकर गाना गा रहा है या कोई हिंदू किरदार मुस्लिम तहज़ीब का गाना गा रहा है तो हमारी फ़िल्मों में ये कोई हैरत की बात नहीं है। भारतीय संस्कृति में सदियों से एक धर्म-निरपेक्षता चली आ रही है, वो हमारे अवचेतन मन में समायी है। मैं समझता हूं कि बख़्शी साहब का कहना था कि अगर निर्देशक उन्हें बताता कि फ़िल्म का हीरो धर्म-निरपेक्ष है तब ज़रूर वो गाने में ये जुमला लिखते, क्योंकि तब ये किरदार की मांग होती। अगर ऐसा नहीं है तो ये उनकी नाकामी है'।

उम्र सिर्फ एक आंकड़ा है

'जब आप प्यार के गाने लिखते हैं तो उम्र का इससे कोई ताल्लुक़ नहीं होता। मैंने 'बॉबी' के गाने चवालीस साल की उम्र में लिखे, 'एक दूजे के लिए' के गाने बावन साल की उम्र में, 'सौदागर' के गाने बासठ साल की उम्र में, 'दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगे' और 'दिल तो पागल है' के गाने साठ के पार हो जाने के बाद लिखे। यही बात दार्शनिक गानों पर भी लागू होती है। 'आपकी क़सम' का गाना 'ज़िंदगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मुकाम' मैंने तीस की उम्र के आसपास लिखा था। इसी तरह संगीतकारों से अपने रिश्तों के मामले में भी उम्र मेरे लिए कभी आड़े नहीं आयी। जब मैंने रोशन और सचिन दा के साथ काम किया तो मेरी उम्र तीस से कम थी। आज मुझे सिर्फ़ एक ही नुकसान नज़र आता है, जब मैं वीजू शाह या आनंद मिलिंद जैसे संगीतकारों या उन फ़िल्मकारों के बच्चों के साथ काम करता हूं जिन्हें मैं बरसों से जानता आया हूं। ऐसे में वो मेरे गाने में ग़लतियां निकालने में संकोच करते हैं। मुझे लगता है कि इसका मेरे काम पर असर पड़ता है। मुझे एक स्वस्थ आलोचना की ज़रूरत होती है ताकि मैं फ़िल्म के मुताबिक़ गाने लिख सकूं। फ़िल्म की कहानी, सिचुएशन, किरदार और धुन मुझे गाना लिखने के लिए प्रेरित करती है। मेरी उम्र का इसमें कोई योगदान नहीं है'।

वक़्त बदल गया है

‘अश्लील गानों को ठुकराने या रोकने के लिए हमें सेंसर बोर्ड की ज़रूरत नहीं है। हमारे दर्शक और श्रोता ही ये काम कर देते हैं। ‘खलनायक’ के मेरे गाने ‘चोली के पीछे क्या है’ को लेकर जो विवाद हुआ–उसने मुझे बड़ी तकलीफ़ दी। वो गाना मैंने सांकेतिक शैली में लिखा था। मैं अपनी बात सीधे-सीधे कहने की बजाय प्रतीकों में कहना पसंद करता हूं। क्योंकि सीधे-सीधे कही गयी बात अश्लील लग सकती है और मैं लोक-गीतों से प्रेरणा लेता हूं जिनमें तरह तरह की छबियां और प्रतीक आपको मिल जायेंगे। मेरे बच्चे मेरे बैरोमीटर हैं। मैं हमेशा इस बात का ध्यान रखकर लिखता हूं कि ये गाने मेरे बच्चे भी गाने वाले हैं’।

एक बार बख़्शी साहब से पूछा गया कि ‘चोली के पीछे क्या है’ को लेकर उन पर जिस तरह कीचड़ उछाला गया, उसके बारे में उनकी क्या राय है। उन्होंने मुस्कुराकर बिना किसी गुस्से या कड़वाहट के जवाब दिया–‘जो लोग मुझ पर द्विअर्थी गाने लिखने का इल्ज़ाम लगा रहे हैं, उनकी नज़र, उनका ध्यान हीरोइन की चोली पर है, मेरे गाने पर नहीं है’।

‘अब वक़्त बदल गया है, हमारी फ़िल्में भी बदल गयी हैं, ऐसे में हमारे गाने भी तो बदलेंगे ना। आज परदे पर हीरो-हीरोईन बड़ी जल्दी बिना किसी तर्क या पृष्ठभूमि के अपने प्यार का इज़हार कर देते हैं। यही हाल हमारे जज़्बात का भी है–‘गुस्सा, नफ़रत, जलन, उदासी, ठुकराया जाना, कामयाबी...सबका इज़हार फटाफट होता है। आज ज़्यादातर फ़िल्मों का रफ़्तार बहुत होती है। निर्देशक के पास इमोशन दिखाने के लिए ज़्यादा वक़्त नहीं होता। इसलिए ज़ाहिर है कि हमारे गाने भी फ़िल्म के सीन के मुताबिक़ तेज़ रफ़्तार हो गए हैं। अब संगीत में बीट बड़ी तेज़ होती हैं, इसलिए हम छोटे-छोटे वाक्य लिखते हैं। एक वक़्त ऐसा था जब बिमल रॉय जैसे फ़िल्मकार अपने किरदारों से बिना शब्दों के प्यार का इज़हार करवा देते थे। वो ‘आइ लव यू’ नहीं बोलते थे। आज के फ़िल्मकारों का ध्यान इस तरह की बारीकियों पर नहीं रहता’।

‘फ़िल्में बनाने के पीछे एक आर्थिक और पेशेवर कारण होता है। ऐसे में गीतकार को फटाफट गाना लिखकर देना पड़ता है और रिकॉर्डिंग के दौरान ही बोलों में बदलाव भी करने पड़ते हैं क्योंकि निर्माता का पैसा दांव पर लगा होता है। जब वो पैसे बनायेंगे, तभी तो आप पैसे बनायेंगे ना’।

‘बरसोंबरस हो गए-, मैंने कोई उदास गाना नहीं लिखा। सच कहूं तो मैं उदास गाने लिखना मिस करता हूं। आज की फ़िल्मों में बहुत ही कम उदास गाने होते हैं। क्या इसका मतलब ये

राकेश आनंद बक्शी

है कि आजकल लोग ज़्यादातर खुश रहते हैं? क्या लोगों की जिंदगियों में परेशानियां या तकलीफ़ें नहीं हैं इसलिए हमारी फ़िल्मों में ये सब नज़र नहीं आ रहा है? या फिर इसका मतलब ये है कि ज़िंदगी में इतनी उदासी पहले से घुल गयी है कि हम ना तो पर्दे पर देखना चाहते हैं और ना ही उसे गानों में सुनना चाहते हैं'।

अंधविश्वास से भरा फ़िल्म संसार-

अस्सी के दशक में मैंने गानों की रिकॉर्डिंग के दौरान हाफ़ पैंट और हाफ़ टी शर्ट पहनना शुरू कर दिया था। ऐसी तमाम फ़िल्में चलीं। उस वक़्त कई ऐसे संगीतकार और फ़िल्मकार थे जो रिकॉर्डिंग में मुझे फ़ुलपैंट पहनकर आये देखकर वापस लौटा देते थे और कहते थे कि मैं अपने लकी शॉर्ट्स पहनकर ही रिकॉर्डिंग में आऊं। ये फ़िल्म-संसार सच में अंधविश्वास से भरा है। मैंने जितनी भी फ़िल्मों में गाने गाए वो सब नाकाम हो गयीं, इसलिए एक तरह का अंधविश्वास फैल गया। निर्माताओं ने मुझे फ़िल्मों में गाना गाने से रोकना शुरू कर दिया। 'शोले' के बाद मैंने गाना बंद ही कर दिया। फ़िल्म ब्लॉक-बस्टर हुई थी, पर मैंने इस फ़िल्म में जो क़व्वाली गायी थी वो निकाल दी गयी थी। लोग निश्चित तौर पर मुझे हिट गाने लिखने के लिए याद करेंगे पर मेरी तमन्ना है कि वो मुझे कम से कम मेरे गाए एक ना एक गाने के लिए भी याद रखें'।

'मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था जब राजकपूर ने मुझसे अपने बेटे ऋषि कपूर की पहली फ़िल्म के गाने लिखने के लिए बुलवाया। उन्होंने मुझे लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के साथ अपने स्टूडियो में सिटिंग के लिए बुलवाया था। मैंने कहानी नहीं सुनी थी, पर मुझे ये पता था कि फ़िल्म का नाम 'बॉबी' है। जब हम राजकपूर से मिले तो मैंने उनसे कहा कि मैंने पहले ही एक अंतरा लिखा है, आप सुन लीजिए। मैंने सुनाया--"हम तुम एक कमरे में बंद हों, और चाभी खो जाए, तेरे नैनों की भूल-भुलैयां में बॉबी खो जाए'। मैंने उनसे पूछा कि बॉबी फ़िल्म के हीरो का नाम है या हीरोइन का। क्या आप इन पंक्तियों का इस्तेमाल फ़िल्म में कर सकते हैं? उन्हें ये लाइनें बड़ी पसंद आयीं। वो बोले, ये गाना तो हीरो या हीरोइन दोनों के लिए एकदम सही रहेगा। उन्होंने मुझसे ये भी कहा कि हालांकि कहानी में इस तरह की कोई सिचुएशन नहीं है पर वो इस गाने के लिए सिचुएशन सोचेंगे। इस तरह बिना कहानी सुने ये लाइनें लिख दी गयीं थीं। इस गाने का आयडिया मुझे तब आया था जब जुहू में लक्ष्मीकांत ने अपना नया बँगला बनवाया था। इसमें इतने सारे कमरे थे कि जब मैं पहली बार वहां गया, तो बिलकुल गुम ही गया था'।

'गाने की प्रेरणा आपको कभी भी मिल सकती है। एक बार शक्ति सामंत, राहुल देव बर्मन और मैं एक फ़िल्म की पार्टी में थे। जुहू के सन-एन-सैंड होटल में ये पार्टी चल रही थी। पार्टी ख़त्म

होने के बाद हम सब अपनी-अपनी कारों के आने का इंतज़ार कर रहे थे, बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी। मैंने अपनी सिगरेट जलायी और जलती माचिस को बारिश में फेंक दिया ताकि वो बुझ जाए। और उसी पल मुझे ये ख़्याल आया–'चिंगारी कोई भड़के तो सावन उसे बुझाए, सावन जो अगन लगाए, उसे कौन बुझाए'। शक्ति दा को ये लाइनें बड़ी पसंद आयीं और उन्होंने फ़िल्म 'अमर प्रेम' में इनके लिए एक सिचुएशन तैयार की ताकि इनका इस्तेमाल एक गाने के मुखड़े के रूप में किया जा सके, जो मैंने बाद में लिखा'।

'मेरी एक ही कमज़ोरी है कि मेरे गीत जन-भाषा में होते हैं'। जब भी मैं अपने डैडी का लिखा ये वाक्य पढ़ता हूं तो हमेशा हैरत में पड़ जाता हूं। कुछ आलोचकों और गीतकारों ने उन पर इल्ज़ाम लगाया कि वो तो कोई लेखक नहीं हैं, कवि नहीं हैं। इससे उन्हें बड़ा धक्का लगा था। शायद यही वजह थी कि उन्होंने कुछ ऐसे गाने लिखे, जिनमें अपने बचाव में कुछ बातें अपने बारे में कहीं हैं, जैसे कि 'मैं शायर तो नहीं' या 'मैं शायर बदनाम'। जिस बात को कई पत्रकारों ने बार-बार उनकी ताक़त, उनकी ख़ासियत कहा, उसे हमेशा वो अपनी कमज़ोरी मानते आए थे।

'आखिर क्यों कुछ बहुत ही अच्छे गीतकार ये कहते हैं कि अपना घर चलाने के लिए उन्हें मजबूरी में फ़िल्मी-गाने लिखने पड़े। लोग फ़िल्मी गानों को कम क्यों समझते हैं? क्या एक फ़िल्मी गीतकार को अपने काम पर गर्व नहीं होना चाहिए? मैं इसलिए आसान लिखता हूं क्योंकि मैं बहुत ऊंची पढ़ाई नहीं कर पाया पर मुझे आसान शब्दों में गाने लिखते हुए ये बात समझ में आयी है कि मेरे गाने देश के कोने-कोने के लोगों को पसंद आते हैं, ऐसे लोग जिन्होंने बहुत पढ़ाई नहीं की है, जो ठीक से हिंदी नहीं जानते- वो भी मेरे गानों को पसंद करते हैं'।

'मैंने जाने-अनजाने अपने से पहले के गीतकारों से बहुत कुछ सीखा है, इसलिए मैं उन सभी का हमेशा बहुत सम्मान करता हूं। मैं अपने गानों में नये विचार इसलिए लेकर आ पाता हूं क्योंकि मैं रोज़ाना बहुत कुछ पढ़ता हूं। जो शख़्स पढ़ता नहीं है उसके पास नयी बातें नहीं हो सकतीं। मुझे उर्दू अदब बहुत पसंद है और रीडर्स डाइजेस्ट मेरी पसंदीदा मैग्ज़ीन है'।

'मैंने फ़िल्म 'एक दूजे के लिए' में एक गाना लिखा था–'मेरे जीवन साथी, प्यार किए जा'। इसमें मैंने तकरीबन दो से ढाई सौ फ़िल्मों का ज़िक्र किया था और इसमें लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने मेरी मदद की थी। कमल हासन ने जो किरदार निभाया है वो हिंदी नहीं बोल पाता और रति अग्निहोत्री उससे कहती है–'अगर तुम मुझसे प्यार करते हो तो तुम्हें हिंदी बोलना सीखना पड़ेगा'। तो उसे ख़ुश करने के लिए वो लोकप्रिय हिंदी फ़िल्मों के नामों से गाना बनाकर गाता है। इस गाने का हर शब्द एक फ़िल्म का नाम है। सिचुएशन पर आधारित ये गाना उनकी दोस्ती को प्यार में बदल देता है और ये प्रेम-कहानी आगे बढ़ती है। 'एक दूजे के लिए' और

राकेश आनंद बक्शी

एक फ़िल्म के गानों के उसकी कामयाबी में योगदान के बारे में मशहूर गीतकार हसरत जयपुरी साहब ने कहा था–'अगर आप 'एक दूजे के लिए' से गाने निकाल दें तो फ़िल्म नाकाम हो जायेगी'। हालांकि मैं उनकी बात से सहमत नहीं हूं पर मैं मुझे पता है कि हसरत साहब एक गीतकार के योगदान को रेखांकित कर रहे थे। वो तो वैसे भी रोमांस के राजा थे'।

गाना लिखने की प्रक्रिया

'गाना लिखना शुरू करने से पहले मैं हमेशा पूछता हूं कि इस गाने पर कौन सा कलाकार होंठ हिलायेगा। मैं इसे ध्यान में रखकर ही गाना लिखता हूं। मिसाल के लिए राजेश खन्ना के गाने ही लीजिए, मैं यहां किशोर कुमार की आवाज़ ध्यान में रखकर गाने लिखता रहा हूं'।

'मैंने कभी हिट गाना नहीं लिखा, गाना पब्लिक हिट या फ़्लॉप करती है। जब निर्माता या निर्देशक मुझसे कहते हैं कि आप एक हिट गाना लिख दीजिए, तो मैं उनसे कहता हूं कि आप ग़लत आदमी के पास आए हैं। इस दुकान में हिट गाने नहीं मिलते'।

'फ़ौजी ज़िंदगी और एक गीतकार का काम एक जैसा है। दोनों में अनुशासन चाहिए। एक टीम की तरह काम करने का माद्दा आपके भीतर होना चाहिए। और इन दोनों ही क्षेत्रों में आपको अपने सीनियरों और दोस्तों की तारीफ़ और मदद भी चाहिए'।

'मैंने बहुत पहले ही सीख लिया था कि आप शब्दों की अपनी कलाबाज़ी को सुनने वालों पर नहीं थोप सकते। अगर आपका गाना दर्शक को समझ में नहीं आया तो वो उसे गायेगा नहीं और इस तरह आपका गाना ठुकरा देगा। कोई गाना तब पॉपुलर होता है जब आप उसे आसानी से गा सकें'।

'अपने गाने लिखने के फ़ौरन बाद भी मुझे वो याद नहीं रहते। शायद इसकी वजह ये है कि मेरा दिमाग़ अपने ही आप स्लेट को साफ़ कर देता है ताकि मैं अगले गाने के लिए तैयार हो सकूं'।

'मैं रोज़ाना पढ़ता हूं। अगर कोई रोज़ाना कुछ नया नहीं पढ़ता तो उसके पास कुछ नया कहने के लिए भला कैसे हो सकता है?'

'मैं समाज को जोड़ने वाले गीत लिखता हूं, तोड़ने वाले नहीं'। इसकी एक मिसाल है फ़िल्म

राकेश आनंद बक्शी

'देशप्रेमी' का गाना–'मेरे देशप्रेमियों आपस में प्रेम करो'

अवॉर्ड्स की रेस

'एक बार एक व्यक्ति ने मुझसे संपर्क किया और कहा कि अगर आप मुझे ग्यारह हज़ार रूपए दे देते हैं तो उस बरस का वो सबसे बड़ा अवॉर्ड आपके नाम हो जायेगा। ये सत्तर के दशक की बात है। मेरे गाने काफ़ी लोकप्रिय हो रहे थे। मैं चोटी पर था, पर मैं अवॉर्ड नहीं जीत पा रहा था। मैंने उससे कहा-"तुम कहते हो कि ग्यारह हज़ार रूपए के बदले में तुम मेरा अवॉर्ड पक्का करवा दोगे। पर क्या तुम आगे काम मिलने की गारंटी दिला सकते हो?" उसने जवाब दिया, 'नहीं। मैं सिर्फ अवॉर्ड मिलने की गारंटी दे सकता हूं'। मैंने उससे कहा कि इससे तो बेहतर है कि मैं काम करूं। ताकि मुझे और ज़्यादा काम मिलता रहे'।

नब्बे के दशक में कभी मैंने डैडी से पूछा था कि आपके इतने सारे नॉमीनेशन तो हुए पर आपको अवॉर्ड असल में बहुत कम मिल पाए हैं। मैंने उनसे कहा कि अगर आप पब्लिक रिलेशन के लिए कुछ लोग रख लें तो आपको और ज़्यादा अवॉर्ड पक्का मिलने लगेंगे। इस बात के जवाब में उन्होंने ये कहा-
'क़िस्मत सबसे ज़्यादा ताक़तवर होती है। मैं काम के लिए सिफ़ारिश या जोड़-तोड़ पसंद नहीं है। जब आपको कोई अवॉर्ड मिलता है तो ये सच है कि हौसला तो बढ़ता ही है पर मुझे अब अवॉर्ड की लालसा नहीं रही। मैंने जो अवॉर्ड जीते- मैं उन्हें पीछे छोड़ जाऊंगा। मेरे जाने के बाद भी वो अवॉर्ड हमारे लिविंग रूम की शोभा बढ़ाएंगे। अगले जनम तक जो अवॉर्ड मेरे साथ जायेगा वो अवॉर्ड मुझे सत्तर अस्सी के ज़माने में मिल चुका है। मुझे किसी गांव में रहने वाले एक अजनबी की चिट्ठी मिली। उसने लिखा कि मैंने ख़ुदकुशी करने का फ़ैसला कर लिया था और चल पड़ा था। हमारे गांव से होकर गुज़रने वाली रेल की पटरी पर जाकर लेट भी गया था। पर तभी मुझे पास ही कहीं बजते रेडियो की आवाज़ सुनायी पड़ी, हवा के झोंकों पर सवार होकर एक गाना मुझे तक आ पहुंचा था। उस गांव वाले को जो लाइनें सुनायी पड़ा वो थीं– 'गाड़ी का नाम, ना कर बदनाम, पटरी पे रख कर सक करे, हिम्मत ना हार, कर इंतज़ार, आ लौट जाएं घर को, ये रात जा रही है, वो सुबह आ रही है'। वो आदमी पटरियों से उठा और ठीक उसी वक़्त ट्रेन उसके सामने से गुज़र गयी। उसने मुझे लिखा कि मेरे गाने ने उसकी जान बचा ली। ये मेरी ज़िंदगी का सबसे बड़ा अवॉर्ड था'।

'अच्छे गीत लिखना बहुत मायने रखता है, पर हो सकता है कि वो पॉपुलर ना हो पायें या अवॉर्ड ना जीत पायें। फ़िल्म 'एक दूजे के लिए' में मुझे गीतकारी के लिहाज से "सोलह बरस की बाली उमर को सलाम, प्यार तेरी पहली नज़र को सलाम" ज़्यादा पसंद आया था, पर इस गाने को नामांकित तक नहीं किया गया। इसकी बजाय मुझे इसी फ़िल्म के गाने "तेरे मेरे बीच

में कैसा है ये बंधन अनजाना, मैंने नहीं जाना, तूने नहीं जाना” के लिए अवॉर्ड मिला। इसी तरह का मामला ‘दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगे’ के साथ भी हुआ। मुझे अवॉर्ड मिला ‘तुझे देखा तो ये जाना सनम’ के लिए, पर मुझे ‘घर आ जा परदेसी’ ज़्यादा पसंद था। हालांकि मैं इससे दुःखी नहीं होता, क्योंकि कुछ अवॉर्डों में जजों के लिए लोकप्रियता क्वालिटी से ज़्यादा मायने रखती है। पर ये ज़रूरी नहीं है कि आपका कोई गाना हिट हो और अवॉर्ड भी जीते। कोई गाना तभी अवॉर्ड का सही हक़दार होता है जब वो कहानी को आगे ले जाता हो। यही नहीं, गाने की सही सिचुएशन और उसका सही तरीक़े से फ़िल्माया जाना उसे सिर्फ कामयाब गाने की बजाय एक यादगार गाना बनाने में मदद करता है’।

‘फ़िल्म-निर्माण के किसी भी रचनात्मक व्यक्ति की तरह मैं भी असुरक्षा महसूस करता हूं, क्योंकि हमारे गानों की कामयाबी इस बात पर निर्भर करता है कि निर्देशक, संगीतकार, कोरियोग्राफ़र, सिनेमेटोग्राफ़र वग़ैरह ने उसे किस तरह पेश किया है। ये टीम-वर्क है। तो अगर कोई गाना अवॉर्ड नहीं जीतता है, इसका मतलब ये है कि हम सभी लोगों को इस कारोबार में आने वाली अनिश्चित चुनौतियों के बीच और ज़्यादा मेहनत करने की ज़रूरत है। फ़िल्में बनाना हो या गाने बनाना, ये टीम-वर्क है और हममें एक ऑर्केस्ट्रा की तरह साथ चलने की हिम्मत और काबलियत होनी चाहिए’।

फ़रवरी 2002 में किसी दिन डैडी ने ये चिट्ठी मुझसे बोलकर लिखवाई:

‘ग़दर: एक प्रेमकथा’ के मेरा गाने–‘उड़ जा काले कावां’ को कोई अवॉर्ड नहीं मिला। कई बरस पहले गायक मुकेश और मैं तब रोए थे जब फ़िल्म ‘मिलन’ को कोई भी अवॉर्ड नहीं मिला था। जबकि हम दोनों को लगता था कि अवॉर्ड मिलना चाहिए था। उस बरस ‘सावन का महीना’ बहुत ही लोकप्रिय हुआ था, सबने तारीफ़ की थी, इसी तरह ‘मेरे देश की धरती’ की भी तारीफ़ और लोकप्रियता रही थी और वो जीत गया। आंसू बहाने के बाद हम लोगों ने चुप्पी साध ली। हमने सोचा कि लाखों करोड़ों लोगों की तरफ़ से निर्णय करने वाले कुछ ताक़तवर लोगों के फ़ैसले पर कुछ नहीं कहना है। ये कितना सही है, ये सवाल हमेशा कायम रहेगा। सब लोगों को इसके बारे में सोचना चाहिए। आने वाले कुछ दशकों तक मैं शांत रहा। मुझे चालीस बार फ़िल्मफ़ेयर के लिए नामांकित किया गया पर अवॉर्ड केवल चार बार ही मिले....शुक्रिया फ़िल्मफ़ेयर का और उन तमाम लोगों का जिन्होंने अवॉर्डों का फ़ैसला किया’।

‘मैंने इससे पहले ऐसा फ़ैसला लिया नहीं था, पर अब लेना चाहता हूं। हालांकि इससे पहले अवॉर्ड जीतने पर मुझे हमेशा ख़ुशी मिली है और अपने सुनने वालों के लिए और भी बेहतर काम करते रहने की प्रेरणा भी मिली है। पर आज मैं औपचारिक रूप से ख़ुद को अवॉर्ड के इस ‘मुक़ाबले’ या कह लूं कि इस ‘रेस’ से अलग कर रहा हूं। मैं बंबई अवॉर्ड जीतने के लिए नहीं

आया था। मैं इसलिए आया था, क्योंकि मुझे गाने लिखने से प्यार है। ये मेरे बचपन का सपना था और चूंकि मुझे अपने परिवार की बेहतर ज़िंदगी और सुरक्षा के लिए पैसों की ज़रूरत थी। ख़ासतौर पर बंटवारे के बाद, क्योंकि हम वाक़ई बेघर हो गए थे। हमारी आर्थिक स्थितियां भी गड़बड़ा गयी थीं'।

'मैं अनुरोध करता हूं कि आज के बाद किसी भी अवॉर्ड के लिए मेरे नाम पर विचार नहीं किया जाए। मैंने कई स्टार संगीतकारों के साथ काम किया है। नौशाद से लेकर सचिन देव बर्मन और ए. आर. रहमान तक। मैं बहुत ख़ुश हूं। और ये मेरे लिए एक बड़ा अवॉर्ड है'।

'मेरा सबसे बड़ा इनाम ये है कि आख़िरकार मेरा सपना पूरा हुआ। वक़्त और ऊपर वाले का शुक्रिया। इस तरह मैं अपने परिवार को आर्थिक रूप से सक्षम बना पाया। इतने सारे लोगों का प्यार मेरे गानों को मिलता रहा। मेरा परिवार, मेरे रिश्तेदार और साथी और कुछ बहुत जाने माने लोग जैसे सुभाष घई, जावेद अख़्तर और समीर लगातार मेरे काम की तारीफ़ करते हैं। ये वो इनाम हैं जिनका मुक़ाबला कोई अवॉर्ड नहीं कर सकता'।

मैंने तकरीबन साढ़े तीन से चार हज़ार गाने लिखे हैं जिनमें एक हज़ार से ज़्यादा गाने अच्छे और लोकप्रिय या हिट रहे हैं। इसके बाद मैं 'अवॉर्ड्स' नामक किसी वार्षिक-परीक्षा में नहीं बैठना चाहता। जब 'सावन का महीना' जैसा गाना जीत नहीं पाया उसके बाद से मेरा अवॉर्ड्स में यक़ीन नहीं रहा। उस वक़्त मैंने सोचा था–'अगर इतना अच्छा गाना अवॉर्ड नहीं जीत सकता तो मैं इससे बेहतर शायद अपनी ज़िंदगी में कभी कुछ नहीं लिख पाऊंगा। इसलिए इसके बाद मुझे अवॉर्ड की कोई उम्मीद नहीं करनी चाहिए'। मुझे और इस दुनिया के कुछ दूसरे लोगों को साल-दर-साल अपने काम को लेकर परीक्षा-हॉल में नहीं बैठना चाहिए ताकि अवॉर्ड मिल जाए। लोगों से जो तारीफ़ मिलती है वो इन अवॉर्ड्स से ज़्यादा मायने रखती है। जो अवॉर्ड मुझे अब तक मिले हैं या आगे मिलेंगे, उन्हें मैं अपने बाद घर में सजावट की तरह छोड़ जाऊंगा। पर अगर मेरे एक गाने ने किसी एक इंसान की ज़िंदगी बचाई–तो मेरी आत्मा इस याद को शरीर का पिंजरा छोड़ने के बाद अपने साथ लेकर जायेगी। अब मेरा शरीर कमज़ोर पड़ रहा है। लगता है मैं ज़्यादा दिन नहीं जी पाऊँगा'।
'मैं इतनी जल्दी नहीं मरना चाहता, सिर्फ इसलिए नहीं कि मेरे भीतर अभी भी सैकड़ों अनकहे जज़्बात और गाने बाक़ी है। इस बात से मैं दुःखी नहीं हूं कि मैं मर जाऊंगा। मुझे अफ़सोस इस बात का है कि मैं इन अनलिखे-अनगाए गानों को अपने जाने से पहले किसी को दे नहीं पाऊंगा। अपने प्यारे बच्चों को भी नहीं, क्योंकि जो मेरे साथ आया है, वो मेरे साथ ही जायेगा। कोई भी ऐसे तोहफ़े को विरासत में किसी को नहीं दे सकता। ना तो बड़े दिल के साथ और ना ही बेवक़ूफ़ी में'।

'इससे पहले जब भी मुझे अपने गाने के लिए अवॉर्ड मिला, तो मैं स्टेज पर गया और मैंने शुक्रिया के साथ उसे स्वीकार किया। पर कभी भी दो तीन शब्द से ज़्यादा नहीं बोले। कई लोग मुझसे कहते थे–'आपको अवॉर्ड के बारे में कुछ बोलना चाहिए था, अपने गाने के बारे में या अपनी ज़िंदगी के बारे में बोलना चाहिए था'। मैं हमेशा जवाब में उनसे कहता था–'मुझे वहां बात करने की कोई वजह नज़र नहीं आती। मेरे शब्दों को बात करने दीजिए ना'। बहरहाल... मुझे अपने परिवार, दोस्तों और लाखों सुनने वालों से बहुत प्यार मिला है। मुझे अवॉर्ड इतने कम मिले हैं कि मैं किसी से कह भी नहीं सकता--देखो मैं भी अवॉर्ड जीत चुका हूं'।

अब वक़्त आ गया है। मैं बीमार हूं और मुझे सच बोल देना चाहिए। मैं अवॉर्ड्स के बारे में बिल्कुल बात नहीं करना चाहता, क्योंकि ये बहस कभी ख़त्म नहीं होगी और इसका कोई नतीजा नहीं निकलेगा। सुनने वालों को फ़ैसला करने दीजिए कि कौन अवॉर्ड के लायक़ है और कौन इनाम के लायक़। मेरी आपसे और इस ख़त को पढ़ने वालों और 'अवॉर्ड्स वाले लोगों' से ये इल्तिजा है कि वो मुझे माफ़ करें। आने वाले मुक़ाबलों से मेरा नाम हटा दिया जाए। मैं इस रेस से हट रहा हूं। मुझे कहीं पहुंचना है, कहीं जाना है। इसलिए मैं अवॉर्ड्स के पेशेवर संग्राम से अपना नाम हमेशा के लिए हटा रहा हूं। एक बहुत ही लोकप्रिय कवि, एकमात्र कवि-गीतकार जिन्हें मैं जानता था और जिन्होंने मेरी तब मदद की थी, जब मैं कुछ नहीं था–उन्होंने अवॉर्ड्स के पेशेवर संग्राम के बारे में यही बात कही थी। आप सभी का अभिवादन। बहुत-बहुत शुक्रिया। अच्छा तो हम चलते हैं'।

आपकी अपनी आवाज़ आपकी अपनी कहानी-

एक बार मेरा एक दोस्त सिद्धार्थ हमारे घर आया क्योंकि वो चाहता था कि डैडी उसका गाना सुन लें और उसे गाने की दुनिया में आने के बारे में कोई मार्गदर्शन दें। उसने डैडी से कहा कि वो मोहम्मद रफ़ी की तरह गाता है। डैडी ने मेरे इस दोस्त से कहा कि उसका गाना सुनने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। अगर वो रफ़ी साहब की आवाज़ सुनना चाहेंगे तो उनके पास बहुत सारी सीडीज़ और रिकॉर्ड हैं उनमें–सुन लेंगे। रफ़ी की नक़ल मैं क्यूं सुनूं? उन्होंने मेरे दोस्त को सलाह दी कि जाओ अपनी आवाज़ को खोजो। तभी मैं तुम्हारा गाना सुनूंगा और तुम्हें मार्गदर्शन भी दूंगा। अगर दूसरों से अलग दिखना चाहते हो तो तुम्हारी अपनी अनूठी आवाज़ होनी चाहिए'।

'जब आदित्य चोपड़ा ने मुझे 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे' की कहानी सुनाई तो मैंने कहा– "आदि, तुमने मुझे जो कुछ सुनाया है, अगर तुम इसका पचास प्रतिशत भी बना लेते हो तो तुम्हारी फ़िल्म बहुत बड़ी हिट हो जायेगी"। प्रीमियर के बाद मैंने आदि को कॉल किया और कहा–'तुमने जो कहानी मुझे सुनायी थी, उसे सौ फ़ीसदी वैसा ही बना दिया है, तुम्हारी फ़िल्म

राकेश आनंद बक्शी

बहुत बड़ी हिट होने वाली है'। जहां तक मुझे याद है ये फ़िल्म मुंबई के एक थियेटर हॉल में पंद्रह साल से भी ज़्यादा चलती रही'।

ये बात सहज है कि बख़्शी साहब को अच्छी कहानियों की बहुत समझ थी। नब्बे के दशक के मध्य तक उन्होंने कम से कम पाँच सौ फ़िल्मों के गाने लिख लिए थे। और कहानी सुनने के बाद तकरीबन दो सौ से ढाई सौ फ़िल्मों को ठुकरा भी दिया था। जब उन्होंने इतनी सारी फ़िल्मों की कहानियां बारबार सुनी हों तो ज़ाहिर है कि आपके भीतर कहा-नियों की अच्छी समझ पैदा हो जाती है'।

'जब मैं खार पश्चिम में एक गेस्ट हाउस में रहता था तो मेरे बग़ल वाले कमरे में कोई सनकी-सा बंदा रहता था। वो बरामदे में बैठकर नाश्ता करता था। रोज़ सुबह जब काम की तलाश में मैं बाहर निकलता और उसके पास से गुज़रता, और उसे नमस्ते करता तो वो मख्खन के अपने पैकेट को मेरी तरफ़ फेंकने की एक्टिंग करता। शायद वो मुझे पसंद नहीं करता था क्योंकि मैं अपना सारा वक़्त लिखने-पढ़ने में लगाता था और कभी उससे बातचीत नहीं करता था। मुझे बड़ा डर लगता था कि कहीं ऐसा ना हो, किसी दिन वो मेरे ऊपर मख्खन फेंक ही दे। एक दिन उसने सचमुच फेंक दिया और उसका निशाना चूक गया। मैंने फ़ैसला किया कि अपना कमरा बदल लूंगा। पर इससे मैंने एक सबक़ सीखा, मख्खन से मारो या पत्थर से, लेकिन निशाना लगना चाहिए। आप चाहे जो भी शब्द चुनें, एक गीतकार को अपने गीत में कहानी और पटकथा को बुनते आना चाहिए। निशाना एकदम सही लगना चाहिए वरना कोशिश बेकार चली जायेगी। मैंने हमेशा कहानी के मुताबिक़ लिखा और मेरा निशाना शायद ही कभी चूका होगा'।

सम्मान और असहमतियां

'ज़्यादातर लोगों को सम्मान चाहिए। इज़्ज़त चाहिए। भले ही उन्हें खाना पेट भर नहीं मिलता हो पर उन्हें इज़्ज़त पूरी चाहिए। एक बार एक ट्रैफिक हवलदार ने मुझे सिग्नल पर रोका। मैं अपनी कार से उतरा और उसकी तरफ़ बढ़ा, एक सही दूरी पर जाकर रूका और मिलेट्री स्टाइल में मैंने से सैल्यूट मारा। वो हंसा और उसने भी मुझे सैल्यूट किया। उसने मुझसे कहा कि आइंदा सिग्नल मत तोड़ियेगा। जाईये। उसने मुझे इसलिए नहीं छोड़ दिया क्योंकि वो मुझे पहचान गया था। मैंने उसे जो इज़्ज़त दी, उससे वो ख़ुश हो गया। मैं ऐसी ही इज़्ज़त उन निर्माताओं को भी देता हूं जो मुझे अपने काम के बदले में पैसे देते हैं। मेरी कोशिश रहती है कि उनका काम अच्छे से अच्छा करके दूं। मैं कभी ऐसा नहीं दिखाता कि वो मुझे पैसे तो कम देते हैं और बदले में मुझसे इतना सारा काम लेते हैं'।

राकेश आनंद बक्शी

‘निर्माताओं और निर्देशकों से अपनी असहमति जताने के का अच्छा तरीक़ा भी होता है। आपको उनकी बेइज़्ज़ती करने या उन पर चिल्लाने की ज़रूरत नहीं है। एक बार मेरा ड्राइवर वर्ली सी-बार मना किया कि-स पर ज़रूरत से ज़्यादा तेज़ गाड़ी चला रहा था जबकि मैंने उसे बारेफ इतनी तेज़ गाड़ी मत चलाया करो। तंग आकर मैंने उससे साइड में गाड़ी रोकने को कहा, गाड़ी से उतरा और टैक्सी करके घर आ गया। उससे कहा कि तुम गाड़ी घर पहुंचा देना। वो चुपचाप हमारे पीछे पीछे चलता चला गया। इसके बाद उसने कभी भी बेतहाशा गाड़ी नहीं-

‘एक बार बी. आर. चोपड़ा साहब और मैं एक फ़िल्म पर काम कर रहे थे, मैं कहानी को ठीक से समझ नहीं पा रहा था। ये उनकी नहीं, मेरी अपनी कमज़ोरी थी। पर मैं नहीं चाहता था कि वो मेरे बिना ये फ़िल्म बना लें। इससे पहले हमने ‘पति पत्नी और वो’ में बहुत बढ़िया काम किया था। मैंने उनसे साफ़ कह दिया कि इस प्रोजेक्ट में मुझे माफ़ कर दीजिए, पर इसकी एक शर्त है कि हमारी दोस्ती कायम रहेगी और आप मुझे इसी तरह अपने घर में खाने पर बुलाते रहेंगे, क्योंकि आपके घर में जैसा नॉन-वेज खाना बनता है, वैसा मैंने कहीं और नहीं खाया। चोपड़ा साहब बेसाख़्ता हंस पड़े। हालांकि हमने साथ काम नहीं किया पर वो और उनके बेटे मेरे दोस्त बने रहे’।

‘जब तक आपका मन ना हो, किसी काम को हाथ में ना लें, भले ही आपने उस पर अपना वक़्त और पैसा लगाया हो। मिसाल के लिए, मुझे ऊँचाई से डर लगता है। मुझे उड़ान से भी डर लगता है। कई बार मैं एयरपोर्ट से बिना फ़्लाइट लिये वापस आ गया हूं। मैं ऐसा इसलिए करता था क्योंकि मेरा मन कहता था इस फ़्लाइट में मत जाओ। मैं टिकिट के पैसे ख़र्च करने के बाद भी इसलिए लौट आता था क्योंकि डर मेरे दिमाग़ पर हावी हो जाता था। ऐसा ना हो कि उड़ान में मुझे ‘पैनिक अटैक’ आ जाये और सारे लोग परेशान हो जायें। इसलिए मैं दूसरों की परेशानी की परवाह करते हुए अपने टिकिट के पैसे ज़ाया हो जाने देता था’।

‘मैं बहुत अलग-अलग तरह के लोगों से मिला हूं और इतने सालों में मैंने अलग- अलग किरदारों और कहानियों के लिए गाने लिखे हैं। इसने मुझे एक बेहतर लेखक और बेहतर इंसान बनाया है। मैंने अपने हर गाने से सबक़ सीखे हैं। ठीक इस तरह से मैंने अपने हर बच्चे की पैदाइश के बाद ख़ुद को बेहतर पिता बनाया है। मैं पहले से बेहतर बनता चला गया हूं’।

***

बख़्शी साहब ने जो कुछ कहा है, वो फ़िल्म-इंडस्ट्री या गीतकारी के पेशे के लिए परम-सत्य नहीं है। उनकी ये तमाम बातें हमें ये अहसास दिलाती हैं कि आनंद बख़्शी किस तरह सोचते और काम करते थे। उनकी विचार और मान्यताएं क्या थीं। उन्होंने जो कुछ भी कहा है, इस अध्याय के आख़िर में जो बात मेरे लिए सबसे ज़्यादा मायने रखती है वो ये कि काम पर उनका कितना ज़्यादा फ़ोकस, कितना समर्पण था। उन्होंने कहा था--'मैंने पहले तो लिखना एक शौक़ की तरह शुरू किया था, इसके बाद अपने परिवार की आर्थिक सुरक्षा के लिये लिखा। और इसके बाद इसलिए लिखता रहा क्योंकि लिखने के बिना मैं जी नहीं सकता था। कुछ गाने मैंने दिल से लिखे, कुछ गाने मैंने अपना घर चलाने के लिए लिखे। अपने संगीतकारों, फ़िल्मकारों और परिवार के लिए अच्छे से अच्छा काम करना मेरा परम-कर्तव्य है। हालांकि मुझे लगता है कि लिखने के अनुभवों ने मुझे एक बेहतर इंसान बनाया है'।

मोहन कुमार और राजेंद्र कुमार के साथ

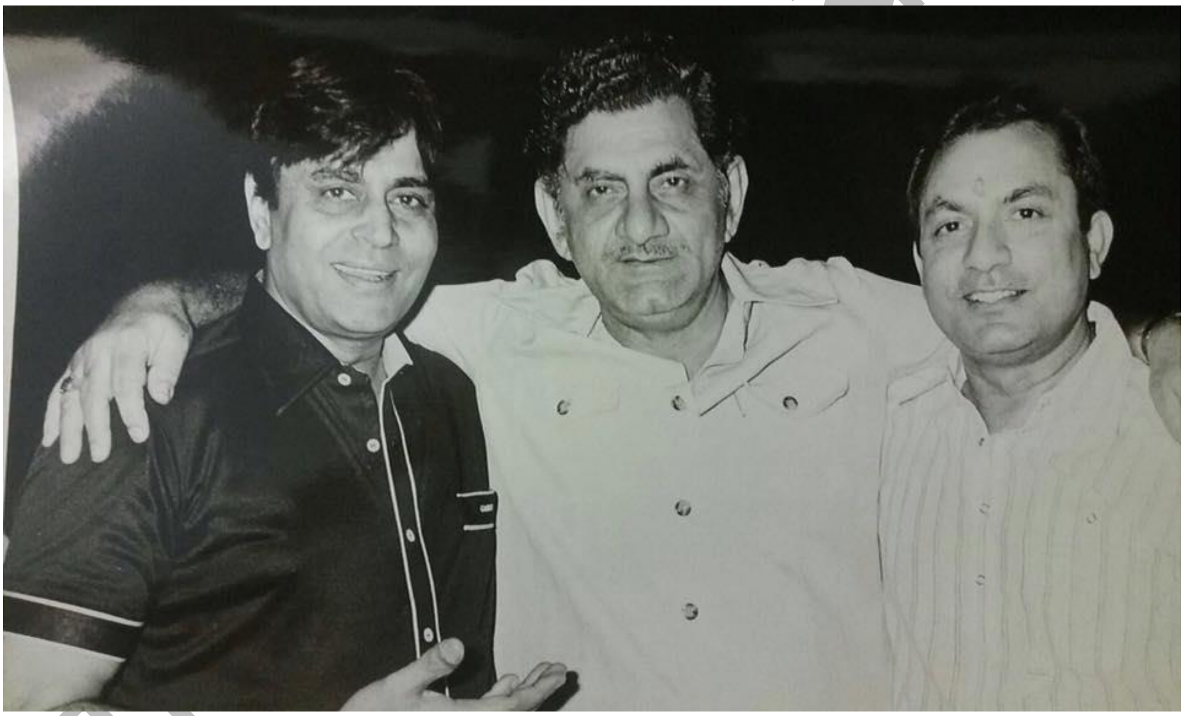

मोहन कुमार और जे. ओमप्रकाश के साथ।

सुभाष घई और प्यारेलाल जी के साथ।

राकेश आ

लक्ष्मीकांत और लता मंगेशकर के साथ।

आर. डी. बर्मन और लता मंगेशकर के साथ

मोहम्मद रफ़ी के साथ

राजकपूर के साथ। सुनील दत्त के साथ ।

young Anand Bakshi receiving a trophy from Raj Kapoor and (right) with Sunil Dutt

माला सिन्हा और लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के साथ।

राहुल देव बर्मन, ओमप्रकाश और महमूद के साथ

शंकर जयकिशन की जोड़ी के जयकिशन दयाभाई पांचाल के साथ

राज खोसला के साथ

लक्ष्मीकांत और राजेश खन्ना के साथ

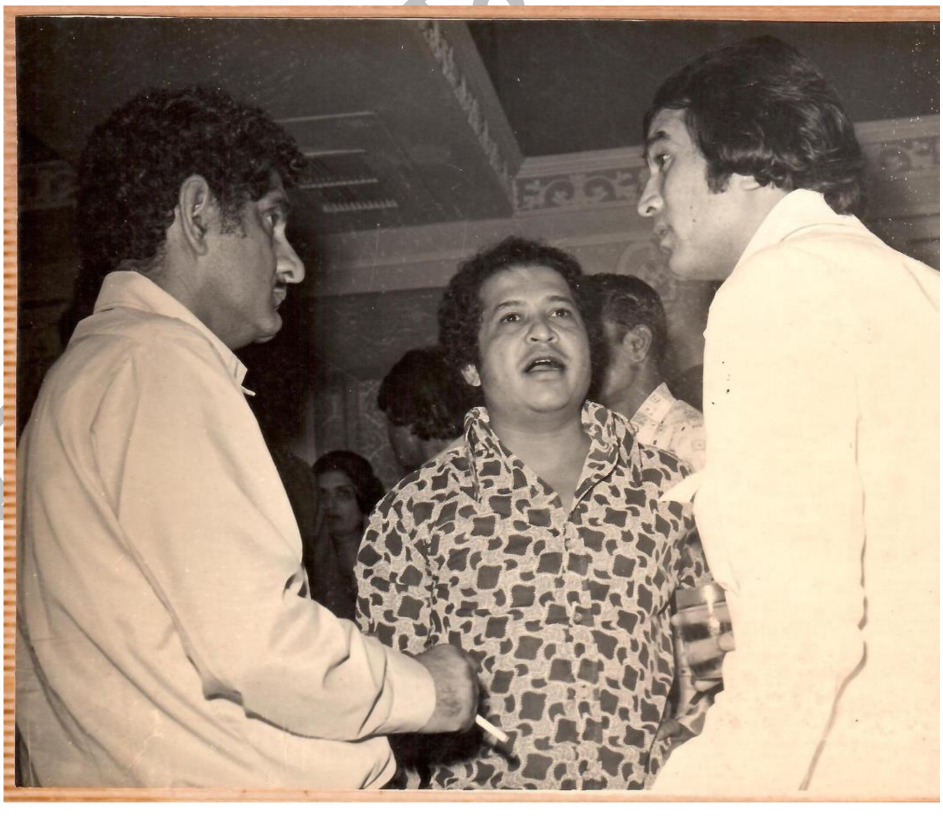

जे ओमप्रकाश के साथ .

बी आर चोपड़ा के साथ

शक्ति सामंत और प्रवीण चौकसी के साथ अपनी नयी शेवरले बेल एयर के साथ। साथ में कमला बख़्शी।

जे. ओमप्रकाश, रीना रॉय और जीतेंद्र के साथ आशा’ की शूटिंग के दौरान

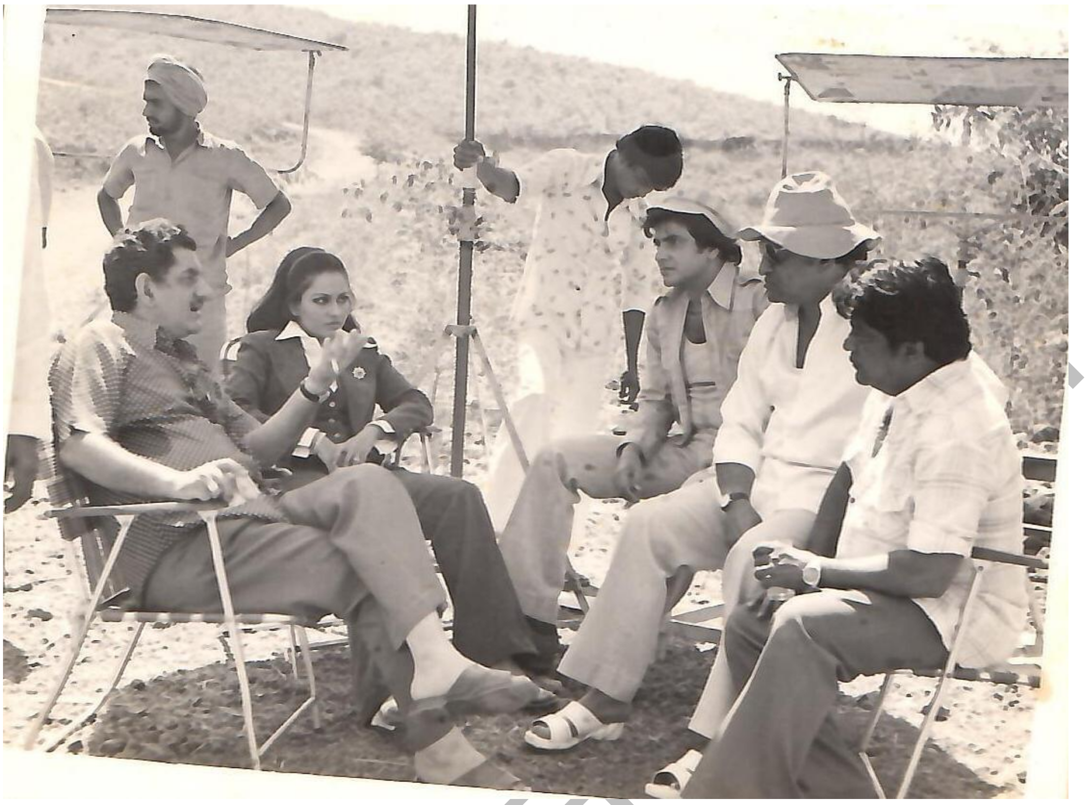

प्रेमजी और पंडित रविशंकर के साथ

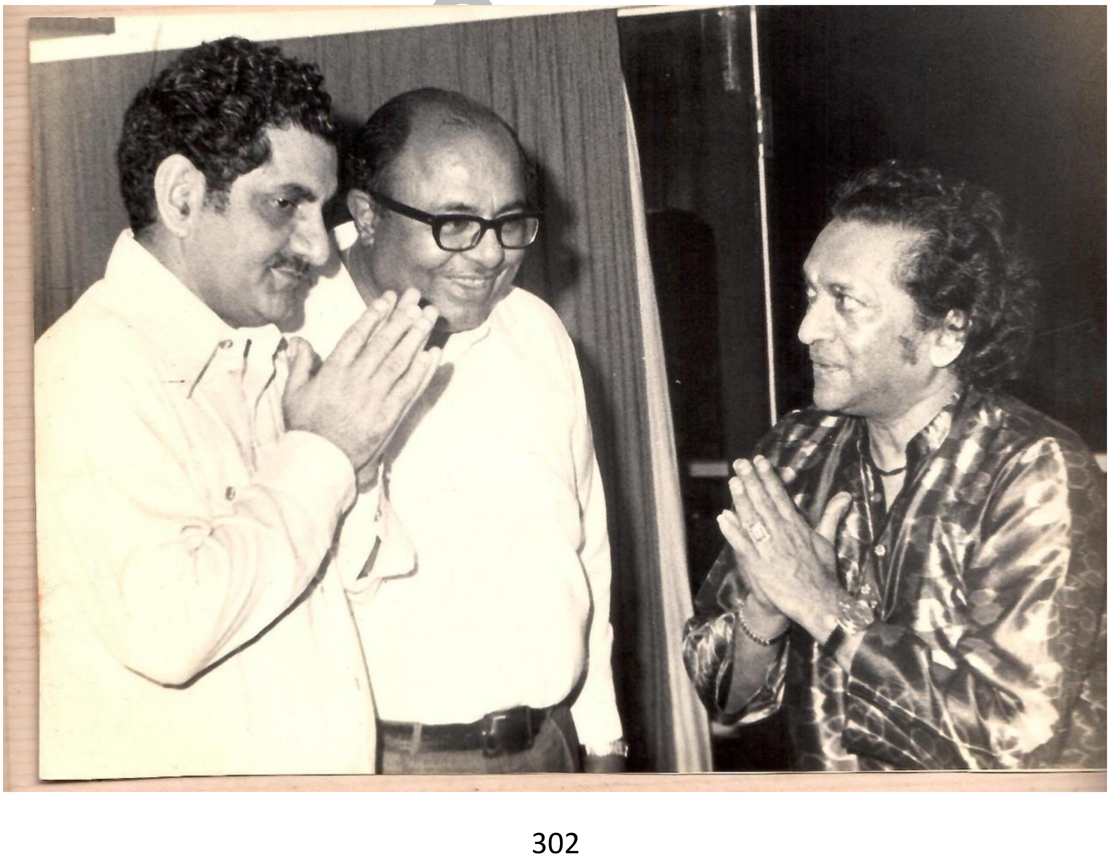

शक्ति सामंत के साथ एक पार्टी में

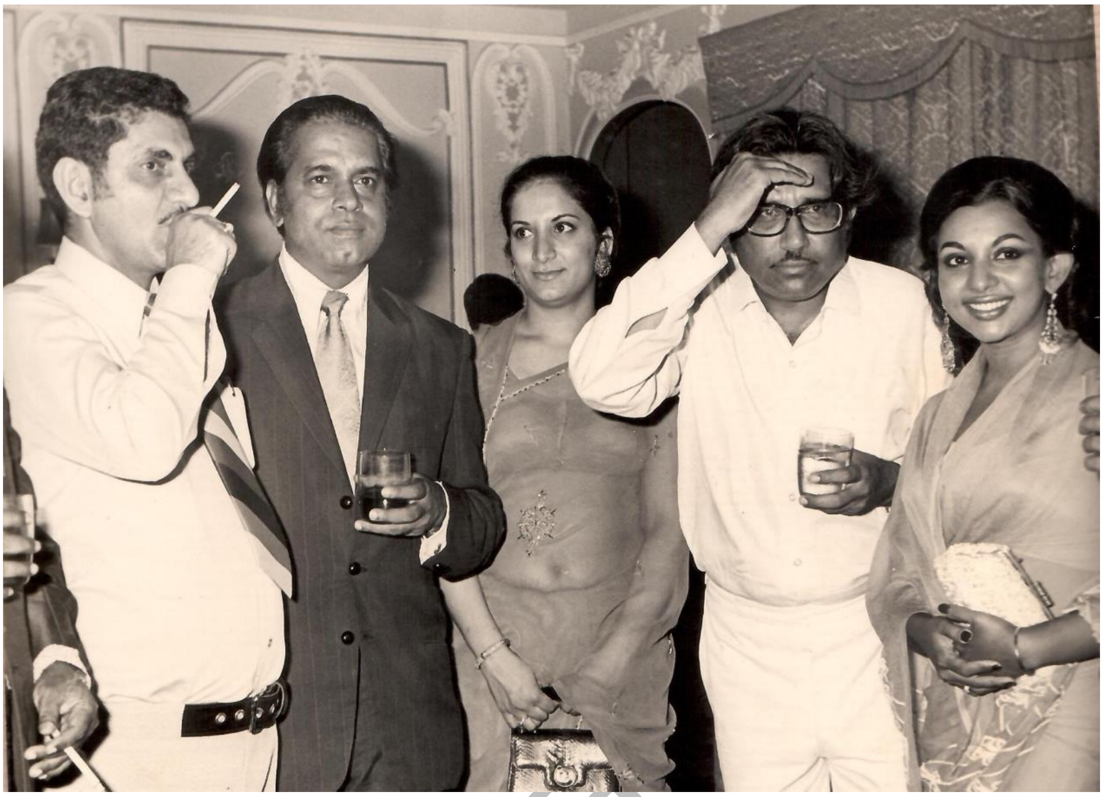

राजेश खन्ना के साथ

दिलीप कुमार और सायरा बानो के साथ।

अभिनेता सुंदर के साथ।

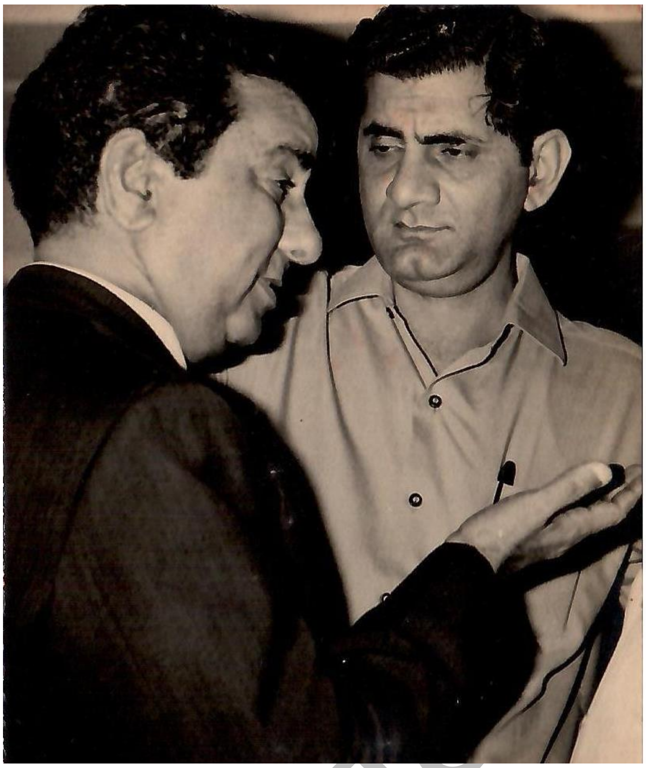

राहुल देव बर्मन और जीना लूजिया लोलोब्रिजिडा के साथ

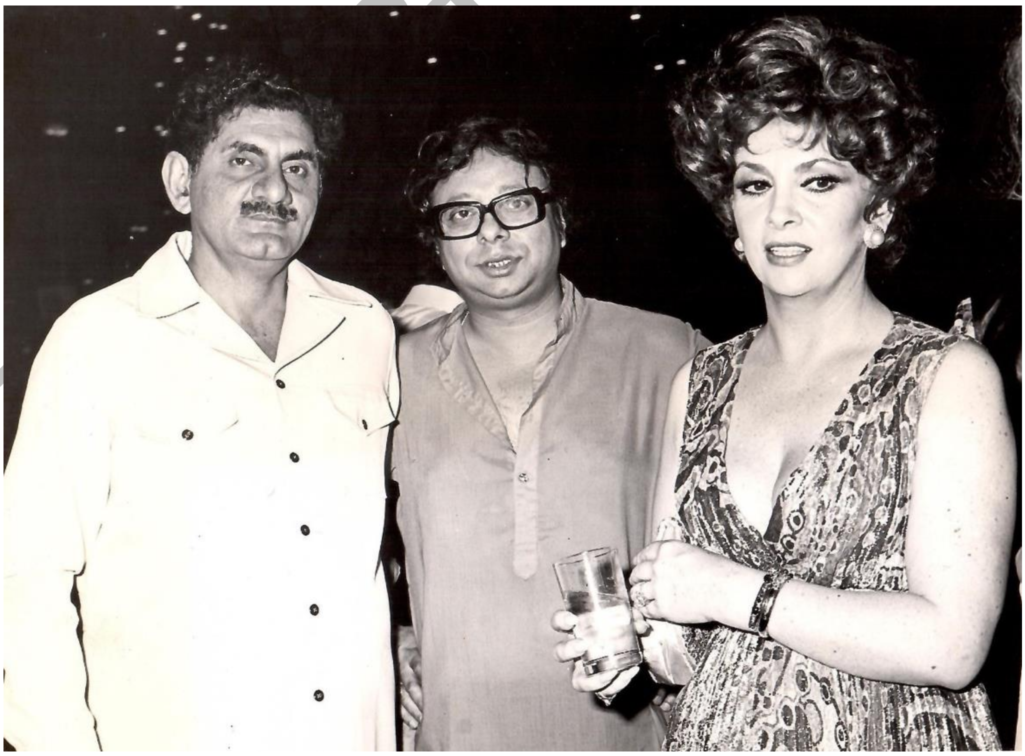

अमिताभ बच्चन और यश जोहर के साथ ऊटी में दिल्लगी ने दी हवा' (दोस्ताना) की शूटिंग पर।

अमिताभ बच्चन के साथ

अशोक कुमार के साथ

सुभाष घई के साथ 'ताल' की लॉन्च पर। 1998 जनवरी 25

मोहन कुमार, विनोद खन्ना और ए. आर. रहमान के साथ। 21 जुलाई 1998

शक्ति सामंत के साथ गाना गाते हुए।

नरगिस और सुनील दत्त के साथ।

सुभाष घई और दिलीप कुमार के साथ। 21 जुलाई 1998 को।

राजकपूर के साथ

नौशाद के साथ

राजकपूर और मोहन कुमार के साथ।

आर. डी. बर्मन के ऑर्केस्ट्रा के साथ सत्तर के दशक में मंच पर गाते हुए।

मजरूह सुल्तानपुरी के साथ सुमन बख़्शी दत्त की शादी में।

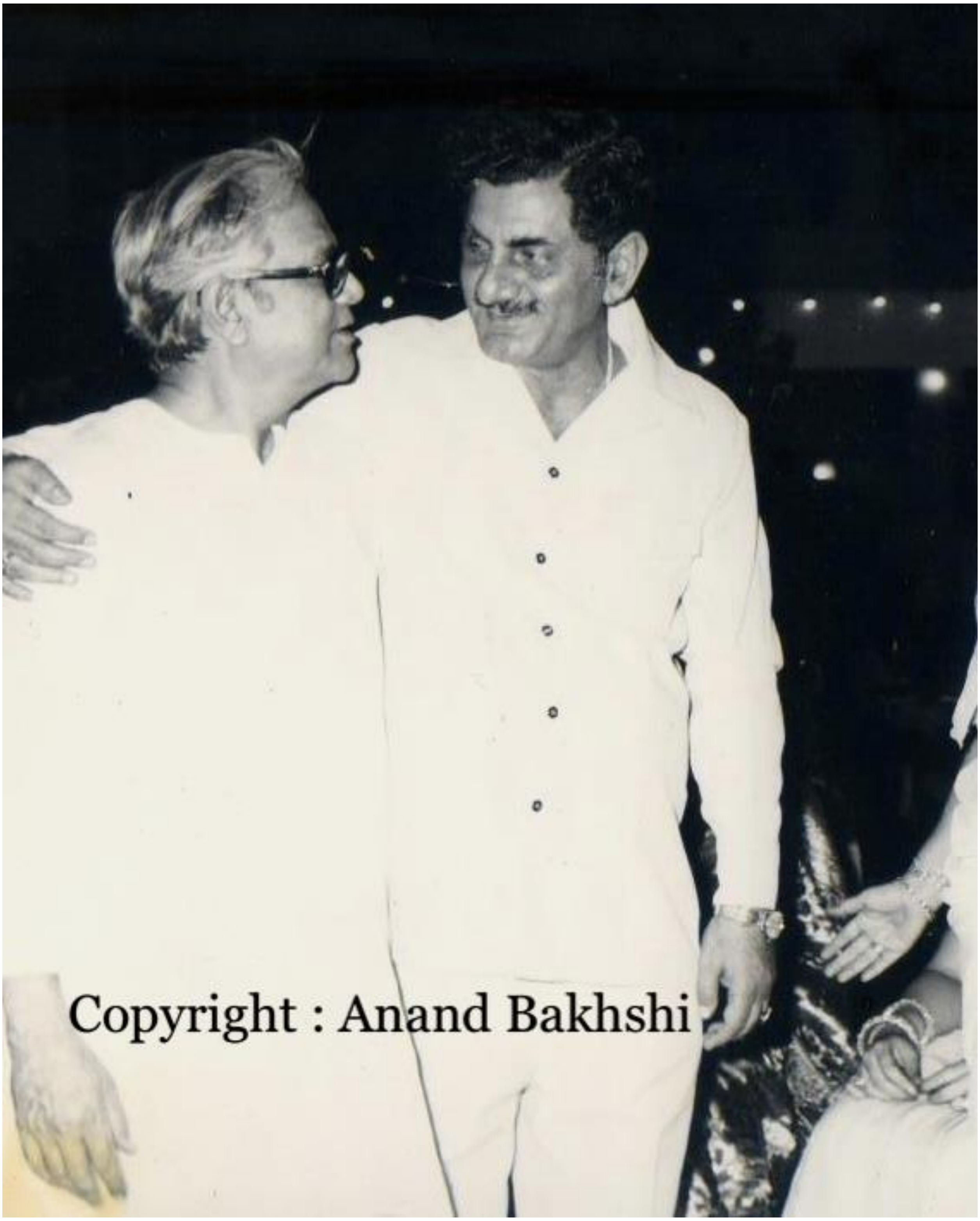

बख़्शी साहब उन दिनों पैरों के फ़्रैक्चर से उबरे थे और पहली बार कमला बख़्शी के एक गाने की रिकॉर्डिंग में लेकर गए थे। किसी गाने की रिकॉर्डिंग में ये कमला जी की पहली तस्वीर है।

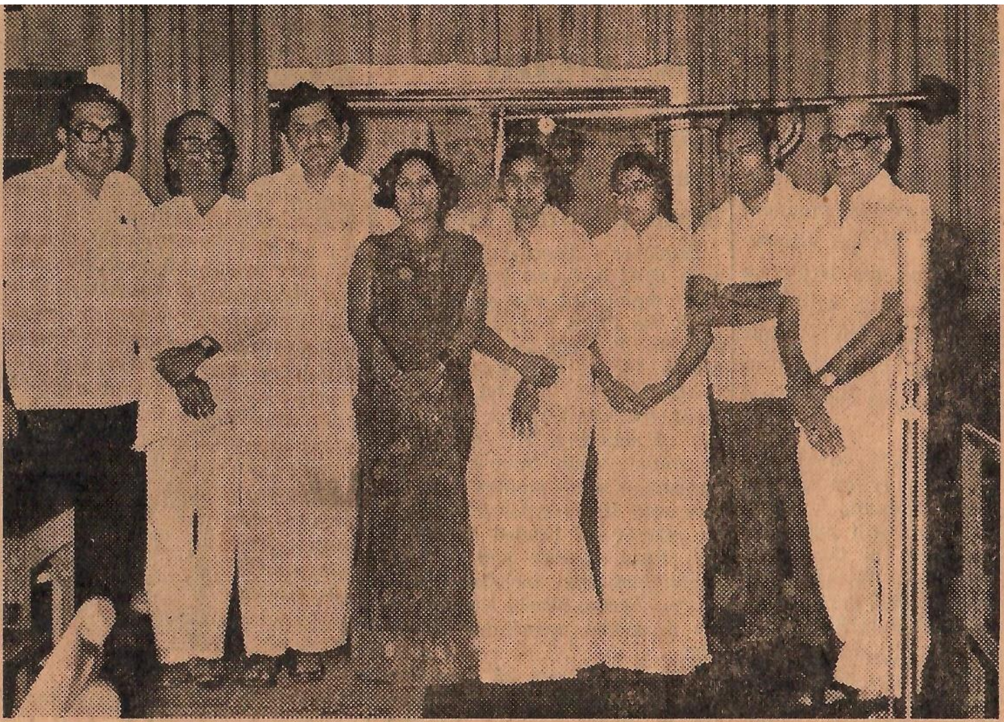

The song recording session of AVM Productions' colour venture, 'Jeevan Jyoti' shows from L: co-director M. Murugan, composer Salil Chowdhury, lyricist Anand Bakshi, his wife, crooners Asha Bhosle and Usha Mangeshkar, M. Kumaran and N. C. Menon.

First-time Kamla took me for Recording
After my leg fracture.

निर्माता ए. कृष्णमूर्ति (एकदम दाहिनी तरफ़) के साथ। उनके दोस्त सतीश जैन और पोता आदित्य दत्त। 1990 के ज़माने की तस्वीर।

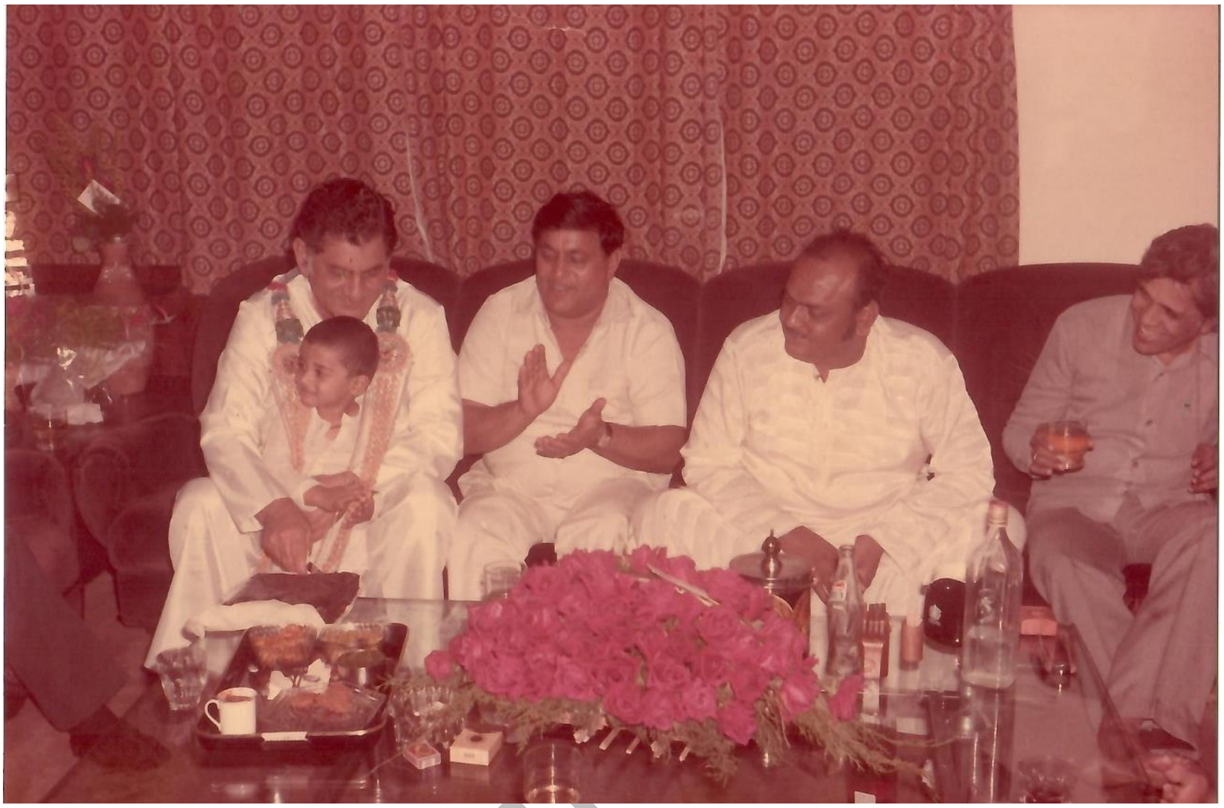

राकेश आ

'मोम की गुड़िया' बतौर गीतकार आनंद बख़्शी का पहला गीत।
10 दिसंबर 1971. मोहन कुमार। लक्ष्मीकांत प्यारेलाल और साउंड रिकॉर्डिस्ट भंसाली (एकदम बायीं तरफ़) के साथ।

राकेश

गुलज़ार के साथ

रामानंद सागर के साथ।

लता मंगेशकर के साथ, बेटी सुमन की शादी में।

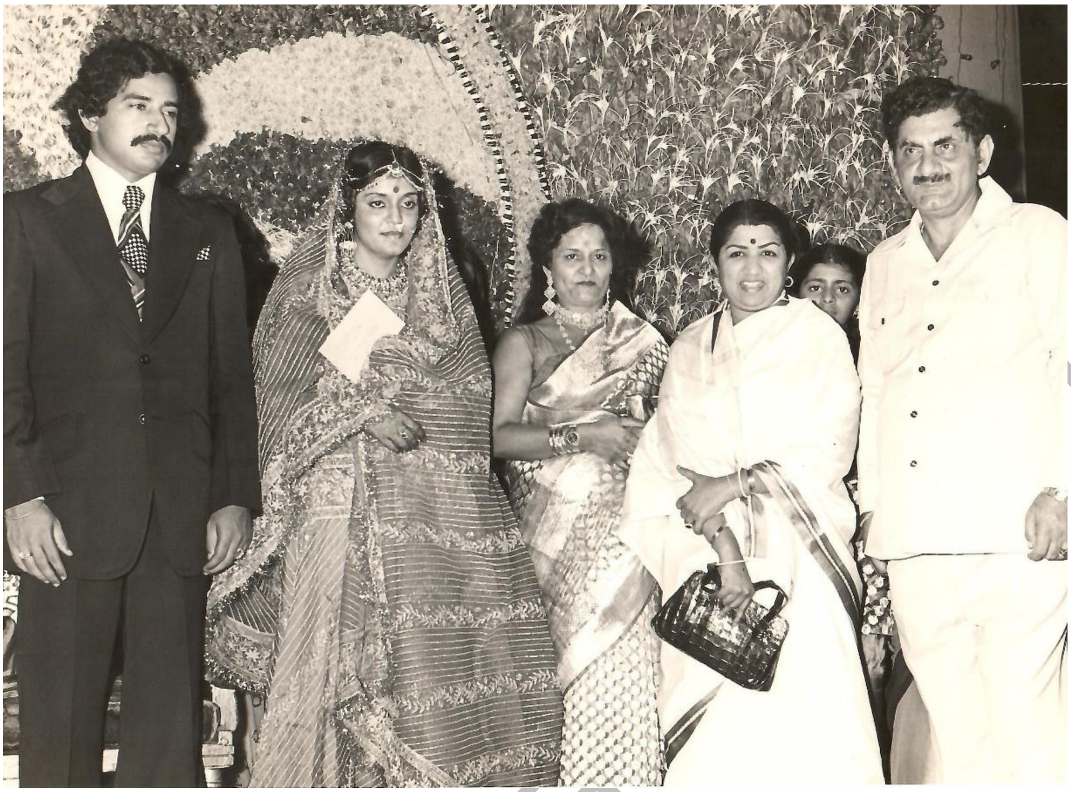

सुनील दत्त और आशा भोसले के साथ।

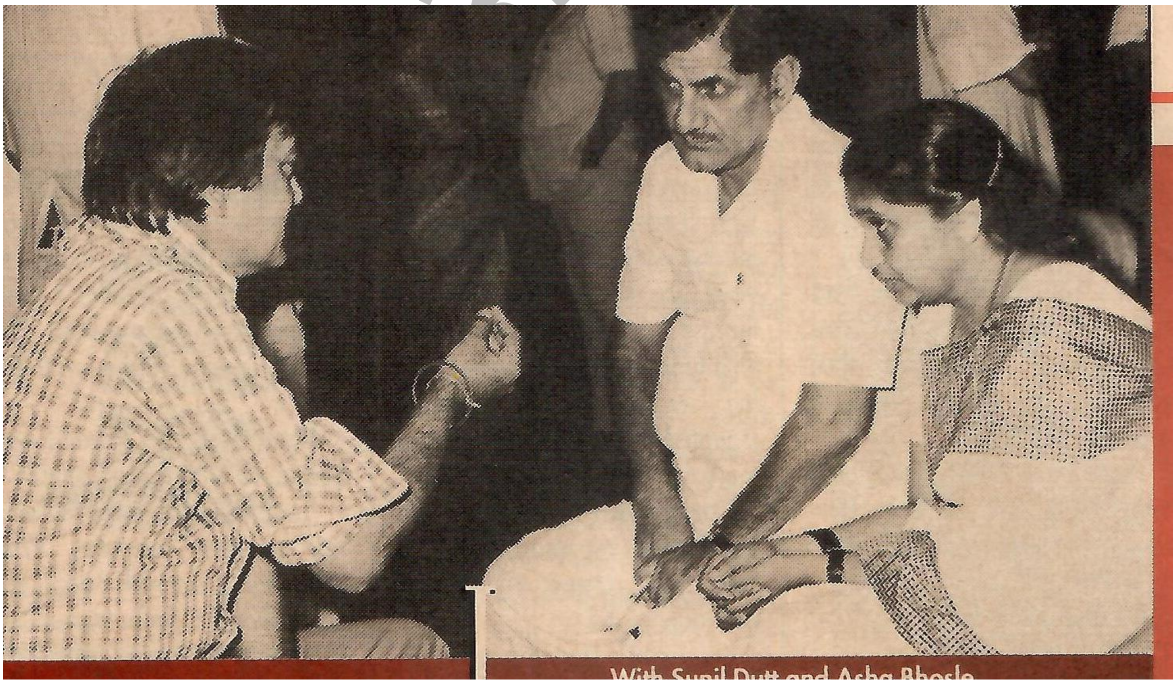

नुसरत फ़तेह अली ख़ान और उनके दो बेटे। दामाद विनय दत्त और संजीव बाली। संजीव का घर। नई दिल्ली।

आनंद बख़्शी 'कच्चे धागे' का अपना गाना गाते हुए। साल 1999.

अपने वकील दोस्त श्याम केसवानी के साथ।

ख़ैयाम के साथ

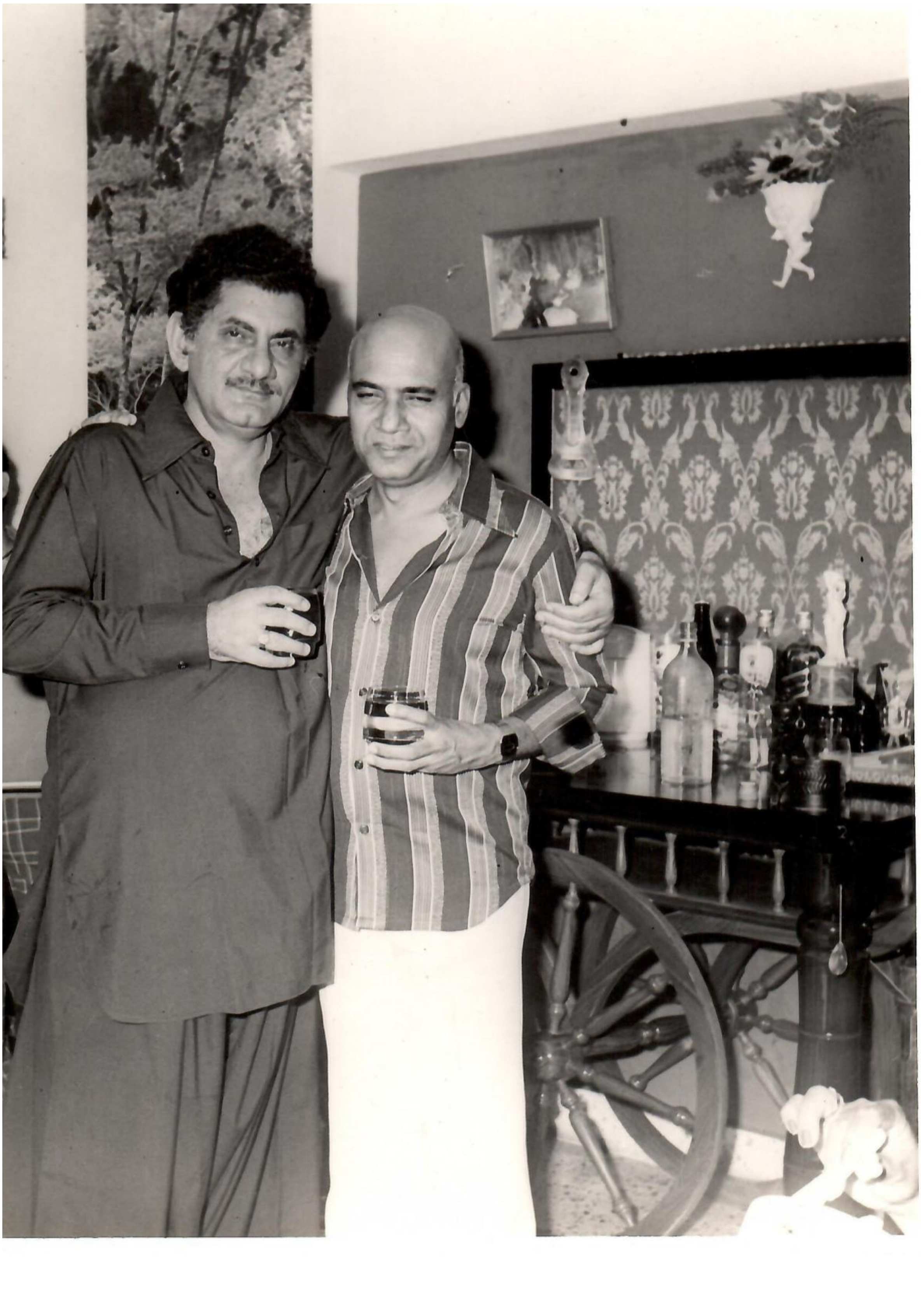

यश जोहर और गुलशन राय के साथ।

राकेश आ

प्राण के साथ।

राकेश आ

अपने मामा मेजर बाली के साथ। साथ में नरगिस और सुनील दत्त।

'तुम्हें हुस्न देके ख़ुदा ने सितमगर बनाया' फ़िल्म 'जब से तुम्हें देखा है' संगीतकार दत्ताराम वाडकर। सुपरहिट क़व्वाली।

राकेश

तलत अज़ीज़ के साथ फ़िल्म धुन के गाने मैं आत्मा तू परमात्मा की रिकॉर्डिंग के दौरान।

उन्हें गाने का बड़ा शौक़ और जुनून था, हालांकि वो मुख्य रूप से गीतकार बनना चाहते थे। 'मोम की गुडिया' के गाने की रिकॉर्डिंग के दौरान। ये बतौर गायक उनका पहला गाना था। दस दिसंबर 1971–'मैं ढूंढ रहा था सपनों में'।

राकेश आनंद बक्शी

हमारे प्रार्थना के कमरे में। वहां दीवार पर एक एंब्रॉयडरी वाली हैंगिंग लगी थी–'जो परिवार साथ प्रार्थना करता है–वो साथ रहता है'।

दोस्तों और रिश्तेदारों के साथ जश्न मनाते हुए।

अध्याय 9

'मुश्किल में है कौन किसी का'।

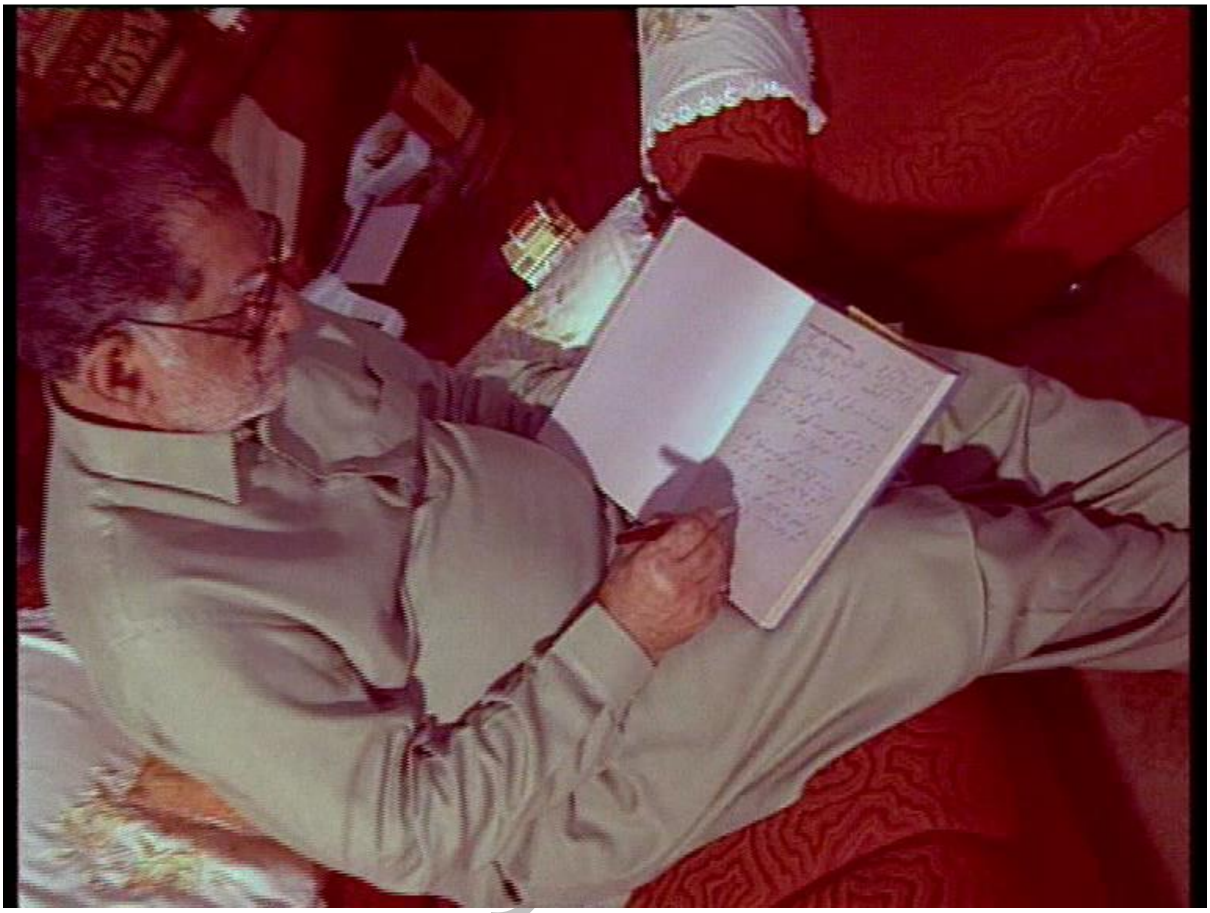

'मैंने कभी कोई ऐसा इंसान नहीं देखा जिसने मुझे ख़ुद से ज़्यादा तकलीफ़ दी हो'। ये बात डैडी तब कहते थे, जब वो पान खाने और सिगरेट पीने की अपनी आदत से छुटकारा पाने की कोशिश कर रहे थे। अस्सी के दशक में उन्हें दूसरी बार हार्ट अटैक हुआ था और उनके सीने-मेक-में पेसर लगा दिया गया था। उनके डॉक्टर ने उनसे कहा था, 'बख़्शी साहब, बीते तीस सालों में आपने पान और सिगरेट की जो बुरी आदतें लगायी हैं, अब उन्हें छोड़ने का वक़्त आ गया है। इन्होंने आपके दिल को बहुत नुकसान पहुंचाया है'।

डॉक्टर के जाने के बाद डैडी ने बोले, 'अरे ये डॉक्टर कुछ नहीं जानता। पान-तंबाकू ने मेरे दिल को नुकसान नहीं पहुंचाया है। मेरे गानों ने मेरे दिल को चोट पहुंचाई है'।

***

एक विरोधाभास

हालांकि डैडी किसी भी गाने को लिखने से पहले हमेशा ख़ुद पर संशय करते थे, उनमें आत्मविश्वास की कमी होती थी, पर जब कोई उन्हें एक गीतकार या एक इंसान के रूप में चुनौती देता था, तो वो जानते थे कि इसका जवाब कैसे दिया जाता है। इस बारे में मुझे दो घटनाएं याद आती हैं। ये हम इंसानों के भीतर मौजूद विरोधाभास को भी दिखाती हैं। पहली घटना का ताल्लुक़ हमारे दूसरे घर से है। पंचगनी के पहाड़ों पर भीलर में हमारे परिवार का एक घर है। मुंबई से क़रीब पाँच किलोमीटर दूर। डैडी और मम्मी ने इसे पाँच सालों में मिलकर बनवाया था और हम हर साल गर्मियों की छुट्टियों में ही वहां जा पाते थे। वहां सारी बुनियादी सुविधाएं तो थीं पर वो किसी भी कोण से गीतकार आनंद बख़्शी का वैसा शानो-शौक़त से भरा घर नहीं था, जैसी शायद लोगों को उम्मीद रहती होगी। इसी के पास पुणे के एक उद्योगपति का शानदार घर था। कभी-कभी वो हमारे घर आते थे। कभी हम भी उनके घर चले जाते थे। एक बार वो घर आए और बोले- 'मिस्टर बख़्शी, सच कहूं तो मुझे झटका लगा जब आपका ये घर देखा। हैरत भी हुई। कम से कम फ़र्श पर ग्रेनाइट तो लगवा लीजिए और अंदरूनी सजावट पर भी थोड़ा पैसा ख़र्च कीजिए। ये आजकल का फ़ैशन है। सीमेन्ट की छत बनवाइये। खपरैल वाली आपकी छत पुराने ज़माने की लगती है। आपको किसी इंटीरियर डिज़ाइनर की मदद लेनी चाहिए। आप कहें, तो मैं अपने डिज़ाइनर से आपका परिचय करवा देता हूं। आपके जैसे नामी इंसान का घर बहुत ख़ूबसूरत होना चाहिए बख़्शी साहब'।

बिन मांगे दी गयी उनकी सलाह पर थोड़ी देर ग़ौर करने के बाद डैडी ने उनसे कहा, 'मुझे ख़ुशी है कि आपका घर हमारे साधारण घर से ज़्यादा ख़ूबसूरत है। बीते कई सालों से मैं इस घर में आता रहा हूं, जब मैं खपरैल की छत वाले इस सीधेसादे बरामदे में बैठता हूं-, तो मुझे वही धूप लगती है, जो आपके घर तक जाती है। एक और बात पर मैंने ग़ौर किया है। जो लोग मेरे घर के सामने से गुज़रते हैं, उनमें से कुछ रूककर मेरी तरफ़ या घर की तरफ़ इशारा करके कहते हैं, 'देखो ये आनंद बख़्शी का घर है। वो मेरे घर को तारीफ़ भरी नज़रों से देखते हैं और... आपको लग रहा है कि ये घर मामूली है?!'

दूसरी घटना एक पार्टी की है, जिसे एक इनकम टैक्स ऑफ़ीसर ने आयोजित किया था। उन्होंने बख़्शी साहब से अनुरोध किया कि वो गाना गाएं--'बख़्शी जी, मैंने सुना है कि आप बहुत अच्छा गाना गाते हैं, क्या आप हमारे लिए अपने कुछ पसंदीदा गाने गायेंगे'।

डैडी ने जवाब दिया, 'मुझे गाना गाना पसंद है, हालांकि मैं गाने में माहिर नहीं हूं। आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं इस पार्टी में अपने मेज़बान दोस्त के लिहाज में आया हूं। आज मैं गाना नहीं गा पाऊंगा। पर किसी और पार्टी में जब हम यहां मिलेंगे तो ज़रूर गाना गा दूंगा'।

उस इनकम टैक्स ऑफ़ीसर ने जवाब दिया–'बख़्शी साहब, ये एक इनकम टैक्स ऑफ़ीसर की अपने साथी ऑफ़ीसरों के लिए आयोजित पार्टी है। मैं एक इनकम टैक्स ऑफ़ीसर हूं और आपसे गाने को कह रहा हूं, इसे आप एक फ़ैन की इल्तिजा ना समझें, इसे एक हुक्म समझें और फ़ौरन गाना गायें'।

आनंद बख़्शी ने बड़े मज़े से अपने गिलास में से एक घूँट पिया, अपनी 555 सिगरेट का एक गहरा क़श लिया और उस अख्खड़ अफ़सर की तरफ़ बेपरवाही से देखकर कहा, 'सर, प्लीज़ बताईये कि इनकम टैक्स डिपार्टमेन्ट में आपका क्या रैंक है?'

अफ़सर ने बड़े गुरूर से जवाब दिया–'मैं असिस्टेन्ट इनकम टैक्स कमिश्नर हूं'।

बख़्शी जी ने अपने गिलास से एक और घूँट पिया और बोले, 'इस शहर में इनकम टैक्स डिपार्टमेन्ट में दस हज़ार या इससे कम असिस्टेन्ट कमिश्नर तो होंगे ही। अगर पूरे देश की बात करें, तो कई हज़ार असिस्टेन्ट कमिश्नर होंगे। तो प्यारे असिस्टेन्ट इनकम टैक्स कमिश्नर जी, लोग कहते हैं कि इस देश में सिर्फ़ एक आनंद बख़्शी है। जब आप अपने पेशे में एक ऐसे रैंक पर पहुंच जाएं, जहां आप अपनी तरह के इकलौते हों, तो मुझे गाना गाने का हुक्म दीजिएगा। तब मैं आपके लिए ख़ुशी-ख़ुशी गाना गाऊंगा। पर पहले अपने पेशे में ऐसे रैंक पर पहुंच तो जाईये'। इसके बाद उस पार्टी में उस इनकम टैक्स कमिश्नर ने मेरे डैडी से आँख तक नहीं मिलायी'।

***

नब्बे के दशक के मध्य की बात है, क़रीब तीन दशकों से अकेले पड़ जाने की जो घबराहट उनके मन में थी, एक गीतकार के रूप में आत्मविश्वास की जो कमी थी–उसका उपाय करने के लिए आनंद बख़्शी को उनके फ़ैमिली डॉक्टर ने सलाह दी कि आपको फिर से वो सब करना चाहिए जो आपने तब किया था जब आप बंबई एक स्ट्रगलर के रूप में आये थे। डॉक्टर को लग रहा था कि अगर बख़्शी जी पचास और साठ के दशक के अपने समय को दोबारा जियेंगे, जब वो एकदम अकेले थे, तो उनका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आयेगा। तो जैसा कि मैंने पहले भी ज़िक्र किया, बख़्शी जी ने मुंबई की लोकल-ट्रेनों में अकेले सफ़र करना शुरू किया। ठीक उसी तरह जैसे वो स्ट्रगल के दौरान करते थे। उन्होंने वेस्टर्न रेलवे का पहले दर्जे का पास बनवाया और वो दोपहर को हफ़्ते में कम से कम एक बार खार स्टेशन से मरीन लाइन्स तक सफ़र करते थे। ऐसा उन्होंने कई महीनों तक किया। और उन यात्राओं के बारे में उन्होंने कुछ नोट्स बनाए थे–जो उनकी डायरी में मौजूद हैं–

राकेश आनंद बख़्शी

'आज मैं मरीन ड्राइव पर समंदर के किनारे खड़ा रहा और मैंने समुद्र देवता से प्रार्थना की। मैंने उनसे कहा कि आप तो सातों समंदर तक फैले हैं, और मैं बस एक कतरा हूं। एक बूंद हूं। ईश्वर की मदद से मैं इस दुनिया को छोड़ने से पहले अपने फ़ोबिया, अपने डर से निजात हासिल करना चाहता हूं।'
(6 दिसंबर 1995)

'आज मैं दादर स्टेशन से भगवान दादा के पुराने दफ़्तर तक गया, जहां मैंने अपना फ़िल्मी-जीवन शुरू किया था। मुझे फ़िल्मों में पहला ब्रेक उनकी फ़िल्म 'भला आदमी' से मिला था। इसके बाद मैं माहिम में उतरा और निर्माता हीरेन खेरा के पुराने दफ़्तर गया, जहां मैंने अपनी पहली कामयाब फ़िल्म 'मेहंदी लगी मेरे हाथ' का ऑफ़र हासिल किया था, इसके सारे गाने मैंने ही लिखे थे। अपने पुराने ज़माने की इन जज़्बाती यादों को दोबारा जीने के बाद मुझे लगता है कि मेरे भीतर का डर अब पिघल रहा है। मुझे इस तरह की कोशिश पहले करनी चाहिए थी। पर अपने नसीब से कौन लड़ सकता है। शायद इतने दिन तक तकलीफ़ झेलना मेरी क़िस्मत में ही लिखा था। मुझे अगर किसी ने सबसे ज़्यादा तकलीफ़ दी है, तो वो मैं ख़ुद हूं'।
(31 जनवरी 1996)

स्पेन्सर जॉनस .डॉन की पुस्तक ''Who Moved my Cheese' में से मैंने अपने लिए कुछ नोट्स बनाए हैं :

अपने कंफ़र्ट-ज़ोन से बाहर निकलो।
घटनाओं को अपने आप ना होने दो, क़ाबू करो।
खोजो, आपकी आत्मा को किस चीज़ से सुकून मिलता है।
अगर आपके भीतर डर नहीं होता तो आप क्या करते? वही करो।
जिस चीज़ से आपको डर लगता है, वो उतनी बुरी नहीं है, जितनी आप कल्पना करते हो।
अपने डर को रोको मत। उसका सामना करो, उसे समझो। रिलैक्स रहो और अपने सफ़र का मज़ा लो।
अपने डर से आज़ाद हो जाओ।
ईश्वर मेरी मदद करो।
21 जुलाई 2001

***

ईश्वर और आस्था

राकेश आनंद बक्शी

जब तुम अकेले होते हो, तो अपने ईश्वर के साथ होते हो। ईश्वर मेरे हर अकेलेपन का साथी है। मैं अकेले में अपने ईश्वर से बात करता हूं।

ईश्वर सत्य है, वो परम सत्य है। और ये जीवन और कुछ नहीं बल्कि एक मंच है। हम सब अभिनेता हैं और हम ही दर्शक भी हैं। हम अपने ही जीवन का नाटक देख सकते हैं। दूसरों के लिए हम अभिनेता होते हैं। हमें मंच पर अपने हिस्से का अभिनय करना है और फिर हट जाना है। राजा, रानियां, रईस लोग, सबसे साहसी लोग, सबसे ताक़तवर लोग, सबसे मज़बूत लोग, सबसे दयालु लोग मंच पर आए और चले गए। इसी तरह मैं भी चला जाऊंगा। कोई भी दुनिया नामक इस मंच को अपने सुविधा से बदल नहीं सका है। मैं भी नहीं बदल सकता। तो हर पहलू का मज़ा लो बख़्शी, ख़ुशी का भी और ग़म का भी। अच्छी सेहत का भी और बुरी सेहत का भी।
21 जुलाई 2001.

डिनर से पहले अकसर ही डैडी हम सबको सदाचार की एक कहानी सुनाया करते थे। ये वो वक़्त होता था जब पूरा परिवार साथ होता था और वो घर की बालकनी में अपने मनपसंद रेड-लेबल के घूँट पी रहे होते थे। ये तब की बात है जब हम बहुत छोटे थे।

सदियों पहले एक बहुत ही महत्वपूर्ण चौराहे पर, जहां से बहुत सारी सड़कें निकलती थीं, एक ऊँचा-सा मंदिर था, गुरद्वारा था, चर्च था, पारसियों का मंदिर था, मस्जिद थी। एक सिनेगॉग भी था और पूजा के दूसरे स्थान थे। इस महत्वपूर्ण चौराहे पर हज़ारों लोग घरों को जला रहे थे, लूटपाट और क़त्ल कर रहे थे। उनके मन में एक दूसरे के धर्म के लिए नफ़रत थी। दुश्मनों के आदमी, औरतों, बच्चों और जानवरों तक को बख़्शा नहीं जा रहा था। धरती ख़ून से लाल हो गयी थी। हर धर्म और समुदाय के लोगों के ख़ून में से लोग आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

उपासना की इन जगहों की ऊंची मीनारें इस ख़ून-ख़राबे को ख़ामोशी से देख रही थीं। देर तक सब देखने के बाद एक मीनार ने दूसरी से कहा, 'क्यों ना हममें से एक अपनी इस ऊंची जगह से नीचे उतरे, इन इंसानों के बीच जाये, इनकी तरह बनकर और इन नादानों को परम-सत्य बताए। उन्हें बताये कि हम सब एक हैं। हम ईश्वरों के बीच कोई भेदभाव नहीं है। जाओ और उन्हें बताओ कि भले उनके धर्म अलग हैं, उनके रास्ते अलग-अलग दिशाओं में जाते हैं पर वो सब हमारी तरफ़ आते हैं...और उपासना की हम जगहें अलग-अलग नहीं हैं बल्कि एक हैं। मुझे पूरा यक़ीन है कि जब ये सच उजागर होगा तो हमारे अनुयायियों के बीच सदियों से चल रहा ख़ून-ख़राबा ख़त्म हो जायेगा। कितने बेवक़ूफ़ हैं ये लोग। ये मानते हैं कि हममें से कोई एक सबसे अच्छा है। इनमें से कुछ तो यहां तक मानते हैं कि वो सबसे शुद्ध हैं। वही सच्चे 'श्रद्धालु' हैं बाक़ी सबमें वैसी श्रद्धा नहीं है'।

सारी मीनारें हंसीं। सब उस एक मीनार की कही सच बात से सहमत थीं। पर सब मिलकर ख़ामोशी से इस ख़ून ख़राबे को देखती रहीं।-

इसके बाद एक मीनार आगे बढ़ी, जनता की भीड़ में जाकर उसने चिल्लाया और उन लोगों से कहा कि अपने देवताओं के नाम पर ये ख़ून-ख़राबा बंद करें। हालांकि बाक़ी सारी मीनारों ने इस बेख़ौफ़ मीनार को ऐसा करने से रोका। वो बोल पड़ीं, 'अरे नादान, जो सच हम हमेशा से जानते हैं, वो इन बेवक़ूफ़ों को बताने का कोई मतलब नहीं है। कुछ इंसानों को भी ये बात पता है पर दूसरे लोगों ने उनका क़त्ल कर दिया है। लड़ने दो इन नादानों को, क्योंकि जिस दिन वो ये समझ जायेंगे कि हम सब सचमुच एक ही हैं, तो उन्हें हमारी ज़रूरत नहीं रहेगी। और एक दिन वो हम सबको तबाह कर देंगे। इस वक़्त वो अपनी नादानी और डर के तहत हमारे सामने सिर झुकाते हैं। वरना इस ब्रह्मांड में कौन है, जो हमें इतना महत्व देता? हम सदियों से इस तरह तनी खड़ी रही हैं, उनसे ऊपर सिर्फ इसलिए हैं क्योंकि वो नादान हैं और हमसे डरते हैं। अगर उन्हें सच का पता लग जायेगा कि हम तो एक हैं, तो उन्हें हमारी ज़रूरत नहीं रहेगी। इतनी सदियों से जो महत्व और श्रेष्ठता हमें मिलती रही है, उसे खोना नहीं चाहिए। इससे पहले कुदरत हमसे ज़्यादा मायने रखती थी। इन नादान लोगों ने हमें जन्म दिया और अमर बना दिया। हमें इस तरह ऊँचा बना दिया। हमारा फ़ायदा इसी में है कि इन्हें कुछ पता ना चले'।

सभी मीनारें इस बात पर सहमत हो गयीं कि बेवक़ूफ़ इंसानों को सच बताने से उनका अपना ही नुकसान होगा। इसलिए उन्होंने आपस में हाथ मिलाया और तय किया कि वो हमेशा ख़ामोश रहेंगी। वरना समझदार इंसान हमें हमेशा के लिए मिट्टी में मिला देंगे। इसलिए धर्म के प्रति नफ़रत की ये आग जल रही है। सदियों से जलती चली आ रही है।

***

वफ़ादारी और आत्म-मूल्य

हम बच्चों को एक और कहानी सुनायी जाती थी। एक फ़िल्म यूनिट पंजाब के दूर दराज़ के-इलाक़े में शूटिंग कर रही थी। एक सीन के लिए डोली की ज़रूरत थी। यूनिट ने पूरे गांव में तलाश की, पर डोली नहीं मिल सकी। काफ़ी खोजबीन के बाद उन्हें पास के गांव में आख़िरकार एक डोली मिल ही गयी। वो फ़ौरन उस जगह पर गये और उस औरत से बात की, जिसकी ये डोली थी। वो उन्हें डोली उधार देने को राज़ी हो गयी। उसने पूछा कि दुल्हन कौन है और शादी किस गांव में हो रही है। फ़िल्म यूनिट ने उसे बताया कि कोई असली दुल्हन नहीं है। यहां एक नकली शादी हो रही है। दूल्हा दुल्हन दोनों ही नकली हैं। बूढ़ी शादी के लिए डोलियां किराए पर देकर ही अपना गुज़ारा करती थी पर उसने नकली दुल्हन के लिए डोली देने से इंकार कर

राकेश आनंद बक्शी

दिया। फ़िल्म वालों ने दस गुना किराया देने की पेशकश की। पर उस बूढ़ी ने तब भी इंकार कर दिया और गर्व से कहा, 'माफ़ी चाहती हूं, असली दुल्हनें ही डोली में बैठने के काबिल होती हैं'।

डैडी ने मुझसे कहा, 'वफ़ादारी और किरदार मैं इसी को मानता हूं। अगर आपके उसूलों की क़ीमत पर आपको पैसा दिया जा रहा है तो उसे लेने से इंकार कर देना चाहिए। उसके लालच में नहीं पड़ना चाहिए। सारी दुनिया को ख़ुश नहीं करना है। अनूठा बनकर जीना है'।

***

'सारी दुनिया को ख़ुश नहीं करना है'

जब डैड अपनी पहली कार खरीदने गए, जो एक सेकेन्ड हैंड फ़ियेट थी, 1964 का मॉडल... या। डैडी ने डीलर से कहा कि वो कोई रईस आदमी नहीं हैं और उन्होंने अभी-अभी फ़िल्मों में गीतकारी का अपना सफ़र शुरू किया है। उन्होंने कार की क़ीमत में छूट की मांग की। जब डीलर ने कार की क़ीमत कम करके बताई तो डैडी ने कहा कि वो कार पक्का ख़रीदेंगे पर आज नहीं कल। उन्हें फ़ैसला करने के लिए थोड़ा वक़्त चाहिए। उन्होंने डीलर से सच-सच बताया कि वो समझ नहीं पा रहे हैं कि इतने सारे पैसे कार पर ख़र्च करने ठीक हैं या नहीं, जबकि उनका करियर अभी ठीक से शुरू भी नहीं हुआ है।
नहीं, जबकि उनका करियर अभी ठीक से शुरू भी नहीं हुआ है।

डीलर ने उनसे कहा, 'अगर आप कार कल ख़रीदोगे तो ये डिस्काउंट वाली क़ीमत नहीं मिलेगी। ये सिर्फ आज का ऑफ़र है। कल क़ीमत बढ़ जायेगी। मैंने आपको इसलिए इतनी कम क़ीमत दी क्योंकि आपने बताया कि ये आपके करियर की शुरूआत है। अगर मुझे इससे बेहतर क़ीमत मिलेगी तो मैं आपका कल तक इंतज़ार क्यों करूंगा। इसलिए डिस्काउंट पर आज ख़रीदिये या कल बढ़ी क़ीमत पर'।

डैडी ने दुकानदार से कहा, 'आप कम क़ीमत का लालच देकर आज कार ख़रीदने पर मुझे मजबूर नहीं कर सकते। ये कैसा डिस्काउंट है जो आज के लिए ही है। अगर आपकी यही शर्त है तो मैं कल ज़्यादा क़ीमत पर कार ख़रीदने को तैयार हूं। पर मैं कार आज तो कतई नहीं ख़रीदूंगा। आज का दिन और रात बीतने दीजिए, कल देखेंगे। आपके लिए भले कार बेचना एक बड़ा फ़ैसला नहीं हो, पर मेरे लिए कार ख़रीदना एक बड़ा फ़ैसला है। इसलिए मुझे एक बार और सोचना होगा। मुझे एक रात का समय चाहिए। चाहे इसकी जो क़ीमत अदा करनी पड़े'।
अगले दिन 21 जून 1966 को डैडी ने अपनी पहली कार ऊंचे दामों पर ख़रीदी। और उन्होंने कभी इस बात का अफ़सोस नहीं किया। डैडी ये मानते थे कि उनकी पहली फ़ियेट कार उनके

लिए लकी साबित हुई। वो बताते थे कि उस साल मेरी बहन कविता की पैदाइश के बाद उनके पास काम की भरमार हो गयी थी। हमारे परिवार में अभी भी वो कार मौजूद है। हमने उसे सन 2002 में डैडी के गुज़र जाने के बाद कविता को तोहफ़े में दे दिया था।

डैडी ने जब मुझे फ़ियेट ख़रीदने की ये कहानी सुनायी तो इसके बाद वो बोले, 'कभी भी दुनिया को ये मौक़ा ना दो कि वो आपकी ज़रूरतों के लिए आप ही से जल्दीबाज़ी करवाए। अगर जल्दीबाज़ी करनी ही है तो अपनी या अपने परिवार की ज़रूरत के लिए ख़ुद करो। अपने मूल्यों पर भरोसा करो। ख़ुद पर भरोसा करो'। उन्होंने अपनी इस प्रिय कार के बारे में एक कविता भी लिखी थी :

बख़्शी हम यारों के यार
अपनी यार ये फ़ियेट कार
बाक़ी सब कारें बेकार।
थी मेरी पहली चितचोर
मॉडल 1964
अब तक उस से मेरा प्यार।।
फ़ियेट मेरा लेटेस्ट रोमांस
सड़कों पर ये करती डांस
तेज़ हवा जैसी रफ़्तार
बख़्शी हम यारों के यार
अपनी यार ये फ़ियेट कार

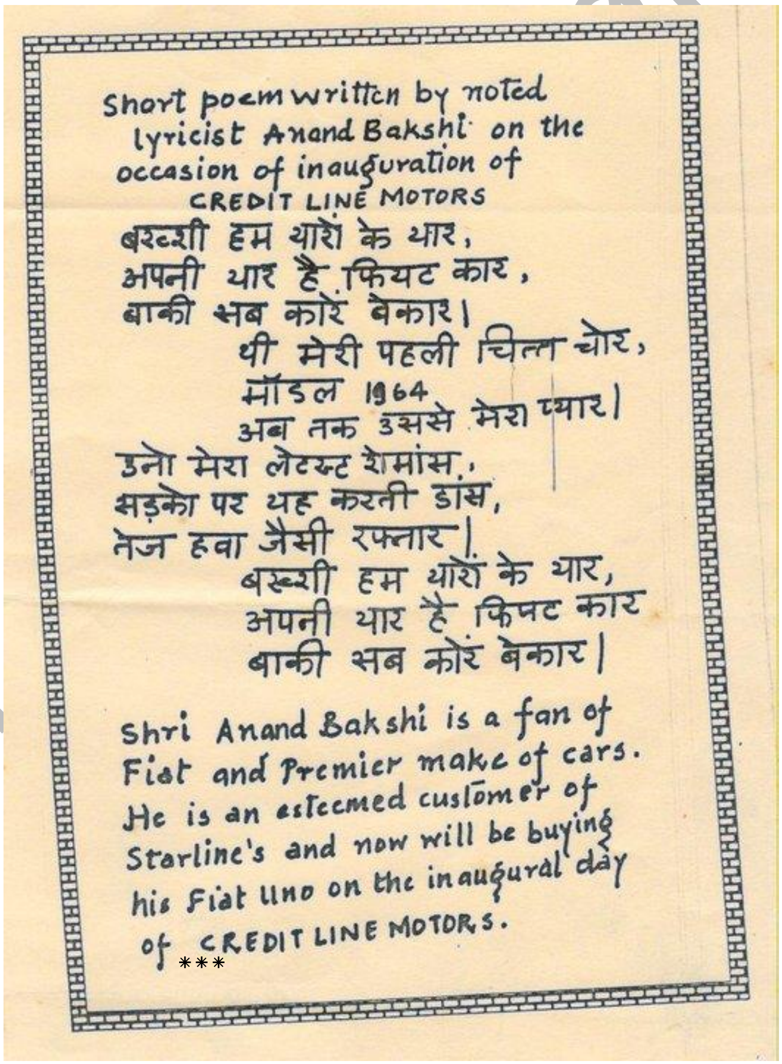
Short poem written by noted lyricist Anand Bakshi on the occasion of inauguration of
CREDIT LINE MOTORS
बख्शी हम यारों के यार,
अपनी यार है फियट कार,
बाकी सब कारें बेकार।
थी मेरी पहली चित्त चोर,
मॉडल 1964
अब तक उससे मेरा प्यार।
ऊनो मेरा लेटेस्ट रोमांस,
सड़को पर यह करती डांस,
तेज हवा जैसी रफ्तार।
बख्शी हम यारों के यार,
अपनी यार है फियट कार
बाकी सब कारें बेकार।
Shri Anand Bakshi is a fan of Fiat and Premier make of cars. He is an esteemed customer of Starline's and now will be buying his Fiat Uno on the inaugural day of CREDIT LINE MOTORS.

***

आनंद बख़्शी का 'राम लखन' फ़िल्म का एक गाना था 'वन टू का फ़ोर, फ़ोर टू का वन, माइ नेम इज़ लखन'। एक स्तंभकार ने अपने कॉलम 'रॉन्ग एंड राइट' में इस गाने के बारे में ये बात लिखी: 'वन टू का फ़ोर' गाना आपको दिखाता है कि दुनिया में चार आयामी कामयाबी हासिल करने के लिए आपको एक और दो आयामी नियमों को तोड़ना पड़ता है। और 'फ़ोर टू

का वन' ये दिखाता है कि आप किसी चीज़ पर मेहनत तो बहुत करते हैं पर आपको उम्मीद से बहुत कम नतीजे मिलते हैं'।

ये गाना आपको भले ही मामूली या सस्ता लगे, पर अगर आप फ़िल्म देखें तो समझ सकेंगे कि स्तंभकार का विश्लेषण अनिल कपूर के किरदार के लिए कितना सही है। ये एक और मिसाल है जहां गीतकार आनंद बख़्शी का लिखा गाना निर्देशक की बतायी कहानी और किरदारों के पूरी तरह अनुरूप है।

बख़्शी जी ने एक बार 'मासिक धर्म' के बारे में एक गाना लिखा था। 'आप की क़सम' के एक गाने के बारे में उन्होंने बताया था–'मुझे एक सबसे चुनौती भरी सिचुएशन इस फ़िल्म में मिली थी, जहां मुझे एक ऐसे विषय के बारे में बात करनी थी जिस पर बात करना हमारी संस्कृति में वर्जित माना जाता है। लोग झिझकते हैं। दबे-छिपे बात करते हैं। हालांकि ये दो प्यार करने वालों के बीच ख़ुशी भरा मौक़ा है। लड़की को अपने पति को ये समझाना है कि आज वो दोनों क़रीब नहीं आ सकते। ऊपर से ये गाना राजेश खन्ना और मुमताज़ जैसे सुपर-स्टारों पर फ़िल्माया जाना था, ज़ाहिर है कि बड़ी तादाद में दर्शक इससे जुड़ते। फिर इसे लता मंगेशकर जैसी गायिका गाने वाली थी। मुझे एक ऐसे विषय पर खुलकर बात करनी थी, जिस पर घर के अंदर परिवारों में भी खुलकर बात नहीं होती। और मैं ये मानता हूं कि फ़िल्में पूरे परिवार के लिए साथ बैठकर देखने का माध्यम हैं। बहुत सोचने और कोशिश करने के बाद मैंने लिखा– 'पास नहीं आना, भूल नहीं जाना, तुमको सौगंध है कि आज मुहब्बत बंद है' (आप की क़सम)

बख़्शी बहुत ही गहरे दर्शन वाले गीतकार थे। मिसाल के लिए 'आया सावन झूम के' फ़िल्म का उनका गाना लीजिए जिसमें वो महात्मा गांधी के दर्शन को उन्होंने अपने गाने में उतार दिया– 'किसी ने कहा है मेरे दोस्तो, बुरा मत कहो, बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो'।

कवि रूमी कहते हैं, 'दर्द की दवा खुद दर्द ही है'। ग़ालिब कहते हैं–'दर्द का हद से गुज़र जाना है दवा हो जाना'। कुछ यही बात उन्होंने 'दोस्त' फ़िल्म के अपने एक गाने में कही है–'आ बता दें कि तुझे कैसे जिया जाता है':

आ बता दें कि तुझे कैसे जिया जाता है।
कैसे नादान हैं वो, ग़म से अंजान हैं जो
रंज ना होता अगर, क्या ख़ुशी की थी क़दर
दर्द ख़ुद है मसीहा दोस्तो
दर्द से भी दवा का दोस्तो, काम लिया जाता है
मैंने भी सीख लिया, कैसे जिया जाता है।।

राकेश आनंद बक्शी

बख़्शी गुरूदेव रवींद्र नाथ टैगोर को बहुत पसंद करते थे। क़रीब चालीस साल तक हमारे लिविंग रूम की बीच की दीवार पर टैगोर की तस्वीर लगी थी। एक बार हमेशा की तरह डैडी से दोस्तों और रिश्तेदारों की एक महफ़िल में गाना गाने को कहा गया। उन्होंने फ़िल्म 'मिलन' का एक जज़्बाती गाना गाने का फ़ैसला किया–'आज दिल पे कोई ज़ोर चलता नहीं, मुस्कुराने लगे मगर रो पड़े'। जब उन्होंने ये ऐलान किया तो एक क़रीबी दोस्त ने कहा, 'बख़्शीजी, उदास गाना मत गाइये, पार्टी चल रही है, कोई ख़ुशी भरा गाना गाइये'।

डैडी ने जवाब दिया, 'रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था, 'सबसे उदास गाने सबसे ख़ुशी भरे होते हैं'। सब लोगों ने इस बात पर ताली बजायी और इसके बाद वो एक के बाद एक गाने गाते चले गये जिनमें शामिल थे उनके कुछ पसंदीदा गाने, जैसे 'डोली ओ डोली' (राजपूत), 'दुनिया में कितना ग़म है' (अमृत) और 'चिंगारी कोई भड़के' (अमर प्रेम)...ये तो उनका सबसे पसंदीदा गाना था।

बख़्शी साहब को धर्मग्रंथों की बड़ी जानकारी थी। बाइबल कहती है, 'इंसान सबसे पहला पत्थर उस व्यक्ति पर मारे, जिसने कोई पाप ना किया हो'। फ़िल्म 'रोटी' के गाने 'यार हमारी बात सुनो' में बख़्शी जी लिखते हैं:

'इस पापन को आज सज़ा देंगे हम मिलकर सारे
लेकिन जो पानी ना हो वो पहला पत्थर मारे'।।

इसी तरह फ़िल्म 'युद्ध' के गाने में उन्होंने श्रीमद भगवद् गीता की एक बात पिरो दी थी--
'डंके पे चोट पड़ी, सामने मौत खड़ी, करण ने कहा अर्जुन से, ना प्यार जता दुश्मन से, युद्ध कर'।

एक बार उन्होंने कहा था, 'सवाल हिट फ़िल्में बनाने या हिट स्क्रिप्ट लिखने का नहीं है, हिट या फ़्लॉप तो आपको सबक़ सिखाते हैं। शादी हो या तलाक़–ये भी सबक़ हैं। (सन 1999 में मेरा तलाक़ हो गया था और मैं अवसाद में था)। दौड़ के आखिर में ये बात मायने रखती है कि ज़िंदगी के हिट और फ़्लॉप के उतार-चढ़ावों से गुज़रते हुए आप किस तरह के इंसान बने। अपने जो रिश्तेदार और दोस्त कमाए, क्या वो आपके साथ बने हुए हैं। यही आपकी ज़िंदगी का इनाम है'।

मेरे अपने डैडी से मतभेद हो गये थे, ये 1995 के आसपास की बात है। मैं एक नये करियर के लिए साल भर के लिए कीनिया चला गया। ये उससे पहले और बाद का दौर था। अपनी अपरिपक्वता और निराशा की वजह से मैं अपने प्यारे डैडी का सामना नहीं करता था। पहले की तरह उनके साथ नज़रें नहीं मिलाता था। बाद में समझ आया कि मैं अपनी शादी और

राकेश आनंद बक्शी

अपने बिज़नेस की नाकामी को लेकर बेवजह शर्मिंदा था। ख़ुद को ज़िम्मेदार मानता था, ऊपर से मैंने कंप्यूटर इंजीनियरिंग की अपनी पढ़ाई दूसरे साल में उन्हें बिना बताए अधूरी छोड़ दी थी। मैंने बिज़नेस के लिए उनसे जो पैसे उधार लिए थे, मैं वो लौटा तक नहीं पाया था और उन्होंने कभी मांगे भी नहीं थे।

सन 2000 और सन 2001 में वो कई बार अस्पताल में भर्ती हो चुके थे। सन 2002 में नये साल के पहले दिन डैडी ने मुझसे कहा, 'ये सच है कि हमारे बीच मतभेद रहे हैं, पर ज़रूरत के वक़्त हमेशा तुम मेरे साथ खड़े रहे। मेरी फ़ैमिली मेरे साथ है आज, ये मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी ट्रॉफ़ी है"। उस ज़माने में फ़िल्म निर्माता किसी फ़िल्म के पच्चीस हफ़्ते यानी सिल्वर जुबली, पचास हफ़्ते यानी गोल्डन जुबली और सौ हफ़्ते यानी डायमंड जुबली के मौक़े पर बहुत ही सजीली ट्रॉफियां और गोल्डन डिस्क दिया करते थे। ये फ़िल्म की कामयाबी के लिए ज़िम्मेदार लोगों को दी जाती थी। हमारे घर में ऐसी क़रीब तीन सौ ट्रॉफियां सजी हुई हैं। पर वो हमें अपनी सबसे बड़ी ट्रॉफ़ी मानते थे। इस पुस्तक को लिखकर असल में मैं उनका क़र्ज़ लौटाने की छोटी-मोटी कोशिश कर रहा हूं। उस वक़्त मुझे अपने और उनके साथ बेहतर बर्ताव करना चाहिए था। आख़िरकार मैंने डैडी से सीखा कि असल में हम नाकाम नहीं होते। हमारा प्रोजेक्ट, हमारी किताब, गाना, फ़िल्म, शादी, रिश्ते, दोस्ती, नौकरी वग़ैरह नाकाम होती है। किसी और को माफ़ करने से पहले ख़ुद को माफ़ करना सीखो। अपने ऊपर रहम करना सीखो।

राकेश आनंद बक्शी

राकेश आन

अध्याय 10

2000–2002

'सबसे अच्छी ख़बर ये है कि मैं ज़िंदा हूं'

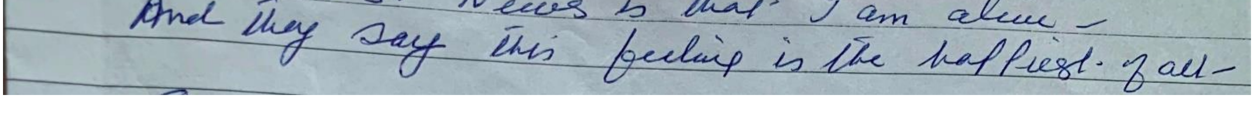

1 The best News is that I am alive – – 30th NOV 2001 –
And they say this feeling is the happiest of all –

सन 2001 में डैडी को पहला छोटा ब्रेन-स्ट्रोक हुआ और आंशिक रूप से उनका बोलना बंद हो गया। मेरी बहन सुमन की वजह से उनकी बोलने की काबलियत जल्दी से वापस आयी। वो रोज़ उनके पास आती थी और उन्हें बोलना सिखाती थी। वो उन्हें इंग्लिश के अक्षर सिखाती और उसके बाद अंक भी। कुछ ही हफ़्तों के अंदर वो फिर से बोलने लगे। इस बहुत बड़े काम के लिए सुमन पर ईश्वर का आर्शीवाद हमेशा बना रहे। हालांकि हम दोनों भाई डैडी के साथ ही रहते थे, पर उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि अगर कोई मुसीबत आती है तो सुमन से संपर्क किया जाए। सुमन दूर रहती थी पर डैडी और बेटी का ये रिश्ता हमेशा बहुत क़रीबी बना रहा।

डैडी की दिल की बीमारी अस्सी के दशक में शुरू हुई थी और उन्हें पेस-मेकर लगा दिया गया था। पर नब्बे के दशक में उनकी सेहत फिर बिगड़ गयी। उन्हें अस्थमा हो गया था। सिगरेट पीने की उनकी आदत की वजह से फेंफड़ों पर असर पड़ा और आख़िरकार भूतपूर्व फ़ौजी आनंद बख़्शी ये जंग हार गए। मार्च 2002 में उन्हें ब्रेन स्ट्रोक की वजह से अस्पताल में भर्ती किया गया। कुछ घंटे बाद कोमा में जाने से पहले उन्होंने कहा था–'ज़िंदगी में जो कुछ होता है, अच्छे के लिए होता है। ईश्वर पर भरोसा रखो'। शायद वो मेरे लिए उनके आख़िरी शब्द थे।

जब डैडी को ख़ून चढ़ाने की ज़रूरत महसूस हुई तो हमने रक्तदान करने वालों की खोज शुरू की। उनका ब्लड ग्रुप भी बहुत ही दुर्लभ था। बी नेगेटिव। हमने पोस्टर्स लगाए, दोस्तों, रिश्तेदारों और जान-पहचान वालों को SMS भेजे। जो पहला व्यक्ति सामने आया वो एक वॉर्ड-बॉय था जो डैडी की देखभाल कर रहा था। उसे गाने का शौक़ था और वो गाने गाकर डैडी का मनोरंजन करता रहता था। एक अजनबी आया और उसने कहा कि बचपन से जिसके गानों को वो पसंद करता आया है, उसे ख़ून देना उसके लिए सम्मान की बात होगी। इस तरह के जज़्बाती लम्हों में हमें ये अहसास हुआ कि आनंद बख़्शी ने ज़िंदगी में ये सबसे अनमोल चीज़ कमाई है। सच्चा प्यार... जिसे पैसों से ख़रीदा नहीं जा सकता। इससे मुझे ये अहसास हुआ कि हममें से कुछ लोग ऐसे हैं (जिनमें मैं भी शामिल रहा हूं) जो लोगों को धर्म, कपड़ों, हैसियत वग़ैरह से तौलते रहे हैं, पर जब अपने परिवार के किसी सदस्य को ख़ून देने की बात आती है तो हम डॉक्टर से ये नहीं पूछते कि ख़ून देने वाले का धर्म क्या है।

तीस मार्च को डैडी कोमा में ही हम 2002 सबको छोड़कर चले गये। जब भी मैं फ़िल्म 'दुश्मन' का ये गाना सुनता हूं–'चिट्ठी ना कोई संदेश'...तो उसकी इन पंक्तियों पर ठहर जाता हूं–

'इक आह भरी होगी, हमने ना सुनी होगी, जातेजाते तुमने-, आवाज़ तो दी होगी'

.... इन्हें सुनकर मुझे लगता है कि क्या डैडी ने जाते-जाते हममें से किसी को अलविदा कहने

राकेश आनंद बक्शी

के लिए पुकारा होगा। बहुत सारे लोग ऐसे हैं जिनके अपने उन्हें अचानक छोड़कर चले जाते हैं और अलविदा कहने का मौक़ा भी नहीं मिलता।

***

‘हमारा काम हमारी आत्मा की तरह अमर होना चाहिए’।

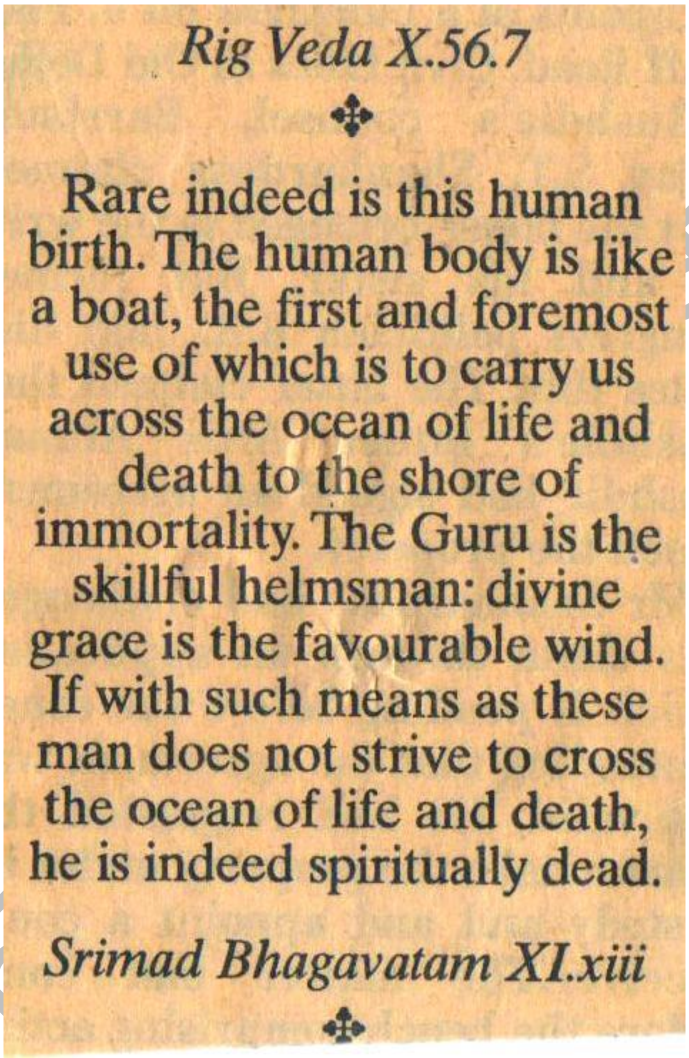

Rig Veda X.56.7

Rare indeed is this human birth. The human body is like a boat, the first and foremost use of which is to carry us across the ocean of life and death to the shore of immortality. The Guru is the skillful helmsman: divine grace is the favourable wind. If with such means as these man does not strive to cross the ocean of life and death, he is indeed spiritually dead.

Srimad Bhagavatam XI.xiii

डैडी के चले जाने के बाद मैंने उनके कमरे में सोना शुरू कर दिया ताकि मां को अकेलापन महसूस ना हो। जब धीरे-धीरे हम इस सदमे से उबरे और हमारा घर सामान्य होने लगा तो मैं और मेरे भाई ने उनकी आलमारी खोली ताकि उनकी चीज़ों को छांटा जा सके। जैसे ही आलमारी खोली, तो एक तूफ़ान जैसा अहसास हुआ। उनकी जानी-पहचानी गंध और उससे जुड़ी यादों ने हमें घेर लिया। उनके कपड़ों में अभी भी उनके परफ्यूम की गंध बची रह गयी थी। उनका साबुन ‘लाइफ़बॉय’ उनके बाथरूम में वैसा का वैसा रखा था जैसा वो छोड़कर गए थे। मेरे भीतर इतनी हिम्मत नहीं थी कि मैं उनका साबुन भी हटा सकूं। मुझे एक बात का बड़ा अफ़सोस है कि अनजाने में मैंने एक बेशक़ीमती चीज़ को हटा दिया। उन्होंने पिंडी की मिट्टी कांच की एक

छोटी-सी शीशी में भरकर रखी थी। मैंने सोचा कि इसका क्या महत्व है। इसे हटा देना चाहिए। सॉरी डैडी, मैंने अपनी विरासत का एक हिस्सा अनजाने में गंवा दिया।
धीरे-धीरे हमने उनकी चीज़ों को ज़रूरतमंद लोगों को देना शुरू किया। कुछ चीज़ें कुछ संस्थाओं को दी गयीं। जब मैंने उनका पर्स खोला तो उसमें कुछ तस्वीरें मिलीं। बंसी वाले, साईं बाबा, माता वैष्णो देवी, गणेश जी, सरस्वती माता और कुछ दूसरी तस्वीरें। इन सबके अलावा एक चीज़ थी जो बहुत ही ज़्यादा क़ीमती थी–वो था सौ का नोट, जो उन्हें जाने-माने फ़िल्मकार और प्यारे दोस्त सुभाष घई ने दिया था। इसके अलावा सौ रूपए का एक नोट और था, जो मेरे भाई राजेश ने उन्हें अपनी पहली कमाई में से दिया था। और भागवत-गीता का एक वाक्य भी मिला:

मानव जीवन दुर्लभ है। मानव शरीर नौका की तरह है, जिसका पहला और मुख्य उद्देश्य है हमें जीवन और मृत्यु के समुद्र के उस पार मोक्ष के किनारों तक ले जाना। गुरु नाविक है और ईश्वर सही दिशा में चलती हवा है। अगर इन सब चीज़ों के रहते भी मनुष्य जीवन और मृत्यु के समुद्र को पार नहीं कर सकता तो वो आध्यात्मिक रूप से मृत है।

इसमें उन्होंने बस एक पंक्ति जोड़ दी थी–'जैसे हमारी आत्मा अमर है, हमारा काम भी अमर होना चाहिए'।

***

बिल आपका पीछा नहीं छोड़ेगा

डैडी हम बच्चों को हमेशा एक सलाह देते थे, 'अगर आपको लगता है कि आपको कोई चीज़ बेकार में ही मिल गयी है तो समझो कि उसका बिल अभी तक आया नहीं है'। जब सन 2001 में अस्थमा ने उन्हें परेशान करना शुरू कर दिया तो सिलेन्डर के ज़रिए ऑक्सीजन देना शुरू किया गया। वो कहते थे, 'ये अस्थमा वो बिल है जो मुझे डॉक्टरों, रिश्तेदारों और दोस्तों की समय-समय पर दी गयी सलाहों को ना सुनने की वजह से मिला है। सब कहते थे कि सिगरेट पीना सेहत के लिए ख़तरनाक है। अगर मुझे पता होता कि इतनी तकलीफ़ सहनी होगी तो मैं ना तो ख़ुद सिगरेट पीता और ना ही किसी और को पीने देता'।

अस्थमा के अलावा उन्हें ज़िंदगी के आखिरी दो सालों में अकेलेपन ने भी बहुत तंग किया। पूरा परिवार उनके पास होता था, पर डैडी को लगता था कि मैं उनके साथ ज़्यादा वक़्त नहीं बिताता हूं। उनकी बात सही थी। आज मुझे इस बात का मलाल होता है और आज मैं अपने भाई-बहनों के साथ ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त बिताता हूं।

सन 2002 में आनंद बख़्शी पर एक फ़ीचर छपा जिसमें किसी पत्रकार ने लिखा कि ऐसा लगता है जैसे बख़्शी अकेले ही रहे। उनके परिवार ने उनके साथ उनकी कामयाबी साझा नहीं की। हालांकि लिखने वाले को अपनी राय लिखने का पूरा हक़ है पर मुझे लगता है कि सच्चाई सबके सामने लानी चाहिए। हो सकता है कि बख़्शी साहब को कामयाबी के बाद एक अकेलापन महसूस होता रहा हो, पर ये एक इंसानी मिज़ाज है। हम सबको ज़िंदगी में कभी ना कभी अजीब-सा अकेलापन महसूस होता है। चाहे हम कामयाबी के शिखर पर हों या नहीं। फिर भी अपनी ज़िंदगी के आख़िरी दो सालों में डैडी का सारा परिवार उनके साथ था, उनके दो डॉक्टर दोस्त, उनके फ़िल्मकार दोस्त, जैसे सुभाष घई और सुनील दत्त वग़ैरह। सब उनके साथ बने रहे।

'जब मैं बहुत लंबा बीमार पड़ा तो सुनील दत्त ने वैकल्पिक राय के लिए डॉक्टर का इंतज़ाम किया। ज़िंदगी के सबसे बुरे दौर में सुभाष घई मेरा सहारा बने, जब मेरी अपनी ही दीवारें ढहने लगी थीं। सुभाष जी ने अपने ख़र्चे पर आयुर्वेदिक डॉक्टरों का इंतज़ाम किया, क्योंकि उन्हें लग रहा था कि एलोपैथिक दवाओं की वजह से लगातार मेरी सेहत और गिरती चली जा रही है। मेरे दोस्त, निर्देशक मोहन कुमार, एडवोकेट श्याम केसवानी और मेरे उस्ताद चित्तरमल का बेटा महेंद्र ...ये सब मेरा दिल बहलाने के लिए मेरे पास आते थे'।

अकसर ऐसा होता है कि कामयाबी और नाकामी दोनों का सफ़र अकेले तय करना पड़ता है। इतना फ़र्क़ है कि कामयाबी में लोग हमारे साथ होते हैं जबकि दर्द और तकलीफ़ के दौरान कम ही लोग साथ होते हैं। पर आख़िरकार जो लोग हमारी ज़िंदगी में सबसे ज़्यादा मायने रखते हैं—ये सिर्फ़ वो लोग नहीं हैं जो सालगिरह पर हमारे साथ केक काटते हैं और शैंपेन की बोतल खोलते हैं, बल्कि वो लोग भी हैं—जो अस्पताल के वॉर्ड में रात भर हमारे साथ रहते हैं।

राकेश आनंद बक्शी

आई. सी. यू. के बाहर सर्दीले गलियारों में बैठे होते हैं, बारी-बारी से हमारी देखभाल करते हैं। रक्तदान करने वालों का इंतज़ाम करने के लिए भागदौड़ करते हैं, विदेशों से दवाएं मंगवाते हैं। रिश्तेदार और क़रीबी दोस्तों ने डैडी के लिए यही सब किया था।

डैडी को अपने परिवार से बहुत प्यार था और हमें उनसे। ये अलग बात है कि हमारे बीच कुछ मतभेद थे, हमारी अपनी कमियां थीं, पर ऐसा हर परिवार में होता है। हम सबने अपनी ज़िम्मेदारी निभायी, बख़्शी जी की पत्नी, चार बच्चों, दो दामादों सबने। हम सब ज़िम्मेदार थे और आज तक हैं और ये देखकर बख़्शी साहब को बहुत ख़ुशी मिलती थी। अपनी ज़िंदगी के आख़िरी साल में डैडी ने मुझसे और मेरे भाई से कहा, 'मैंने तुम सभी को कभी वर्ल्ड टूर करने नहीं भेजा, इस बार जब मैं ठीक हो जाऊंगा और अस्पताल से घर जाऊंगा, तो तुम सबको दुनिया घूमने भेजूंगा, क्योंकि बीते क़रीब एक साल में तुम सबने मेरा बड़ा ध्यान रखा है'। हमने कभी डैडी के सामने इस तरह की कोई मांग नहीं रखी थी, पर वो हमें भेजना चाहते थे और उनका ये सोचना ही हम सबके लिए बहुत बड़ा ईनाम था।

***

'मेरी जिंदगी, मेरा काम, मेरी शर्तें'

आनंद बख़्शी के चाहने वाले, दोस्त और रिश्तेदार ये कहते हैं कि वो बहुत जल्दी चले गए। वो ठीक उसी तरह गए, जैसा वो चाहते थे, जो उनकी तमन्ना थी। डैडी के लिए ये बहुत मायने रखता था कि वो अपनी शर्तों पर ज़िंदगी जिएं और आख़िरी दम तक काम करते रहें: *'मैं काम करते हुए जाना चाहता हूं। मैंने ये अपने एक कमांडिंग ऑफ़ीसर से सीखा है। इज़्ज़त वाली मौत यही होती है'*।

उनकी यही तमन्ना थी कि वो आख़िरी दिन तक गाने लिखते रहें। ज़िंदगी के आखिरी दो महीनों में उन्होंने नौ गाने लिखे। ये गाने अनिल शर्मा और सुभाष घई के लिए थे। बख़्शी जी भूतपूर्व फौजी थे और हमेशा इज़्ज़त से विदा होना चाहते थे। वो कतई नहीं चाहते थे कि रिटायर हो जायें और बीमारी की वजह से काम बंद कर दें।

'इससे पहले कि फ़िल्म इंडस्ट्री मुझे छोड़े, मैं फ़िल्म इंडस्ट्री को छोड़ना चाहता हूं'।

गीतकार आनंद बख़्शी ने अपना आख़िरी गाना फ़रवरी 2002 में लिखा, ये गाना निर्देशक सुभाष घई और संगीतकार अन्नू मलिक के लिए था। ये गाना था–*'बुल्ले शाह, तेरे इश्क़ नचाया, वाह जी वाह तेरे इश्क़ नचाया'*। उस वक़्त वो बुख़ार में थे, बिस्तर से उठ नहीं सकते थे, उन्हें तीन-तीन कंबल उढ़ाए गए थे। कमज़ोरी और बुख़ार की वजह से वो कांपते थे। अस्थमा की वजह से उनकी सांस तेज़-तेज़ चलती थी। उसी हफ़्ते उन्हें अस्पताल में भर्ती कर दिया गया और

उसके बाद वो कभी वापस नहीं लौटे।

उन्होंने जो आख़िरी मुखड़ा निर्माता सुभाष घई और संगीतकार अनु मलिक के लिए लिखा था, उसे अलका याग्निक और उदित नारायण की आवाज़ में रिकॉर्ड किया गया था:

बुल्ले शाह तेरे इश्क़ नचाया
वाह जी वाह, तेरे इश्क़ नचाया
मुझे कोई होश नहीं
मेरा कोई दोष नहीं
मैंने दुनिया को ठुकराया
मुझे दुनिया ने ठुकराया।।

यश चोपड़ा की फ़िल्म 'मुहब्बतें' सन 2000 में आई और सुभाष घई की 'यादें' सन 2001 में। दोनों फ़िल्मों में कमाल के गाने थे। चोटी के संगीतकारों ने उन्हें कंपोज़ किया था और ये दोनों ही बड़े सितारों वाली फ़िल्में थीं। सन 2002 और 2003 में कुल आठ फ़िल्में रिलीज़ हुई जिनमें बख़्शीजी के लिखे गाने थे।

डैडी कभी भी किसी पर निर्भर होकर नहीं जीना चाहते थे। मां के सिवा वो किसी पर निर्भर नहीं थे। मौत के एक महीने पहले ही वो किसी की मदद के बिना ना चल पा रहे थे, ना खा या सो पा रहे थे। मौत के एक हफ़्ते पहले वो सेमीकोमा में चले गए-, मौत के एक दिन पहले वो गहरे कोमा में चले गये और डॉक्टरों ने कहा कि उनके दिमाग़ को शायद बहुत गहरा नुकसान पहुंचा है।

मुझे याद है कि जिस सुबह डैडी को 'ब्रेन डेड' घोषित कर दिया गया तो एक डॉक्टर दोस्त ने मुझसे कहा था: 'तुम्हारे पिता अब कवि नहीं रहे, मतलब ये कि अगर वो कोमा से बाहर आ भी जाते हैं, तो भी वो ये तक नहीं पहचान पायेंगे कि वो कौन हैं'। ये सुबह दस बजे के आसपास हुआ था और डैडी उसी शाम साढ़े आठ बजे इस दुनिया को छोड़कर चले गए।

एक महीने से भी कम समय तक वो हमारे ऊपर निर्भर रहे, ये उस व्यक्ति के लिए एक वरदान ही था जो हमेशा ख़ुदमुख़्तार रहना चाहता था। उनकी ज़िंदगी के आख़िरी साल मैं रोज़ाना ईश्वर से उनकी लंबी ज़िंदगी और अच्छी सेहत के लिए प्रार्थना करता था। उनका आख़िरी दिन था, जब मेरे एक डॉक्टर दोस्त ने मुझसे कहा कि डैड 'ब्रेन डेड' हो चुके हैं। उसने कहा कि वेन्टीलेटर के ज़रिए वो किसी तरह जी रहे हैं। तब पहली बार ऐसा हुआ कि मैंने उनकी मौत के लिए प्रार्थना की और शायद उनके बंसी वाले ने ये बात सुन ली।

राकेश आनंद बख़्शी

मेरा मानना है कि डैडी बहुत ही ख़ुशक़िस्मत शख़्स थे, साठ के दशक के बाद उन्हें कभी काम तलाश नहीं करना पड़ी, बंसी वाले की ऐसी कृपा थी उन पर। उन्होंने कड़ी मेहनत की, बड़े मज़े भी किए। रोज़ाना देर तक टहलते, हर साल परिवार के साथ छुट्टियां मनाने जाते, अपनी ससुराल के लोगों की ज़रूरत पड़ने पर बड़ी मदद की, हमेशा उनसे जुड़े रहे, खानेपीने के शौक़ीन थे-, अपनी सेहत की समस्याओं के बावजूद अपने पसंदीदा खाने के साथ कोई समझौता नहीं किया। वो अपनी शर्तों पर जिए और अपनी शर्तों पर चले भी गए।

डैडी ने ना सिर्फ़ अपने ख़ानदान के लोगों की मदद की, बल्कि वो अपनी ससुराल के लोगों के भी काम आए। मेरी मौसी विमला सिंह छिब्बर के बेटे परमजीत सिंह इस किताब में अपनी बात कहना चाहते हैं, *'ये हमारे परिवार की ओर से मौसा जी यानी आनंद बख़्शी को हमारा नमन है, मौसा जी ने बिना किसी उम्मीद के हमारी मदद की जिसकी वजह से हमारा परिवार पापा के फ़ौज से रिटायर होने के बाद बंबई में बस पाया'*। आनंद बख़्शी मेरे लिए एक 'लेजेन्ड' हैं, जिनसे मैंने समय और रिश्तों की क़ीमत सीखी, उनसे मैंने सीखा कि परिवार, रोज़ी-रोटी और ज़िंदगी के क्या मायने होते हैं और उन्हें क्यों इतना महत्व देना चाहिए।

'ज़िंदगी का मक़सद' नामक दस्तावेज़ में उन्होंने जो कुछ हासिल करना चाहा था, उससे उन्हें कहीं ज़्यादा मिला, ये उन पर उनके बंसी वाले की कृपा थी और उनका पक्का भरोसा भी, वो मानते थे कि हमारा कर्म उतना ही मायने रखता है, जितना कि भाग्य, उन्होंने अपनी डायरी में भी लिखा है–*'मेरे भीतर कुछ है, जो मेरे हालात से भी बेहतर है और ज़िंदगी की हर परिस्थिति से भी मज़बूत'*। जब सुभाष घई या हम परिवार के लोग उनसे अपनी फ़ीस बढ़ाने को कहते, उनसे कहते कि बाक़ी गीतकार तो आजकल ज़्यादा फ़ीस ले रहे हैं, तो वो बड़ी शांति से जवाब देते थे, *'मैं मैट्रिक तक पढ़ा एक सिपाही था और पचहत्तर रूपए माहवार कमाता था, वहां बना रहता तो ज़्यादा से ज़्यादा सूबेदार बनकर रिटायर हो जाता। आज हमारे पास जो कुछ है, वो बचपन के मेरे सपने से कहीं ज़्यादा है'*।

***

डैडी की डायरी

अब मैं आपके साथ डैडी के कुछ नोट्स शेयर करूंगा, जो काफ़ी प्रासंगिक हैं और बहुत मायने रखते हैं। डैडी ने अपनी डायरी में ये नोट्स बनाए हैं और मैंने अपने भाई बहनों से इन्हें सबके-सामने लाने की इजाज़त ले ली है। मैं क्रम से ये नोट्स बिना अपनी कोई बात कहे पेश कर रहा हूं, हालांकि कुछ नोट्स मैं 'प्राइवेसी' का ध्यान रखते हुए साझा नहीं कर रहा हूं। कुछ लोग जो अब इस दुनिया में नहीं रहे, वो ना तो अपनी तरफ़ से कोई सफ़ाई दे सकते हैं ना ही अपनी बात रख सकते हैं इसलिए इन बातों को सामने लाने का कोई मतलब नहीं है।

राकेश आनंद बख़्शी

1982

20 अगस्त: 'ईश्वर ने मुझे आज इसलिए ज़िंदा रखा है ताकि मैं तुम सबको प्यार कर सकूं। ये मुझे मिला अब तक का सबसे अच्छा कार्ड है। मैं शुक्रगुज़ार हूं डॉक्टर गांधी, डॉक्टर शरद पांडे, डॉक्टर एस. जी. गोखले और डॉक्टर शरद आप्टे का। (जब दिल के पहले दौरे के बाद डैडी ठीक होकर घर लौटे थे तो हम सब बच्चों ने उनके लिए एक 'गेट वेल सून' वाला कार्ड बनाया था। डैडी ने ये नोट उसी कार्ड के पीछे लिखा था)

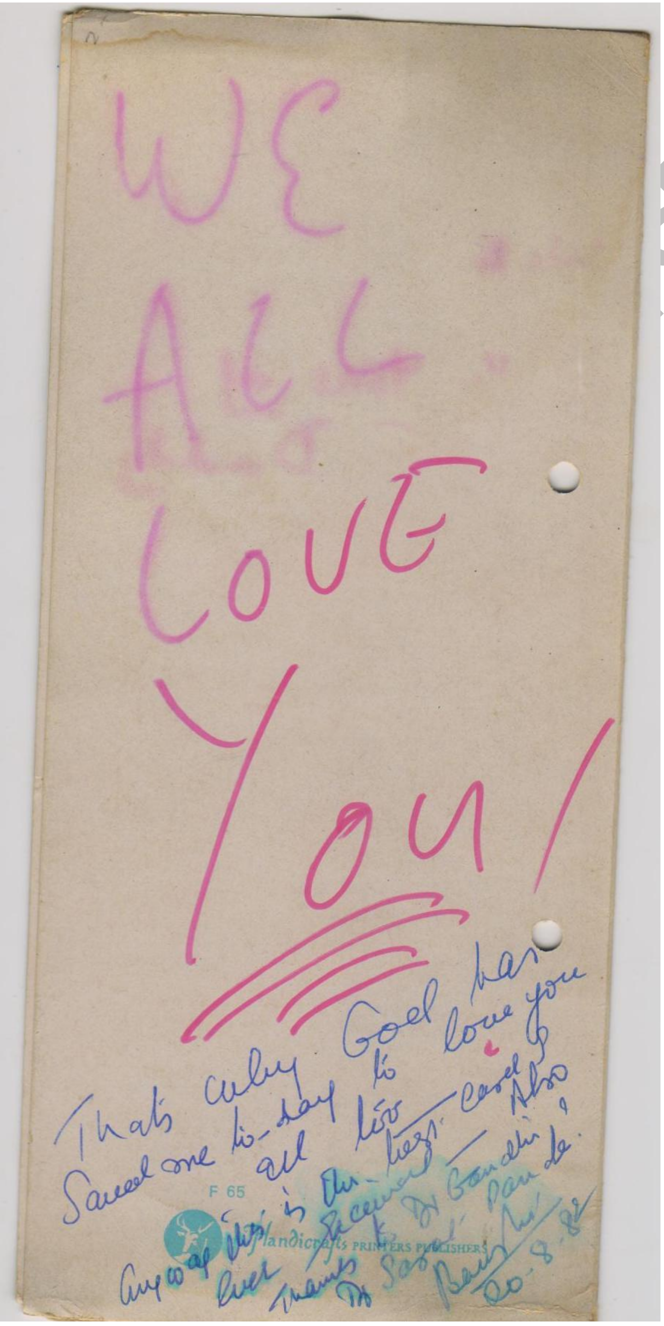

1997

1 मई: 'कमला और बच्चों को मेरा पान खाना और सिगरेट पीना बिलकुल पसंद नहीं है। मुझे उनके लिए इस आदत को छोड़ देना चाहिए। अपने प्यारे बच्चों के लिए, जिन्हें मैं बहुत प्यार करता हूं'। (इसके बाद डैडी ने खुद से और हमसे कई बार वादा किया कि वो पान सिगरेट-छोड़ देंगे, पर ये वादे वो कभी निभा नहीं पाए)

2000

4 जनवरी: 'मेरा वक़्त अब ख़त्म हो रहा है। और मुझे एक पिता और एक लेखक के रूप में बहुत सारे फ़र्ज़ निभाने हैं'।

15 मई: 'आज फिर मुझे बहुत कमज़ोरी महसूस हो रही है। तबीयत ठीक नहीं लग रही। मैंने तीन सिगरेट भी पी लीं। क्या तुम फिर से अस्पताल जाना चाहते हो? नहीं, मैं अस्पताल जाने की बजाय मरना ज़्यादा पसंद करूंगा'।

29 मई: 'मैंने सिगरेट तो छोड़ दी पर तंबाकू चबाना जारी है। बख़्शी, बहुत तकलीफ़ झेलोगे तुम'।

29 सितंबर: 'डॉ. शरद आप्टे और डॉ. एस. जी. गोखले और मेरे परिवार ने हमेशा मेरी मदद की है। ऊपर वाला उनका भला करे। शुक्रिया डॉ. आप्टे और डॉ. गोखले'।

31 दिसंबर: 'अगले साल मैं अपनी उपलब्धियां लिखूंगा। मैं अपनी कहानी सुनील दत्त और सुभाष घई को सुनाऊंगा। कई साल पहले मैंने अपनी ज़िंदगी की कहानी यश चोपड़ा को सुनायी थी, वो करांची और बंबई में नेवी में हुई बग़ावत वाली घटना से काफी प्रभावित थे और उन्होंने कहा था कि एक दिन वो इस विषय पर फ़िल्म बनायेंगे'।

31 दिसंबर: 'हे ईश्वर, आप मेरी मदद कीजिए और मैं भी अपनी मदद कर सकूं। 2001 मेरे लिए सेहत भरा साल होना चाहिए। मैं अपनी बुरी आदतों से छुटकारा हासिल कर पाऊं। बीते पैंतीस सालों में वक़्त कितना बदल गया है'।

2001

1 जनवरी: 'मैंने आख़िरी बार अपनी क़िस्मत बदलने के लिए मित्रा की क़सम खायी (मां जी) है साल में जो कुछ भी हो 2001, मैं जीऊंगा और मज़े करूंगा। मैं बीमार होकर नहीं जीना चाहता। ऊपर वाले मेरी मदद करना। सबसे पहला क़दम, सिगरेट पीने की बुरी आदत आज से छोड़ देनी है'।

राकेश आनंद बख़्शी

17 फ़रवरी: 'कमला, मैं एक जंग तकरीबन जीतने के बाद हार रहा हूं। नहीं, मैं हार नहीं मानूंगा। कल से मैं ख़ुद को एक आख़िरी मौक़ा दूंगा। मैं जीतकर दिखाऊंगा'।

2001 की कोई तारीख़ (जिसका ज़िक्र नहीं है) : 'ख़ुद को बचाना और ख़ुद को मारना, दोनों एक साथ कैसे मुमकिन है? या तो मैं ख़ुद को बचा सकता हूं या मार सकता हूं। मुझे लगता है कि मेरे जितने भी डर, फ़ोबिया और जज़्बात हैं, उन सबके साथ ऐसा ही है। पर क्या ये हालात बदल सकते हैं? नहीं। हां, अगर मैं ख़ुद पर काबू पा लूं और ये सब बेकार की चीज़ें छोड़ दूं। मैं अपने जज़्बात और दर्द पर जीत हासिल कर सकता हूं। पर क्या ऐसा होगा। नहीं, मैं ख़ुशक़िस्मत इंसान हूं।

30 मार्च: 'एक सिगरेट आज'

31 मार्च: 'आख़िरी तीन सिगरेटें'

अप्रैल 1: (आनंद बख़्शी ने हर महीने रिकॉर्ड होने वाले गानों की फ़ेहरिस्त में आख़िरी बार ब्यौरा दर्ज किया। उन्होंने मुखड़ा और रिकॉर्डिंग की तारीख़ लिखी। फ़िल्म थी 'हम किसी से कम नहीं'। हालांकि इसके बाद भी गाने रिकॉर्ड होते रहे, पर उनका ब्यौरा रखने का उनका जोश ख़त्म हो गया था।

4 अप्रैल: 'सुभाष घई के लिए आख़िरी सिगरेट'

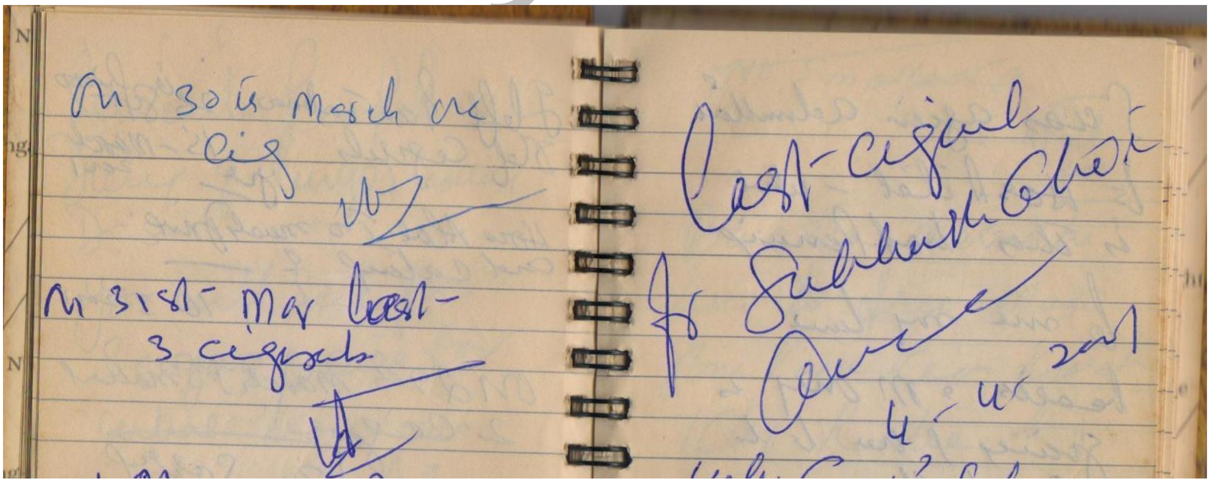

1 मई: 'मैं सिगरेट नहीं छोड़ पा रहा हूं। अपने लिए मैं तनाव और डर पैदा कर रहा हूं। मैं कुदरत के नियमों के ख़िलाफ़ जा रहा हूं। अगर ये सिलसिला जारी रहा तो ये ख़ुदकुशी करने जैसा होगा। मेरी ज़िंदगी ख़त्म हो जायेगी। पर मैं ख़ुद को बचाना चाहता हूं। मैं जीना चाहता

आनंद बक्शी

हूं। ये बड़ी अजीब बात है। मैं ख़ुद को बचाना चाहता हूं और मैं ही ख़ुद को ख़त्म भी कर रहा हूं। हे ईश्वर, प्लीज़ जीने में मेरी मदद कीजिए। मैं इन बुरी आदतों के लिए अपने काम, अपनी शोहरत, अपनी पत्नी और परिवार को कुर्बान नहीं करना चाहता हूं। बख़्शी, तुम तो हमेशा जीतते आए हो, तुम हार नहीं सकते। कमला और बच्चों के लिए डटे रहो'।

'मुझको चुना हालात ने, या मैंने चुना हालात को? भगवान बंसी वाला मेरी मदद करेगा। हिम्मत-ए-मर्दां-मदद-ए-ख़ुदा'

15 मई: 'एक बार फिर मुझे कमज़ोरी महसूस हो रही है। तबीयत ठीक नहीं लग रही है। मैं फिर से अस्पताल नहीं जाना चाहता। इसकी बजाय मैं मर जाना पसंद करूंगा। मैं जीना चाहता हूं, और गाने लिखने के लिए, अपने परिवार के लिए।

18 मई: 'पिछले तकरीबन चालीस सालों में आज पहला दिन है जब जब मैंने ना पान खाया, ना सिगरेट पी। क्योंकि कल रात को अस्थमा का बहुत भयानक दौरा पड़ा था'।

29 मई: 'मैंने सिगरेट छोड़ दी है। पर पान खाना शुरू कर दिया है। बख़्शी, तुम बहुत भुगतोगे'।

3 जून: 'मैंने शायद फिर से उसी तरह तंबाकू खाना शुरू कर दिया है। क्या मैं एक और स्ट्रोक का इंतज़ार कर रहा हूं? इसी हफ़्ते मुझे बदलाव लाना होगा'।

11 जून: 'पर वो और उसके बच्चे जयपुर वापस चले गये हैं, मैं उन सबको बहुत मिस कर रहा हूं—उन्हें याद करते हुए मैं थोड़ा रोया भी। मुझे नहीं पता कि अगले साल जब वो लोग यहां आयेंगे तो मैं रहूंगा या नहीं। डैडी'। (यहां उन्होंने अंग्रेज़ी में डैडी की स्पेलिंग 'Dady' लिखी है। हमेशा वो इसी तरह लिखा करते थे। यहां मेरी बहन कविता (रानी) और उसके बच्चों के गर्मियों की छुट्टियों में हमारे यहां आने और फिर वापस लौट जाने का ज़िक्र है। अगले साल जब ये लोग वापस आये तो बख़्शी जी दुनिया में नहीं थे)

राकेश आनंद बक्शी

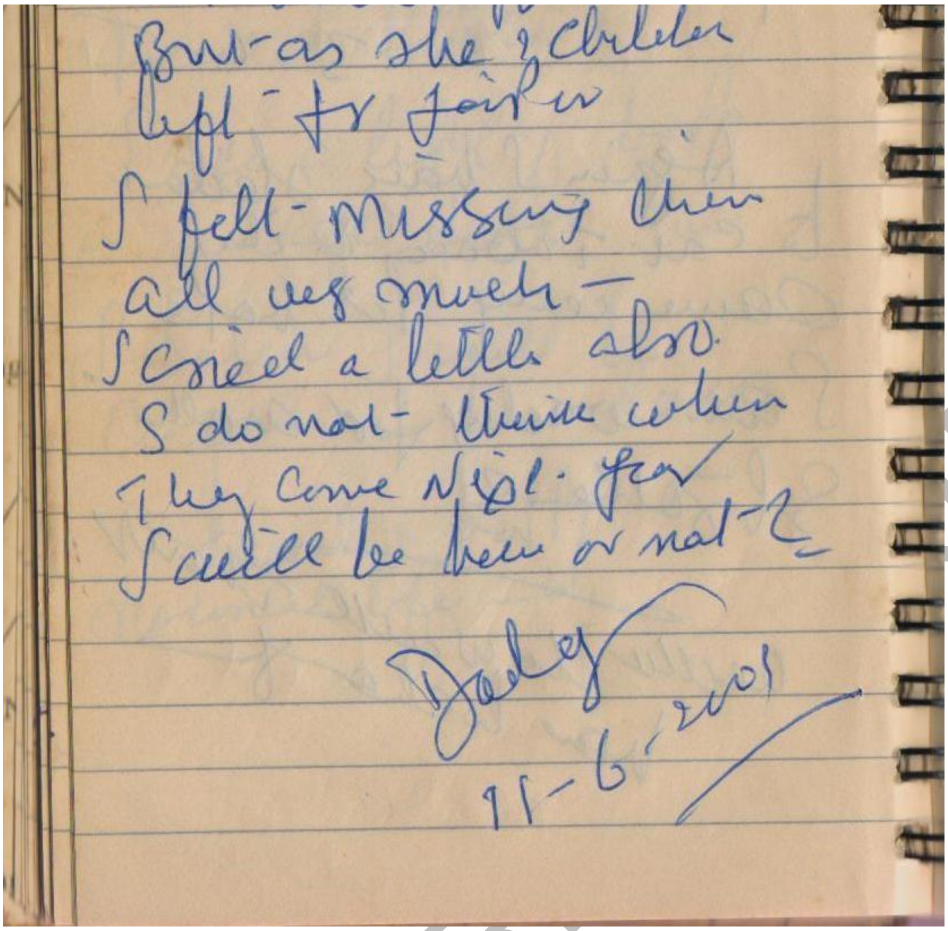

15 जुलाई: 'मेरे घबराहट, मेरे डर, पान और ज़रूरत से ज़्यादा खा लेने की आदतें बदल नहीं रही हैं। मुझे इन बुरी आदतों से छुटकारा हासिल करना ही पड़ेगा'।

20 जुलाई: 'आज मेरा ब्लड-प्रेशर बढ़ गया है। गोगी और डाबू के साथ मेरी कुछ बातचीत चलती रही। मैं टेन्शन में हूं। कल मेरे जन्मदिन की पार्टी है। लोग घर आ रहे हैं। सारी तैयारियां हो चुकी हैं और बेहतरीन हुई हैं, तो फिर मैं टेन्शन में क्या हूं? ये एक शानदार पार्टी होगी। मैं अकेला नहीं हूं। पूरा परिवार साथ है, नौकर-चाकर हैं। बहुत सारे दोस्त आ रहे हैं। पप्पी, विनय और बच्चे भी आ रहे हैं। तो फिर डर किस बात का है? आजकल बात-बात पर डर जाना और घबराते रहना मेरी आदत बन गयी है। क्या मैं पार्टी आयोजित करने में बहुत ज़्यादा पैसे ख़र्च कर रहा हूं–इस बात को लेकर तनाव में हूं? नहीं, मैं अपने बर्थडे का पूरा मज़ा लूंगा। मेरे बर्थडे पर ये लोग मेरे बारे में एक ख़ास पिक्चर चलाने वाले हैं। मेहमान आयेंगे, व्हिस्की रहेगी, खाना रहेगा। और क्या चाहिए मुझे?'

अपने जन्मदिन पर रात को क़रीब नौ-दस बजे मेहमानों का स्वागत करने के बाद मैं अपने कमरे में चला गया, क्योंकि मुझे फ़िल्म से जुड़ा एक काम पूरा करना था। बीता साल डैडी के लिए बहुत बुरा रहा, उनका अस्थमा बिगड़ता चला गया था और कम से कम दो बार उस साल

उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। हम सभी तनाव में थे। मैं इसलिए तनाव में था क्योंकि मुझे फ़िल्मी दुनिया में आए हुए बस तीन ही साल हुए थे। मैं सुभाष घई के साथ 'ताल' और 'यादें' में असिस्टेन्ट रहा था। एक नाकाम कारोबार और तलाक़ ने मुझे परेशान कर दिया था। मेरी कमाई, आत्मविश्वास, भरोसे, जोश और अपने मन में अपनी छबि को गहरा झटका लगा था। डैडी, मां, मेरा भाई गोगी, बहनें रानी और पप्पी और क़रीबी दोस्त रोहित, अंबिका और कुछ अन्य लोगों ने तब मेरा बहुत साथ दिया था। डैडी तकरीबन साढ़े ग्यारह बजे मेरे कमरे में आए और मुझसे कहा कि चलो, पार्टी में शामिल हो जाओ। डैडी ने बताया कि इस मौक़े के लिए उन्होंने एक कविता लिखी है और वो सुनाना चाहते हैं। मैंने कहा कि मैं अपने काम में बिज़ी हूं, थोड़ी देर में आता हूं। लेकिन उन्होंने देख लिया था कि मैं काम में उतना व्यस्त नहीं हूं, बल्कि ज़िंदगी के मौजूदा हालात की वजह से मैं परेशान था...निराशा से घिरा था। उन्होंने मुझसे कहा, 'बेटा ये मेरी आख़िरी बर्थडे पार्टी है। मैं अगले साल नहीं रहूंगा। अगले साल इस समय तक पंछी पिंजरे से उड़ गया होगा'। यही हुआ, अगले बरस 30 मार्च 2002 को वो दुनिया से चले गये।

ये है वो कविता जो उन्होंने 20 जुलाई सन 2001 को सबको सुनायी थी, ये उनके बहत्तरवें जन्मदिन पर लिखी गयी कविता थी:

इकहत्तर साल गुज़रे

बड़े बेहाल गुज़रे
सुने कोठे पे मुजरे
लिखे गीतों के मुखड़े
हुए इस दिल के टुकड़े
सुनो बख़्शी के दुखड़े:
कहीं लाखों में एक हूं
मैं बस एक नागरिक हूं
यही है नाम मेरा
है चर्चा आम मेरा
हुकूमत का मैं प्यारा
मगर गुरबत का मारा
यूं ही दिन-साल गुज़रे
बड़े बेहाल गुज़रे
कभी माचिस नहीं थी
कभी सिगरेट नहीं थी
कभी दोनों थे लेकिन

राकेश आनंद बक्शी

मुझे फ़ुरसत नहीं थी।
कभी फ़ुरसत मिली तो
इजाज़त ही नहीं थी
इजाज़त मिल गयी तो
ये दौलत ही नहीं थी
ये दौलत मिल गयी तो
वो हिम्मत ही नहीं थी
कभी हिम्मत भी की तो
वो चाहत ही नहीं थी
कभी चाहत नहीं थी
कभी किस्मत नहीं थी
कभी कुछ था अधूरा
मुकम्मल कुछ नहीं था
रहा सब कुछ बराबर
ज़्यादा कम नहीं था
जुदाई तो नहीं थी
मगर संगम भी नहीं था
तबीयत के मुताबिक़
कभी मौसम नहीं था
कभी बोतल नहीं थी
कभी ये ग़म नहीं था
मुझे आज कुछ ना कहना
मेरा दिल ठिकाने है ना।

उस रात डैडी ने अपनी कुछ और कविताएं भी पढ़ीं—'रावलपिंडी' और 'मैं कोई बर्फ़ नहीं हूं'। उन्होंने फ़िल्म 'अर्पण' का एक गाना भी गाया, 'लिखने वाले ने लिख डाले, मिलन के साथ बिछोड़े, असा हुण टुर जाणा ए, दिन रह गये थोड़े'....। शायद ये उनका इशारा था, वो बता रहे थे कि जल्दी ही वो इस दुनिया को छोड़कर जाने वाले हैं'।

28 जुलाई: 'मेरा दोस्त सुभाष घई एक बड़ा आदमी बन गया है, मुझे उसे देखकर ख़ुशी होती है। वो एक अच्छा इंसान है, एक अच्छा प्रोड्यूसर, मेरी बहुत इज़्ज़त करता है'। (उन्होंने ये तब लिखा था जब उन्हें पता चला कि सुभाष घई की मुक्ता आर्ट्स एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी बन गयी है)

राकेश आनंद बक्शी

12 अगस्त: 'मुझे अपनी ख़ुराक और अपने जज़्बात दोनों पर काबू पाना होगा। जब मैं ज़िंदगी के मज़े ले सकता हूं तो फिर ये दुःख क्यों झेल रहा हूं। मुझे ये स्वीकार करना होगा कि मैं जवानी के दिनों की तरह ना तो खा सकता हूं और ना ही सिगरेट पी सकता हूं'।

हमारे पारिवारिक डॉक्टर डॉ गोखले ने एक बार .जी .एस .डैडी के बारे में एक मज़ेदार बात मुझे बतायी थी:

'बख़्शी जी ने एक बार मुझे कॉल किया और बताया कि वो अपना दाहिना हाथ नहीं उठा पा रहे हैं। मैं फ़ौरन आपके घर आया और पाया कि उन्हें तकरीबन लकवा लग रहा है। मैंने उनकी जांच की और हमने तय किया कि उन्हें फ़ौरन अस्पताल ले जायेंगे। पर थोड़ी देर बाद वो बोले कि वो बेहतर महसूस कर रहे हैं, क्या मैं थोड़ी देर रूक सकता हूं। उन्होंने इसके बाद आपकी मम्मी से पान लगाने को कहा। मैंने उन्हें डांटा, बख़्शी जी, इस वक़्त आपको तंबाकू वाला पान नहीं खाना चाहिए। इससे आपकी तबियत और बिगड़ जायेगी। पर उन्होंने बात नहीं मानी, यहां तक कि उन्होंने सिगरेट भी पी। गुस्से से मैं कांप रहा था, मुझे नहीं पता था कि इस ज़िद्दी आदमी का क्या होगा। ये ज़िम्मेदारी मेरी थी क्योंकि मैं उनका पारिवारिक डॉक्टर था ,दोस्त भी था। इसके बाद बख़्शीजी ने पान खाया और मुझसे कहा, 'डॉक्टर साहब, पान इमरजेन्सी में काम करता है'।

हम सभी अस्पताल के लिए निकले। हम अस्पताल की लॉबी में घुसे ही थे कि बख़्शी जी बेहोश हो गए। शुक्र है कि ICU पास ही था, उन्हें फ़ौरन ही इलाज मिल गया। कुछ हफ़्तों बाद वो ख़ुशी ख़ुशी घर लौट गए। आपकी मां ने मुझे बाद में बताया कि बख़्शी-साहब रोज़ सुबह एक पान बनवाते हैं और उसे अपने पास रखते हैं। उसे वो दिन भर खाते नहीं और शाम को उसे फेंक देते हैं, वो रोज़ ऐसा ही करते हैं। आपकी मां को गुस्सा आता है कि आख़िर जब उन्हें खाना नहीं होता, तो फिर वो रोज़ सुबह पान बनवाते क्यों हैं। एक दिन मैंने बख़्शी जी से पूछा कि आप ऐसा क्यों करते हैं। उन्होंने जवाब दिया, 'डॉक्टर साहब, मैंने आपसे कहा था ना कि पान इमरजेन्सी में काम आता है। उस दिन मैं अगर पान नहीं खाता तो घर पर ही मर जाता। पर चूंकि मैंने पान खाया था तो ख़ुद चलकर अस्पताल पहुंचा और कुछ ही हफ़्तों में ज़िंदा घर वापस भी आ गया। इसलिए हालांकि मैं पान नहीं खाता, मैं इमरजेन्सी के लिए रोज़ाना पान लेकर जाता हूं। पान है तो जान है'!

अप्रैल 2001 में वो लंबे समय के लिए अस्पताल में भर्ती हुए, इसके बाद सितंबर 2001 में भी, तो वो वॉर्ड सिस्टर्स, नर्सों, डॉक्टरों और स्वीपरों की भी फ़रमाईश पर गाने गाया करते थे। ये लगता है कि वो पैदाइश से ही मनोरंजन करने वाले शख़्स थे।

राकेश आनंद बख़्शी

सन 2001 में एक बार आनंद बख़्शी ने अपने मुरीद और शुभचिंतक गीतकार समीर अंजान से कहा था–

‘मुझे पता है कि मैं जल्दी ही मर जाऊंगा। मुझे ना मौत का डर है और ना ही अफ़सोस। हां इस बात का अफ़सोस ज़रूर है कि मेरे भीतर अभी भी बहुत सारे गाने हैं। काश मैं उन्हें लिख पाता, या अपने परिवार या तुम्हारे जैसे एक अच्छे गीतकार को संजोने के लिए दे पाता। मुझे इस बात का अफ़सोस है कि ये गाने मेरे साथ ही आए थे और मेरे साथ ही इस दुनिया से चले जायेंगे’।

‘मेरा सब कुछ मेरे गीत रे, गीत बिना कौन मेरा मीत रे’।
फ़िल्म ‘ज़िंदगी’

सन 1984 में किसी ने उनसे पूछा कि आपकी नज़र में अपना कौन-सा गाना सबसे अच्छा है। तो आनंद बख़्शी ने जवाब दिया था–*‘अभी तक मैंने ज़्यादा कुछ हासिल नहीं किया है। अपने सबसे अच्छे गाने अभी मुझे लिखने हैं। उम्मीद है कि मैं जल्दी ही लिख पाऊंगा। उम्मीद कभी मरती नहीं है। उम्मीद सिर्फ मौत के साथ ही मरती है’।*

24 सितंबर: डैडी का मेरे लिए आख़िरी नोट या लेटर ये था–‘प्यारे डाबू, लव यू। ऊपर वाले का आर्शीवाद तुम्हारे साथ रहे। कैसे हो तुम? अपनी मां और भाई गोगी का ख्याल करना ।’

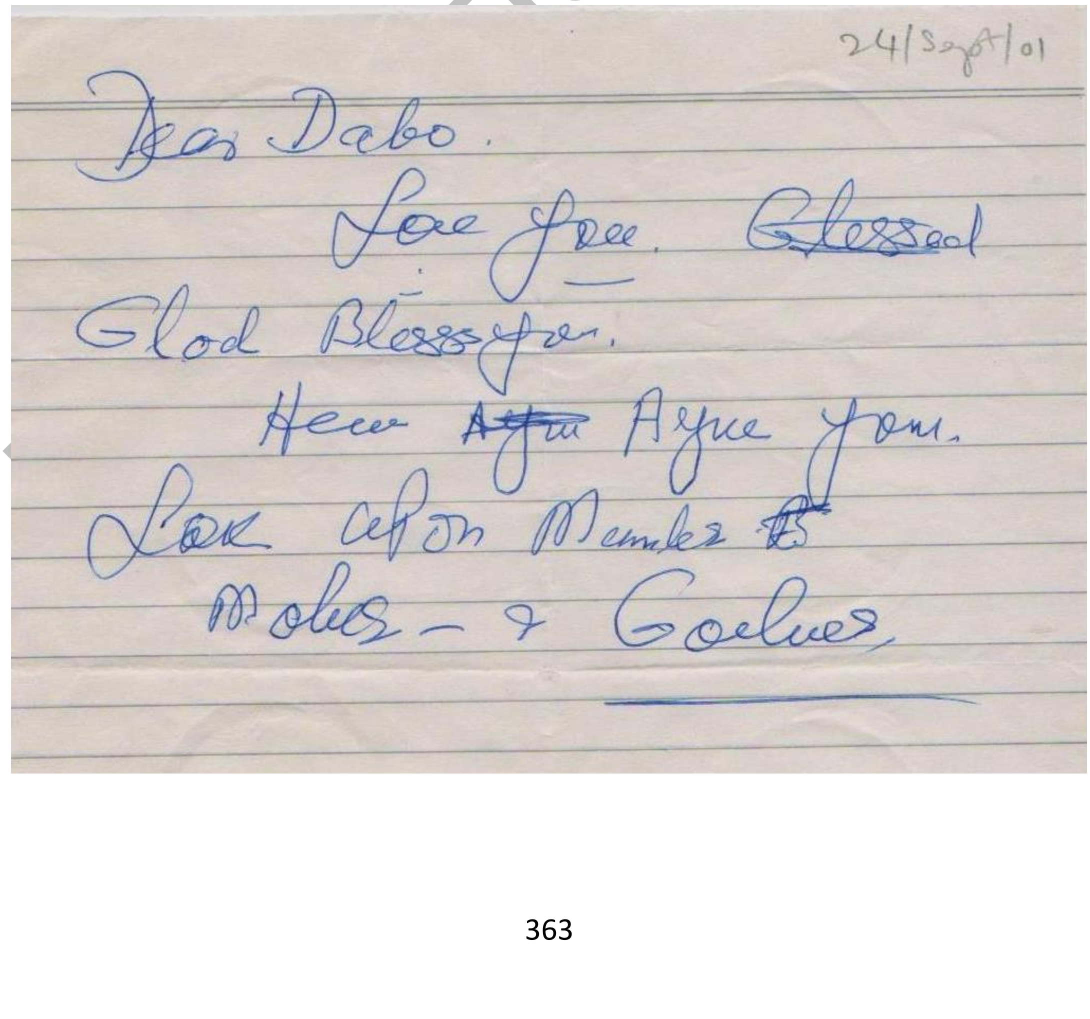
24/Sept/01

Dear Dabo.
Love you. ~~Blessed~~
God Bless you.
How ~~Ayu~~ Are you.
Look after Mumm ~~&~~
Mohes – & Gogies.

आनंद बख़्शी

30 नवंबर: ये नोट उन्होंने अस्पताल से लौटने के बाद लिखा था:

‘सबसे अच्छी बात ये है कि मैं अब तक ज़िंदा हूं और इससे बढ़कर ख़ुशी कोई दूसरी हो नहीं सकती। ऊपर वाले ने तुम्हें ज़िंदगी का ख़ाली काग़ज़ एक बार फिर सौंप दिया है, चलो अब शुरू करो लिखना। टैगोर ने कहा था, ‘मैं जो गाना गाने आया था, वो मैंने कभी गाया ही नहीं, मैं तो लगातार अपने साज़ को सुर में लाने की कोशिश ही करता रह गया’। वक़्त बर्बाद मत करो। गाओ। गाओ। गाओ। हम सभी अभिनेता हैं, अपना किरदार निभाकर हमें मंच से हट जाना है। सब आए, सब चले गए। राजा, फ़कीर, शायर, अमीर और ताक़तवर लोग। तुम ज़िंदगी के इस मंच पर हमेशा के लिए क्यों कायम रहना चाहते हो। ये कितना उबाऊ हो जायेगा। जब ये शरीर बेकार हो जायेगा, तो इससे तुम्हें और दूसरों को तनाव होगा। इसलिए सुकून से रहो। सत्य ही ईश्वर है। थोड़े समय के लिए मज़े करो। क्योंकि नया शरीर, नयी ज़िम्मेदारियां तुम्हारे लिए तय की जा रही हैं। सब चीज़ों के लिए तैयार रहो। नये नंदो। आनंद प्रकाश बख़्शी’।

रिकॉर्ड पर उनके आख़िरी दस्तख़त:

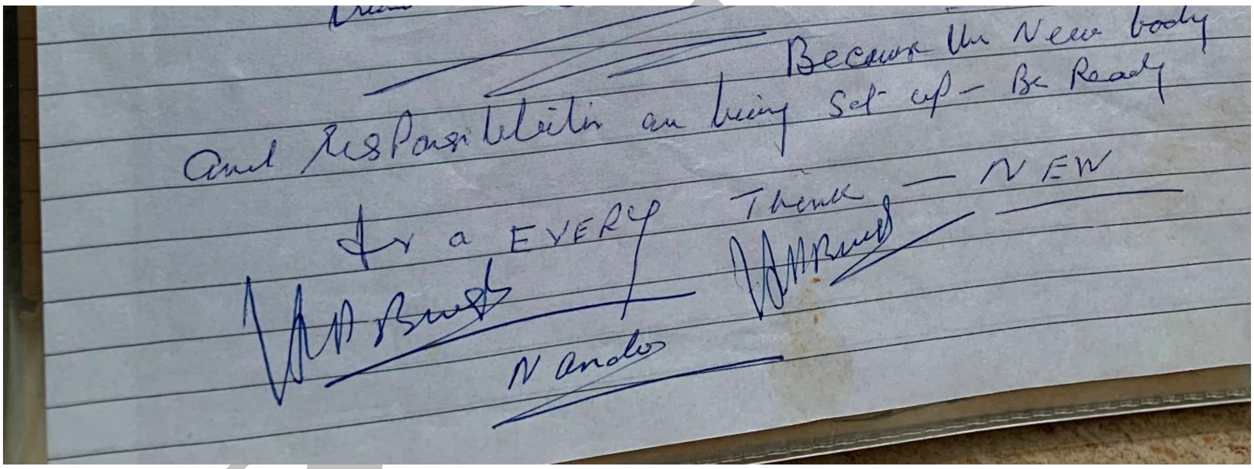

‘जगत मुसाफ़िरख़ाना लगा है आना जाना’

—बालिका बधु

सन 2002

3 जनवरी: ‘हे भगवान ये ,कैसे हुआ ,कब हुआ और क्या हुआ। मुझे नहीं पता कि ईश्वर से क्या कहूं और कैसे कहूं। कैसे अपनी बात कही जाए। उन्हें किस नाम से पुकारा जाए, भगवान, राम, अल्लाह, क्राइस्ट, गुरुनानक... मैं श्रीकृष्ण कहना पसंद करूंगा। मुझे अस्थमा का एक लंबा और बहुत बुरा दौरा पड़ा था। दाबू ने मुझे नेबुलाइज़र दिया। मैं सुकून से सो गया। रात ग्यारह बजे मैं उठा और मैंने कस्टर्ड खाया। कोई दवाई नहीं ली, सो गया। उठा। मैंने गोगी और कमला

को बुलवाया और उन्हें ये बात बतायी। उस वक़्त मुझे ये अहसास हो रहा था कि मानो ईश्वर ने मुझसे कहा है, तुम्हारी समस्याएं ख़त्म हो गयी हैं। बहुत सहा है तुमने। आज से तुम अपनी बीमारी और उससे जुड़े लक्षणों से आज़ाद हो। हां रोज़मर्रा की ज़िंदगी की तकलीफ़ें तो कायम रहेंगी। हे भगवान कृष्ण, हे बंसी वाले, मैंने आपसे हमेशा अपने दुःख और सुख ही नहीं बांटे, शुक्रिया भी कहा है। मुझे अब लग रहा है कि रोज़ मेरी सेहत बेहतर होती चली जायेगी'।

8 जनवरी: 'मैं अपने घर के बाहर बग़ीचे में टहलने गया, वहां गिर गया और चोट लग गयी। सितंबर से लगातार मेरी तकलीफ़ें चल रही हैं 2011, पर ऊपर वाले ने मुझे बचा लिया। मैं ज़िंदा हूं। मुझे बीमारियों से जंग जीतनी है और फिर से आनंद प्रकाश बन जाता है, जो मैं पहले था। सबसे अच्छा और सबसे ख़ुशी देने वाला अहसास ये है कि मैं जिंदा हूं'।

31 जनवरी: 'सुबह सवा छह बजे, मुझे सपना आया कि मैं बीमार हूं और सो रहा हूं। पर ईश्वर मुझे देख रहा है, मुस्कुरा रहा है, उनके चेहरे पर एक संतुष्टि भरा भाव है। मैंने ईश्वर से पूछा, मेरे साथ क्या हो रहा है। ईश्वर ने जवाब दिया, 'मैंने तुम्हारे लिए यही सपना देखा है। माफ़ी चाहता हूं, अगर तुम ख़ुश रहना चाहते हो, तो मेरी शुभकामनाएं लो और जीवन और मृत्यु के प्रति कृतज्ञ रहो। सारे चमत्कार ख़ुशीख़ुशी होने दो-'। मैं सहमत हो गया और मैंने कहा, 'जैसा आप सही समझें ईश्वर, मैं ख़ुश हूं। अपने बिस्तर पर पूरी तरह जागा हुआ हूं। बंबई के कॉस्टे बैले में आपका बेटा, आनंद बख़्शी'।

11 फ़रवरी: 'रात के डेढ़ बजे, मैंने सपना देखा कि दो लोग मेरे शरीर को ले जा रहे हैं, सब कुछ बदल गया है। मेरा नाम बदल गया है। थोड़ा-सा धुंआ है। मेरा पूरा शरीर बदल गया है। मेरे सारे दर्द ख़त्म हो गए हैं। मैं अपना शरीर किसी को नहीं दिखा सकता, क्योंकि अब वो रहा ही नहीं है'।

इसके बाद डायरी में उन्होंने कुछ भी दर्ज नहीं किया।

***

'आपके अनुरोध पर मैं ये गीत सुनाता हूं'।

डैडी जब कोमा में थे, साल में दो बार वो कोमा में गये। दूसरी बार तो कोमा से बाहर आए ही नहीं, तो हमने उनके सामने उनके अपने मोनो कैसेट प्लेयर पर उनके ही लिखे गाने बजाए, और उन्हें हेडफ़ोन लगा दिया। हमें ये उम्मीद थी कि उनके गीतों ने जिस तरह अनगिनत लोगों को प्रेरित किया है, वो उन्हें भी प्रेरित करेंगे, उन्हें...जिन्होंने ख़ुद इन गानों को रचा है, जो इनके गीतकार हैं। हम वो गाने बजाते थे जो उन्हें ख़ुद गाना पसंद था, जैसे 'चिंगारी कोई भड़के', 'गाड़ी बुला रही है' और इसी तरह के अन्य गीत। हमें ये उम्मीद थी कि उन्हें आसपास

राकेश आनंद बक्शी

का माहौल पता है और उनके अपने गाने उन्हें प्रेरित करेंगे और जगा देंगे। उन्हें दुनिया में वापस लौटने के लिए प्रेरित करेंगे। ये एक संभावना थी, एक उम्मीद, एक प्रार्थना–जो हम और हमारी मां उनके लिए कर रहे थे। हम इसमें कामयाब नहीं रहे, पर हमारा ये मानना है कि उन्हें पता था हम उनके लिए क्या कर रहे हैं। ज़िंदगी के आख़िरी लम्हों में उन्हें महसूस हुआ होगा कि हम उन्हें कितना प्यार करते हैं।

उनकी डायरी से एक पुरानी इबारत, जिस पर तारीख़ दर्ज नहीं है:

'घटनाओं का मतलब ही जीवन है। जीवन मुझे घटनाओं से भरे इस संसार में लेकर आया है। मृत्यु मुझे फिर वहीं ले जायेगा, जहां कुछ घटता नहीं है। कुछ भी नहीं। सिर्फ़ मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं घटता। मृत्यु के बाद व्यक्ति शून्य में चला जाता है। ना कोई अहसास बचता है और ना ही कोई आवाज़। मैं ख़ुद थोड़ी देर शून्य के वातावरण में रहूंगा। इसके बाद कुछ होगा और मुझे नया जीवन मिल जायेगा। नया नाम, नया खेल, आसपास नये लोग, नया बचपन, नया शरीर, सब कुछ नया-नया। फिर इसमें घबराना कैसा? बिलकुल नहीं। जीवन और मृत्यु हमेशा हमेशा के साथी हैं। पुनर्जन्म एक सत्य है। आने-जाने का ये क्रम सदा-सर्वदा चलता रहेगा। जीवन और मृत्यु दोनों बहुत ही ख़ूबसूरत हैं। जीवन काम है और कुछ नहीं। मृत्यु आराम है, और कुछ नहीं। बिना मृत्यु के जीवन का कोई आरंभ नहीं, कोई अंत नहीं, कोई अर्थ नहीं।

'फिर मौत से भागना क्यों? मृत्यु कहीं नहीं है, पर चारों तरफ़ है। तुम्हारे साथ, तुम्हारे भीतर। ये स्वीकार करो कि हम हमेशा नहीं जी सकते। जब हम मौत से डरते हैं तो इसका मतलब हम ईश्वर पर शक करते हैं। क्या मुझे ईश्वर पर संदेह है? नहीं। मुझे ईश्वर पर पूरा भरोसा है। मैं मैं हूं। ईश्वर के होने का छोटा-सा सुबूत। वो सात समंदर में फैला है। मैं पानी की एक बूंद हूं। मैं उसका अंश हूं। उसके लिए हूं'।

'मैं आत्मा, तू परमात्मा,
मैं तेरा रंग रूप,
मैं तेरी छांव धूप,
मैं बिलकुल तेरे पास,
तू बिलकुल मेरे साथ'

सन 1991 में आयी फ़िल्म धुन का गीत। ये फ़िल्म रिलीज़ नहीं हो सकी थी। निर्देशक महेश भट्ट। गीतकार- आनंद बख़्शी। संगीत- लक्ष्मीकांत प्यारेलाल। गायक- मेहदी हसन और तलत अज़ीज़।

राकेश आनंद बक्शी

नंद फ़ौजी थे और वो एक गीतकार बन गये। उनका ईश्वर पर, ख़ुद पर, वक़्त, किस्मत, तक़दीर और तदबीर पर भरोसा था। वो ख़ामोशी से हमसे जुदा नहीं हुए। डैडी, मैं हमेशा आपको अपने दिल में गले लगाता हूं। एक ज़माना था जब मैं पूरे दिन अपने छोटे-से मरफ़ी रेडियो पर आपके नाम का एनाउंसमेन्ट होते हुए सुनता था, और आज भी तमाम मीडिया प्लेटफ़ार्म पर आपका नाम बार-बार लिया जाता है। लेकिन मेरी सबसे प्यारी याद आपके गाने नहीं हैं, मुझे तो आपकी मोटी-भारी-खुरदुरी उंगलियां याद हैं...जिनसे आप मेरी पलकों को सहलाते थे, ठीक वैसे ही जैसे हवा में पंखुडियां अपने पत्तों को छूती हैं। उस चाँदनी से भी ज़्यादा नरम और पवित्र–जो राज-पीपला की खिड़की से अंदर आ जाती थी। राज-पीपला–आपका ख़रीदा पहला घर। इन्हीं पर आपने मेरा नाम राकेश रखा, यानी चाँद की किरणें। चाँद की ये नन्हीं किरण आपके पूरे परिवार की उम्मीदों पर भले खरी नहीं उतर पायी हो पर आज मैं ठीक उसी तरह जीने की कोशिश कर रहा हूं, जिसकी मेरा परिवार मुझसे हमेशा से उम्मीद करता रहा है।

अध्याय 11

आनंद बख़्शी को श्रद्धांजलि

‘दीवाने तेरे नाम के, खड़े हैं दिल थाम के’

लक्ष्मीकांत प्यारेलाल की जोड़ी के प्यारेलाल-

बख़्शी जी से हमारी बाक़ायदा पहली मुलाक़ात कल्याणजी-आनंदजी के पैडर रोड स्थिति म्यूज़िक रूम में हुई थी। हम कल्याणजी-आनंदजी के म्यूज़िक असिस्टेन्ट थे। बख़्शी जी हम सबमें समय के सबसे ज़्यादा पक्के थे। समय और अनुशासन का पक्का होना उनकी सबसे बड़ी ख़ासियत थी। वो अपने मूड और इच्छाओं या माहौल के मुताबिक़ काम नहीं करते थे। जब ज़रूरत होती थी, तब वो काम पूरा करके देते थे। फिर चाहे सिटिंग रूम हो या फिर रिकॉर्डिंग स्टूडियो...उन्होंने कभी कोई बहाना नहीं बनाया। कभी नहीं।

बख़्शीजी कहानी सुनने के बाद फ़ौरन ही बुनियादी मुखड़ा या अंतरा तैयार कर लेते थे और अगले दिन वो पूरा गाना लिखकर दे देते थे। जितने अंतरों की ज़रूरत होती थी, बख़्शीजी उससे कहीं ज़्यादा लिखकर लाते थे। इसके बाद निर्देशक या फिर कभी कभी संगीतकार को तय-

करना पड़ता था कि किन अंतरों को छोड़ दिया जाए, क्योंकि हम तीन अंतरों से ज़्यादा का इस्तेमाल नहीं कर सकते थे। मैं अभी भी ये मानता हूं कि बख़्शी जी बंबई गायक और संगीतकार बनने के लिए आए थे। लिखना तो उनका महज़ एक शौक़ था। पर देखिए, एक गीतकार के रूप में वो कैसी क्या विरासत छोड़ गए हैं--*'ज़िंदगी के सफर में गुज़र जाते हैं जो मुकाम, वो फिर नहीं आते'*। मुझे उनकी बहुत याद आती है।

आनंद बख़्शी अपने गानों की धुन इस हारमोनियम पर बनाते थे। ये हारमोनियम 1990 के ज़माने में लक्ष्मीकांत प्यारेलाल ने उन्हें दिया था।

राकेश

NUMBER ONE!

धर्मेंद्र (सिंह देओल)

मैं उन्हें 'राजा' कहता था। हमने तकरीबन सत्तर-इकहत्तर फ़िल्में एक साथ कीं। लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, रफ़ी साहब और उन्होंने सन 1975 में 'प्रतिज्ञा' में एक शानदार गाना हमें दिया–*'मैं जट यमला पगला दीवाना'*। आज भी बजता है ये गाना। उन्हें लिखने के लिए कोशिश नहीं करनी पड़ती थी। सत्तर के दशक में सचिन देव बर्मन के सामने उन्होंने पाँच मिनिट में ये गाना लिख दिया था–*'ये दिल दीवाना है, दिल तो दीवाना है'।* 'इश्क़ पर ज़ोर नहीं' के निर्देशक ने बस इतना कहा था कि गाने में चार-पाँच बार 'इश्क़' शब्द आना चाहिए। बख़्शी साहब महज़ एक गीतकार नहीं थे, वो एक शायर थे। मुझे उनकी बड़ी याद आती है।

धर्मेंद्र जी से मिलने के फ़ौरन बाद उनके घर से बाहर निकलते हुए मेरी मुलाक़ात हो गयी उनके भाई निर्माता अजीत सिंह देओल से, जिन्होंने 'प्रतिज्ञा' का निर्माण किया था। उन्होंने मुझे बताया--*"....बख़्शी साहब एक गीतकार नहीं थे। वो हमारे पीर थे। उनके कुछ गाने सिर्फ़ गाने नहीं हैं, पीर के अलफ़ाज़ हैं, रूहानी रोशनी देते हैं"*

यश चोपड़ा

बख़्शीजी से मेरी मुलाक़ात फ़िल्मों से जुड़े आयोजनों और पार्टियों में होती थी। तब तक वो एक बहुत कामयाब गीतकार बन चुके थे। उन्हें ख़ुद गाना और लोगों को गवाना भी पसंद था। एक बार मेरा उनसे दोबारा तार्रूफ़ करवाया हमारे गीतकार साहिर लुधियानवी ने। साहिर सिर्फ़ मेरे गीतकार नहीं थे। वो एक बहुत प्यारे दोस्त थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'कभी अपनी फ़िल्म में आनंद बख़्शी से भी लिखवाइये। ये भी बढ़िया लिखते हैं'। मैं हैरत में पड़ गया, क्योंकि मेरे गीतकार साहिर साहब किसी दूसरे गीतकार की सिफ़ारिश कर रहे थे। मैं अपनी फ़िल्मों में साहिर साहब की गीतकारी से ख़ुश था और मैंने कभी भी किसी और गीतकार के बारे में उनसे बात नहीं की थी। तब भी उन्होंने आनंद बख़्शी की सिफ़ारिश मुझसे की।

बख़्शी जी की सबसे अच्छी बात ये थी कि अस्सी के दशक में जब साहिर साहब के ज़रिए हमारी मुलाक़ात हुई, तब तक हम दोनों अपने अपने क्षेत्र में काफ़ी नाम कमा चुके थे। इससे भी पहले, पार्टियों में मुलाक़ातें होती थीं, पर कभी उन्होंने मुझसे ये नहीं कहा कि मुझे अपनी फ़िल्मों में गाने लिखने का मौक़ा दीजिए। मुझे लगता है कि बख़्शी जी को पता था कि साहिर साहब मेरे पसंदीदा गीतकार हैं और मेरे अच्छे दोस्त भी हैं। बख़्शी जी ने इस रिश्ते को हमेशा इज़्ज़त दी और मुझसे काम नहीं मांगा। बख़्शी जी एक बहुत ही बेमिसाल इंसान थे और अव्वल दर्जे के गीतकार तो वो थे ही। ये सच है कि फ़िल्म-संसार में बहुत सारे अच्छे गीतकार और कवि थे, पर दुनिया में एक ही शायर-गीतकार रहेगा और वो है आनंद बख़्शी।

एक दिन एक बड़े निर्माता ने मुझसे एक फ़िल्म का निर्देशन करने के लिए संपर्क किया। संगीतकार थे राहुल देव बर्मन। वो निर्माता थे- गुलशन राय। मुझे ठीक से याद नहीं है, पर उन्होंने या पंचम ने मुझे सलाह दी कि हमें फ़िल्म के गाने लिखने के लिए आनंद बख़्शी से संपर्क करना चाहिए। और इस तरह हमने बख़्शी जी से मुलाक़ात की। वो ख़ुशी-ख़ुशी राज़ी हो गए। उन्होंने ये भी नहीं पूछा कि साहिर क्यों मेरी फ़िल्म में गाने नहीं लिख रहे हैं।

हालांकि जब मैं घर वापस लौटा, तो मुझे बड़ा अपराध-बोध महसूस हुआ। मुझे लगा कि साहिर साहब कितने अच्छे गीतकार हैं और कई सालों से मेरे बड़े अच्छे दोस्त रहे हैं। इसलिए लग रहा था कि मुझे साहिर साहब के साथ ही काम जारी रखना चाहिए। हालांकि साहिर साहब ख़ुद मुझसे एक बार कह चुके थे कि आपको बख़्शीजी से लिखवाना चाहिए। मैंने सोचा कि मैं फिर से बख़्शी साहब के पास जाऊंगा और उनसे माफी मांगूंगा कि मैं उनसे गाने नहीं लिखवा सकता। बड़े शर्मिंदा होते हुए मैं बख़्शीजी के पास हिचकते हुए गया और उनसे बहुत माफ़ी मांगी कि मैं खुद पीछे हट रहा हूं। मैंने ईमानदारी से उनसे कहा कि साहिर साहब मेरे बहुत पुराने और क़रीबी दोस्त हैं और बहुत ही कमाल के गीतकार भी, इसलिए मैं उनसे इस फ़िल्म में गाने नहीं लिखवा सकता। मुझे अपनी बात से पीछे हटना पड़ रहा है।

राकेश आनंद बक्शी

बख़्शीजी ने बहुत ही सम्मान और ख़ुशी से मेरी इस बात को स्वीकार किया कि मैं साहिर साहब के साथ ही काम जारी रखना चाहता हूं, जबकि एक दिन पहले मैंने बख़्शी साहब से बात कर ली थी। मेरे ख़्याल से इसकी वजह ये थी कि साहिर साहब ने गाने लिखने के बारे में बख़्शीजी को बढ़िया सलाह दी थी। उन्होंने बख़्शीजी को कुछ निर्माता निर्देशकों से भी मिलवाया था, ये पचास और साठ के दशक की बात है जब बख़्शीजी एक गीतकार के रूप में अपने क़दम जमाने की कोशिश कर रहे थे। मुझे लगता है कि बख़्शीजी साहिर साहब की इस मदद को ज़िंदगी में कभी भूल नहीं सके।

मुझे बख़्शी जी की इस बात को सुनकर बड़ी हैरत हुई कि भले ही हम इस फ़िल्म या किसी और फ़िल्म में साथ काम ना कर पायें, पर हम दोस्त हमेशा बने रहेंगे। बख़्शी साहब ने कभी किसी दूसरे गीतकार के बारे में भला बुरा नहीं कहा या उन लोगों के बारे में, जिनके साथ वो काम करते थे। उन्होंने उन लोगों को भी भला बुरा नहीं कहा, जिन्होंने उनके साथ काम नहीं किया। वो हमेशा चुप रहते थे, अपना काम करते थे और जब काम पूरा हो जाता था, तो निकल जाते थे। जब हमने एक साथ काफ़ी फ़िल्में कर लीं और दोस्त बन गए, तो भी उन्होंने कभी मुझसे बेकार की बातें या गॉसिप नहीं कीं। ना ही बिना वजह वो मेरे पास रूके, गाना रिकॉर्ड होने के बाद वो फ़ौरन ही निकल जाते थे।

जब साहिर साहब अल्लाह को प्यारे हो गए, उसके बाद ही मैंने बख़्शी जी से अपनी फ़िल्म में गाने लिखने के लिए संपर्क किया। 'चांदनी' उनके साथ मेरी पहली फ़िल्म थी। और उन्होंने कितने कमाल के गाने, कितनी कमाल की कविता मेरी फ़िल्म के लिए लिखी, उसके बाद तो सिलसिला चल पड़ा। मेरी फ़िल्मों में उनका बेमिसाल योगदान रहा है। मुझे इस बात का डर था कि 'चांदनी' कहीं नाकाम ना हो जाए। उन्होंने फ़िल्म का प्रिव्यू देखा और बोले कि मैंने एक सुपर हिट-फ़िल्म बनायी है। कहानी की उनकी समझ इतनी शानदार थी।

बख़्शीजी मेरे लिए मिनिटों में गाने तैयार कर देते थे। कभी-कभी वो अपनी कार में बांद्रा में अपने घर से लेकर जुहू में मेरे घर तक के सफ़र के दौरान गाना लिखते थे। आपको बता दूं कि ये तब बस पंद्रह मिनिट का ही सफ़र होता था। कभी-कभी तो ये हुआ कि मैं फ़ोन पर होल्ड किए रहा और चार मिनिट से भी कम में उन्होंने गाना लिख दिया। कभी हम गाने की रिकॉर्डिंग के दौरान अटक जाते थे, जब मुझे लगता था कि गाने की किसी पंक्ति को बदलना है, तो मैं उन्हें फ़ोन करता था। उन्होंने कभी मना नहीं किया, ये नहीं कहा कि आप कल फ़ोन कीजिए। हर बार उन्होंने फ़ौरन ही लाइनें बदलकर मुझे दे दीं। तुरंत लिखा। ऐसे पेशेवर गीतकार थे वो। ऐसी थी बख़्शी जी की प्रतिभा, उनकी रफ़्तार, गहराई, समर्पण और जोश। उन्होंने मुझसे कभी सवाल नहीं पूछा, ना ही इस बात पर कभी गुस्सा किया कि जब मैंने पहले गाना स्वीकार

राकेश आनंद बक्शी

कर लिया था तो अब इसमें बदलाव क्यों करना चाहता हूं। उन्होंने जब भी मौक़ा आया, किसी भी समय, किसी भी वक़्त फ़ौरन लिखा।

एक बार जब वो नानावटी हॉस्पिटल में भर्ती हुए थे और उन्हें पेस मेकर लगवाया जाना था, तो मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने फ़िल्म 'चाँदनी' के एक गाने के कुछ और अंतरे तैयार कर लिए हैं। मज़े की बात ये है कि उन्होंने ये गाना पहले ही मुझे दे दिया था। जब भी वो कुछ लिखकर देते तो मैंने कभी उनसे ये नहीं कहा कि इसे और बेहतर कर दीजिए। सोचिए कि अस्पताल में इतना बड़ा ऑपरेशन होने जा रहा था और वो अपने निर्देशकों और निर्माताओं के बारे में सोच रहे थे। आज कहां गया ऐसा समर्पण, ऐसी प्रतिभा, ऐसी ईमानदारी, और ऐसा जोश?

आज भी बख़्शी साहब को हम हमेशा याद करते हैं, मैं और मेरा बेटा आदित्य।

बक्शी

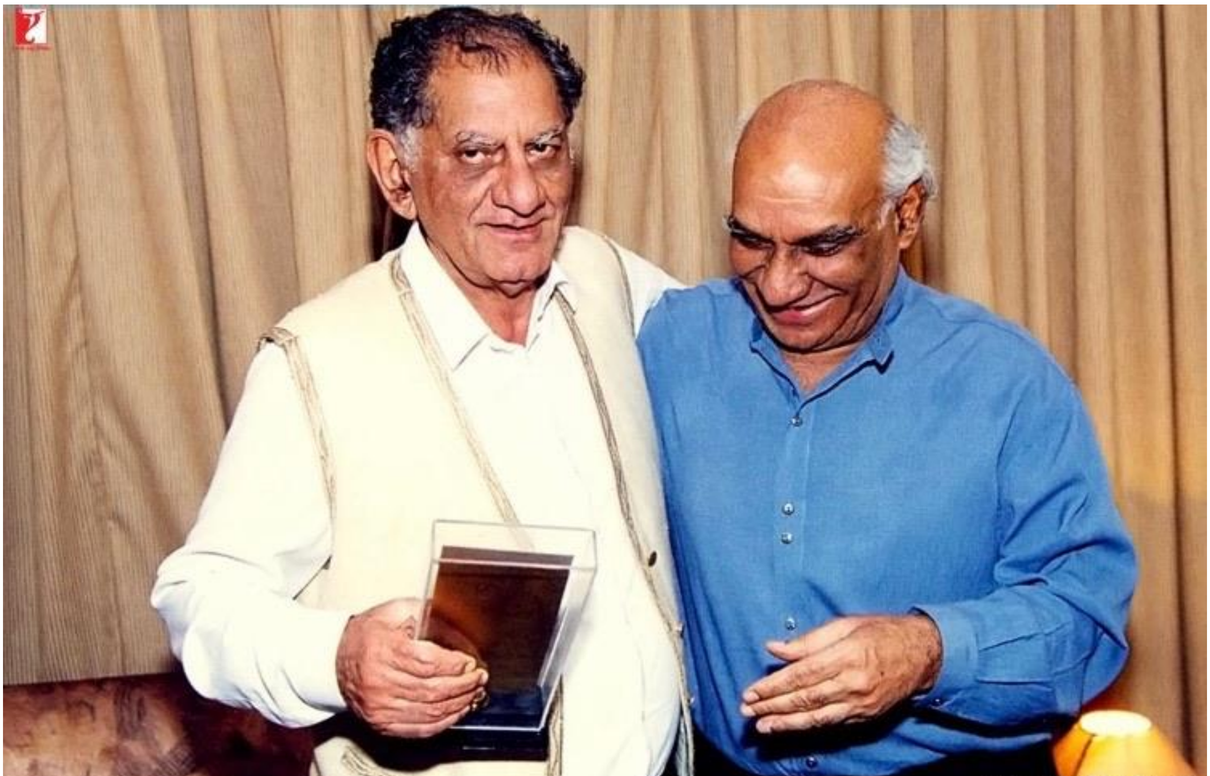

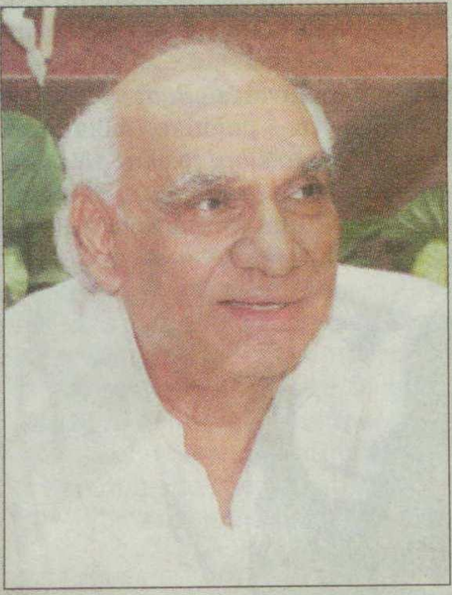

YASH CHOPRA

"In the truest and most perfect sense of the term, Anand Bakshi was a film lyricist. He had a knack of using the language of the common man. He was not a political person, and his thoughts were completely earthy and very correct for the situation. Since he was a very good singer and composer, he could also understand the needs of a song and a metre better than most lyricists.

"My friend and producer Gulshan (Rai)*ji* and R.D.Burman wanted him for *Joshila*, but I had a great relationship with Sahir Ludhianvi. When I met Bakshi*ji* and explained this he said that he understood my feelings completely and would not like to break my association with Sahir*saab*. All he said was, '*Par ek din main zaroor aapke liye gaana likhoonga.*'

"Our association finally came about eight years after Sahir*saab* passed away with *Chandni*. Since then, as long as he was alive, I never worked with anyone else. He had a great knowledge and understanding of the folk music of Punjab and he would often make his own tunes. Our first song together was the wedding song based on folk, '*Mere haathon mein nau nau choodiyaan hai*'. He sang out the song to me and said that he would not like to make it a conventional *antara-mukhda* song. 'I will make the *antaras* an extension and repetition of the *mukhda*. I will give you 40-50 verses and you can choose 4,6 or 10!' And he did! The song was a superhit and is popular even today!'

"I do not think anyone can match Bakshi*ji* in his understanding of the film song. He was a very fast writer and very amenable to the needs of a filmmaker - I could call him after a week if I was not happy with a song and he would be willing to give several alternatives.

"Bakshi had another special knack - a great judgement of scripts. When my son Adi narrated *Dilwale Dulhania Le Jayenge* to him, he calmly said that if Adi even achieved 50% of the way he had narrated his script he had a superhit on his hands! With due respect to Sahir*saab*, Bakshi*ji* would have adjusted to trends and times in music even today, something Sahir*saab* would not have been able to achieve.

"As a person, I miss Bakshi*ji* too much. He would be a regular at our house during Diwali and he loved his food and drink. He was also a truly wonderful human being."

YASH CHOPRA'S
CHANDNI
LYRICS ANAND BAKSHI
PRODUCED & DIRECTED BY YASH CHOPRA
ASSOCIATE PRODUCER T.SUBBARAMI REDDY
MUSIC SHIV HARI
YASH CHOPRA'S
DARR
A Violent Love Story
PRODUCED & DIRECTED BY YASH CHOPRA MUSIC SHIV HARI LYRICS ANAND BAKSHI
PARAMPARA
LAMHE
& Other Hits of Yash Chopra
Music: Shiv-Hari • Lyrics: Anand Bakshi
Yash Chopra's
Mohabbatein
an aditya chopra film
a yash chopra presentation
mujhse dosti karoge!
A YASH CHOPRA MUSICAL
HMV
Dil to Pagal Hai
MUSIC UTTAM SINGH
LYRICS ANAND BAKSHI
YASH CHOPRA'S
Dilwale Dulhania Le Jayenge
COMPACT DISC DIGITAL AUDIO
CDF 110055
STEREO
DIRECTED BY ADITYA CHOPRA MUSIC JATIN-LALIT LYRICS ANAND BAKSHI

लता मंगेशकर

बख़्शी साहब ऐसे इकलौते गीतकार थे जो पंजाबी में मेरी तारीफ़ करते थे, कहते थे –'वाह जी वाह'। स्टूडियो में गाने की रिकॉर्डिंग के बाद हमारी मुलाक़ात होती थी। इस वक़्त मुझे उनके लिखे जो गाने याद आ रहे हैं वो हैं, 'जाने क्यों लोग मुहब्बत किया करते हैं', *'बाग़ों में बहार है, कलियों पे निखार है', 'तू मेरे सामने, मैं तेरे सामने', 'तेरे मेरे होठों पे मीठे-मीठे गीत मितवा, 'ऐ प्यार तेरी पहली नज़र को सलाम'।*

उन्होंने कभी रिकॉर्डिंग में किसी के काम में दख़लअंदाज़ी नहीं की। वो बहुत ही ख़ामोश रहने वाले इंसान थे और ऐसे गिने-चुने गीतकारों में थे जो हमेशा अपने सभी गानों की रिकॉर्डिंग में मौजूद रहते थे। जब उन्हें लगता कि गायक उनके शब्दों को ठीक से समझ नहीं रहा है तो वो पूरे आत्मविश्वास से अदायगी में बदलाव करने का सुझाव देते, फिर चाहे वो कोई अनुभवी गायक ही क्यों ना हो..... या कभी-कभी वो शब्दों का सही उच्चारण हमें बताते थे। जब मैं 'चांदनी' का गीत *'तेरे मेरे होंठों पे मीठे-मीठे गीत मितवा'* रिकॉर्ड कर रही थी तो वो मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे कहा कि 'मीठे' का 'ठ' कोमल नहीं सख़्त आना चाहिए। उनके इस छोटे-से सुझाव से गाने में जैसे जान आ गयी। जब वो बतौर गायक अपना पहला गाना रिकॉर्ड कर रहे थे तो मैं मुझे बड़ी हैरत हुई क्योंकि वो बिलकुल एक पेशेवर गायक की तरह गा रहे थे। मैंने अकसर देखा है कि नये गायक मेरे साथ पहली बार गाते हुए बहुत घबरा जाते हैं। उन्होंने बहुत बढ़िया गाया और मुझे लगता है कि उस गाने की धुन भी उन्हीं ने बनायी थी।

जब सन 2001 में मुझे 'पद्म-विभूषण' पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने मुझे एक कविता भेंट की–ये कविता उन्होंने मेरे सम्मान में लिखी थी। मुझे लगता है कि उस समय उनकी तबीयत ठीक नहीं थी, इसके बावजूद वो उस आयोजन में आए और जब मैं मंच से नीचे आ रही थी तो उन्होंने मुझे वो कविता भेंट की। मैं उनके इस लगाव और संवेदनशीलता से बहुत प्रभावित हुई।

ये गुलशन में बाद-ए-सबा गा रही है
के पर्बत पे काली घटा गा रही है।

ये झरनों ने पैदा किया है तरन्नुम
के नदिया कोई गीत-सा गा रही है।

ये महिवाल को याद करती है सोहनी
कि मीरा भजन श्याम का गा रही है।

राकेश आनंद बक्शी

मुझे जाने क्या क्या गुमान हो रहे हैं
नहीं और कोई, लता गा रही है।

यूं ही काश गाती रहें ये हमेशा
दुआ आज ख़ुद ये दुआ गा रही है।

(लता मंगेशकर ने डैडी के सबसे ज़्यादा गाने गाये हैं। मैंने पूरी फ़ेहरिस्त नहीं तैयार की है पर अक्तूबर 1990 तक उन्होंने 309 फ़िल्मों में उनके 679 गीत गाए थे)

SONY
VAIO

جھرنوں کا ترنم

یہ گلشن میں بادِ صبا گا رہی ہے
کہ پربت پہ کالی گھٹا گا رہی ہے
یہ جھرنوں نے پیدا کیا ہے ترنم
کہ ندیا کوئی گیت سا گا رہی ہے
یہ مہیوال کو یاد کرتی ہے سوہنی
کہ میرا ابھجن شام کا گا رہی ہے
مجھے جانے کیا کیا گماں ہو رہے ہیں
نہیں اور کوئی، لتا گا رہی ہے
یونہی کاش گاتی رہے یہ ہمیشہ
دعا آج خود یہ دعا گا رہی ہے

آنند بخشی
فلیٹ نمبر ۴، چوتھی منزل، پلاٹ ۹۹/۶۰، ہنی کومب، المیڑا پارک، باندرہ بمبئی نمبر ۵

सुभाष घई

'मेरी जंग' फ़िल्म के गाने की सिटिंग चल रही थी। मैंने बख़्शी जी को एक लाइन सुनायी, *'ज़िंदगी हर क़दम एक नयी जंग है'*...उन्होंने तपाक से जवाब दिया, *'जीत जायेंगे हम अगर तू संग है, ज़िंदगी हर क़दम एक नयी जंग है'*। मैं समझ गया था कि हमारे पास गाने का मुखड़ा आ गया है।

3 अगस्त की शाम मैं उनके साथ था। हम 1984 'कर्मा' के गाने तैयार कर रहे थे। उन्होंने गाने के बोल मुझे पढ़कर सुनाये–*'दिल दिया है, जां भी देंगे, ऐ वतन तेरे लिए, हर करम अपना करेंगे, ऐ वतन तेरे लिए'।* जैसे ही बख़्शी जी ने दिल को मथ देने वाला ये गीत ख़त्म किया, मैं जज़्बाती हो गया और मैंने अपनी जेब से निकालकर बतौर नज़राना उन्हें सौ रूपए का नोट दे दिया। मैंने उस नोट पर तारीफ़ में ये वाक्य लिखा था–*'आनंद बख़्शी की कलम को मेरा सलाम, शुभकामनाओं के साथ, सुभाष घई की कलम'।*

बख़्शी जी की एक आदत रही है, जिन चीज़ों से उनका जज़्बाती जुड़ाव रहा है उन्हें वो संजोकर - रखते हैं। पर मुझे पता नहीं था कि उन्होंनेज़िंदगी भर वो नोट संभाल कर रखा। जब मुझे ये बात पता चली तो मैं हैरान रह गया। आजकल तो सबको पैसों से ही मतलब है। आपकी फ़िल्म सौ करोड़ के पार चली जाए, बस यही मायने रखता है। पर इस घटना से मुझे वो दौर याद आ गया, जब सौ रूपए का नोट बहुत ज़्यादा मायने रखता था और जज़्बात की क़द्र की जाती थी। आनंद बख़्शी ने ज़िंदगी भर वो नोट संभाल कर रखा, ये मेरे लिए एक बड़ी बात है। और मैं ज़िंदगी भर इसे नहीं भूलूंगा।

बख़्शीजी और मैंने चौदह फ़िल्में साथ साथ कीं–*गौतम गोविंदा, क़र्ज़, क्रोधी, विधाता, हीरो, मेरी जंग, कर्मा, राम लखन, सौदागर, खलनायक, शिखर, परदेस, ताल और यादें।* बहुत कम लोगों को ये अहसास होता होगा कि एक गीतकार डेढ़ सौ मिनिट की फ़िल्म में से पैंतालीस मिनिट ख़ुद लिखता है। गानों की वजह से ही लोग फ़िल्में दोबारा देखते हैं और उन्हें याद करते हैं। फ़िल्मों के दीवाने गानों के ज़रिए फ़िल्म का नाम याद रखते हैं। गानों की वजह से कलाकारों की पहचान बनती है। गायकों की भी पहचान बनती है। ऐसे में गीतकार को उसका हक़ ज़रूर मिलना चाहिए। ना सिर्फ नाम बल्कि उन्हें दाम भी मिलने चाहिए।

बख़्शी जी इस इंडस्ट्री में लगातार टिके रहे, जबकि यहां बड़े विरोधाभास हैं, विडंबनाएं हैं....वो विवादों से दूर रहे। उनका सबसे बड़ा गुण था उनका अनुशासन। पहली बात, उन्होंने कभी किसी गाने को लिखने में देर नहीं की। दूसरी बात–कभी कभी कुछ गायक मुझसे पूछते थे कि क्या मुझे उनका गाया गाना पसंद आया है। पर जिस गीतकार ने मेरे लिए गाने लिखे, उसने कभी

ये सवाल नहीं पूछा। उन्हें शायद इस बात का अंदाज़ा रहता था कि उन्होंने अपना काम पूरी ईमानदारी और मेहनत से किया है।

आनंद बख़्शी के गाने हमेशा भारतीय सिनेमा का दस्तावेज़ बने रहेंगे। उनके गानों का विश्लेषण किया जायेगा, भविष्य के संगीत विश्वविद्यालयों में पटकथा, गीतकारी और संगीत के छात्र उनके गानों का बाक़ायदा विश्लेषण करेंगे। बख़्शी जी का दुनिया से चले जाना मेरी ज़िंदगी का सबसे क्रूर त्रासदी है। मेरी फ़िल्मों को कामयाब बनाने में बख़्शीजी की बेमिसाल गीतकारी का बड़ा योगदान रहा है। उन्हें तो 'भारत रत्न' से सम्मानित किया जाना चाहिए।

बख़्शीजी फ़िल्म की कहानी को इतने ध्यान से सुनते थे कि मानो कहानी को अपने भीतर जज़्ब कर रहे हों। इसके बाद वो कहानी के बारे में निर्देशक से भी ज़्यादा जानते थे। मैं अपनी हर फ़िल्म में एक थीम सॉन्ग रखता था, जिसमें बुनियादी कहानी छिपी होती थी। एक बार बख़्शी जी ने एक गाने में जैसे सारी कहानी ही समा दी थी। और इसके बाद मैं उस गाने को फ़िल्म शूट करने की गाइड की तरह इस्तेमाल करता रहा। ये 'विधाता' फ़िल्म की बात है जिसमें उन्होंने तक़दीर और तदबीर की तुलना वाला बेमिसाल गाना लिखा था–*'हाथों की चंद लकीरों का...'*। ये मेरा पसंदीदा गाना है। इसी तरह हमने एक साथ जो पहली फ़िल्म की थी–'गौतम गोविंदा'...उसका गाना *'इक ऋतु आए एक ऋतु जाये'*...भी मेरा पसंदीदा है। उनकी एक और ख़ासियत थी, उनके गाने बिकते थे लेकिन वो खुद बिकाऊ नहीं थे। उन्होंने कभी गीतकारी में अपने उसूलों के साथ समझौता नहीं किया। वो सही मायनों में एक सच्चे और बेमिसाल इंसान थे।

शूटिंग के वक़्त मुझे उनके गानों की असली गहराई का अंदाज़ा लगता था, आमतौर पर तब जब मैं कलाकारों को लाइनें समझा रहा होता था। उनका आख़िरी गाना था—*'बुल्लेशाह तेरे इश्क़ नचाया, वाह जी तेरे इश्क़ नचाया'*। उन्होंने ये गाना तब लिखा जब उन्हें 101 डिग्री बुख़ार था। उन्हें तीन गर्म कंबल ओढ़ाए गए थे, वो कांप रहे थे, अस्थमा की वजह से उनकी सांस फूल रही थी और उनका हीमोग्लोबिन घटकर सात पर आ चुका था। उसी हफ़्ते उन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया और वो कभी लौटकर नहीं आए। बख़्शी जी एक महान गीतकार थे। उनके जाने के बाद पीछे रह गया है सिर्फ़ सन्नाटा।

(सुभाष घई ने जिस तरह बख़्शी साहब की अनुशासनप्रियता को याद किया, उससे मुझे याद आ गया कि डैडी के अनुशासन ने मुझे अपने शुरूआती सालों में बहुत प्रेरित किया था। अगर कोई गाना महीने भर बाद देना है तो वो उसे अभी लिखकर तैयार कर लेते थे। अगर ख़ाली वक़्त है तो वो चुपचाप नहीं बैठते थे। वो घर का फ़र्नीचर साफ़ करने लग जाते। जब ये

राकेश आनंद बख़्शी

काम हो जाता तो वो अपने फ़ैन्स की हर चिट्ठी का जवाब देते थे। वो अपने प्रशंसकों की उतनी ही क़द्र करते थे, जितनी अपने निर्माताओं की)

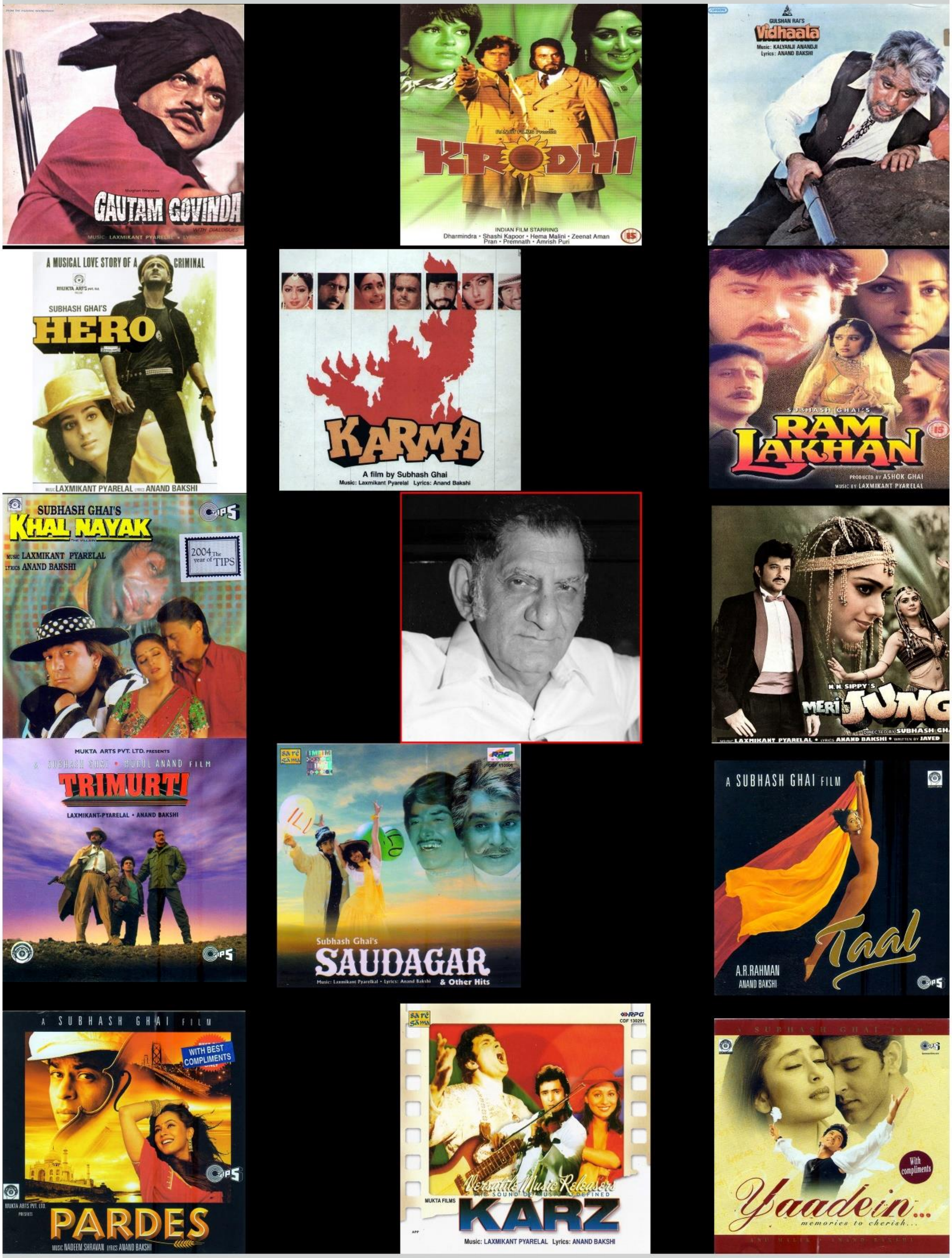
GAUTAM GOVINDA
MUSIC LAXMIKANT PYARELAL
KRODHI
INDIAN FILM STARRING
Dharmindra • Shashi Kapoor • Hema Malini • Zeenat Aman
Pran • Premnath • Amrish Puri
GULSHAN RAI'S
Vidhaata
Music: KALYANJI ANANDJI
Lyrics: ANAND BAKSHI
A MUSICAL LOVE STORY OF A CRIMINAL
MUKTA ARTS
SUBHASH GHAI'S
HERO
MUSIC LAXMIKANT PYARELAL LYRICS ANAND BAKSHI
KARMA
A film by Subhash Ghai
Music: Laxmikant Pyarelal Lyrics: Anand Bakshi
SUBHASH GHAI'S
RAM LAKHAN
PRODUCED BY ASHOK GHAI
MUSIC BY LAXMIKANT PYARELAL
SUBHASH GHAI'S
KHAL NAYAK
MUSIC LAXMIKANT PYARELAL
LYRICS ANAND BAKSHI
2004 The year of TIPS
N.N. SIPPY'S
MERI JUNG
MUSIC LAXMIKANT PYARELAL LYRICS ANAND BAKSHI WRITTEN BY JAVED
MUKTA ARTS PVT. LTD. PRESENTS
TRIMURTI
LAXMIKANT-PYARELAL • ANAND BAKSHI
Subhash Ghai's
SAUDAGAR
& Other Hits
A SUBHASH GHAI FILM
Taal
A.R.RAHMAN
ANAND BAKSHI
A SUBHASH GHAI FILM
WITH BEST COMPLIMENTS
MUKTA ARTS PVT. LTD. PRESENTS
PARDES
MUSIC NADEEM SHRAVAN LYRICS ANAND BAKSHI
MUKTA FILMS
KARZ
Music: LAXMIKANT PYARELAL Lyrics: ANAND BAKSHI
Yaadein...
memories to cherish...
With compliments

शक्ति सामंत

बख़्शी जी कमाल की प्रतिभा थे। जब वो गाना लिखते थे तो साथ ही उसकी धुन भी तैयार कर लेते थे। कई बार वो अपने गाने गायकों से भी बढ़िया गाते थे। दिलचस्प बात ये थी कि पार्टियों में वो बेहतरीन चुटकुले सुनाते थे और गाने गाकर भी हमारा मनोरंजन करते थे।

(आनंद बख़्शी की पहली नयी गाड़ी थी इंपोर्टेड शेवरले बेल एयर, ये गाड़ी उन्हें शक्ति सामंत ने 'आराधना' की कामयाबी के बाद तोहफ़े में दी थी। पर बख़्शी साहब ने ज़ोर दिया कि वो इसके पैसे अदा करेंगे, इसे तोहफ़े की तरह अपने पास नहीं रखेंगे। ये बात शक्ति सामंत को माननी पड़ी थी)

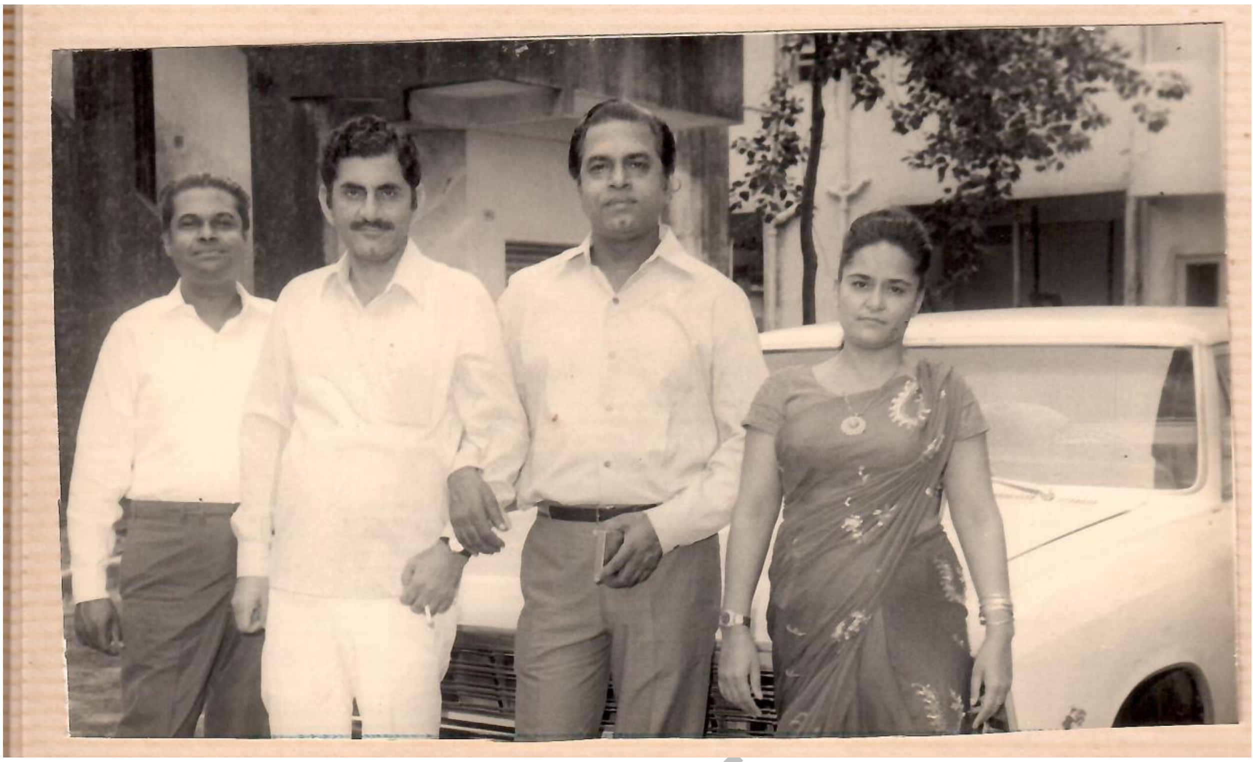

जे ओमप्रकाश .

मैं हमेशा गानों की सिटिंग के दौरान बख़्शी जी के साथ अपनी फ़िल्मों की कहानी और पटकथा पर बड़े विस्तार से बात करता था। इंसानी जज़्बात की उन्हें बड़ी समझ थी और हमेशा उनके सुझाव बहुत बढ़िया हुआ करते थे। वो कहानी बहुत ही ध्यान से सुनते थे। वो फ़िल्म की कहानियों और सिचुएशन को बड़े ध्यान से समझते थे, ताकि अच्छे गाने लिखने के लिए प्रेरित हो सकें। *'आप की क़सम'* की कहानी सुनने के बाद उन्होंने मुझे बताया कि उनके एक क़रीबी दोस्त ने अपनी पत्नी को सिर्फ़ इसलिए छोड़ दिया था कि उसे किसी और से ताल्लुक़ात होने शक था। कुछ सालों बाद उसे अपनी ग़लती का अहसास हुआ और वो माफ़ी मांगने उसे पास लौटा, ताकि उससे दोबारा शादी कर सके। पर तब तक उस महिला की ज़िंदगी बदल चुकी थी। वो किसी और के साथ घर बसा चुकी थी। बाद में उस दोस्त ने ख़ुदकुशी कर ली थी। जल्दी ही बख़्शी जी ने ये गाना लिखा—*'ज़िंदगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मकाम, वो फिर नहीं आते'*। ये गाना कथा, पटकथा और किरदारों के साथ इतना ज़्यादा घुला-मिला हुआ था कि दो दृश्यों का काम इस गाने ने अकेले ही कर दिया। मैंने उन्हें पहले ही शूट कर लिया था पर एडिटिंग के दौरान मैंने उन्हें निकाल दिया। इस गाने ने मुझे निजी ज़िंदगी में भी मेरी बड़ी मदद की।

जब मैंने उन्हें *'आये दिन बहार के'* फ़िल्म की एक सिचुएशन बतायी, तो मैंने उनसे कहा था कि जब किसी आशिक़ के साथ धोखा होता है या मेहबूबा उसे छोड़कर चली जाती है तो उसे कैसा

राकेश आनंद

महसूस होता है, बस यही आपको लिखना है। ये वो अहसास हो, जो वो महसूस तो करे पर किसी को बताए नहीं। जो भी हमारा नुकसान करता है, हम भीतर ही भीतर उसे कोसते ज़रूर हैं। उन्होंने हिंदी सिनेमा में कोसने का अब तक का सबसे अद्भुत गीत लिखा, जिसका आज तक कोई जोड़ नहीं है–*'मेरे दुश्मन तू मेरी दोस्ती को तरसे'*। ये गाना उन्होंने महज़ दो घंटों में लिख दिया था।

टोनी जुनेजा

बख़्शी साहब आमतौर पर सन की अपनी फियेट में शाम के डॉट छह बजे राजू 1964 के घर सिटिंग के लिए आते थे। वो अपने साथ तंबाकू वाला पान (संगीतकार राजेश रोशन) और 555सिगरेट का एक पैकेट ज़रूर लाते थे। और हम गाने की सिटिंग शुरू करते थे। उनके पास दो नयी इंपोर्टेड कारें भी थीं पर इसके बावजूद वो अपनी पहली कार यानी फियेट से ही आना जाना पसंद करते थे।-फ़िल्मों की प्रीमियर पर भी उसी में आते। एक शाम हमेशा की तरह वो –सिगरेट पी रहे थे। उन्होंने यूं ही एक गाना गुनगुनाना शुरू किया 555*'परदेसिया ये सच है पिया, सब कहते हैं तू ने मेरा दिल ले लिया'।* हम सब हैरत में थे। गाना हम सभी को बड़ा पसंद आया था। राजू और उसके साज़िंदों में भी जोश आ गया और उन्होंने बख़्शी साहब के गाने के साथ साज़ बजाने शुरू कर दिये। उन्होंने तीन अंतरे हमारे सामने पंद्रह मिनिट में लिख दिये। वो इस दौरान पान भी चबाते रहे और 555 सिगरेट से गहरे गहरे क़श भी लेते-रहे।

अमिताभ बच्चन के फ़िल्मों में गाना गाने का श्रेय भी बख़्शी साहब को ही जाता है। जब उन्होंने 'मेरे पास आओ मेरे दोस्तो' लिखा तो सुझाव यही दिया कि क्यों ना इस गाने को अमिताभ से ही गवा लिया जाए? उनका कहना था कि जब अमिताभ ख़ुद गायेंगे तो वो ज़्यादा आत्मीय लगेगा, वैसे भी वो बच्चों के लिए गाना गा रहे हैं। इस तरह ये अमिताभ बच्चन का फ़िल्मों में गाया पहला गाना बन गया।

बख़्शी जी तमाम लोगों के लिए गाने लिखते थे। इतने सारे निर्माताओं के लिए कि क्या कहूं। उन्होंने कभी कोई टोली नहीं बनायी, ना ही किसी एक ग्रुप का सपोर्ट किया। जब कभी हमें कुछ दिनों या कुछ घंटों में गाने की ज़रूरत पड़ी तो बख़्शी साहब ने हमेशा उस चुनौती को निभाया। ऐसा था उनका पेशेवर अंदाज़, उनकी रफ़्तार। उनसे सीखना चाहिए कि सबके पैसे मायने रखते हैं। उन्हें बेकार नहीं जाने देना चाहिए। उन्होंने हमेशा काम को सबसे आगे रखा और मुस्कुराते रहे। सभी निर्माताओं के साथ सही तालमेल रखा और सभी का काम किया। वो मुझसे कहते थे कि मेरे गानों की ताल हमेशा दिल की धड़कनों जैसी होती है। मैंने कुछ गाने अपने दिल की धड़कनों की ताल पर लिखे हैं। मेरे गाने दिल की धड़कनों की तरह धड़कते रहेंगे। उनके जैसा ना तो कोई पहले हुआ था और ना ही आगे कभी होगा'।

राकेश आनंद बख़्शी

राजकुमार बड़जात्या

जब बख़्शी जी ने *'जीवन-मृत्यु'* का ये गाना लिखा—*'झिलमिल सितारों का आँगन होगा, रिमझिम बरसता सावन होगा'*—तो मैंने बड़ी विनम्रता से एतराज़ जताया, जब बारिश होती है तो भला सितारे किस को नज़र आते हैं। आसमान तो बारिश के बादलों से ढंका रहता है। बख़्शी जी ने जवाब दिया—*'आप शब्दों पर मत जाईये। सिर्फ़ मेरे लिए शब्दों तक मत रुकिए। जज़्बात की गहराई को समझिए। एक कवि क्या कह रहा है, ये समझिए। देखिए ये गाना रूमानी है। जब आप ध्यान से देखेंगे तो पायेंगे कि इसमें मैंने 'न' और 'म' अक्षरों का खेल किया है। "झिलमिल" में 'म' है और "आंगन" में 'न' है। इन अक्षरों "न" और "म" का खेल आप समझिए। इनकी ध्वनि को सुनिए तो आपको समझ में आयेगा कि इस गाने को गाने और सुनने का अपना ही आनंद है। और इसीलिए ये गाना लोकप्रिय होगा।* उनकी बात सही थी। ये गाना वाक़ई सुपर-डुपर हिट बन गया।

बख़्शी जी हमारे लिए हर गाने के कम से कम छह अंतरे ज़रूर लिखते थे, जबकि हमें बस तीन ही अंतरों की ज़रूरत होती थी। जब हम सबसे पहले सन 1967 में *'तक़दीर'* के लिए मिले, तो उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा था कि मैं भूतपूर्व फ़ौजी हूं और मुझे गाने लिखना पसंद है। उन्होंने ऐसे दिखाया मानो वो फ़िल्म-संसार में नए हैं। उन्होंने कतई नहीं बताया कि *'जब जब फूल खिले', 'मेहँदी लगी मेरे हाथ', 'हिमालय की गोद में', 'आये दिन बहार के', 'फूल बने अंगारे', 'मिस्टर एक्स इन बॉम्बे', 'आसरा', देवर', 'छोटा भाई, 'फ़र्ज़'* जैसी सुपर हिट और हिट फ़िल्मों के गाने लिखे हैं। इतने विनम्र थे वो।

उन्होंने अपने गानों में बड़े आसान शब्दों का इस्तेमाल किया, ये एक वरदान की तरह था क्योंकि गाने सभी की समझ में आते थे, साथ ही उनके इस्तेमाल किए अलफ़ाज़ निर्देशकों की गाने शूट करने में बड़ी मदद करते थे। उनके अलफ़ाज़ से एक तस्वीर बनती थी और हम अपने आसपास वो नज़ारे खोज लेते थे। हम इन अलफ़ाज़ के मुताबिक गाने शूट करने की जगहें खोज लिया करते थे। यक़ीन मानिए उनके गाने निर्देशकों को इशारा करते थे कि गाना कैसे शूट करना है, कहां शूट करना है और इन गानों में किरदारों को क्या करना है। ये उनके गानों की सबसे बड़ी ख़ासियत थी। उनका ज्ञान सिर्फ शब्दों तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने रोज़मर्रा की बातचीत के शब्दों का और ज़बान का इस्तेमाल किया। ये उनके गानों की सबसे बड़ी ख़ूबसूरती थी।

हमारी फ़िल्म *'पिया का घर'* में उन्होंने कितना बड़ा जीवन दर्शन दिया है—*'ये जीवन है, इस जीवन का यही है, यही है, यही है रंग-रूप....थोड़े ग़म हैं, थोड़ी ख़ुशियां, यही है, यही है छांव-धूप'।*

राकेश आनंद बख्शी

वो बहुत ही फुर्तीले गीतकार थे। ख़ूब लिखते थे। उन्होंने हमारी फ़िल्मों के लिए तो गाने लिखे ही इसके, अलावा *'मिलन'* और *'जीने की राह'* जैसी फ़िल्मों के गाने उन्होंने बीस या तीस मिनिट में लिखकर रख दिए थे। मौक़े पर फ़ौरन गाने लिखने में उन्हें कभी कोई दिक्कत नहीं आयी। जैसे ही वो धुन सुनते थे, फ़ौरन गाना लिखना शुरू कर देते थे। कमाल की बात ये है कि धुन के हर नोट को ध्यान में रखकर वो गाना लिखते थे। गाना धुन पर एकदम पक्का बैठ जाता था। वो हर किरदार के मुताबिक़ शब्दों का इस्तेमाल करते थे, ना कि अपनी उर्दू या हिंदी के ज्ञान से किसी को प्रभावित करना चाहते थे। उन्होंने इस बात का ध्यान रखकर लिखा कि किरदार किस इलाक़े के रहने वाले हैं, उनके हालात कैसे हैं और उनकी क्या हैसियत है। जैसे कि फ़िल्म *'मिलन'* के गाने *'सावन का महीना'* में उन्होंने पुरवैया शब्द का इस्तेमाल किया, क्योंकि नाविक अपनी नाव को बहाने वाली हवा को पुरवैया कहते हैं। वो अपने हर गाने पर इतना ज़्यादा ध्यान देते थे।

उन्होंने हमारे लिए जो भी गाने लिखे, उन सबकी सिटिंग में मैं मौजूद रहा था। इसके अलावा प्रसाद प्रोडक्शन की फ़िल्मों के गाने बनने के दौरान भी। उन्होंने इतने अच्छे गाने लिखे कि आज अड़तालीस साल बाद भी मुझे उनके गानों के सारे अंतरे याद हैं। उनके गाने ऐसे ही हैं–देर तक याद रहने वाले। जैसे कि *'राजा और रंक'* का गाना है–*'ओ फिरकी वाली, तू कल फिर आना, नहीं फिर जाना तू अपनी जुबान से'।* उन्होंने यहां 'फिर' शब्द का इस्तेमाल दो अलग-अलग अर्थों में किया है। हालांकि 'फिरकी' में भी 'फिर' की ध्वनि है। दूसरी बार 'फिर' आया है उसका मतलब है 'दोबारा'। और तीसरी बार जब आया है तो उसका अर्थ है 'हट' नहीं जाना, 'भूल' मत जाना। ऐसा था उनका कमाल। एक शब्द के इतने अर्थ। कितने प्रतिभाशाली लेखक थे वो। *'ये दिल दीवाना है, दिल तो दीवाना है, दीवाना है ये दिल, दिल दीवाना'*....इस गाने में उन्होंने 'दिल' और 'दीवाना' शब्दों का इस्तेमाल एक अंतरे में सात बार किया है। ऐसा इसलिए क्योंकि निर्देशक चाहते थे कि इस शब्द का बार-बार इस्तेमाल हो।

ए. आर्. रहमान

जो चीज़ें बहुत ही साधारण या आसान होती हैं, वो मन को बहुत लुभाती हैं। वो हमें फ़ौरन बड़ा आनंद देती हैं। क्योंकि ये दुनिया वैसे शोर और बदहवासी से भरी है–ऐसे में आसान चीज़ें उभर कर सामने आती हैं। और उनका फ़ौरन असर होता है। बख़्शी जी के साथ काम करते हुए मैंने जाना कि वो तो आसान गानों के शहंशाह हैं। उनके भीतर बड़ी गहराई थी। इसके बावजूद उनके गीत बड़े आसान होते थे। ये असल में जीनियस होने की निशानी है। मेरा मानना है कि एक जीनियस इंसान ही तमाम जटिलताओं या उलझनों को अपने भीतर कायम रह सकता है, इसके बावजूद इतने आसान शब्द लिखता है कि वो सभी को लुभाएं। समझ में आ जायें।

राकेश आनंद बक्शी

उनके गानों की सादगी की एक मिसाल है सन में आयी 1999फ़िल्म 'ताल' का गाना–*'करिए ना, कोई वादा किसी से करिए ना, करिए तो फिर वादा कोई तोड़िए ना'* और *'नहीं सामने तू ये अलग बात है, मेरे पास है तू मेरे साथ है'*। *'करिये ना'* को एन्ड्र्यू लॉयड बेवर के नाटक 'बॉम्बे ड्रीम्स' में भी शामिल किया गया था। और ये मेरा पसंदीदा गाना है।

बख़्शी जी को संगीत का बड़ा ज्ञान था, उनकी आवाज़ भी शानदार थी, इसलिए वो अपनी ही धुन पर गाना गाकर सुनाया करते थे। और जो कुछ वो गाते थे, वो लगता भी बहुत बढ़िया था। इसलिए मुझे उनके साथ काम करते हुए थोड़ा तनाव होता था। लगता था कि अगर मैं ट्यून बनाने में देर करूंगा तो हो सकता है कि वो कोई बेहतर धुन सुना देंगे और मेरे निर्देशक सुभाष घई उसे मंज़ूर भी कर लूंगा। ये एक संगीतकार के रूप में मेरी नाकामी होगी? संगीतकार का काम होता है हिट गाने तैयार करना। ऐसे में अगर हमारे गीतकार में एक आकर्षक और दिलचस्प मुखड़ा लिखने की काबलियत हो तो बात बन जाती है। बख़्शी साहब के रहते कभी कोई दिक्कत नहीं आयी। उन्होंने जो कुछ भी लिखा वो इतना आसान और धुन पर बैठने वाला होता था कि क्या कहें। सच कहूं तो मुझे उनके गानों पर ज़्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। अगर आप *'चोली के पीछे क्या है'* को ही उठायें तो इसकी ध्वनि इतनी सांगीतिक है, इतनी आकर्षक है कि अगर आप बोलों का अर्थ नहीं भी जानते हैं तो भी ये आपको अच्छा लगता है। ठीक यही बात *'ताल से ताल मिला'* के लिए भी सही बैठती है। ऐसे लोगों पर ईश्वर का आशीष होता है कि वो अपने काम में इतना कुछ दे जाते हैं, सुनने वालों को इतना कुछ दे जाते हैं कि क्या कहा जाए।

आनंद बख़्शी

मिलन लूथरिया

ज़िंदगी में आप जो बड़े फ़ैसले लेते हैं, वो आपको बना या बिगाड़ सकते हैं। लेकिन ऐसे फ़ैसलों को लेते वक़्त ज़्यादा सोचा नहीं जाता, ऐसे फ़ैसले झटके में ले लेने चाहिए क्योंकि इनका जो नतीजा होता है वो आपके हाथ में नहीं होता। पर जहां तक छोटे-छोटे फ़ैसलों का सवाल है, जैसे कि आज मुझे दाढ़ी बनानी चाहिए या नहीं या आज डिनर में क्या खाना चाहिए–इनमें आप चाहें तो एक दिन लगा दें या एक हफ़्ता, क्योंकि इनके नतीजों से आपकी ज़िंदगी पर कोई गहरा असर नहीं पड़ने वाला है।

जब मैं 'कच्चे धागे' बना रहा था तो पहले ही गाने की सिटिंग में किसी ने बख़्शीजी से एतराज़ जताया कि आप मुखड़े में पंजाबी शब्दों का इस्तेमाल क्यों कर रहे हैं। उन्होंने लिखा था--*'ख़ाली दिल नईं जान भी ये मंगदा, इश्क़ दी गली विच कोई कोई लंगदा'।* उन्होंने कहा कि आप इसे हिंदी में लिखें तो अच्छा रहेगा, हालांकि एक निर्देशक के तौर पर मैंने इस बात पर अपनी सहमति नहीं जताई।

बख़्शी जी ने निर्माता को समझाने की कोशिश की पर वो हिलने को तैयार नहीं थे। इसलिए बख़्शी जी ने मुझसे कमरे से अकेले बाहर चलने को कहा। उन्होंने कहा कि मैं अकेले में तुमसे कोई बात करना चाहता हूं। बख़्शी जी ने मुझसे जो कुछ कहा, उसे मैं अपनी ज़िंदगी में कभी नहीं भूल सकता–*'ये तुम्हारी ज़िंदगी का एक अहम पल है। तुम्हारे सामने दो रास्ते हैं। या तो तुम गुलाम बन जाओ और जो कुछ लोग कहते हैं उसे अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ मानते चले जाओ, या फिर अपनी मर्ज़ी से चलो और एक अच्छे फ़िल्मकार बन जाओ। आज तुमको फ़ैसला करना है'*। हम एक साथ अंदर गए और मैंने ज़ोर दिया कि पंजाबी बोल रख लिए जाएं। आज मैं एक फ़िल्म-मेकर बन गया हूं। वो गाना बहुत बड़ा हिट हुआ और लोगों को आसानी से समझ में आ गया।

तनूजा चंद्रा

बख़्शी साहब को मैंने हमेशा ख़ामोश देखा। मुझे यक़ीन है कि वो अपने दोस्तों और परिवार के बीच ज़रूर बोलते होंगे। पर ज़्यादातर वो ख़ामोश रहते थे। मिसाल के लिए अगर मैं उनसे पूछती, 'बख़्शी साहब आप अपने बारे में कुछ बताइये'। तो शायद उनका जवाब होता, 'बताने के लिए क्या है?' हालांकि उनका जीवन कामयाबी से भरा रहा, शानदार रहा। एक गीतकार के रूप में वो शर्मीले कतई नहीं थे। उनके गीतों में दुनिया के बारे में उनके ख़्यालात नज़र आते थे। ये भी पता चलता था कि वो एक बहुत बड़े दिल के इंसान थे। उनके गाने उनके बारे में बहुत कुछ कहते हैं।

राकेश आनंद बक्शी

जब मैंने उन्हें फ़िल्म *'दुश्मन'* की कहानी सुनायी तो उन्होंने बड़ी ख़ामोशी से सुनी। उसके बाद उन्होंने कहा कि इस फ़िल्म के लिए गाने लिखना बहुत ही मुश्किल है। उन्हें सोचने के लिए एक दो दिन चाहिए। मैं पहली बार फ़िल्म निर्देशित कर रही थी, बहुत घबराहट और असुरक्षा मन में समायी थी, इसलिए मुझे लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें कहानी पसंद नहीं आयी हो और वो एक तरह से गाने लिखने से इंकार कर रहे हों। उनके जैसे महान गीतकार के लिए किसी भी फ़िल्म के गाने लिखना भला कैसे कठिन हो सकता है। मुझे लगा कि वो बड़े शालीन तरीक़े से मुझे मना कर रहे हैं। वरना गाने लिखना उनके लिए कौन-सा मुश्किल काम है। मुझे तो निराशा-सी महसूस हो रही थी। पर अगले दिन उन्होंने मुझे फ़ोन किया और कहा कि मेरे घर आ जाओ। जब हम मिले तो उन्होंने मुझे ये मुखड़ा सुनाया–*'चिट्ठी ना कोई संदेश, जाने वो कौन-सा देश, जहां तुम चले गये'*। उन्होंने कहा, *'ये गाना वहां आयेगा, जहां उसकी बहन की मौत हो जाती है। अब मुझे लगता है कि मैं तुम्हारी फ़िल्म के साथ इंसाफ़ कर सकता हूं। मैं इसके गाने लिखूंगा'।*

गुलज़ार

'बख़्शी साहब के बारे में एक तो ये है कि जिस आदमी ने इस दौर में हिंदी के गाने रेडियो पर सुने और अगर वो आनंद बख़्शी को नहीं जानता हो तो मेरे ख्याल से वो हिंदी सिनेमा से नावाकिफ़ है। वो हिंदी सिनेमा के गीतों का इतना ज़रूरी नाम बन चुके हैं कि उनके बिना आप हिंदी सिनेमा की कल्पना भी नहीं कर सकते। तो इस तरह से बख़्शी साहब हिंदी फ़िल्म-संगीत संसार का एक पूरा युग हैं। अगर आप बहुत पहले चले जायें तो डी. एन. मधोक, या केदार शर्मा उनके नाम आयेंगे। लेकिन ये जो पिछला दौर था, बीसवीं सदी के आख़िर की तरफ़–जहां से आनंद बख़्शी सिनेमा में आये, साठ के दशक से–वो सदी के आख़िरी तक आनंद बख़्शी ही थे। ये नहीं हो सकता कि आप विविध भारती रेडियो का प्रोग्राम सुनें और उसमें आनंद बख़्शी या लता मंगेशकर का ज़िक्र ना हो। ये ऐसे दो महान कलाकार हैं, जो एक मिसाल बन चुके हैं। हिंदी सिनेमाई गीतों की दुनिया में ये मील का पत्थर हैं। बख़्शी साहब की यही हैसियत है हिंदी सिनेमा में।

बख़्शी जी एक शायर थे। ख़ुशमिज़ाज और ख़ुश-दिल इंसान। हमारे यहां उर्दू शायर की इमेज ऐसी थी कि दाढ़ी बढ़ी और पाजामा संभाले हुए बेचारा शायर कीचड़ से गुज़र रहा है। कुछ ऐसी इमेज थी लोगों के दिमाग़ में। लेकिन बख़्शी साहब इस तरह नहीं थे। वो तो फ़ौज से आए थे। एक फ़ौजी की जो दिलदारी होती है, वो पूरी दिलदारी बख़्शी जी की शख़्सियत और गानों में नज़र आती है।

राकेश आनंद बक्शी

उनकी लिखाई की जहां तक बात है, फ़लसफ़े को उन्हें फ़लसफ़े की तरह कभी नहीं कहा। दुनिया के बारे में, जो उनके ख़्यालात थे–वो थे। पर उन्होंने इसकी और कोई परिभाषा गढ़ने की कोशिश नहीं की। ना ही उन्होंने उसमें बौद्धिकता लाने की कोशिश की। जवां दिल और ख़ुश दिल और उसी तरह हंस के बात की और बड़ी से बड़ी बात की। उनका गाना *'चिंगारी कोई भड़के तो सावन उसे बुझाए, सावन जो आग लगाए उसे कौन बुझाए'* कमाल है। ये मेरी अपनी निजी राय है पर मेरे हिसाब से 'अमर प्रेम' उनका कमाल का अलबम था। पंजाबी लोक-संगीत को उनकी ज़ुबां पर रहता था, गाते भी बहुत अच्छा थे वो और सुर में थे। लता जी के साथ भी गाया है। आनंद बख़्शी को एक लफ़्ज़ में डिफ़ाइन करना हो तो मैं सिर्फ कहूंगा–'चीयर्स'।

बख़्शी जी ने अपनी गीतकारी को कभी एक शायर या एक बौद्धिक इंसान की तरह नहीं बरता। उन्होंने अपने करियर में सिर्फ इस बात पर ज़ोर दिया कि फ़िल्म की मांग क्या है। लेकिन ये नहीं कि वो शायर नहीं थे। बिल्कुल एक शायर थे। उर्दू मैग्ज़ीनों में उनकी नज़्में छपी हैं। मैंने पढ़ी हैं। उन्होंने अपनी गीतकारी को कभी शायरी की तरह नहीं लिया, एक पेशे की तरह नहीं लिया। पर गाने लिखना भी शायरी का एक हिस्सा है। वो चाहते थे कि वो एक फ़िल्मी गीतकार बनें। और फ़िल्मों की ज़मीन पर वो सबसे कामयाब साबित हुए।

समीर अंजान

उस मुकम्मल फ़नकार के नाम चाँद अलफ़ाज़ जिसे मैं अपना मुर्शीद मानता हूं....
रूहानी महके हुए वो ख़्यालात कहां से लायें
लफ़्ज़ तो ढूंढ लें वो जज़्बात कहां से लायें
जो अपने फ़न के जादू से सबको हंसाता और रुलाता है
ऐसा कलम का जादूगर दुनिया में बस एक बार आता है...

इरशाद कामिल

बख़्शी जी के तीन गाने मेरे बड़े पसंदीदा गाने हैं:

'कुछ तो लोग कहेंगे'...ये सिर्फ़ एक गीत के बोल नहीं हैं, बल्कि चार शब्दों में बायां हमारे समाज का बहुत बड़ा और बहुत ज़रूरी सच है। आनंद बख़्शी साहब के गीतों की यही ख़ासियत रहती है। वो अपने गानों में मिठास बरक़रार रखते हुए समाज का बड़े से बड़ा सच कह जाते हैं। *'अमर प्रेम'* फ़िल्म का ये गाना अपने सच की वजह से अमर हुआ है और गाने में आये ऐतिहासिक हवाले, जैसे कि *"सीता भी यहां बदनाम हुई"* इस कड़वे सच को और ज़्यादा मज़बूती देते हैं। ये गीत मुझे साहिर साहब की भी याद दिलाता है। वो *'जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहां हैं'* में लिखते हैं–*'यहां पीर भी आ चुके हैं, जवां भी/ तनो-मंद बेटे भी अब्बा मियां भी'*। उसी दर्जे

राकेश आनंद बख़्शी

पर जाकर बख़्शी साहब लिखते हैं—*'हमको जो ताने देते हैं, हम खोए हैं इन रंगरेलियों में/ हमने उनको भी छुप-छुप के आते देखा इन गलियों में'*। *'कुछ तो लोग कहेंगे'* गीत कभी पुराना नहीं हो सकता।

"गाड़ी बुला रही है" सीधे और सरल तरीक़े से गाड़ी की नहीं बल्कि ज़िंदगी की बात है। यहां भी बख़्शी साहब ने बेहद बड़ा फ़लसफ़ा चार आसान लफ़्ज़ों में कह दिया है और वो है—*'चलना ही ज़िंदगी है' /* मुश्किल विचार को आसान बनाना और आसान बात को आम लोगों की ज़ुबां पर चढ़ा देना एक हुनर है जो अज़ीमक़द गीतकार बख़्शी साहब के तकरीबन हर गीत में है। इस गीत में उन्होंने खेल-खेल में कह दिया—*'सीखो सबक़ जवानो'*। मैं इस बात को *'एकला चलो रे'* के बरअक्स रखके भी देखता हूं। बल्कि इसमें सिर्फ 'चलना' है। और छोटी लेकिन और भी बड़ी बात।

'यहां मैं अजनबी हूं' बख़्शी साहब का लिखा मेरा पसंदीदा गाना है। जिस ख़ूबसूरती से उन्होंने गाने में दो वर्गों और दो समाजों का ज़िक्र किया है वो इतना आसान नहीं था जितना इस गाने में लगता है। भारतीय और पश्चिमी सभ्यता के बीच की खींचातानी, निम्न-मध्य वर्ग और ऊंचे वर्ग के बीच की खाई, मासूमियत और चालाकी के बीच का अंदर, क्या नहीं है इस गाने में। और इन सबके साथ मुहब्बत में अधिकार की बात—*'तेरी बांहों में देखूं सनम ग़ैरों की बांहें, मैं लाऊंगा कहां से, भला ऐसी निगाहें'*। शिकवा, शिकायत और गिले की बात, सिर्फ यही गाना नहीं बल्कि *'जब-जब फूल खिले'* के सब गाने ही तराशे हुए नगीने हैं।

अमिताभ भट्टाचार्य

बचपन से बख़्शी साहबके लिखे गाने ज़ुबानी याद हैं, क्योंकि वो सुनने और गाने में हमेशा आसान लगे। लेकिन जब उनके जैसा लिखने की नाकाम कोशिश की तब पता चला कि कितना मुश्किल काम आसानी से कर गए बख़्शी साहब। मैं बख़्शी साहब को सलाम करता हूं।

मनोज मुंतशिर

लिखने का जो जादू है, उसका कमाल तो यही है कि आप किस तरह से लोगों को जोड़ लेते हैं। बख़्शी साहब ने बड़ी बारीकी से लोगों के अवचेतन मन को जोड़ने की कला में महारत हासिल कर ली थी। यही वजह है कि उनके कई गाने मुहावरों और कहावतों का रूप ले चुके हैं। ऐसा ही एक गाना है *'यहां मैं अजनबी हूं'*। आप सामाजिक रूप से चाहे जितने सक्रिय हों, जितने स्वीकृत हों, किसी ना किसी मोड़ पर आपको लगता है कि हम एक अजनबी दुनिया में रह रहे हैं। मुझे तो अकसर ही ऐसा लगता है। हर थोड़े दिनों में मुझे इस तरह के 'बैराग' का अहसास होता है। सारी अच्छी और बुरी चीज़ों से निकलकर भाग जाने का मन करता है। मुझे लगता

राकेश आनंद बक्शी

है कि मैं इन सब चीज़ों से उकता गया हूं। जब ऐसा होता है तो मेरी ज़ुबां पर सहज ही ये गाना चढ़ जाता है–*'यहां मैं अजनबी हूं'*। एक अजनबी दुनिया में आने का ये अहसास तब और परेशान करता था जब मैं उत्तर प्रदेश के एक छोटे से क़स्बे गौरीगंज से मुंबई आया था। मैं बंबई शहर से तालमेल नहीं बैठा पा रहा था, जो तेज़ रफ़्तार में बस दौड़ा चला जा रहा था। कहीं रूकना नहीं, कहीं थमना नहीं। किसी के पास किसी के लिए वक़्त नहीं। गौरीगंज में सब लोग सबको जानते थे। मुंबई में एक ही इमारत में लेने वाले लोग एक दूसरे के बारे में कुछ नहीं जानते। मुझे याद है कि मुंबई के एक झोपड़ीनुमा घर में मैं बार-बार ये गाना सुना करता था–*'कहां शामो-सहर ये, कहां दिन-रात मेरे/ बहुत रुसवा हुए हैं, यहां जज़्बात मेरे/ नयी तहज़ीब है ये, नया है ये ज़माना/ मगर मैं आदमी हूं वही सदियों पुराना'*।

भारतीय समाज में पाँच हज़ार साल पुराने नैतिक मूल्य चल रहे हैं, हमारे कंधों पर तथाकथित संस्कारों का बोझ लदा है। बख़्शी साहब के भीतर वो साहस था कि उन्होंने इसके ख़िलाफ़ विद्रोह किया। उनकी एक सीधी जो इस दिखावटी समाज की पोल–सादी लाइन है-खोलती है–*'कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना'*। अगर मुझे भारत के दस चोटी के हिंदी फ़िल्मी गाने चुनने को कहा जायेगा तो शायद ये गाना मैं सबसे ऊपर रखूंगा।

'कुछ रीत जगत की ऐसी है
हर एक सुबह की शाम हुई
तू कौन है तेरा नाम है क्या?
सीता भी यहां बदनाम हुई'

जिस किसी ने भी ये गाना सुना होगा या इसके बारे में सोचा होगा, उसने फ़ौरन ही दुनिया की परवाह करना बंद कर दिया होगा। ये गाना फ़िल्मी गीतकारी की एक शानदार मिसाल भी है। फ़िल्म 'अमर प्रेम' के बीस सीन भी राजेश खन्ना के किरदार को नहीं समझा सकते थे जितना ये गाना इतने कम शब्दों में समझा देता है। बख़्शी साहब क्यों फ़िल्म संसार के चोटी के गीतकार हैं इसकी एक मिसाल है फ़िल्म 'डर' का गाना। शाहरुख़ ख़ान का किरदार उस समय की फ़िल्मों के हिसाब से बहुत पेचीदा और परतों वाला है। मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर इस फ़िल्म में 'तू है मेरी किरण' गाना नहीं होता तो शायद जनता यश चोपड़ा के नकारात्मक हीरो के फ़लसफ़े और इस फ़िल्म की कहानी को ठीक से समझ ही नहीं पाती। उन्होंने डेढ़ सौ पेज की स्क्रिप्ट को दस सीधे-सादे शब्दों में कितनी आसानी से पिरो दिया है, *'तू हां कर या ना कर, तू है मेरी किरण'*।

मुझे याद है कि मैं निर्देशक मिलन लूथरिया के लिए फ़िल्म 'बादशाहो' के गाने लिख रहा था। हर बार जब हम गानों की सिटिंग करते तो वो हमेशा यही कहते कि वो बख़्शी साहब को

राकेश आनंद बख़्शी

कितना मिस करते हैं। वो मेरे करियर की सबसे चुनौती भरी फ़िल्म थी, क्योंकि मैं ऐसे निर्देशक के लिए लिख रहा था जिसे बख़्शी साहब के गानों की आदत थी। भारत शायरों और लेखकों की धरती है। आने वाले समय में और भी लेखक और शायर आयेंगे पर बख़्शी साहब को हमेशा उसी शिद्दत से याद किया जाता रहेगा। हमेशा हमेशा। ...

विजय अकेला

आनंद बख़्शी आज के ज़माने के मीर तकी मीर, नज़ीर अकबराबादी और कबीर दास हैं।

यूं तो सबने गीत लिखे, सबमें ही औक़ात थी
बख़्शी में एक बात है और बख़्शी में एक बात थी।

आनंद बख़्शी की आज सन में प्रासंगिकता 2021

1. 'बख़्शी के गाने हमारी जिस्मानी और रूहानी सेहत सुधारते हैं' – विजय अकेला (शायर, रेडियो होस्ट, गीतकार)

बख़्शी आज भी उतने ही सामयिक हैं जितने बीस साल पहले थे, जब वो हयात थे और गीत लिख रहे थे।

व वो अपने गीतों को देसी मुहावरेदार बोली का पैरहन देते थे जिनमें ना सिर्फ उस दौर के बल्कि हर दौर के आख़िरी सच की परख होती थी। मुश्किल लफ़्ज़ों को उन्होंने अदब की गहरी साज़िश समझा और इसलिए हमेशा आसान लफ़्ज़ों पहचान कर अपने गीतों की क़िस्मत संवारा किए।

बख़्शी को समझना है तो ज़रा मुंबई की सरहद के पार निकल जाईये। आपको लगेगा कि आज आनंद बख़्शी कल से भी ज़्यादा लोकप्रिय और आदरणीय हैं। गीतों में छुपे बख़्शी के शानदार ख़्यालों को अपना ख़्याल कहने वाले निर्देशक कहां गये आज? जो फ़िल्म-लेखक कहते थे कि 'अगर हमारी सिचुएशन अच्छी नहीं होतीं तो बख़्शी इतना अच्छा थोड़ी लिखते'... वो सिचुएशन कहां ग़र्क हो गयीं आज? बख़्शी के जाते ही उनके क़िले ध्वस्त क्यों हो गए आज? बख़्शी को सम्मान देने से कतराने वाले हमारे इस देश में आज जब भी कोई आंदोलन होता है तो *'कर्मा'* का *'दिल दिया है जां भी देंगे ऐ वतन तेरे लिए'* ही बजाया जाता है। आज भी बर्थडे पार्टी पर *'फ़र्ज़'* का ही गीत बजाया जाता है–*'बार बार दिन ये आये, बार-बार दिल ये गाये'*। *'चिट्ठी ना कोई संदेश, जाने वो कौन-सा देश जहां तुम चले गये'* आज भी सबसे ज़्यादा बजने वाले गीतों में से एक है, वो जगजीत सिंह का नहीं आनंद बख़्शी का लिखा हुआ गीत है।

राकेश आनंद बक्शी

हिंदुस्तान की सबसे ज़्यादा चलने वाली फ़िल्में *'शोले'* और *'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे'* आनंद बख़्शी के गानों से ही रोशन हैं ना?

2. ***मिस्टर 2021 आज भी प्रासंगिक हैं आनंद बख़्शी- डॉ. राजीव विजयकर (पत्रकार, लेखक, फ़िल्म इतिहासकार)***

आनंद बख़्शी आज भी प्रासंगिक हैं हर साल उनकी :प्रासंगिकता का ग्राफ ऊँचा होता चला जाता है और हमें ये अहसास होता है कि वो महज़ एक गीतकार नहीं थे, वो एक चिंतक और दार्शनिक भी थे। वो हमेशा अपने वर्तमान में जीते थे। उनके विचार और उनकी कलम हमेशा वक़्त के साथ बने रहे। ये गाने समय और काल के परे होते चले गये। पाँच दशकों तक सक्रिय बख़्शी साहब ने अलग अलग पीढ़ी के संगीतकारों के साथ काम किया। इसलिए आज आप बख़्शी के गाने सुन रहे हैं और भविष्य में भी यक़ीनन सुनते चले जायेंगे।

बख़्शी जी के बेमिसाल गानों में शामिल हैं*'गाड़ी बुला रही है', 'परदेसियों से ना अंखियां मिलाना', 'चिंगारी कोई भड़के', 'दिल क्या करे जब किसी को किसी से प्यार हो जाये', 'घर आजा परदेसी' और 'रूप तेरा मस्ताना'*। वो किसी एक संगीतकार, निर्देशक या कलाकार तक ही सीमित नहीं रहे। उनकी कही एक बात हमेशा याद की जायेगी, वो हमेशा कहते थे–*'कहानी सुनकर ही दिमाग़ चलता है'*। संगीतकार आनंद बख़्शी ने एक बार कहा था–*'बाप रे, क्या चीज़ हैं बख़्शी साहब'*। इसकी वजह ये है कि बख़्शी जी गानों के दो या तीन अंतरे नहीं लिखते थे। उन्होंने जो छह हज़ार गाने लिखे हैं, उनमें कम से कम छह या आठ अंतरे लिखे हैं। इसके बाद संगीतकार और निर्देशक का काम होता था इनमें से अच्छे अंतरे चुन लेना। ज़रा सोचिए कि हमने क्या 'मिस' किया। हमने उनके बस बीस प्रतिशत काम को ही जाना। बाक़ी अस्सी प्रतिशत तो छिपा ही रह गया।

आप समझ सकते हैं कि उन्होंने जो भी अंतरे लिखे, वो कहानी और सिचुएशन को ध्यान में रखते हुए ही लिखे। उनमें से कई अंतरों ने तो गानों के फ़िल्माये जाने में भी स्क्रिप्ट से भी ज़्यादा मदद की। इसकी एक मिसाल है अपने ज़माने की सुपरहिट फ़िल्म *'स्वर्ग से सुंदर'* का शीर्षक गीत, जिसमें उन्होंने हीरो के लिए लिखा–*'अपना घर है स्वर्ग से सुंदर'*। इसके जवाब में हीरोइन गाती है–*'स्वर्ग में कहां से आये मच्छर'?* इसके जवाब में हीरो कहता है–*'अरे मच्छर भी आशिक़ हैं तुम पर क्या करूं!"*

वो इतना ज़्यादा सोचते थे। अपनी ज़िंदगी के आख़िरी सालों में उन्होंने मुझसे कहा था, आजकल ग़मज़दा या उदास गाने तो जैसे ग़ायब ही हो गए हैं। और इसकी वजह बताते हुए उन्होंने कहा

राकेश आनंद बख़्शी

था कि उदास गाना गाते हुए आप डांस नहीं कर सकते ना। इसलिए आजकल ऐसे गाने नहीं बनते। इसके बाद वो पल भर के लिए रूके और उनकी आंखों में एक शरारती चमक थी जब उन्होंने बोला, 'या शायद आजकल लोग उतने उदास नहीं रहते'।

अलग-अलग दौर में अलग अलग कलाकार और चलन आए पर इसके बावजूद बख़्शी हमेशा चलते रहे। उन्होंने ऐसे संगीतकारों के साथ काम किया, जिनका करियर पचास के दशक के आखिर में बुझता चला गया। वहां से शुरू करके वो इक्कीसवीं सदी तक आये। वो जानते थे कि उन्हें एकदम नयी पीढ़ी के लिए लिखना है। पर ये उन्हें बोझिल नहीं लगा, हमेशा उन्होंने मज़े से लिखा।

सन 2000 में उन्होंने हिमेश रेशमिया के साथ एक फ़िल्म साइन की, जो शुरू नहीं हो सकी। नदीम-श्रवण, जतिन-ललित, शिव-हरि, विजू शाह, एम. एम. क्रीम, ए. आर. रहमान, दिलीप सेन-समीर सेन, साजिद-वाजिद, नुसरत फ़तेह अली ख़ां और यहां तक कि नीरज-उत्तांक जैसे संगीतकारों के साथ भी उन्होंने काम किया। राजीव राय से लेकर आदित्य चोपड़ा और मिलन लूथरिया, जॉय ऑगस्टीन से लेकर अन्य निर्देशकों तक जाने कितने निर्देशकों के साथ उन्होंने काम किया। इनमें से कई तो ऐसे थे जो तब पैदा भी नहीं हुए थे जब बख़्शी साहब ने फ़िल्मों में गाने लिखना शुरू किए थे।

मुझे ये कहते हुए ज़रा भी हिचक नहीं है कि आज जिस तरह पुराने गानों को नया रूप दिया जा रहा है, उसमें बख़्शी साहब के सबसे ज़्यादा गाने हैं। ये दिखाता है कि फ़िल्म संसार में रचनात्मकता की कितनी कमी है और असली गानों में कितना दम है कि आज भी उनके ज़रिए हिट होने की तमन्ना पूरी की जा रही है। फिर चाहे *'मैं जट यमला पगला दीवाना' हो या फिर 'मेहबूबा मेहबूबा', 'ओ मेरी मेहबूबा' हो या 'आ देखें ज़रा', 'दम मारो दम' हो या फिर 'पैसा ये पैसा', 'तेरा बीमार मेरा दिल' हो या फिर 'एक हसीना थी,' 'तैयब अली जान का दुश्मन', 'तू चीज़ बड़ी है मस्त-मस्त', 'आँख मारे', 'टिप-टिप बरसा पानी'* जैसे अनगिनत गाने, जो दिखाते हैं कि एकदम नयी से नयी पीढ़ी तक भी बख़्शी के गाने असर रखते हैं। भले ही उन्हें रूप बदलकर क्यों ना पेश किया जाए।

राहुल देव बर्मन के गानों को ज़्यादा से ज़्यादा पेश करने का जो अभियान आजकल चल रहा है, उसमें लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के गाने कड़ी टक्कर दे रहे हैं। कमाल की बात ये है कि बख़्शी ने दोनों संगीतकारों के साथ ज़्यादा से ज़्यादा हिट गाने दिये हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि कोई भी गीत हिट या अमर ऐसे ही नहीं बन जाता। उसके पीछे वजह होती है।

पुरानी पीढ़ी ने आनंद बख़्शी के शब्दों का जादू पहले ही देखा और सुना है। उन्हें ये अच्छी तरह पता है कि बख़्शी साहब का लिखा कोई हल्का-फुल्का मज़ेदार गाना भी अपने भीतर गहरे

राकेश आनंद बख़्शी

विचार छिपाए होता है। वो अपने किरदारों और सिचुएशन के साथ बड़ी गहराई से जुड़ा होता है। जैसे फ़िल्म नास्तिक का गाना *'आज का ये दिन कल बन जायेगा कल/ पीछे मुड़के ना देख, प्यारे आगे चल'*। बख़्शी के गानों ने हमें 'आज' में जीना सिखाया है। समय के साथ जीते हुए ख़ुशी को चुनना सिखाया है। फ़िल्म *'अमृत'* का उनका बेमिसाल गाना याद कीजिए–*'दुनिया में कितना ग़म है/ मेरा ग़म कितना कम है/ लोगों का ग़म देखा तो मैं/ अपना ग़म भूल गया'*। जब तक फिल्म-संगीत रहेगा, बख़्शी जी प्रासंगिक बने रहेंगे। बल्कि मैं तो कहूंगा कि बख़्शी साहब की वजह से फ़िल्म संगीत हर दौर में कायम रहेगा।

3. ***सिचुएशन के उस्ताद- मानेक प्रेमचंद (लेखक और फ़िल्म इतिहासकार)***

हमें ये सोचकर हैरत होती है कि हमारा मन कैसे काम करता है। ख़ासतौर पर किसी के साथ जुड़कर। मैं बंबई में रहता हूं, ये कमाल का शहर है। पर इसकी एक कमी है। यहां हर सड़क और चौराहे पर आपको भिखारी मिल जायेंगे। जब भी मैं इन भिखारियों को देखता हूं तो मुझे एक मशहूर चुटकुला याद आ जाता है। ये चुटकुला अकसर लोग एक-दूसरे को सुनाते हैं। और इसके बाद मुस्कुराते हुए मुझे याद आती है बेमिसाल गीतकार आनंद बख़्शी की। आपने ये चुटकुला पहले भी सुना होगा पर यहां मैं आपको एक बार और सुना देता हूं और साथ में ये भी बताता हूं कि मुझे इसके साथ आनंद बख़्शी क्यों याद आ जाते हैं।

एक भिखारी एक भीड़ भरी सड़क पर भीख मांग रहा था। रास्ते से गुज़रते हुए एक व्यक्ति ने उससे पूछा कि उसे कितने पैसे चाहिए। भिखारी ने कहा कि उसे बीस रूपए मिल जायें तो बड़ा अच्छा रहेगा। उस व्यक्ति ने पूछा कि तुम्हें बीस रूपए किसलिए चाहिए, इसीलिए ना ताकि तुम बीड़ी-सिगरेट या ड्रग्स ख़रीद सको। भिखारी ने जवाब दिया, साहब मैं ये सब चीज़ें नहीं लेता। आदमी बोला, तो फिर शराब ज़रूर पीते होगे? भिखारी ने जवाब दिया, नहीं साहब शराब भी नहीं पीता। मैं तो बस किसी तरह पेट भरने और गुज़ारा करने की कोशिश कर रहा हूं। मैं शरीफ़ आदमी हूं। ये सब मैं नहीं करता। तब उस व्यक्ति ने कहा कि ठीक है। एक बात सुनो। मैं तुम्हें बीस रूपए नहीं दूंगा, इसकी बजाय मैं तुम्हें सौ रूपए दूंगा। पर इसके लिए तुम्हें मेरे साथ मेरे घर चलना होगा। पास में ही है मेरा घर। भिखारी राज़ी हो गया। उस व्यक्ति ने दरवाज़े पर घंटी का बटन दबाया। उसकी पत्नी ने दरवाज़ा खोला। उसने पत्नी से कहा, देखो ये है एक शरीफ़ आदमी, इसे इसलिए भीख मांगना पड़ रहा है क्योंकि ये ना तो शराब पीता है ना बीड़ी-सिगरेट। और तुम हो कि इन चीज़ों का हमेशा विरोध करती हो। उस आदमी ने भिखारी को पैसे दिये और दरवाज़ा बंद करते हुए अपनी पत्नी से बोला, देखा जो लोग इतनी उबाऊ और मशीनी ज़िंदगी जीते हैं, उनका ये हाल होता है।

इस चुटकुले के बाद मेरी कल्पना मुझे बख़्शी साहब की तरफ़ ले जाती है। कैसे बताता हूं।

राकेश आनंद बख्शी

पत्नी से अपनी बात कहने के बाद वो शराब की बोतल खोलता है और पीना शुरू कर देता है। नशा चढ़ते ही वो इस मौक़े के लिए एकदम दुरूस्त गाना गाता है–*'शरीफ़ों का ज़माने में अजी बस हाल वो देखा कि शराफ़त छोड़ दी मैंने'*। लता मंगेशकर ने ये गाना लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के संगीत निर्देशन में फ़िल्म 'शराफ़त' के लिए सन 1970 में गाया था। गीतकार थे आनंद बख़्शी।

चलिए मज़ाक अपनी जगह है पर यहां मैं ये बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूं कि बख़्शी साहब कोई आम गीतकार नहीं थे। उनके गाने फ़िल्म की सिचुएशन में गहराई तक पिरोए हुए होते थे।

सन 1972 में फ़िल्म 'ज़िंदगी ज़िंदगी' में उन्होंने लिखा–*'तू ने हमें क्या दिया री ज़िंदगी'*। इसे किशोर कुमार ने गाया, संगीतकार थे सचिन देव बर्मन। यहां गीतकार ने ज़िंदगी का एक रूपक गढ़ा है और उससे तमाम शिकायतें की हैं। फ़िल्म में देब मुखर्जी एक मरीज़ हैं। वो एक जनरल वॉर्ड में बिस्तर पर पड़े ये गाना गा रहे हैं। कैमेरा फ़रीदा जलाल, वहीदा रहमान, सुनील दत्त और दूसरे तमाम मरीज़ों को भी दिखाता है, ये सभी लोग वैसे हालात में हैं जिनकी बात गाने में की जा रह है। अपनी अपनी बदनसीबी और तकलीफ़ों से लड़ते हुए।

आनंद बख़्शी कुछ बेमिसाल क़व्वालियों के लिए भी याद किए जायेंगे। जैसे 'जब से तुम्हें देखा है' (1963) में उन्होंने मर्दों और औरतों का मुक़ाबला करवा दिया। शम्मी कपूर और शशि कपूर के साथ मर्दों की टोली गाती है--*'तुम्हें हुस्न देके ख़ुदा ने सितमगर बनाया'*। पर मर्दों को ये लाइन भारी पड़ जाती है। जब श्यामा और कुमकुम के साथ औरतों की टोली पैना जवाब देते हुए कहती है–*'चलो इसी बहाने तुम्हें ख़ुदा याद आया जी आया'*। इस गाने को गाया मोहम्मद रफ़ी, मन्ना डे, लता मंगेशकर और आशा भोसले ने। और संगीतकार थे दत्ताराम।

आनंद बख़्शी ने कई ऐसे गाने लिखे जो सिचुएशन पर एकदम सही बैठते हैं जैसे कि *'हमें क्या जो हरसूं उजाले हुए हैं' (रफ़ी/जी. एस. कोहली/ नमस्ते जी/ 1965), 'सावन का महीना, पवन करे सोर' (मुकेश, लता/ लक्ष्मी-प्यारे/ मिलन/1967), 'काहे को रोए' (सचिन देव बर्मन/ आराधना/1969), 'खिलौना जानकर तुम तो मेरा दिल तोड़ जाते हो' (रफ़ी/ लक्ष्मी-प्यारे/ खिलौना/ 1970), 'मुहब्बत के सुहाने दिन' (रफ़ी/ कल्याणजी-आनंदजी/ मर्यादा/ 1971), 'मार दिया जाये या छोड़ दिया जाए' (लता/ लक्ष्मी-प्यारे/ मेरा गांव मेरा देश/ 1971)* और *'मुझको हुई ना ख़बर' (आशा भोसले/ उत्तम सिंह/ दिल तो पागल है/1997)*

पर मुझे लगता है कि आनंद बख़्शी के सबसे अच्छे गाने सन 1971 में 'अमर प्रेम' में आए जिसमें राहुल देव बर्मन का संगीत था। *'कुछ तो लोग कहेंगे'* गाने में राजेश खन्ना शर्मिला

राकेश आनंद बख़्शी

टैगोर को समझाने की बहुत कोशिश कर रहे हैं। शर्मिला एक वेश्या हैं और अपने हालात के जाल में फंसी हैं। यहां आनंद बख़्शी के बोल राहत की एक ज़बर्दस्त फुहार लेकर आते हैं, पर इस गाने में उन्होंने कई तथ्य उजागर किए हैं। उन्होंने रामायण से भी मिसाल ली है और ऐसे सत्य गाने में पिरो दिये हैं जो केवल कहानी के लिए ही मुफ़ीद नहीं हैं बल्कि हम सबकी ज़िंदगी के लिए भी एकदम माकूल हैं। हम सब अपनी सलीब ढोते हैं, अपने हालात पर रोते हैं और हम सब प्रेरणा और ऊर्जा खोजते रहते हैं–ताकि किसी तरह हम ज़िंदा रहें और अपना सफ़र तय करते रहें।

कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना
छोड़ो बेकार की बातों में, कहीं बीत ना जाये रैना।।
कुछ रीत जगह की ऐसी है हर एक सुबह की शाम हुई
तू कौन है तेरा नाम है क्या, सीता भी यहां बदनाम हुई
फिर क्यों संसार की बातों से, भीग गये तेरे नैना।।

ये बख़्शी साहब के सुनहरे अल्फ़ाज़ हैं।
शुक्रिया आनंद बख़्शी जी। आपने अपनी बेमिसाल कविता से हमारी ज़िंदगी को समृद्ध बनाया है।

राकेश आनंद बक्शी

उपसंहार 1

जब आनंद बख़्शी सन 1998 में 68 साल के हुए तो उनके दोस्त और इंडियन एक्सप्रेस के पत्रकार अली पीटर जॉन ने उनसे एक बातचीत की। वो दो पेशेवर लोग तो थे ही, दो दोस्त भी थे। यहां हम इस मार्मिक और प्रासंगिक बातचीत का एक अंश प्रस्तुत कर रहे हैं।

***

'मैं वक़्त का मुरीद हूं'

मैं पहले भी एक आम आदमी था और आज भी हूं। समय के उतार-चढ़ाव में तैरता हुआ। उसके साथ क़दम-ताल करता हुआ। कभी-कभी समय से आगे दौड़ने की कोशिश करता हूं। पर कल्पना में ही ऐसा हो पाता है। अपनी कल्पना में ही सही, समय से आगे दौड़ने में बड़ा मज़ा आता है। किसी के लिए भी संभव नहीं कि वो समय से आगे भाग सके, भले ही आने वाले तीन खरब सालों में इंसान कितना भी होशियार हो जाये, वो समय को पछाड़ नहीं सकेगा। समय एक ऐसा दुर्लभ पंछी है जो किसी इंसान के हाथ नहीं लग सकता है। फिर चाहे उसने कितनी ही तरक्की क्यों ना कर ली हो।

मैं समय की बात क्यों कर रहा हूं? इसकी बहुत सारी वजहें हैं, चलिए एक एक करके इनकी बात करते हैं।

आज नये साल के पहले दिन इंसान के बनाए समय के कैलेंडर के मुताबिक़ दुनिया 1998 साल पुरानी हो चुकी है। समय हम सबके हाथ से निकलता चला गया है। मैंने समय को भागते देखा है। इतनी तेज़ कि मैं समझ ही ना सका। मैंने समय को समझने के लिए अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश की, समय भागता है और इतनी तेज़ी से भागता है कि ना तो कोई मानव ना ही महामानव या सुपर-सॉनिक जेट इसका मुक़ाबला कर पाया है। इंसान ने इतनी तरक्की कर ली है कि वो अपने कुछ चालाक खेलों से ईश्वर तक को चुनौती देने के लिए तैयार रहता है। पर वो समय को अपनी गिरफ़्त में नहीं ले पाया है। इंसान तो ये भी महसूस नहीं कर पाया कि समय के साथ चलना कैसा महसूस होता है। इतने सारे वैज्ञानिक, इंजीनियर, अंतरिक्ष-विज्ञानी और अन्य लोगों ने समय की शक्ति को चुनौती तो दी पर वो कोशिश करते रह गये। मैं ऐसा नहीं करना चाहता।

मुझे नहीं पता कि दुनिया बने कितने अरब साल बीत चुके हैं, पर सच ये है कि बहुत सारा वक़्त बीत चुका है। समय को कोई भी ताक़त नहीं रोक पायी, ना कोई सम्राट, ना कोई संस्कृति या सभ्यता।

शायद समय ईश्वर से भी ज़्यादा मायावी है। या शायद समय ही ईश्वर है। जब हम अकेले होते हैं तो समय और ईश्वर हमसे बातें करते हैं।

मैं समय के बारे में कुछ ज़्यादा ही सोच रहा हूं क्योंकि मुझे हैरत हो रही है कि मैंने अपनी ज़िंदगी के 68 साल पूरे कर लिए हैं। मैंने ज़िंदगी में तरह-तरह के उतार-चढ़ाव देखे हैं। अपने परिवार में, सेहत में और काम में। हम सब अपनी सलीब ढो रहे हैं। मैं इसका अपवाद नहीं हूं। बीते बीस सालों में मैं अपनी सेहत को लेकर काफ़ी जूझता रहा हूं, हालांकि इसके बावजूद मैं आगे बढ़ता चला गया और अच्छे से अच्छा काम करता चला गया। मुझे ये लगता है कि मैं अपनी उम्मीद से ज़्यादा जी चुका हूं। मैं समझता हूं कि अब तक मुझे इस दुनिया से चले जाना चाहिए था। पर मायावी समय ने शायद मेरे बारे में कुछ और सोच रखा है। समय हर इंसान के लिए कुछ ना कुछ तय करके रखता है। पर हमें पता नहीं चलता। समय, जो हम सबकी ज़िंदगी को तय करता है–हमें आगे बढ़ते हुए देखना पड़ता है कि समय ने हमारे लिए कौन-सा रास्ता तैयार किया है। मुझे समझ आ गया है कि समय या वक़्त ने मेरे लिए आगे भी कुछ तय कर रखा है। उसके बाद मैं उस पार चला जाऊंगा, जहां समय कोई मायने नहीं रखता। एक जगह जहां आप समय के साथ एक हो जाते हैं।

मुझे ये स्वीकार करना ही होगा कि वक़्त ने मेरा बड़ा साथ दिया है। उसने मेरा बड़ा भला किया है। इसलिए आज मैं वक़्त को लेकर फ़लसफ़ाई बातें कर रहा हूं। मैं 68 बरस का हो चुका हूं और वक़्त का बहुत शुक्रगुज़ार हूं कि उसने मुझे इतनी मोहलत दी कि मैं उसका शुक्रिया अदा कर सकूं। मैं ये स्वीकार करना चाहता हूं कि मैंने अपनी ज़िंदगी के हर लम्हे का लुत्फ़ उठाया है, अपने परिवार के साथ, अपने सुनने वालों के साथ, उनके साथ जो काम के दौरान मेरे साथी थे, जिनके लिए मैंने काम किया, उनके साथ भी जिनसे मैं कभी नहीं मिला, पर जिन्हें मैंने अपने अवचेतन मन के ज़रिये सुना। वो लोग जो मेरी अपनी दुनिया के थे या मेरी छोटी-सी दुनिया के पार के थे। मुझे बहुत कुछ हासिल हुआ। बहुत सारी ख़ुशनसीबी, आर्शीवाद और तोहफ़े। अब अगर वक़्त मुझे उस पार ले भी जाता है तो मुझे कोई अफ़सोस नहीं होगा। जब भी इस रहस्यमय, शानदार और मायावी समय ने मेरा वक़्त मुक़र्रर किया होगा, मैं चला जाऊंगा।

मैं एक पल के लिए रूकता हूं और वक़्त के साथ अपने रिश्ते के बारे में सोचता हूं। बहुत कम उम्र में मुझे शायरी से लगाव हो गया था। गाने से भी, जो कुछ लिखता उसकी धुनें बनाता। शायरी मेरा जुनून बन गया। पर लेखनी में इतनी ताक़त नहीं थी कि मेरी रोज़ी-रोटी बन सके। इसलिए मैं बंटवारे के पहले रॉयल इंडियन नेवी में शामिल हो गया। वहां मेरे बड़े भले अँग्रेज़ कमांडिंग ऑफ़ीसर थे ए. सी. मूर, जिन्होंने मुझे सन 1944 में करांची बंदरगाह पर नेवी में हुई बग़ावत में हिस्सा लेते पकड़ा। और मुझ पर रहम करते हुए वे बोले, 'तुम तो एक छोटे बच्चे हो, इस उम्र में तुम्हें जेल नहीं जाना चाहिए। अगर मैं तुम्हें जेल में डाल भी देता हूं तो हमेशा

के लिए तुम्हारी ज़िंदगी तबाह हो सकती है। इसलिए मैं तुम्हें नौकरी से निकाल रहा हूं। अपने साथियों के साथ ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ साज़िश करने के जुर्म में गिरफ़्तार नहीं कर रहा'।

बंटवारे के बाद मैं भारतीय फौज में शामिल हो गया। हम रिफ़्यूजी की तरह रह रहे थे। मेरा परिवार दिल्ली और लखनऊ के बीच बंट गया था। मैंने एक आम सिपाही की तरह फ़ौज जॉइन की। ऊपर वाला जानता है कि मैं दुश्मन की गोली का निशाना भी बन सकता था क्योंकि मैं आगे चलकर पैदल सेना का हिस्सा बन गया था। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मैंने वक़्त को फ़ैसले लेने दिया।

वक़्त ने मेरे लिए फ़ैसले किए। मैंने फौज छोड़ी और मुंबई आ गया। मुझे ये पता चला था कि यहां फ़िल्मी दुनिया की वजह से कलम के सहारे गुज़ारा करने की गुंजाइश थी। यहां कविता भी जी सकती थी और कवि भी। मैंने कभी ख़ुद को महान कवि नहीं समझा। मैं तो बस फ़िल्मी गीतकार रहा। मेरे दिल में जो कुछ उमड़ता था मैं उसे काग़ज़ पर उतार देता था। दोस्त उसे कविता कहते थे। मेरे हितैषियों ने मुझसे कहा कि मैं सचमुच शायर हूं। मुझे उनकी बातों पर यक़ीन नहीं था। मैं अपनी कविताएं सुनाता रहा, ताकि लोग मेरा हौसला बढ़ाएं, मुझे ताक़त दें और मेरी कविताओं को ख़रीद लें। इस तरह मैं अपना और अपने परिवार का पेट भर सकूं। बंटवारे के दौरान हम अपना शानदार घर उस तरफ़ छोड़ आए और रातोंरात रिफ़्यूजी बन गये। हमारा एक बड़ा संयुक्त परिवार था जिसके लिए खाने और रहने का इंतज़ाम हमें करना था।

जब मैं सन 1947 से सन 1956 तक फ़ौज में था तो मुझे पता ही नहीं था कि अपने लिखे शब्दों, विचारों और अपने मन में घुमड़ने वाली बातों के सहारे भी ज़िंदगी गुज़ारा चलाया जा सकता है। बंबई... ख़ासतौर पर फ़िल्म उद्योग ने साठ के दशक के आख़िर में मुझे ये अहसास दिलवाया कि मैं जिस तरह लिखता हूं, मेरी इस शायरी और मेरे गानों का यहां अच्छा भविष्य है। मैं जानता था कि मैं ना तो मिर्ज़ा ग़ालिब हूं ना ही मीर ना साहिर लुधियानवी, मैं तो राजेंद्र कृशन तक नहीं हूं। पर मेरे कुछ दोस्त थे, जैसे मेरे उस्ताद बिस्मिल सईदी, आगे चलकर मेरे टिकिट कलेक्टर दोस्त उस्ताद चित्तर मल स्वरूप और फ़ौज के मेरे दोस्त और अफ़सर– जिन्होंने कहा कि मेरे भीतर एक संपूर्ण गीतकार बनने के सारे गुण मौजूद हैं। मैं एक शायर को जानता था जिसने फ़िल्मों में गाने लिखे थे। मैं जानता था कि एक शायर या गीतकार फ़िल्मों में लेखकों, निर्देशकों या निर्माताओं की रची परिस्थितियों के हिसाब से गाने लिखता है। इनमें कभी-कभी अनपढ़ फ़ाइनेन्सरों और वितरकों की भी दख़लअंदाज़ी होती है जिन्हें शायरी-वायरी से कोई लेना-देना नहीं होता पर हमेशा वो यही कहते हैं, 'फ़िल्म में कुछ अच्छा गाना-वाना हो जाना चाहिए नहीं तो क्या मज़ा है फ़िल्म बनाने में'। गाने इन लोगों के लिए बहुत मायने रखते थे और आम जनता के लिए भी। जब मैं बच्चा था तो गाने मेरे लिए भी मायने रखते थे। वक़्त ने तब से मेरे सामने गाने ला दिये थे जब मैं एकदम बच्चा था। मुझे याद है कि मेरी मां मित्रा (सुमित्रा) मेरे लिए गाती थीं। जब मैं पाँच या छह साल का था तो वो चल

राकेश आनंद बक्शी

बसीं, पर वो गाने हमेशा मेरे साथ बने रहे। मैंने मां-बच्चे के जो भी गाने लिखे, वो सभी उन्हीं की याद में लिखे।

वक़्त ने मेरा बड़ा साथ दिया और इस तरह मुझे अपनी ज़िंदगी की सबसे बड़ी फ़िल्म मिली। हालांकि वो फ़िल्म बॉक्स ऑफिस पर नहीं चली, पर वो मेरी पहली फ़िल्म बन गयी: 'भला आदमी' जिसे एक भले आदमी स्टार अभिनेता भगवान दादा ने बनाया था। वक़्त ने मुझ पर बड़ी मेहरबानी की जब मुझे एक और फ़िल्म के पूरे गाने लिखने का मौक़ा मिला–*'जब जब फूल खिले'*। इसके गाने जब पूरे भारत में हिट हुए तो आनंद बख़्शी रातोंरात 'बिकने वाली चीज़' बन गये। हालांकि मेरे गाने बिकाऊ थे पर मैं नहीं। और इस रवैये की वजह से मुझे बहुत इज़्ज़त भी मिली। *'जब जब फूल खिले'* ने सपनों की रंगीन दुनिया के दरवाज़े मेरे लिए खोल दिए। पहली बार मैं अच्छी तरह अपने परिवार को पाल-पोस पा रहा था। मेरा बुनियादी मक़सद यही था। मुझे हमेशा लगता रहा कि तकरीबन एक दशक तक फ़िल्मों में कामयाबी के अपने जुनून के लिए मैंने अपने परिवार के साथ बड़ी नाइंसाफ़ी की। संघर्ष के उन दिनों में मेरी जेब में पैसे तक नहीं होते थे। जल्दी ही बहुत सारे निर्माता-निर्देशक मेरे पास आने शुरू हो गये। ख़ासतौर पर *'मिलन'* के बाद। *'मिलन'* ने मेरी तकदीर के दरवाज़े खोल दिए।

इसके बाद *फ़र्ज़, आराधना, दो रास्ते* एक के बाद एक सुपर हिट होती चली गयीं। पाँच साल के अंदर मेरे पास काम की भरमार हो गयी और पैसा भी आ गया। ये सब ऊपर वाले की कृपा से हुआ था। आज मैं अड़सठ साल का होने के बावजूद मैं किशोर उम्र के बच्चों के लिए रूमानी गाने लिख रहा हूं। वो भी चोटी के निर्माता, निर्देशकों और कलाकारों के लिए। मैं मैट्रिक तक पढ़ा एक सिपाही था जिसकी तनख़्वाह 75 रूपए महीने थे। एक रिफ़्यूजी था, जिसके पास घर तक नहीं था। मैं रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम में तीन साल तक रहा। आज मेरे पास दो घर हैं। वक़्त ने मेरे ऊपर बड़ी मेहरबानी की है। अब फ़िल्मकार चाहते हैं कि मैं उनकी तमाम फ़िल्मों के लिए गाने लिखूं, छोटी-बड़ी फ़िल्में, सामाजिक फ़िल्में, थ्रिलर फ़िल्में, किसी भी विषय पर बनी फ़िल्में, हर उम्र के लोगों के लिए बनी फ़िल्में। किसी भी मज़हब के लोगों के लिए बनी फ़िल्में। सबके गाने मुझसे लिखवाना चाहते हैं।

उन्हें लगा कि मैं कर सकता हूं और मैं करता भी रहा। इससे ज़्यादा मुझे क्या चाहिए? मुझे गाने लिखने का एक और मौक़ा चाहिए। मेरी कोशिशें कामयाब होती चली गयीं। हालांकि मैंने कामयाबी के लिए काम नहीं किया। मैं तो बस अपने परिवार को पालने के लिए काम करता रहा। अपनी पहली संतान, मेरी बेटी पप्पी के लिए, अपने बेटे गोगी के लिए। कमला के लिए- जो मेरा सबसे बड़ा संबल रही।

उस वक़्त भी मुझे पता था कि मैं किसी भी मौक़े के लिए गाने लिख सकता हूं। मेरे भीतर जो आत्मविश्वास था वो दूसरों को दिखाने के लिए था। अपने भीतर हमेशा मुझे किसी भी

राकेश आनंद बख्शी

गाने को लिखने से पहले घबराहट-सी महसूस होती थी। पर ये बात मैंने किसी को नहीं बताई। मैं किशोरावस्था से ही बेबसी महसूस करता रहा हूं। साठ के दशक के आख़िर में कामयाबी हासिल करने के बाद ये और ज़्यादा हुआ। मैं लगातार ज़्यादा कामयाब और लोकप्रिय गीतकार बनता चला गया। जब मुझे एक तुक्का कहा गया तो मेरा दिल बहुत दुखता था, पर मैंने किसी के बारे में बुरा नहीं कहा। मैंने हमेशा वो कहा, जो मैं हमेशा महसूस करता रहा–कि मैं कवि नहीं हूं। मैं तो बस एक गीतकार हूं। मैंने ये पक्का इरादा कर लिया था कि मैं अपनी प्रतिभा या कामयाबी का दिखावा नहीं करूंगा, क्योंकि मेरे भीतर से ये आवाज़ उठती थी कि वक़्त और ऊपर वाले के इस तोहफ़े का ग़लत इस्तेमाल किया–तो ये मेरे हाथ से निकल जायेगा। मैं ख़त्म हो जाऊंगा। ऊपर वाले के आर्शीवाद या तोहफ़े का कभी ग़लत इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। विनम्र रहना चाहिए। *'क्योंकि हमने देखे हैं बड़े बड़े, गिर जाते हैं खड़े-खड़े'।* मैंने ऐसे लोगों को देखा है और उनके बारे में सुना भी है, बहुत ही कामयाब, ज़बर्दस्त प्रतिभा के धनी लोग रातों-रात नाकाम हो गए क्योंकि काम और कामयाबी को लेकर उनका रवैया ठीक नहीं था, क्योंकि वक़्त उनकी दहलीज़ पर जो लेकर आया था, उसकी उन्होंने इज़्ज़त नहीं की।

अपनी कामयाबी के फ़ौरन बाद मुझे ये समझ में आ गया था कि वक़्त ख़ासतौर पर मुझ पर काफ़ी मेहरबान रहा है। कामयाबी भी मुझ पर काफ़ी मेहरबान रही है। मैं उन तमाम संगीतकारों, अभिनेताओं, निर्माताओं, गायकों के लिए गाने लिख रहा था जिनके नाम मैंने तब सुने थे जब मैं स्कूल में पढ़ता था। उसके बाद जब नेवी में कैडेट था और फिर जब मैं भारतीय फ़ौज में सिपाही बन गया था। मेरा रैंक इतना कम था कि अगर मैं मैट्रिक तक पढ़ाई के दम पर फ़ौज से रिटायर होता तो ज़्यादा से ज़्यादा सूबेदार बन पाता। मेरे सामने मौक़ों की भरमार थी और मैंने एक को भी अपने हाथ से जाने नहीं दिया। मुझे पता था कि मैं जो काम कर रहा हूं उसमें पैसे भी मिलेंगे पर मुझे पता था कि पैसों से भी ज़्यादा एक चीज़ मायने रखती है। मैं चाहता था कि लोग मुझे एक गीतकार के तौर पर गंभीरता से लें। मैं कतई शब्दों का बाज़ीगर नहीं कहलाना चाहता था। मैं एक ऐसा गीतकार कहलाना चाहता था जिसे सीधे-सादे-सरल शब्द हर इंसान के दिल को छू जाते हों, औरतों और बच्चों तक के। ऊपर वाले और वक़्त की मेहरबानी की वजह से मैं और मेरी कलम कामयाब होती गयी। मैं शुक्रगुज़ार हूं अपने निर्देशकों, गायकों, संगीतकारों और कहानीकारों का। इसके अलावा क़िस्मत और वक़्त का, जिसने मेरा साथ दिया।

मैं चोटी पर था, वहां कुछ और लोग भी थे। साठ, सत्तर, अस्सी, नब्बे के दशकों में ये सिलसिला कायम रहा। जी हां नब्बे के दशक तक मैं पहुंच गया था। मुझे नहीं पता कि ये कैसे हुआ? *'दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगे'* और *'दिल तो पागल है'* बहुत बड़ी म्यूज़िकल हिट हो गयीं। इस दौरान लगातार मुझे कड़े मुक़ाबले का सामना करना पड़ा। जब से मैं अपनी क़लम और डायरी के साथ यहां आया, तब से लगातार बहुत बेहतरीन गीतकार सक्रिय रहे हैं। मुझसे कहीं बेहतर गीतकार यहां मौजूद रहे हैं। बहुत सारे बेहतरीन शायर रहे हैं जिन्होंने गीतकार बनने की कोशिश की। कुछ सिर्फ़ पैसों के लिए आए थे जो सबकी ज़िंदगी की ज़रूरत है। मुझे अपने

राकेश आनंद बक्शी

परिवार की सुरक्षा के लिए पैसा चाहिए था। एक गीतकार के रूप में वो इससे कहीं ज़्यादा कामयाबी के हक़दार थे। शायद क़िस्मत और वक़्त ने उनका साथ नहीं दिया। इसलिए कामयाबी उनके हाथ नहीं लगी।

आज बहुत सारे युवा गीतकार मौजूद हैं, जो बेहतर कविता भले नहीं लिख रहे हों, पर पैसे अच्छे बना रहे हैं। ये बात मैं पूरे होशो-हवास में कह रहा हूं। आज गीतकारों के लिए बहुत बढ़िया समय है। तरह तरह के ढेर सारे गाने लिखे जा रहे हैं, फ़िल्में बनायी जा रही हैं। इन्हें आज के गीतकार लिख रहे हैं। तरह-तरह के गीतकार। जो भी व्यक्ति फ़िल्मों में गाने लिखता है, चाहे वो कविता हो या नहीं हो, उसे ऐसे गाने लिखने पड़ते हैं जो पूरे भारत के लोगों को पसंद आयें। लोगों के पास वक़्त नहीं है कि वो गाने में आए शब्दों के मायने डिक्शनरी में देखें या किसी से पूछें। अगर आप गीतकार बनना चाहते हैं तो आपको सीधे-सरल शब्दों का इस्तेमाल करना होगा। हां अगर कहानी की मांग है तो फिर आप ललित शब्दों का इस्तेमाल भी कर सकते हैं।

मैं आनंद बख़्शी, नंद, कहना चाहता हूं कि मैंने हर तरह के गाने लिखे हैं। जैसा कि मैं हमेशा कहता हूं–एक गीतकार को पटकथा कि किसी भी मोड़ के लिए गाने लिखने को तैयार रहना चाहिए। पर मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि मैं अश्लील ना होने पाऊं। कहीं ऐसा ना हो कि परिवार के साथ मेरे गाने ना सुने जा सकें। मैंने भी शरारती गाने लिखे हैं, बदमाशी वाले गाने, पर अड़सठ बरस की उम्र में अब मुझे नहीं लगता कि मैं ऐसे गाने लिख सकूंगा जिन्हें पूरा परिवार साथ ना सुन सके। मेरे अपने बच्चे मेरे बैरोमीटर हैं।

मुझे तब बहुत अच्छा लगता है जब आदित्य चोपड़ा या तनूजा चंद्रा जैसे युवा निर्देशक मेरे पास आते हैं और मेरे लिए गाने लिखने को कहते हैं। मैं इन्हें नहीं जानता। मुझे नहीं पता कि इनका दिमाग़ कैसे काम करता है। ये किस तरह की फ़िल्में बनाना चाहते हैं। पर इन नये फ़िल्मकारों में कुछ तो ख़ास है। इन्हें पता है कि ये क्या चाहते हैं और मेरे जैसे सीनियर लेखक से ये अपने मन के मुताबिक़ काम करवा लेते हैं। वो आनंद बख़्शी की इज़्ज़त तो करते हैं, पर चाहते हैं कि आनंद बख़्शी अपने बेहतरीन गाने लिखें। इस पेशे में उम्र कोई मायने नहीं रखती। प्रतिभा, अनुशासन, वक़्त की पाबंदी, कड़ी मेहनत और साफ़ दिल मायने रखता है। नये निर्देशक बदलाव का सुझाव देते हैं और मैं उनकी बात मान लेता हूं क्योंकि ये उनकी पीढ़ी है। हम बुज़ुर्ग लेखकों को उनकी बात सुननी ही होगी वरना हमारी बात कोई नहीं सुनेगा। सीधी सी बात है। वक़्त के साथ चलना ज़रूरी है। इसीलिए मैं वक़्त का मुरीद हूं। और वक़्त जब भी जो कुछ मेरे दरवाज़े पर लेकर आया है, मैंने उसकी इज्जत की है। फ़ौज छोड़ने के दिनों से आज तक।

एक ऐसी चीज़ है जिसके लिए मैं महान गीतकार साहिर लुधियानवी और लेखकों सलीम-जावेद का शुक्रगुज़ार रहूंगा। साहिर साहब हमेशा कहते थे कि वो संगीतकार की फ़ीस से एक रूपया

राकेश आनंद बक्शी

ज़्यादा लेंगे। उन्होंने गीतकारों को अपनी क़ीमत समझाई। हम गीतकारों को अपने योगदान पर गर्व होना चाहिए। ऐसा नहीं है कि हमारा काम उस टीम के किसी भी सदस्य से कमतर है जिसके साथ हम काम करते हैं। मैं सलीम-जावेद का शुक्रगुज़ार हूं क्योंकि उन जैसे लेखकों ने हम जैसे गीतकारों और शायरों को स्टार बना दिया, उन्होंने हमें और हमारे निर्देशकों को कमाल के और प्रेरणा देने वाले स्क्रीन-प्ले लिखकर दिए। उन्होंने साबित कर दिया कि अगर आपका काम अच्छा है तो आप मनचाहे पैसों की मांग कर सकते हैं, काम पर गर्व कर सकते हैं। किसी को इस पर ऐतराज़ नहीं होगा। अगर आप अपने हक़ के लिए खड़े होते हैं तो आपकी कलाकारी, प्रतिभा, आपके निर्माता और दुनिया आपकी बात मानती है।

एक सर्वे के मुताबिक़ मैंने क़रीब तीस सालों में चार हज़ार गाने लिखे हैं। मुझे पक्का नहीं पता। पर मैं समझता हूं कि मैं ख़ुशनसीब हूं कि मैं आज भी लिख रहा हूं। इनमें से कई गाने नयी पीढ़ी के लिए हैं।

हालांकि मैं तब तक लिखूंगा जब तक वक़्त मुझे इजाज़त देगा। मेरा और वक़्त का जनम-जनम का साथ है। मैं वक़्त का मुरीद हूं। इस दुनिया से उस दुनिया में जाने तक, वक़्त और मेरा साथ रहेगा। और वहां मैं परियों के लिए गीत लिखूंगा। ज़रूर लिखूंगा, क्योंकि गीत लिखना मेरा जनम-जनम का धर्म है। इंसानों के लिए नहीं तो परियों और फ़रिश्तों के लिए ही सही मेरा धर्म और कर्म। अगर वक़्त मेरा साथ वहां भी दे जहां वो मुझे ले चलेगा इस दुनिया में पार।

- आनंद प्रकाश बख़्शी

राकेश आनंद बक्शी

उपसंहार 2

ज़िंदा रहती हैं मोहब्बतें....

यूनुस ख़ान
(अनुवादक, लेखक, कॉलमिस्ट और रेडियो उद्‌घोषक)

बचपन के दिन थे वो। पापा नौकरी के सिलसिले में जबलपुर में थे...और हम भोपाल में। हमें पता था कि वो वीक-एंड पर किसी तरह आयेंगे और फिर तीन चार हफ़्ते के लिए चले जायेंगे। उन दिनों विविध-भारती पर जब एक गाना बजता, तो आंखें भीग जातीं। कुछ महीनों की बात थी, पर पापा के बिना रहना बड़ा तकलीफ़देह होता था। गाना था–'सात समंदर पार से गुड़ियों के बाज़ार से/ अच्छी-सी गुड़िया लाना/ गुड़िया चाहे ना लाना/ पप्पा जल्दी आ जाना'। तब पता नहीं था कि ये गीत आनंद बख़्शी ने लिखा है या फिर लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल इसके संगीतकार हैं। तब तो ये भी पता नहीं था कि जिस विविध भारती से ये गाना बज रहा है, भविष्य में वही मेरी कर्मभूमि बनने वाली है।

बख़्शी साहब से अनायास ही नाता जुड़ गया था, जो आगे चलकर और पुख़्ता होता चला गया। हाई-स्कूल के दिनों में पुराने फ़िल्मी-गानों से गहरा नाता जुड़ा। अच्छा सुनना और समझना शुरू किया और तब कुछ ऐसे गाने थे जो ज़ेहन पर छा जाते थे। उन्हीं दिनों में ये समझ में आया कि एक अच्छा गीतकार वो होता है जिसके गीत कहानी में गहरे धंसे होने हों, किरदारों की ज़बान में हों, आसान हों पर इसके बावजूद फ़िल्म से इतर उनका अपना एक आज़ाद सफ़र भी हो। तब कई गीतकारों से बहुत गहरा नाता जुड़ता चला गया।

उन्हीं दिनों में ये भी समझ में आया कि कुछ पंक्तियों में गीतकार किस तरह ज़िंदगी का फ़लसफ़ा भर देता है और तब से आगे तक के सफ़र में कई ऐसी लाइनें थीं जो हमारे लिए मुहावरे जैसी बन गयीं। जैसे–

'दोस्तों शक दोस्ती का दुश्मन है/ अपने दिल में इसे घर बनाने न दो'
'आदमी मुसाफ़िर है, आता है जाता है/ आते-जाते रस्ते में यादें छोड़ जाता है'

'कुछ रीत जगत की ऐसी है, हर एक सुबह की शाम हुई/ तू कौन है, तेरा नाम है क्या, सीता भी यहाँ बदनाम हुई'

‘अपनी तक़दीर से कौन लड़े/ पनघट पे प्यासे लोग खड़े’

‘जगत मुसाफ़िर खाना, लगा है आना-जाना’

‘ये जीवन है, इस जीवन का यही है, यही है रंग रूप’

‘मुसाफिर जाने वाले नहीं फिर आने वाले/ चलो एक दूसरे को करें रब के हवाले’

‘जिसने हमें मिलाया, जिसने जुदा किया, उस वक़्त, उस घड़ी, उस डगर को सलाम’

‘दिये जलते हैं, फूल खिलते हैं/बड़ी मुश्किल से मगर, दुनिया में दोस्त मिलते हैं’

ज़रा सोचिए कि सिर्फ़ कुछ ही पंक्तियां हैं। ये वो लाइनें हैं जिनका इस्तेमाल आम आदमी अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में करता है। कभी कोई दोस्त किसी से कहता है–*‘बड़ी मुश्किल से मगर, दुनिया में दोस्त मिलते हैं’*। कभी कोई किसी परेशान शख़्स से कहता है–*‘कुछ तो लोग कहेंगे लोगों का काम है कहना’*। यक़ीन मानिए ये बख़्शी साहब के गानों की यात्रा है जो फ़िल्म की कहानी, पटकथा और गाने के समानांतर आम ज़िंदगी के भीतर चलती रहती है। हर इंसान के लिए बख़्शी साहब के गानों के मायने अलग होते हैं। बख़्शी साहब की गीत-यात्रा में ऐसे इतने सूत्र या जीवन-दर्शन मिल जायेंगे कि इन पर अलग से किताब लिखी जा सकती है, बल्कि राकेश आनंद बख़्शी और मैंने इसकी योजना भी बना रखी है और हम जल्दी ही इस पर काम करेंगे। इस तरह आनंद बख़्शी से एक अलग तरह का लगाव बना रहा। जब मैं मुंबई आया तो बख़्शी साहब जीवित थे....पर संकोचवश कभी उनसे ना संपर्क किया और न मिलने और बात करने की कोई कोशिश....और बख़्शी साहब संसार से चले भी गए। रेडियो पर हमने उनकी याद में ट्रिब्यूट प्रोग्राम किया और उन्हें आख़िरी विदाई दी। बख़्शी साहब के साथ जो एक रिश्ता छात्र-जीवन से ही जुड़ गया था उसी की वजह से मैंने इस किताब के अनुवाद का काम अपने हाथ में लिया। मुझे पूरा अंदाज़ा था कि ये कोई आसान काम नहीं होगा। मुझे अपनी पेशेवर और पारिवारिक ज़िंदगी से वक़्त चुराना होगा और लगातार लिखना होगा। पर इस सफ़र में बख़्शी जी को जिस तरह क़रीब से जानने का मौक़ा मिलने वाला था, मैं उसके लिए पूरी तरह से तैयार था।

सच तो ये है कि जीते-जी बख़्शी साहब की गीत-यात्रा का सही आकलन नहीं हुआ। बख़्शी की गीत-यात्रा में आपको जीवन के ऐसे सूत्र मिल जायेंगे जिनकी जड़ें कभी विज्ञान में तो कभी दर्शन में बड़ी गहराई तक फैली हुई हैं। रेडियो का आविष्कार मार्कोनी ने किया था और उनका मानना था कि ध्वनि या आवाज़ें कभी ख़त्म नहीं होतीं। वो हमेशा कायम रहती हैं। वो ये मानते थे कि उनकी तीव्रता कम हो जाती है, इतनी कम कि हम उन्हें पहचान नहीं पाते। हालांकि इस बात पर वैज्ञानिक समुदाय में काफ़ी रिसर्च और बहस हुई है। क्या आपको पता है कि इस वैज्ञानिक धारणा की छाया बख़्शी साहब के एक गाने में नज़र आती है। वो लिखते हैं, *‘आदमी जो सुनता है, आदमी जो कहता है, ज़िंदगी भर वो सदाएं पीछा करती हैं’*। ये गाना भारतीय संस्कृति के ‘कर्म और फल की अवधारणा’ का भी प्रतिरूप है। हमारे यहां माना जाता

राकेश आनंद बख़्शी

है कि हमारे कर्म ही हमारे जीवन की दिशा निर्धारित करते हैं और हमें अपने अच्छे या बुरे कर्मों का प्रतिफल इसी जीवन में भुगतना पड़ता है। अब ज़रा बख़्शी साहब के इसी गाने की अगली लाइन देखिए, *'आदमी जो देता है, आदमी जो लेता है, ज़िंदगी भर वो दुआएं पीछा करती हैं'।*

चूंकि बात भारतीय संस्कृति की हो रही है तो ज़रा देखें कि किस तरह बख़्शी साहब के गानों में हमारे दर्शन के सूत्र समाए हुए हैं। बृहदारण्यक उपनिषद, यजुर्वेद में कहा गया है–*'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूं*। छांदोग्य उपनिषद, सामवेद में अंकित है, *'तत्वमसि'। अर्थात् वह ब्रह्म तू है*। माण्डूक्य उपनिषद, अथर्ववेद में अंकित है, *'अयम आत्मा ब्रह्म' यानी यह आत्मा ब्रह्म है।* अब ज़रा बख्शी साहब का फ़िल्म 'धुन' के लिए लिखा एक अनमोल गीत सुनिए–*'मैं आत्मा तू परमात्मा'।* इसे उस्ताद मेहदी हसन और तलत अज़ीज़ ने गाया है। इस गाने की पंक्तियां ये रहीं-

मैं आत्मा तू परमात्मा
मैं तेरा रंग-रूप, मैं तेरी छांव-धूप
मैं बिलकुल तेरे साथ तू बिलकुल मेरे साथ।।
मैं एक बूंद तू सात समंदर
तू पर्बत-पर्बत मैं कंकर
मैं निर्बल तू बलवान
पर मैं तेरी पहचान
मैं बिलकुल तेरे साथ तू बिलकुल मेरे साथ।।

काश ये फ़िल्म रिलीज़ हो पाती और ये गाना उतनी दूर तक पहुंचता, जहां तक जाने का ये हक़दार था। मैं जब भी इसे सुनता या सुनाता हूं तो जाने क्यों आंखें भर आती हैं। यहां इस बात पर ग़ौर करना भी बहुत ज़रूरी है कि फ़िलॉसफ़ी की गूढ़ बातों को बख़्शी साहब ने बहुत आसान शब्दों में गानों में पिरो दिया है, जिसके लिए विद्वान कई पन्ने रंग देते हैं और संत घंटों इस पर प्रवचन दिया करते हैं। ये हैरत की बात भी है और यही बख़्शी साहब की ख़ासियत भी है। गूढ़ बातों को इतने आसान शब्दों में कह देना कि आप अश-अश कर उठें।

बख़्शी साहब भले ये कहते रहे हों कि वो आम आदमी हैं, वो कवि नहीं हैं, वो फ़िल्मी-गीतकार हैं, पर उनके भीतर एक बहुत गंभीर व्यक्ति छिपा था, जिसे ज़िंदगी की ठोकरों ने दुनिया की समझ सिखायी थी। यही वजह है कि बख़्शी के गानों में जगह जगह अलफ़ाज़ के ऐसे जुगनू

राकेश आनंद बक्शी

हैं जो अपनी चमक बिखेरते रहते हैं।
वो फ़िल्म 'अनुरोध' के गाने में लिखते हैं:

हँस कर ज़िंदा रहना पड़ता है
अपना दुःख खुद सहना पड़ता है
रस्ता चाहे कितना लम्बा हो
दरिया को तो बहना पड़ता है
तुम हो एक अकेले तो रुक मत जाओ चल निकलो
रस्ते में कोई साथी तुम्हारा मिल जायेगा
तुम बेसहारा हो तो किसी का सहारा बनो...

बख़्शी जी के मन पर विभाजन की ख़रोंच बड़ी गहरी लगी थी। वो 'पिंडी दी मिट्टी' को कभी भूल नहीं सके। रावलपिंडी से जुदा होना उनके लिए अपनी मां से जुदा होने से भी ज़्यादा दुःख भरा था। अपनी मिट्टी से टूटकर प्यार करने की ललक उनके गानों में कई-कई जगह नज़र आती हैं। 'ग़दर-एक प्रेमकथा' के गाने में वो लिखते हैं–

'मुसाफ़िर जाने वाले, नहीं फिर आने वाले/
चलो एक दूसरे को करें रब दे हवाले'

'ओ दरिया दे पाणियां/ ये मौजां फिर ना आणियां/
याद आयेगी बस जाने वालों की कहानियां'।

'ना जाने क्या छूट रहा है, दिल में बस कुछ टूट रहा है
होठों पर नहीं कोई कहानी, फिर भी आँख में आ गया पानी'

अपनी सरज़मीं से बिछुड़ने की जो विकलता है, वो शायद सबसे ज़्यादा इसी फ़िल्मी गाने में समायी हुई है। बख़्शी साहब का मन उन गानों में बहुत रमा और भीगा है जहां लोग परदेस जा बसे हैं और उनके अपने उन्हें शिद्दत से याद कर रहे हैं, उन्हें पुकार रहे हैं-

कोयल कूके हूक उठाये/ यादों की बंदूक चलाए
बाग़ों में झूलों के मौसम वापस आये रे
इस गांव की अनपढ़ मिट्टी
पढ़ नहीं सकती तेरी चिट्ठी
ये मिट्टी तू आकर चूमे

राकेश आनंद बक्शी

तो इस धरती का दिल झूमे
माना तेरे हैं कुछ सपने
पर हम तो हैं तेरे अपने
भूलने वाले हमको तेरी याद सताए रे।।
घर आ जा परदेसी तेरा देस बुलाए रे।।

ये 'दिल वाले दुल्हनिया ले जायेंगे' का वो गाना है जिसे इसका हक़ नहीं मिला, क्योंकि इसके रूमानी गानों की शोहरत बहुत बहुत ज़्यादा हो गयी। बख़्शी साहब के ऐसे गानों का सरताज है फ़िल्म 'नाम' का गाना -'चिट्ठी आई है'। ये एक गाना नहीं बल्कि एक मिथक, एक मुहावरा, जज़्बात की एक टोकरी बन चुका है। यूं तो इस गाने की एक-एक लाइन लोगों को रुलाती रही है पर इस अंतरे को देखिए जिसमें परदेसियों के दूर जा बसने की पीड़ा कितनी गहरी समायी हुई है--

तेरे बिन जब आई दीवाली, दीप नहीं दिल जले हैं ख़ाली
तेरे बिन जब आई होली, पिचकारी से छूटी गोली
पीपल सूना पनघट सूना घर शमशान का बना नमूना
फसल कटी आई बैसाखी, तेरा आना रह गया बाक़ी
चिट्ठी आई है...।।

बिछड़ने का दर्द बख़्शी साहब के गानों में बड़ी गहराई से समाया हुआ है और शायद इसकी वजह उनका अपनी सरज़मीं से बिछड़ना तो रहा ही है, बहुत बचपन में मां को खो देना एक टीस बनकर सारी ज़िंदगी उन्हें चुभता रहा है और जब तब इस दर्द का इज़हार उनके गानों में होता रहा है। फ़िल्म 'दुश्मन' का गाना तो कोरोना के इस भयानक समय में बार-बार याद किया जा रहा है, ये ऐसा समय है जब कई लोगों ने अपने परिवार के सदस्यों को असमय खो दिया है। आखिरी वक़्त पर वो उनके साथ मौजूद तक नहीं रह पाए:

एक आह भरी होगी, हमने न सुनी होगी
जाते जाते तुमने, आवाज तो दी होगी
हर वक़्त यही है ग़म, उस वक़्त कहाँ थे हम
कहाँ तुम चले गए....

कितने ही श्रद्धांजलि संदेशों में इन दिनों मैंने इस गाने का इस्तेमाल देखा है। यहां ये महसूस करना बड़ा ज़रूरी है कि जिसने 'अपनों' को खोया है, उस 'लॉस' को स्वीकार करने की अपनी एक यात्रा होती है। मन एकदम से स्वीकार नहीं कर पाता, समय लगता है इस क्रूर

सच्चाई को स्वीकार करने में। बख़्शी जी के 'दुश्मन' के गाने समेत कई गाने ऐसे समय में मरहम का काम करते हैं। फ़िल्म 'बालिका बधु' के '*जगत मुसाफ़िरख़ाना*' जैसे गाने उन्हें कबीर की परंपरा पर ला खड़ा करते हैं।

बख़्शी साहब की एक और ख़ासियत थी। वो अपने गानों के लिए बाक़ायदा ढेर सारे अंतरे लिखते थे। इस किताब में इस बात का ज़िक्र बार-बार आता है। निर्देशक और संगीतकार उनमें से चुन लेते थे कि कौन-से अंतरे रिकॉर्ड किए जाएंगे। ज़ाहिर है कि उनका लिखा जो कुछ हमारे सामने आया है, तकरीबन उतना ही शायद हमारे सामने नहीं आ सका है। अच्छी ख़बर ये है कि राकेश जी के पास वो अंतरे बाक़ायदा मौजूद हैं। इसके अलावा उनकी वो नज़्में भी जो उन्होंने अपने शौक़ के लिए लिखी थीं। उन्हें राकेश आनंद बख़्शी मार्च 2022 में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करके दुनिया के सामने लायेंगे। तब तक उन गानों को हम देख सकते हैं जिनके उन्होंने मेल-फ़ीमेल अलग-अलग संस्करण लिखे हैं। जैसे 'मेहबूबा' का गाना 'मेरे नैना सावन भादो'। या 'जब जब फूल खिले' का गाना 'परदेसियों से ना अंखिया मिलाना' के तीन संस्करण। उन्होंने 'ग़दर-एक प्रेमकथा' में जहां 'उड़ जा काले कावां' गाने के तीन-तीन संस्करण लिख डाले थे और तीनों का अपना अलग मिज़ाज है।

एक गीतकार जब इतने लंबे समय तक सक्रिय रहे तो उसे वक़्त के मुताबिक़ बहुत बदलना पड़ता है। क्योंकि तब तक निर्देशकों, कलाकारों, संगीतकारों की कई पीढ़ियां आ चुकी होती हैं। हर पीढ़ी अपना एक मिज़ाज लेकर आती है। हर पीढ़ी अपनी भाषा भी लेकर आती है। पर इसके बावजूद बख़्शी साहब बिलकुल नये ज़माने तक लगातार ना सिर्फ लिखते रहे बल्कि हिट भी रहे। लोगों के दिलों को छूते रहे। मैंने कितने ही कॉलेज के बच्चों को इस गाने को अपने फ़ंक्शन्स में गाते और इस पर परफ़ॉर्म करते हुए देखा है और कितनी एनर्जी और कितनी सनसनी छा जाती थी माहौल पर--

इक लड़की थी दीवानी सी इक लड़के पे वो मरती थी
नज़रें झुका के शरमा के गलियों से गुजरती थी
चोरी चोरी चुपके चुपके चिट्ठियां लिखा करती थी
कुछ कहना था शायद उसको जाने किससे डरती थी

इसी फ़िल्म में उन्होंने चार ऐसी पंक्तियां लिख दी हैं जिसमें उन्होंने आज के पूरे माहौल को पिरो दिया है

दुनिया में कितनी हैं नफ़रतें
फिर भी दिलों में हैं चाहतें

राकेश आनंद बख़्शी

मर भी जाएं प्यार वाले
मिट भी जाएं यार वाले
ज़िंदा रहती हैं उनकी मोहब्बतें!

ये सही मायनों में 21 वीं सदी का गाना है। बख़्शी साहब किसी एक समय या सदी तक महदूद नहीं रहेंगे। जब तक लोग इश्क़ करते रहेंगे, जब तक अपने दिल की बात कहते रहेंगे, जब तक परिवार रहेंगे, रिश्ते रहेंगे, दुनिया की चालबाज़ियां और बदमाशियां रहेंगी तब तक बख़्शी साहब के गाने सुने और गाये जाते रहेंगे। उनकी बातें की जाती रहेंगी क्योंकि--

ये जीवन दिलजानी दरिया का है पानी
पानी तो बह जाए बाकी क्या रह जाए
यादें यादें यादें

किंवदंती थे बख़्शी....

'किंवदंती' इस शब्द का इस्तेमाल हम उन लोगों के लिए करते हैं, जिन्हें ज़माना हमेशा प्यार से याद करता है और जिनका काम कई दशकों तक कायम रहता है। इस शब्द का एक और अर्थ है, जो मैंने जाना सड़क पर बांसुरी बेचते एक मामूली आदमी से।

कुछ बरस पहले मैंने देखा एक युवक बांसुरी पर 'मेहबूबा' का गाना 'मेरे नैना सावन भादो' बजाते हुए सड़क पर बांसुरी बेच रहा है। वो मेरे घर के ठीक नीचे वाली सड़क से गुज़र रहा था। मैंने उसे आवाज़ दी और कहा कि तुम ज़रा दूसरी मंज़िल पर आ जाओ। जब वो आया तो मैंने कहा कि तुम कमाल की बांसुरी बजा रहे थे और मैं तुम्हें इनाम देना चाहता हूं। मैंने उसे ख़ुश होकर पचास रूपए दिये। वो ख़ुश हो गया और ये जानकर उसे हैरत हुई कि बदले में मैं उससे कोई बांसुरी नहीं लेना चाहता हूं। इस बीच मैंने देखा कि इसके पैरों में तो चप्पल तक नहीं है। उसने मुझे ज़ोर दिया कि मैं बांसुरी ले लूं और मैंने ले भी ली। इस तरह उसका आत्म-सम्मान भी बचा रहा। वो ईमानदारी और मेहनत से अपना गुज़ारा करने वाला बंदा था। मैंने उससे पूछा कि जो गाना तुम बजा रहे थे, क्या तुम्हें पता है कि उसके गीतकार, संगीतकार और गायक कौन हैं। उसने जवाब दिया कि उसे नहीं पता है।

मैंने उससे कहा कि अंदर आओ, मैं उसे अपने लिविंग रूम में ले आया। उसे डैडी की ट्रॉफ़ियां दिखायीं, अवॉर्ड दिखाये। मैंने डैडी का पेशेवर काम वाला फ़ोटो-अलबम खोला और दिखाया। उसे बताया कि ये राहुल देव बर्मन हैं, ये लक्ष्मी-प्यारे हैं, ये सचिन देव बर्मन हैं। इस तरह मैंने उसे तमाम लेजेन्ड लोगों के फ़ोटो दिखाये। उस बांसुरी वाले ने बताया कि उसने इनमें से किसी का भी ना तो नाम सुना था और ना ही उनकी तस्वीरें देखी थीं। उसने रेडियो पर गाना सुना और उसकी धुन कॉपी कर ली।

वो हर तस्वीर को छू-छूकर देख रहा था। फिर वही हाथ अपने दिल पर ले जाता था, मानो उन सब कलाकारों का आर्शीवाद ले रहा हो। उसको ऐसा करते देखकर मैं भावुक हो गया। मैंने उससे पूछा कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। उसने जवाब दिया, 'साहब, इन लोगों की वजह से हम तीन वक़्त की रोटी खाते हैं'।

राकेश आनंद बक्शी

मेरे पसंदीदा - राकेश आनंद बक्शी

यहां मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूं कि अगर हम आनंद बख़्शी की कहानी और उनके गानों के साथ इंसाफ़ करना चाहते हैं, वो गाने जो उन्होंने अपने साथी संगीतकारों, गायकों, निर्देशकों, अभिनेताओं और साज़िंदों के साथ तैयार किए थे- तो एक किताब से हमारा काम नहीं चल सकेगा। अगर आप बख़्शी साहब के काम का अंदाज़ा भी लगाना चाहते हैं, तो उन फ़िल्मों को दे सकते हैं जिनकी फ़ेहरिस्त मैं नीचे दे रहा हूं। उनके गाने सुन सकते हैं। बख़्शी साहब ने 630 से ज़्यादा फ़िल्मों के गाने लिखे हैं–मैंने उनमें से कुछ पसंदीदा फ़िल्में यहां चुन ली हैं। मैं इन फ़िल्मों को देखने का सुझाव आपको क्यों दे रहा हूं, इसलिए क्योंकि गीतकार का काम आपको तब अच्छी तरह समझ आता है जब आप फ़िल्म की कहानी के साथ गानों को देखते सुनते हैं। तो ये रही मेरी फ़ेहरिस्त:

सन 1959

भला आदमी, सी. आई. डी. गर्ल, एक अरमान मेरा, लाल निशान, मैंने जीना सीख लिया।

1960 का दशक

महलों के ख़्वाब, जासूस, ज़मीन के तारे, रज़िया सुल्ताना, वॉरंट, बांके सांवरिया, आये दिन बहार के, काला समुंदर, जब से तुम्हें देखा है, फूल बने अंगारे, मिस्टर एक्स इन बॉम्बे, हिमालय की गोद में, तीसरा कौन, आसरा, छोटा भाई, देवर, आमने-सामने, चंदन का पालना, नाइट इन लंदन, तक़दीर, राजा और रंक, अनजाना, आया सावन झूम के, जीने की राह, जिगरी दोस्त, महल, साजन, मेहँदी लगे मेरे हाथ, जब जब फूल खिले, मिलन, फ़र्ज़, आराधना, दो रास्ते।

1970 का दशक

आन मिलो सजना, गीत, इश्क़ पर ज़ोर नहीं, जीवन मृत्यु, कटी पतंग, अमर प्रेम, खिलौना, माइ लव, मेरे हमसफ़र, शराफ़त, दि ट्रेन, आप आए बहार आई, दुश्मन, हाथी मेरे साथी, हरे रामा रहे कृष्णा, मैं सुंदर हूं, मर्यादा, महबूब की मेहंदी, मेरा गांव मेरा देश, नया ज़माना, पराया धन, उपहार, अनुराग, अपना देश, मोम की गुड़िया, जवानी दीवानी, राजा जानी, सीता और गीता, ज़िंदगी ज़िंदगी, बॉबी, हीरा पन्ना, झील के उस पार, जुगनू, कच्चे धागे, लोफ़र, नमक हराम, मनचली, शरीफ़ बदमाश, आपकी क़सम, अजनबी, दोस्त, मजबूर, प्रेम नगर, रोटी, चुपके चुपके, जूली, प्रतिज्ञा, प्रेम कहानी, शोले, आप बीती, बालिका बधू, बारूद, बैराग, चरस, महाचोर, मेहबूबा, अमर अकबर एंथनी, अनुरोध, अपनापन, धरम-वीर, ड्रीम गर्ल, मुक्ति, यही है जिंदगी, आहुति, सत्यम शिवम् सुंदरम्, आज़ाद, दिल और दीवार, मैं तुलसी तेरे आँगन की, पति पत्नी और वो, शालीमार, गौतम गोविंदा, जुर्माना, काली घटा, मिस्टर नटवरलाल, सरगम, सुहाग, दि ग्रेट गैंबलर

राकेश आनंद बक्शी

1980 का दशक

आपके दीवाने, आशा, आसपास, अब्दुल्लाह, दोस्ताना, हम पांच, जुदाई, कर्ज़, पतिता, शान, एक दूजे के लिए, लव स्टोरी, नसीब, रॉकी, बेमिसाल, देश प्रेमी, ग़ज़ब, राजपूत, शक्ति, तेरी क़सम, विधाता, अंधा क़ानून, अर्पण, अवतार, बेताब, कुली, हीरो, लवर्स, नास्तिक, वो सात दिन, ज़रा सी जिंदगी, सोहनी महिवाल, आर-पार, मेरी जंग, युद्ध, अमृत, कर्मा, नाम, नगीना, सिंदूर, शहंशाह, चालबाज़, चांदनी, राम लखन, त्रिदेव, आवारगी, अग्निपथ।

1990 का दशक

अकेला, पति पत्नी और तवायफ़, हम, लम्हे, सौदागर, अंगार, हीर रांझा, ख़ुदा गवाह, क्षत्रिय, परंपरा, विश्वात्मा, डर, गुमराह, खलनायक, साहिबां, मोहरा, दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे, राम जाने, त्रिमूर्ति, धुन, जान, राजकुमार, तेरे मेरे सपने, आंखों में तुम हो, दीवाना मस्ताना, दिल तो पागल है, गुलाम-ए-मुस्तफ़ा, परदेस, दुश्मन, जब प्यार किसी से होता है, ज़ख़्म, आरज़ू, दिल क्या करे, कच्चे धागे, ताल, लव यू हमेशा।

2000, 2001, 2002

हद कर दी आपने, ये रास्ते हैं प्यार के, नायक, प्यार इश्क़ और मुहब्बत, राहुल, राजू चाचा, मुहब्बतें, ग़दर-एक प्रेमकथा, अशोका (एक गाना), यादें, मुझसे दोस्ती करोगे, क्रांति, कितने दूर कितने पास, ना तुम जानो ना हम, द हीरो।

2012

ये जो मुहब्बत है (एक गीत)
कुछ ऐसे गीत हैं जो अब तक प्रदर्शित या अप्रदर्शित फ़िल्मों के हैं पर रिलीज़ नहीं हुए हैं। मैंने उन्हें सुनने वालों के लिए बख़्शी साहब के यूट्यूब चैनल पर उपलब्ध करवा दिया है। अब ये गाने आप सबके हैं। जैसे महेश भट्ट की फ़िल्म धुन, हीरेन खेरा की हे राम, राज कपूर की सत्यम शिवम् सुंदरम् और कुछ अन्य फ़िल्में। फ़िल्म 'धुन' का गाना मेहंदी हसन और तलत अज़ीज़ ने गाया था। 'हे राम' में लता मंगेशकर और मोहम्मद रफ़ी के दो आध्यात्मिक गाने हैं जो उनके लिखे सबसे अच्छे गानों में से एक हैं। इनमें उनकी आत्मा की झलक दिखती है–जो हमें यानी उनके परिवार को भी देखने नहीं मिली। आप उन्हें सुनेंगे तो मुझे अच्छा लगेगा। आपको हमेशा प्रेरणा और ऊर्जा मिलती रहे।

***

राकेश आनंद बक्शी

और अब मैं आप सबसे विदा लेता हूं, डैडी के एक प्रेरणादायक विचार के साथ, जब कभी भी हालात मेरे काबू में नहीं होते, तो इसे मैं रोज़ सुबह-शाम प्रार्थना के रूप में पढ़ता हूं:

'मेरे भीतर कुछ है–जो मेरे हालात और ज़िंदगी की किसी भी परिस्थिति से बेहतर है'।

राकेश आनंद बक्शी

आनंद बख़्शी के करियर के मुख्य आकर्षण (सन 1956 से 2002)

संगीतकारों के साथ उनके आंकड़े

लक्ष्मीकांत प्यारेलाल- 303 फ़िल्में (1680 गाने)
राहुल देव बर्मन- 99 फ़िल्में
कल्याणजी आनंद जी- 34 फ़िल्में
अन्नू मलिक- 26 फ़िल्में
सचिन देव बर्मन- 14
राजेश रोशन- 13 फ़िल्में
वीजू शाह- 10 फ़िल्में
आनंद मिलिंद- 10 फ़िल्में
बप्पी लाहिरी- 8 फ़िल्में
रोशन- 7 फ़िल्में
जतिन-ललित- 7 फ़िल्में
एस. मोहिंदर (मोहिंदर सिंह)- 7 फ़िल्में
उत्तम सिंह- 7 फ़िल्में
एन. दत्ता (दत्ता नाइक)- 7 फ़िल्में
शिव-हरि- 5 फ़िल्में
दिलीप सेन- समीर सेन- 4 फ़िल्में
ए. आर. रहमान- 3 फ़िल्में
रवींद्र जैन- 3 फ़िल्में
उषा खन्ना- 3 फ़िल्में
एस. डी. बातिश (निर्मल कुमार)- 3 फ़िल्में
निखिल कामत-विनय तिवारी- 3 फ़िल्में
आनंद राज आनंद- 3 फ़िल्में
चित्रगुप्त- 2 फ़िल्में
सी. रामचंद्र- 2 फ़िल्में
अनिल बिस्वास- 2 फ़िल्में
शार्दूल क्वात्रा- 2 फ़िल्में
एम. एम. क्रीम (एम. एम. किरवानी)- 2 फ़िल्में
नदीम-श्रवण- दो फ़िल्में
दर्शन राठौड़ और संजीव राठौड़ (संजीव-दर्शन)- 2 फ़िल्में
दत्ताराम (दत्ताराम वाडकर) 2 फ़िल्में
अमर-उत्पल- 2 फ़िल्में

राकेश आनंद बक्शी

नौशाद- 2 फ़िल्में
साजिद-वाजिद- 2 फ़िल्में
सुरेंद्र सिंह सोढ़ी- 2 फ़िल्में
शंकर-जयकिशन- 1 फ़िल्म
विशाल भारद्वाज- 1 फ़िल्म
इस्माइल दरबार- फ़िल्म
राहुल शर्मा- एक फ़िल्म
नुसरत फ़तेह अली ख़ान- 1 फ़िल्म
सुखविंदर सिंह- 1 फ़िल्म
सलिल चौधरी- 1 फ़िल्म
निसार बज़्मी- 1 फ़िल्म
बी. एन. बाली- 1 फ़िल्म
रवि- 1 फ़िल्म
बुलो सी. रानी- 1 फ़िल्म
लच्छीराम- 1 फ़िल्म
वसंत देसाई- 1 फ़िल्म
राजू सिंह- 1 फ़िल्म
जी. एस. कोहली- 1 फ़िल्म
एस. एन. त्रिपाठी- 1 फ़िल्म
दान सिंह- 1 फ़िल्म
किशोर कुमार- 1 फ़िल्म
समीर फात्रफेकर- 1 फ़िल्म
सपन चक्रवर्ती- 1 फ़िल्म
अंजन बिस्वास- 1 फ़िल्म
नीरज वोरा और उत्तांक वोरा- 1 फ़िल्म
बबलू चक्रवर्ती- 1 फ़िल्म
आगोश- 1 फ़िल्म
अदनान सामी- 1 फ़िल्म
अमजद अली ख़ां- 1 फ़िल्म (अधूरी/ अप्रदर्शित)

उन्होंने संगीतकार पिता-पुत्र की छह जोड़ियों के साथ काम किया:
सचिन देव बर्मन और राहुल देव बर्मन
रोशन और राजेश रोशन
कल्याणजी-आनंदजी और वीजू शाह

राकेश आनंद बक्शी

चित्रगुप्त और आनंद मिलिंद
नदीम-श्रवण और संजीव-दर्शन (श्रवण राठौड़ के बेटे)
अनिल बिस्वास और अमर उत्पल

आनंद बख़्शी ने अभिनेता धर्मेंद्र की क़रीब सत्तर फ़िल्मों में गाने लिखे। जीतेंद्र की बासठ फ़िल्मों, राजेश खन्ना की पैंतालीस, अमिताभ बच्चन की चवालीस, शशि कपूर की पैंतीस, ऋषि कपूर की पच्चीस, दिलीप कुमार की छह फ़िल्मों के गाने लिखे। इसके अलावा उन्होंने जिन कलाकारों की फ़िल्मों में गीत लिखे उनमें शामिल हैं मिथुन चक्रवर्ती, आमिर ख़ान, सनी देओल, राजेंद्र कुमार, कुमार गौरव, सुनील दत्त, संजय दत्त, अनिल कपूर, संजय कपूर, जैकी श्रॉफ़, टाइगर श्रॉफ़, नसीरूद्दीन शाह, शाहरुख़ ख़ान, सलमान ख़ान, अरबाज़ ख़ान, राकेश रोशन, ऋतिक रोशन, देव आनंद, संजीव कुमार, प्राण, शत्रुघ्न सिन्हा, पृथ्वीराज कपूर, राजकपूर, शम्मी कपूर, रणधीर कपूर, चिंपू कपूर, रणबीर कपूर, दारा सिंह, विनोद खन्ना, अक्षय खन्ना, विनोद मेहरा, फ़ीरोज़ ख़ान, फ़रदीन ख़ान, संजय ख़ान, अशोक कुमार, किशोर कुमार, महमूद, गोविंदा, राजकुमार, अक्षय कुमार, बिस्वजीत, कमल हासन, अमोल पालेकर, राज बब्बर, मास्टर भगवान दादा, रजनीकांत, सैफ़ अली ख़ान, मनोज कुमार, चंद्रशेखर, बलराज साहनी, अजय देवगन, प्रेमनाथ, उत्पल दत्त, रणवीर सिंह, डेविड, ओम प्रकाश, प्रेम चोपड़ा, असरानी, अमजद ख़ान, अनुपम खेर, डैनी डैंजोग्पा, रणजीत, कबीर बेदी, अमरीश पुरी, जॉन एब्राहम और कई दूसरे पुरूष कलाकार।

जहां तक अभिनेत्रियों का सवाल है तो हेमा मालिनी की बयालीस फ़िल्में, रेखा की छत्तीस फ़िल्में, मुमताज़ की छब्बीस फ़िल्में, माधुरी दीक्षित की इक्कीस फ़िल्में, ऐसी थीं, जिनमें बख़्शी साहब के गाने थे। इनके अलावा जिन अभिनेत्रियों की फ़िल्मों में उनकी गाने थे उनके नाम हैं: ऐश्वर्या राय, सुष्मिता सेन, श्रीदेवी, ज़ीनत अमान, शर्मिला टैगोर, नीतू सिंह, सायरा बानो, मीना कुमारी, साधना, तब्बू, नूतन, नंदा, वहीदा रहमान, मधुबाला, लीना चंदावरकर, प्रीती ज़िंटा, जूही चावला, बबीता, करिश्मा और करीना कपूर, रति अग्निहोत्री, योगिता बाली, अरूणा ईरानी, ट्विंकल खन्ना, एशा देओल, स्मिता पाटील, महिमा चौधरी, टीना मुनीम, परवीन बाबी, जयाप्रदा, मौसमी चैटर्जी, दिव्या भारती, सारिका, पद्मिनी कोल्हापुरे, नादिरा, लामा आग़ा, अनीता गुहा, दुर्गा खोटे, रीना रॉय, गीता बाली, नीलम कोठारी, जया भादुड़ी, राखी, शशिकला, शबाना आज़मी, माला सिन्हा, जमुना, आशा पारेख, हेलेन, अमृता सिंह, अनीता राज, इला अरूण, पूजा भट्ट, हनी ईरानी, पूनम ढिल्लन, तनूजा, काजोल, रानी मुखर्जी, रवीना टंडन, अमीषा पटेल, दीपिका पादुकोण, सोनाली बेंद्रे, मीनाक्षी शेषाद्रि, बिपाशा बसु, शिल्पा शेट्टी, दिशा पाटनी, सोनम कपूर, प्रियंका चोपड़ा और अन्य।

गीतमाला के श्रोताओं का फ़ैसला: सन 1967 से 2001 तक

राकेश आनंद बख्शी

बिनाका गीतमाला भारत का सबसे लोकप्रिय हिट परेड या काउंट डाउन का शो रहा है। यहां हम उन गानों की सूची दे रहे हैं जो सन 1967 से सन 2000 के बीच इस शो के चोटी के गीत रहे हैं। बिनाका गीतमाला सन 1986 से सिबाका गीतमाला बन गया था। 1989 में ये सिबाका संगीतमाला बन गया और फिर सन 2000 में ये बन गया कोलगेट सिबाका संगीतमाला।

1967
'सावन का महीना, पवन करे सोर'
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ लता मंगेशकर-मुकेश)
फ़िल्म-मिलन

1970
'बिंदिया चमकेगी, चूड़ी खनकेगी'
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ लता मंगेशकर)
फ़िल्म- दो रास्ते

1972
'दम मारो दम'
(आर. डी. बर्मन/ आशा भोसले)
फ़िल्म- हरे रामा हरे कृष्णा

1980
'डफ़ली वाले डफ़ली बजा'
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ मोहम्मद रफ़ी- लता मंगेशकर)
फ़िल्म- सरगम

1984
'तू मेरा जानू है, तू मेरा दिलबर है'
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ मनहर उधास- अनुराधा पौड़वाल)
फ़िल्म- हीरो

1987
'चिट्ठी आई है'
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ पंकज उधास)
फ़िल्म- नाम

1989
'माइ नेम इज़ लखन'

राकेश आनंद बक्शी

(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ मुन्ना मोहम्मद अज़ीज़)
फ़िल्म- राम लखन

1993
‘चोली के पीछे क्या है’
(लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल/ अलका याग्निक- इला अरूण)
फ़िल्म- खलनायक

1995
‘तुझे देखा तो ये जाना सनम’
(जतिन ललित/ उदित नारायण/ लता मंगेशकर)
फ़िल्म- दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे।

1999
‘ताल से ताल मिला’
(ए. आर. रहमान/ उदित नारायण- अलका याग्निक)
फ़िल्म- ताल

2000
‘हमको हमीं से चुरा लो’
(जतिन-ललित/ लता मंगेशकर- उदित नारायण)
फ़िल्म- मुहब्बतें

इस साप्ताहिक रेडियो शो में तकरीबन 2094 गाने बजे। सन 1962 से 2006 के बीच इनमें से आनंद बख़्शी के गाने 392 बार बजाये गये। कुछ ऐसे साल थे जब ये प्रोग्राम प्रसारित नहीं हुआ।

फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कारों के लिए नामांकित और विजेता गाने:

‘कोरा कागज़ था ये मन मेरा’, फ़िल्म- आराधना, 1970
‘आने से उसके आये बहार’, फ़िल्म- जीने की राह, 1970
‘बिंदिया चमकेगी चूड़ी खनकेगी’, फ़िल्म- दो रास्ते, 1971
‘ना कोई उमंग है, ना कोई तरंग है’, फ़िल्म-कटी पतंग, 1972
‘चिंगारी कोई भड़के’, फ़िल्म-अमर प्रेम, 1973
‘मैं शायर बदनाम’, फ़िल्म- नमक हराम, 1973
‘हम तुम एक कमरे में बंद हो’, फ़िल्म-बॉबी, 1974

राकेश आनंद बक्शी

‘मैं शायर तो नहीं’, फ़िल्म-बॉबी, 1974
‘गाड़ी बुला रही है’, फ़िल्म-दोस्त, 1975
‘आयेगी ज़रूर चिट्ठी मेरे नाम की’, फ़िल्म-दुल्हन, 1976
‘मेहबूबा मेहबूबा, फ़िल्म-शोले, 1976
‘मेरे नैना सावन भादो’, फ़िल्म-मेहबूबा, 1977
‘पर्दा है पर्दा, फ़िल्म-अमर अकबर एंथनी, 1978
‘मैं तुलसी तेरे आँगन की’, फ़िल्म-मैं तुलसी तेरे आँगन की, 1979
‘आदमी मुसाफ़िर है’, फ़िल्म-अपनापन, 1979 (विजेता)
‘सावन के झूले पड़े’, फ़िल्म-जुर्माना, 1980
‘डफ़ली वाले डफ़ली बजा’, फ़िल्म-सरगम, 1980
‘शीशा हो या दिल हो’, फ़िल्म-आशा, 1981
‘ओम शांति ओम’, फ़िल्म-कर्ज़, 1981
‘दर्दे-दिल, दर्दे-जिगर’, फ़िल्म-कर्ज़, 1981
‘बने चाहे दुश्मन ज़माना हमारा’, फ़िल्म-दोस्ताना, 1981
‘सोलह बरस की बाली उमर को सलाम’, फ़िल्म-एक दूजे के लिए, 1982
‘तेरे मेरे बीच में’, फ़िल्म-एक दूजे के लिए, 1982 (विजेता)
‘याद आ रही है, फ़िल्म-लव स्टोरी, 1982
‘जब हम जवां होंगे’, फ़िल्म-बेताब, 1984
‘सोहनी चिनाब दे किनारे पुकारे तेरा नाम’, फ़िल्म-सोहनी महिवाल, 1985
‘ज़िंदगी हर क़दम इक नयी जंग है’, फ़िल्म-मेरी जंग, 1987
‘लगी आज सावन की फिर वो झड़ी है’, फ़िल्म-चांदनी, 1990
‘चोली के पीछे क्या है’, फ़िल्म-खलनायक, 1993
‘जादू तेरी नज़र’, फ़िल्म-डर, 1994
‘तू चीज़ बड़ी है मस्त-मस्त’, फ़िल्म-मोहरा, 1995
‘घर आजा परदेसी तेरा देस बुलाए रे’, फ़िल्म-दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे, 1996
‘तुझे देखा तो ये जाना सनम’, फ़िल्म-दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे, 1996 (विजेता)
‘भोली सी सूरत आंखों में मस्ती’, फ़िल्म-दिल तो पागल है, 1998
आय लव माय इंडिया’, परदेस, 1998
‘ज़रा तस्वीर से तू उतर के सामने आ’, फ़िल्म-परदेस, 1998
‘ताल से ताल मिला’, ताल, 2000
‘इश्क़ बिना क्या जीना यारों’, फ़िल्म-ताल, 2000 (विजेता)
‘हमको हमीं से चुरा लो’, फ़िल्म- मुहब्बतें, 2001
‘उड़ जा काले कावां’, फ़िल्म-ग़दर एक प्रेमकथा, 2002
‘मैं निकला गड्डी लेके’, फ़िल्म-ग़दर एक प्रेमकथा, 2002

राकेश आनंद बक्शी

C.I.D.A.L.C. (Committee International for the Diffusion of Arts and Literature through the Cinema) Festival Des Films Asiatiques, Frankfurt (Frankfurt सुर में 1967).

इसके अलावा कई अन्य अवॉर्ड, रूबी फ़िल्म अवॉर्ड, आशीर्वाद फ़िल्म अवॉर्ड, सुषमा-शमा अवॉर्ड, 3 स्क्रीन अवॉर्ड, ज़ी और स्टारडस्ट हीरो होंडा अवॉर्ड भी।

उन्हें फ़िल्म 'हाथी मेरे साथी' में प्राणी-अधिकार पर आधारित गीत 'नफ़रत की दुनिया' के लिए एक ख़ास पुरस्कार दिया गया था। Society for Prevention of Cruelty to Animals (SPCA) ने ये पुरस्कार सन 1971 में दिया था।

राकेश आनंद बक्शी

आभार

मैं अपने भाई गोगी का शुक्रगुज़ार हूं, मां-पापा के गुज़र जाने के बाद उसने एक बड़े भाई की तरह मुझे सँभाला; मैं शुक्रगुज़ार हूं अपनी दोनों बहनों पप्पी और रानी का—ये दोनों हमारी ज़िंदगी का आधार रही हैं। हम शुक्रगुज़ार हैं कि हमें निधि, रोहित, न्यासा, आदित्य, चाँदनी, काहिल, करण, श्रेया, सिद्धांत, विनय दत्त और संजीव बाली के- जिनसे हमें हमेशा प्यार और सहयोग मिलता रहा है।

क़रीब उन्नीस सालों की मेहनत इस किताब में लगी है, ये एक माध्यम है अपने डैडी के प्रति कृतज्ञता दिखाने का—जिनसे मुझे बहुत कुछ मिला है। सिर्फ़ मैंने ही नहीं बल्कि लाखों-करोड़ों सुनने वालों ने भी उनके गानों से प्रेरणा ली है। उसके लिए भी शुक्रिया। मैं कोई आदर्श बेटा नहीं था, इसलिए ये किताब और ये वेबसाइट www.anandbakshi.com हम अपने डैडी को समर्पित कर रहे हैं। ये डैडी के लिए मेरी एक छोटी-सी श्रद्धांजलि है। वो हमारे जीवन का आधार थे। डैडी का प्यार हमारे लिए फूलों की नर्म-ठंडी छत थी। डैडी हमसे हमेशा कहते थे—'मेरी मांजी का प्यार फूलों की छांव थी'।

यादों का ये गुलदस्ता मेरे परिवार, क़रीबी दोस्तों और ख़ासतौर पर बख़्शी साहब के दीवानों की वजह से मुमकिन हो पाया है-जिनके प्यार ने उनके गीतों को ज़िंदा रखा है। विनय प्रजापति का शुक्रिया जिन्होंने वेबसाइट का डोमेन नेम हमें तोहफ़े में दिया। ये किताब बख़्शी साहब के संपादक दोस्त और शायर बिस्मिल सईदी (जो टोंक और दिल्ली में रहे) को भी समर्पित है—उन्हीं ने शायरी लिखने में बख़्शी साहब का मार्गदर्शन किया। इसी तरह एक और गुमनाम शख़्स और बख़्शी साहब के क़रीबी दोस्त (पश्चिम रेलवे के टिकिट कलेक्टर) चित्तर मल स्वरूप को भी ये किताब समर्पित है। आखिरी पर सबसे ज़रूरी नाम है मेरी मां कमला मोहन बख़्शी का- जो बख़्शी साहब की निजी और पेशेवर ज़िंदगी का सबसे बड़ा संबल और हमारे परिवार का आधार भी।

मैं शुक्रगुज़ार हूं और भी बहुत सारे लोगों का, डैडी के दोस्त और जाने-माने फ़िल्मकार सुभाष घई का। मेरे कज़िन अनीता दत्त चोपड़ा और कवयित्री नीरा बख़्शी और उनकी मां शुभ खेम दत्त का भी अपनी यादें बांटने के लिए शुक्रिया। पाकिस्तान के लेखक और फ़ोटोग्राफ़र शीराज़ हसन और वसीम अल्ताफ़ का शुक्रिया रावलपिंडी के अपने घर की तस्वीरें भेजने का। ये घर आज भी मौजूद है। हमारे परिवार के बहुत अज़ीज़ राजेंद्र बंगेरा का शुक्रिया, इस किताब के लिए ज़रूरी तमाम काग़ज़ात और तस्वीरों को तरतीब देने के लिए। शुक्रिया यूनुस ख़ान, शीबा लतीफ़, ज़ोहरा जावेद, मारिया और उमर रियाज़ का उर्दू की कुछ कविताओं और ख़तों का अनुवाद करने

राकेश आनंद बख़्शी

के लिए। सुश्रुत मांकड़ का शुक्रिया गुजराती चिट्ठियों का अनुवाद करने के लिए। मरहूम भाई मदन मोहन सिंह छिब्बर का शुक्रिया उर्दू से अनुवाद करने के लिए। जुनूनी लेखक और कमाल के फ़िल्म-पत्रकार अली पीटर जॉन और गीतकार समीर अंजान का शुक्रिया- उनसे हमें बहुत प्यार मिला।

और आनंद बख़्शी के ज़बर्दस्त दीवाने लोगों का शुक्रिया—गीतकार विजय अकेला, देवमणि पांडे, स्पॉटीफाइ के पैडी, जाने-माने फ़िल्म-संगीत-इतिहासकार डॉ. राजीव विजयकर और मानेक प्रेमचंद, शायर और दोस्त हरमिंदर सिंह चावला, विकास मानहास। संपादक गंगाशरण सिंह, रेडियो प्रज़ेन्टर यूनुस ख़ान का शुक्रिया हिंदी अनुवादों के लिए। राकेश मोदी, संगीता यादव, आनंद देसाई, चंदू बारदानावाला, हेमचंद, कवि मनोहर मोहब्बत अय्यर, अजय पुंडरीक, गोपाल पटवाल और सारेगामा के रोशन पोचखानावाला का भी शुक्रिया। बख़्शी साहब के ज़्यादातर गाने सारेगामा के पास ही हैं। परफ़ॉर्मिंग राइट्स सोसाइटी यू. के. के जतनील बैनर्जी का शुक्रिया। इंडियन परफ़ॉर्मिंग राइट्स सोसाइटी के राकेश निगम, मनीष जानी, रूपा बैनर्जी का भी शुक्रिया। और भी बहुत सारे लोगों का शुक्रिया। कुछ का मार्गदर्शन के लिए और कुछ का जानकारियां बांटने के लिए, कुछ का शुक्रिया हौसला बढ़ाने के लिए। उन अनगिनत लोगों का भी शुक्रिया जो बख़्शी साहब के गानों को इतने वर्षों में लगातार गाते रहे और उनसे जुड़े कलाकारों को ज़िंदा रखा। शायरा और गीतकार हसरत जयपुरी की बेटी किश्वरी जयपुरी का शुक्रिया ये जांचने के लिए कि उर्दू और अंग्रेज़ी से हुए अनुवाद एकदम सही हैं या नहीं। ये उन्होंने उस मुहब्बत के लिए किया जो आनंद बख़्शी और हसरत साहब के बीच कायम रही थी।

मेरे दोस्त, लेखक और संपादक शांतनु राय चौधरी का भी शुक्रिया, जो सन 2013 से ही मुझे प्रेरित करते आ रहे थे। पेंग्विन रैंडम हाउस भारत के सीनियर कमीशनिंग एडीटर गुरवीन चड्ढा और संपादक विनीत गिल का भी शुक्रिया, जिन्होंने इस किताब की पांडुलिपि में सुधार किए और इसे एक प्रकाशित किताब में बदला, उनका जोश इस किताब और इस विषय के लिए देखते ही बनता था। रचना प्रताप का शुक्रिया, जिन्होंने अनुबंधों को पढ़ा और उन पर बातचीत की। उन हिस्सों को समझाया जो मुझे जैसे लेखकों को मुश्किल से ही समझ में आते हैं। मेरी दोस्त कल्पा शाह मनियार का शुक्रिया जिन्होंने मेरा हौसला बढ़ाया और इस किताब में अपना योगदान दिया। एक तरह से उन्होंने मुझे इस किताब के रास्ते पर लगातार आगे बढ़ाया है।

इन दोस्तों और साथियों का नाम लिए बिना यह किताब पूरी नहीं मानी जा सकती: रघु, हर्ष, परमजीत, वीना, प्यारे दोस्त रोहित, प्यारे दोस्त स्वामी, जयंती, अम्बी, रमण, सत्या, ऋतु, शोमी, मानेक, दिलनाज़, दीन्यार, टोनी, अनुपमा, सोनू, प्रियंका, मेघना, बनाफर, ख़ुसरो, सिद्धी, कनिका, अकीरा, प्रियंका, अभय, ऋषि, पूजा, चंगेज़, श्याम, मयूरा, विवेक, अंकिता, हिमांशु, मनोज, विद्युत, अक्षिता, निशिल, आयशा, सिडनी, एनालीज़, डॉ. आप्टे, अमीन, शारलोट, डॉ. इशानी, बॉबी, अमित, रोहन, विद्युन, टोनी, मीनू, सुश्रुत, भावेश, रूस्तम, नंदू, शरद, साकिब, सबीना, शची, सुमंत, बब्बूजी और

राकेश आनंद बख्शी

विमला। अगर मैं किताब या अपनी ज़िंदगी में में सहयोग करने वाले बेमिसाल लोगों में किसी का नाम भूल गया हूं तो इसके लिए आप मुझे माफ़ कर दीजिएगा।

रीडर्स डाइजेस्ट का बहुत ज़्यादा शुक्रिया, ये एक शानदार पत्रिका है और मेरे डैडी को इसने बहुत प्रेरित किया। मेरी आधी ज़िंदगी में ये पत्रिका प्रेरणा बनी रही है। स्वीडिश अभिनेत्री इनग्रिड बर्गमैन का भी शुक्रिया। मैंने सन 2002 में उनकी आत्मकथा पढ़ी थी और इसने आत्मकथाओं, लेखन, फ़िल्में बनाने और सिनेमा में मेरे जुनून को फिर से ज़िंदा किया था। इंटरनेट और इस पर मौजूद अनगिनत संसाधनों का भी शुक्रिया। इनके बिना हमारी ज़िंदगी पता नहीं कैसी होती।

ये जीवनी उन लोगों को भी समर्पित है जो अपने सपनों और महत्वाकांक्षाओं के साथ कोई समझौता नहीं करते। फिर चाहे कोई उनका सहयोग करे या नहीं। आनंद बख़्शी की ज़िंदगी इस बात का सुबूत है कि आपके सपनों पर यक़ीन करने वाले बस एक ही व्यक्ति की ज़रूरत आपको होती है और वो आप ख़ुद हैं। ये उन लोगों को भी हमारा सलाम है जो अपनी मंजिल की तलाश में अंजान इलाक़ों में गये, ठीक वैसे ही जैसे कई दशकों पहले बख़्शी जी बंबई आ गये थे।

आपसे इजाज़त लेने से पहले मैं आपसे ज़ोर देकर कहना चाहता हूं कि ऊपर वाले पर विश्वास रखिए, ब्रह्मांड पर, अपनी किस्मत पर, अपने कर्मों पर, अपने फ़ैसलों पर, अपने परिवार पर और ख़ुद पर। आपको बीच-बीच में इन सबकी थोड़ी-थोड़ी ज़रूरत पड़ेगी। सबसे ज़रूरी बात है शुक्रगुज़ार रहिए, प्रेरणा लेते रहिए, दूसरों को प्रेरित भी करते रहिए, ख़ुद से प्यार कीजिए, दूसरों से प्यार हासिल कीजिए। उम्मीद है कि मैं आपसे फिर कभी मुख़ातिब हो पाऊंगा कुछ और क़िस्से, बातें और यादें लेकर। शुक्रिया।

राकेश आनंद बख़्शी

राकेश आनंद बख़्शी

OUS HOT

The last photograph we have of dad and mom together at our house at Bhilar, Mahableshwar taluka.

राकेश आनंद बक्शी

प्रेम और प्रेरणा के लोकप्रिय गीतकार

मिर्ज़ा गालिब अपने अंदाज़े-बयां के लिए जाने जाते है, साहिर लुधियानवी इश्क और इंकलाब के शायर के रूप में पहचाने जाते हैं और शैलेन्द्र अपनी सरलता और फ़ोक की वजह से लोगों को अपना दीवाना बनाते हैं । गीतों के जादूगर आनंद बक्शी को प्रेम और प्रेरणा के लोकप्रिय गीतकार के रूप में जो शोहरत मिली है वह अपनी मिसाल आप है ।

आनंद बक्शी के गीतों में कबीर की तरह सरलता है ,सूरदास के पदों जैसी मिठास है और तुलसी की चौपाइयों की तरह अद्भुत लोकप्रियता का गुण मौजूद है । नोबेल पुरस्कार से सम्मानित दुनिया के महानतम स्पेनिश कवि गैब्रियल गार्सिया मार्खेज़ ने कहा है -"मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं लिखना चाहता जिसमें प्रेम का स्पर्श न हो।" कबीर साहब ने ढाई आखर प्रेम का संदेश दिया। गुरु ग्रंथ साहब में प्रेम की महानता के बारे में कहा गया है -"जिन प्रेम कियो तीन ही प्रभु पायो" आनंद। बक्शी साहब यह जानते थे कि प्रेम के बिना ज़िंदगी बेरंग और बेनूर होती है इसलिए उन्होंने अपने अधिकांश गीतों में प्रेम का पैग़ाम दिया। बक्शी साहब के गीतों में प्रेम के इंद्रधनुषी रंग मौजूद है। उनके गीतों में रूमानियत का रंग भी हैं और रुहानियत का संग भी। प्रकृति प्रेम की मादक घटाएं भी हैं और देशप्रेम की अनुपम छटाएं भी। जीव -जंतुओं के प्रति प्रेम के अनगिनत नज़ारे हैं तथा मानव और मानवता के प्रति प्रेम के गीतों के निर्मल बहते धारे हैं। फिल्म "चरस" में वह अपनी आवाज़ में इस प्रेम-प्रधान गीत का आगाज़ करते हैं- "दिल इंसान का एक तराज़ू जो इंसाफ़ को तौले, प्रेम बिना जीवन सूना है ये पागल प्रेमी बोले")। फिल्म "ताल" में उनका लिखा और सुखविंदर सिंह की आवाज़ में मदहोश कर देने वाला यह गीत-"मैं प्रेम दा प्याला पी आया, एक पल में सारी सदियाँ जी आया" सुनकर व्यक्ति अपनी सुधबुध भूलकर इश्क की दुनिया में खो जाता है। फिल्म "माई लव" का मुकेश जी के मधुर स्वर में यह गीत -"ज़िक्र होता है जब क़यामत का तेरे जलवों की बात होती है, तू जो चाहे तो दिन निकलता है, तू जो चाहे तो रात होती है" गीत में बक्शी साहब रुमानियत को रूहानियत से जोड़कर इतना खूबसूरत मोड़ देकर गीत में चार चाँद लगा देते हैं। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की एक कविता बी. ए. के पाठ्यक्रम में पढ़ी थी -"दोनों ओर प्रेम पलता है। सखि ,पतंग भी जलता है हा ! दीपक भी जलता है"। हमारे हिन्दी के प्रोफ़ेसर अक्सर हिन्दी कविताओं का भाव साम्य हमसे पूछते थे और क्लास में सबसे पहले मेरा हाथ उठता था और मुझे याद है कि मैंने बक्शी साहब के "कटी पतंग" फ़िल्म के इस गीत में मैथिलीशरण जी की कविता की समानता ढूंढकर ये पंक्तियाँ सुनाई -"प्यार दीवाना होता है मस्ताना होता है......शमा कहे परवाने से परे चले जा, मेरी तरह जल जाएगा यहाँ नहीं आ, वो नहीं सुनता उसको जल जाना होता है, हर खुशी से हर ग़म से बेगाना होता है।" हमारे प्रोफ़ेसर साहब अच्छे फिल्मी गीतों की क़द्र करते थे और मुझे बड़ी शाबाशी देते थे। उनके प्रोत्साहन से फिल्म गीतों के प्रति मेरी दीवानगी जुनून के हद तक बढ़ती गई। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत जी प्रकृति प्रेम के लिए विख्यात है। प्रकृति ही उनकी महबूबा है। वह लिखते है -

राकेश आनंद बक्शी

“छोड़ द्रुमों की मृदु छाया ,तोड़ प्रकृति से भी माया, बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।” आनंद बक्शी ने फिल्म “जीने की राह” में प्रकृति प्रेम का एक महबूबा के रूप में वर्णन कर इस गीत को अमर बना दिया है -

“आने से उसके आए बहार
बन संवर के निकले, आए सावन का जब जब महीना,
हर कोई ये समझे, होगी वो कोई चंचल हसीना,
पूछो तो कौन है वो, रुत ये सुहानी है,
मेरी महबूबा.”

रफ़ी साहब की ईश्वरीय आवाज़ इस गीत को “सोने पे सुहागा” मुहावरे को सार्थकता और गरिमा प्रदान करती है। उनके अनेक गीतों में प्रकृति प्रेम की अद्भुत छटाएं मौजूद हैं। एक संवेदनशील कवि के दिल में जितना प्यार मनुष्यों के लिए होता है उतना ही प्रेम पशु- पक्षियों के लिए भी। फिल्म “हाथी मेरे साथी” में मोहम्मद रफ़ी साहब की आवाज़ में उनका लिखा गीत आज भी पशु-प्रेम और सम्मान का जीवंत दस्तावेज़ है -“नफ़रत की दुनिया को छोड़ के प्यार की दुनिया में ख़ुश रहना मेरे यार- एक जानवर की जान आज इंसानों ने ले ली है, चुप क्यों है संसार”। उनके गीतों में देश प्रेम का जज़्बा भी है और इंसानियत के लिए सजदा भी। इसका उदाहरण है उनकी सरल भाषा में लिखा गया आम आदमी के दिल तक पहुंचनेवाला देशप्रेमी फिल्म का यह गीत-“नफरत की लाठी तोड़ो ,लालच का ख़ंजर फेंको, ज़िद के पीछे मत दौड़ो, तुम प्रेम के पंछी हो, देश प्रेमियों, आपस में प्रेम करो देश प्रेमियो”। इसी तरह “ये दुनिया इक दुल्हन, दुल्हन के माथे की बिंदिया, ये मेरा इंडिया” उनका लिखा देश प्रेम का यह गीत सभी की ज़ुबान पर आज भी मौजूद है।

लोकगीतों के अनुपम चितेरे -

भारत की तीन चौथाई से ज़्यादा आबादी आज भी गांवों और क़स्बों में निवास करती है। लोकगीत गांवों-क़स्बों में आज भी ज़िंदा है। एक सच्चे और अच्छे कवि की स्वीकार्यता और लोकप्रियता तभी बढ़ती है जब उसके गीत ख़ास-ओ आम की ज़ुबान पर हो। कबीर के दोहे सभी के मन को भाते हैं, तुलसी की चौपाइयाँ लाखों लोग गाते-गुनगुनाते हैं, गालिब के शेर सड़क से संसद तक लोग दोहराते हैं। लोकप्रियता की कसौटी पर आनंद बक्शी के गीत कबीर, सूर तुलसी और ग़ालिब की रचनाओं से कभी भी उन्नीस नहीं ठहरते। बक्शी साहब के गीत आज समाज में लोकगीतों की तरह गाये -गुनगुनाए जाते हैं। “दो रास्ते” फिल्म का गीत “बिंदिया चमकेगी चूड़ी छनकेगी” आज लोकगीतों की तरह लोगों की ज़ुबान पर है। इसी तरह “मेरे हाथों में नौ- नौ चूड़ियाँ हैं” गीत शादी ब्याह के महिला संगीत में सर्वाधिक गाया जाने वाला गीत बन चुका है। बक्शी साहब के गीतों की लोकप्रियता का दायरा बढ़ता जा रहा है। एक बार मशहूर शायर बशीर बद्र से किसी ने पूछा उनकी

राकेश आनंद बक्शी

कोई ख़ास चाहत है। उन्होंने कहा मेरी तमन्ना है कि मेरी कोई ग़ज़ल लता जी जरूर गायें। एक बार मैंने सुप्रसिद्ध शायर डॉ नवाज़ देवबंदी से यही सवाल पूछा था और उन्होंने मुसकुराते हुए जवाब दिया था “मेरे शेरों ,गज़लों को कोई फ़कीर गाये -गुनगुनाएगा तो मैं समझूँगा मेरा लिखना सफल हो गया है। आनंद बक्शी साहब की यह ख़ुशनसीबी है कि उनके गीतों को लता जी, रफ़ी साहब, मुकेश जी, मन्ना डे और किशोर कुमार और जगजीत सिंह जैसे महान गायकों ने गाया है और आज भी सैकड़ों फ़क़ीर बक्शी साहब के गीतों को गाते-गुनगुनाते मिल जाते हैं। एक कवि, शायर या गीतकार को इससे ज़्यादा और क्या चाहिए कि उनकी पंक्तियों को देश -दुनिया के करोड़ों लोग गाते -गुनगुनाते हैं।   फ़िल्म “नाम” का उनका लिखा गीत “चिट्ठी आई है, आई है वतन से” न केवल हिंदुस्तान की जनता ने अपने दिल में बसाया बल्कि विदेशों में बसे लाखों हिंदुस्तानियों ,पाकिस्तानियों और बांग्लादेशियों आदि ने बेइंतिहा पसंद किया। “दुश्मन” फिल्म का जगजीत सिंह की सुरीली आवाज़ में बक्शी साहब का यह गीत -“चिट्ठी न कोई संदेश, जाने वो कौन से देश, जहां तुम चले गए” न केवल मार्मिक, लोकप्रिय और दिल को छूने वाला गीत है बल्कि आजकल श्रद्धांजलि सभा में इस गीत को पारंपरिक भक्ति गीत के बदले में गाया जाता है। बक्शी साहब के गीतों की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण सरल शब्दों में सहज तरीके से मन को लुभाने वाले गीतों की रचना करना है। गीतों में सरलता का यह मंत्र उन्होंने शैलेन्द्र जी से सीखा। साहिर और शैलेन्द्र के प्रशंसक आनंद बक्शी ने दोनों से सीखा। साहिर साहब, बक्शी जी के बहुत शुभचिंतक थे और निर्माताओं को अपनी फिल्मों में बक्शी साहब से गीत लिखवाने की बात करते थे। 1966 तक आते- आते उन्होंने जब- जब फूल खिले, देवर, हिमालय की गोद में, आए दिन बहार के आदि फिल्मों में गीत लिखकर “स्टार गीतकार” बन गए। शैलेन्द्र के निधन के बाद उनकी मांग और बढ़ गई । 1967 में आई फिल्म “मिलन” और 1969 में प्रदर्शित फिल्म “आराधना” के गीतों ने नया इतिहास रचा। जो निर्माता पहले बक्शी साहब को फिल्म में लेने के लिए थोड़ा सकुचाते कतराते थे अब वे मिलन के लिए तरस रहे थे और फिल्म वितरक भी उनकी आराधना करने लगे थे।

प्रेरणा -प्रधान गीत

एक अच्छा कवि -शायर वही है जो दुख में भी मल्हार गाने की ताकत बक्शे ,काँटों में भी फूल खिलाए, राह भटके राही को राह पे लाए, निराशा में आशा का दीप जलाना सिखाए।

आनंद बक्शी साहब ने अपने अधिकांश गीतों के द्वारा लोगों के जीवन की अमावस रातों को चाँदनी रातों में तब्दील करने की भरपूर कोशिश की है, जीवन में पलायन करने की बजाय “लायन” बनकर मुकाबला करने और जीतने का हुनर सिखाते हैं। फिल्म “जीने की राह” में उनका लिखा यह गीत पतझड़ को भी बहार में बदलने का हौसला और हुनर सिखाता है -“एक बंजारा गाए ,जीवन के गीत सुनाए .. .. ..

सभी का देखो नहीं होता है नसीबा रोशन सितारों जैसा

राकेश आनंद बक्शी

सयाना वह है जो पतझड़ में भी सजा ले गुलशन बहारों जैसा
कागज़ के फूलों को भी जो महका कर दिखलाए"।

फिल्म "अमरप्रेम" में उनका लिखा गीत "कुछ तो लोग कहेंगे ,लोगों का काम है कहना" गीत के जरिए वह लोगों को दोहरी मानसिकता वालों की आलोचना से आहत होने की बजाय सर उठाकर निर्भीक होकर जीने का हौसला, नसीहत और राहत देते हैं। फिल्म "आप की कसम" के एक गीत "ज़िंदगी के सफर में गुज़र जाते है जो मुकाम वो फिर नहीं आते" के जरिए वह विवेक और समझदारी की सलाह देते हैं। अन्यथा सारा जीवन "अब पछताय होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत" का रोना रोने में ही निकल जाती है। विश्व विख्यात कवि पाब्लो नेरुदा के अनुसार -"संघर्ष और आशा ही जीवन का रास्ता तैयार करते हैं।" आनंद बक्शी साहब ने फिल्म "दोस्त" के गीत के जरिए जीवन की चुनौतियों को साहस के साथ मुकाबला करके मंजिल तक पहुँचने का पैगाम देते हैं-"गाड़ी बुला रही है, सुन ये पैगाम, ये है संग्राम, जीवन नहीं है सपना, दरिया को फांद, पर्वत को चीर, काम है ये उसका अपना, नींदें उड़ा रही है,जागो जगा रही है"

पुरस्कार और सम्मान

सन 1962 से 2002 के बीच आनंद बक्शी ने 600 से अधिक फिल्मों में 3300 से अधिक गीत लिखे। सन 1969 में "आराधना" फिल्म के साथ राजेश खन्ना के रूप में नया सुपर स्टार देश को मिला और आनंद बक्शी की हैसियत भी "स्टार गीतकार" की हो गई थी। प्रत्येक 10 में से 5 फिल्मों में बक्शी साहब ही गीत लिख रखे थे। कटी पतंग, अमर प्रेम, आन मिलो सजना, आप की कसम, जुगनू, दोस्त, दुश्मन, मेरा गाँव मेरा देश, बॉबी, शोले, आशा, अमर अकबर एंथनी, चाचा भतीजा, धर्मवीर आदि जुबली फिल्मों में लोकप्रिय गीत लिखे। "आप की कसम" फ़िल्म का गीत "ज़िंदगी के सफर में गुजर जाते हैं" तथा "अमर प्रेम" फिल्म का गीत "चिंगारी कोई भड़के" लोकप्रिय और स्तरीय और मानीखेज होने के बावजूद पुरस्कारों से वंचित रहे। आनंद बक्शी साहब को 42 बार फिल्मफेयर के लिए नामांकित किया गया लेकिन पहली बार 1979 में आई फिल्म "अपनापन" के गीत "आदमी मुसाफिर है" के लिए उन्हें पहला अवॉर्ड प्राप्त हुआ। 1982 में फिल्म "एक दूजे के लिए"के गीत "तेरे मेरे बीच में", 1996 की फिल्म "दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे" के गीत "तुझे देखा तो ये जाना" तथा वर्ष 2000 में "ताल" फिल्म के गीत "इश्क बिना क्या जीना यारों" के लिए उन्हें फिल्मफेयर अवॉर्ड से सम्मानित किया गया ।

अदब और साहित्य की दुनिया के अधिकांश तंगदिल लोगों ने आनंद बक्शी की काबलियत और नैसर्गिक प्रतिभा को कभी भाव नहीं दिया। कभी उन्हें तुकबंदीकार के रूप में कभी "चोली के पीछे क्या है" जैसे गीत में अश्लीलता परोसने के लिए दोषी ठहराया गया। बक्शी साहब का तर्क था लोक गीतों में थोड़ी शरारत होती है उनकी चर्चा नहीं होती। "खलनायक" फिल्म में चोली गीत

राकेश आनंद बक्शी

के लिए उनकी बहुत खिंचाई हुई लेकिन उन्हें इस बात का मलाल था कि इसी फिल्म में उनके बेहतरीन गीत -"ओ माँ तुझे सलाम, अपने बच्चे तुझको प्यारे रावण हो या राम" की चर्चा नहीं हुई। यह बात बिल्कुल उसी तरह है कि तुलसीदास के महाकाव्य "रामचरित मानस" की महानता के अनेक पहलुओं को सराहने की बजाय उनके नारी संबंधी एक अर्धाली के बहाने उनकी प्रतिभा पर कालिख मलते रहे । जावेद अख़्तर, समीर, डॉ इरशाद कामिल, मनोज मुंतशिर और अमिताभ भट्टाचार्य जैसे स्टार गीतकार आनंद बक्शी साहब की कलम का लोहा मानते हैं ।

गीत सम्राट नीरज जी ने एक भेंटवार्ता में मुझे कहा था -"फिल्म गीत लेखन एक बड़ी ही जटिल तकनीक है। गीतकार को संगीत निर्देशक द्वारा दी हुई ट्यून को ही केवल सँवारना या सजाना नहीं पड़ता है बल्कि जिस पात्र के लिए गीत लिख रहा है उसे उसको छवि के साथ भी जोड़ना पड़ता है। शैलेन्द्र के बाद इस कला में सर्वाधिक निपुण गीतकार आनंद बक्शी थे। उन्होंने जैसे कालजयी गीत लिखे हैं, उसके लिए वे सदैव ही याद किए जाएंगे।"

जाने माने गीतकार और लेखक जावेद अख़्तर ने गीतों के जादूगर आनंद बक्शी के लिए कहा था -"हिंदुस्तान को गीतों का मुल्क कहते हैं। इसलिए कि यहाँ अनगिनत जबानों में हर मौके के लिए अनगिनत गीत हैं। कभी-कभी मुझे लगता है कि अगर ये अनगिनत गीत न भी होते तो भी हिंदुस्तान को गीतों का मुल्क कहलाने के लिए अकेले आनंद बक्शी साहब के गीत ही काफी हैं।"

हिंदुस्तान जैसे मुल्क को इतने बेहतरीन, कर्णप्रिय, मानीख़ेज़ और हर मौक़े पर और गाये गुनगुनाए जाने वाले लोकप्रिय गीतों का अनमोल तोहफ़ा देने वाले आनंद बक्शी साहब को सरकार ने पद्म सम्मान से अलंकृत करने की बात अब तक क्यों नहीं सोची? उन पर डाक-टिकट क्यों जारी नहीं किया गया? सरकार को इस अनदेखी का जल्दी एहसास हो और इस विषय पर जल्दी सकारात्मक पहल करे तो बक्शी साहब के बेशुमार बेपनाह चाहने वालों को बेइंतिहा खुशी होगी।

सच तो यह है कि आनंद बक्शी साहब के अधिकांश गीतों को सुनकर न केवल आनंद की प्राप्ति होती है बल्कि जीवन के चुनौतियों भरे सफर को पूरा करके मंजिल तक पहुँचने का हुनर और हौसला भी मिलता है। उनके अनेक गीत जीवन में मुहावरे और लोकोक्तियों की तरह प्रयोग में लाए जाते हैं। जन -गण मन के महबूब और मकबूल गीतकार आनंद बक्शी साहब को सैकड़ों सलाम। बक्शी साहब के सुपुत्र राकेश आनंद बक्शी जी ने अपने पिता की कलम से निकली गीतों की गंगा को जिज्ञासु और रसिक पाठकों तक पहुंचाने का जो भगीरथ प्रयास किया है और लगातार इस मुहिम में लगे हुए है, उनकी निष्ठा, उनके समर्पण भाव और काबिलेतारीफ़ जज़्बे की मैं बड़ी कद्र करता हूँ। उनको अनेकानेक साधुवाद।

डॉ. इंद्रजीत सिंह
शिक्षाविद और लेखक

राकेश आनंद बक्शी

पूर्व प्राचार्य द्वारा केन्द्रीय विद्यालय, एम्बेसी ऑफ
इंडिया, मॉस्को(रूस)

राकेश आनंद बक्शी

आनंद बक्शी के एक दीवाने की चिट्ठी

आदरणीय राकेश आनंद बक्शी साहब

सादर नमस्कार

प्रथम तो आपको बहुत बधाई की आपने साधारण से दिखने वाले असाधारण व्यक्तित्व के धनी, मशहूर गीतकार और आपके पिता स्वर्गीय श्री आनंद बक्शी साहब के जीवन पर एक पुस्तक (नग़मे किस्से बातें यादें) लिखकर हमारे लिए लाए।

इस पुस्तक के विमोचन (वर्चुअल) का कार्यक्रम व्हिसलिंग वुड्स इंटरनेशनल और पेंग्विन इंडिया द्वारा किया गया और इस ऑनलाइन कार्यक्रम में आपका, सुभाष घई साहब, ए. आर. रहमान साहब, और कविता जी कृष्णमूर्ती जैसे दिग्गजों का हम लोगों से सीधे सीधे मुख़ातिब होना प्रशंशनिय हैं।

बक्शी साहब के जीवन पर बात करते हुए घई साहब ने जो क़िस्से बताये, उनको सुनकर यह बात और भी ज्यादा पुख़्ता हो गई कि स्वर्गीय आनंद बक्शी साहब ना सिर्फ एक गीतकार के तौर पे बल्कि एक इंसान के तौर पर भी बेहद शानदार थे। उनका अपनी फ़ीस को लेकर फ़कीरी अंदाज़ वाला ज़वाब जीवन में उनके उच्च स्तर के आदर्शों को दर्शाता हैं।

अपने गीत की रिकॉर्डिंग पर उनका मौज़ूद होना काम के प्रति समर्पण ज़ाहिर करता है। कविता जी का पहली बार सिटिंग रूम में लक्ष्मीकांत प्यारेलाल के साथ बक्शी साहब को देखना और मन में ब्रहमा विष्णु महेश का भाव आना ज़ाहिर करता है कि वो तीन इंसान अपने काम को लेकर सृष्टि के रचनाकारों जितने ही समर्पित थे।

रहमान साहब का उनके साथ ताल के अनुभव को साँझा करना यादगार रहेगा। आप लोगों को सुनना मनभावन था।

दुनिया का मिज़ाज़ हमेशा बदलता रहा हैं। और यह उसकी फ़ितरत हैं। लेकिन फ़िर भी मुझे लगता है कि ये बदलती हुई दुनिया कितनी भी बदल जाये लेकिन इस दुनिया के दिलों दिमाग में बक्शी साहब का खुमार हमेशा कायम रहेगा। उनके गीतों का ज़ायका अनंतकाल तक बना रहेगा।

नई तकनीकों वाली इस दुनिया में जब भी प्रेम की बात की जाएगी तब नौजवानों द्वारा यहीं गाया जायेगा कि "अब कुछ भी हो ज़ोर कोई चलता नहीं। दिल तेरे बिन लगता नहीं। वक़्त गुज़रता नहीं। क्या यहीं प्यार हैं"

राकेश आनंद बक्शी

आप द्वारा लिखित क़िताब अंग्रेज़ी भाषा में होने से अभी तक मैं उससे दूर हूँ। लेकिन मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब ये पुस्तक श्री यूनुस खान द्वारा हिंदी में अनुवादित होकर वेबसाइट पर आए।

मैं निज़ी तौर पर व्हिसलिंग वुड्स इंटरनेशनल और पेंग्विन इंडिया, श्री सुभाष जी घई, कविता जी कृष्णमूर्ती, और ए. आर. रहमान साहब का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ लेकिन उन सबकी मेल आई डी मेरे पास नहीं होने के कारण मैं आपसे गुज़ारिश करूँगा की इस ख़ाकसार की ये बात उन तमाम हज़रात तक पहुँचा देवें।

बहुत धन्यवाद। बहुत शुभकामनाये।

मनोज पंचारिया (ख़ाकसार)
कर एवं वित्तीय सलाहकार

राकेश आनंद बक्शी

अगर आपको इस पुस्तक में कोई ग़लती या ग़लतियां नज़र आती हैं, तो कृपया मेल करें इस ईमेल आई डी पर: rakbak16@gmail.com

आपके सुझावों का भी स्वागत है।

हम चाहेंगे कि आप इस किताब को बेहतर बनाने में हमारी मदद करें।

शुक्रिया, राकेश आनंद बख़्शी

डिजिटल संस्करण को मुफ़्त में पढ़ने के लिए आप पाँच सौ रूपए तक दान कर सकते हैं। यह संस्करण हम आपके लिए मुफ्त में उपलब्ध करवा रहे हैं। आप इस संस्करण की लागत के पैसे अपनी मर्ज़ी से किसी संस्था को दान में दे दें। या फिर ग़रीबों को पाँच सौ रूपए तक का भोजन करवा दें। शुक्रिया।

राकेश आनंद बख़्शी

Books by Rakesh Anand Bakshi releasing in 2021

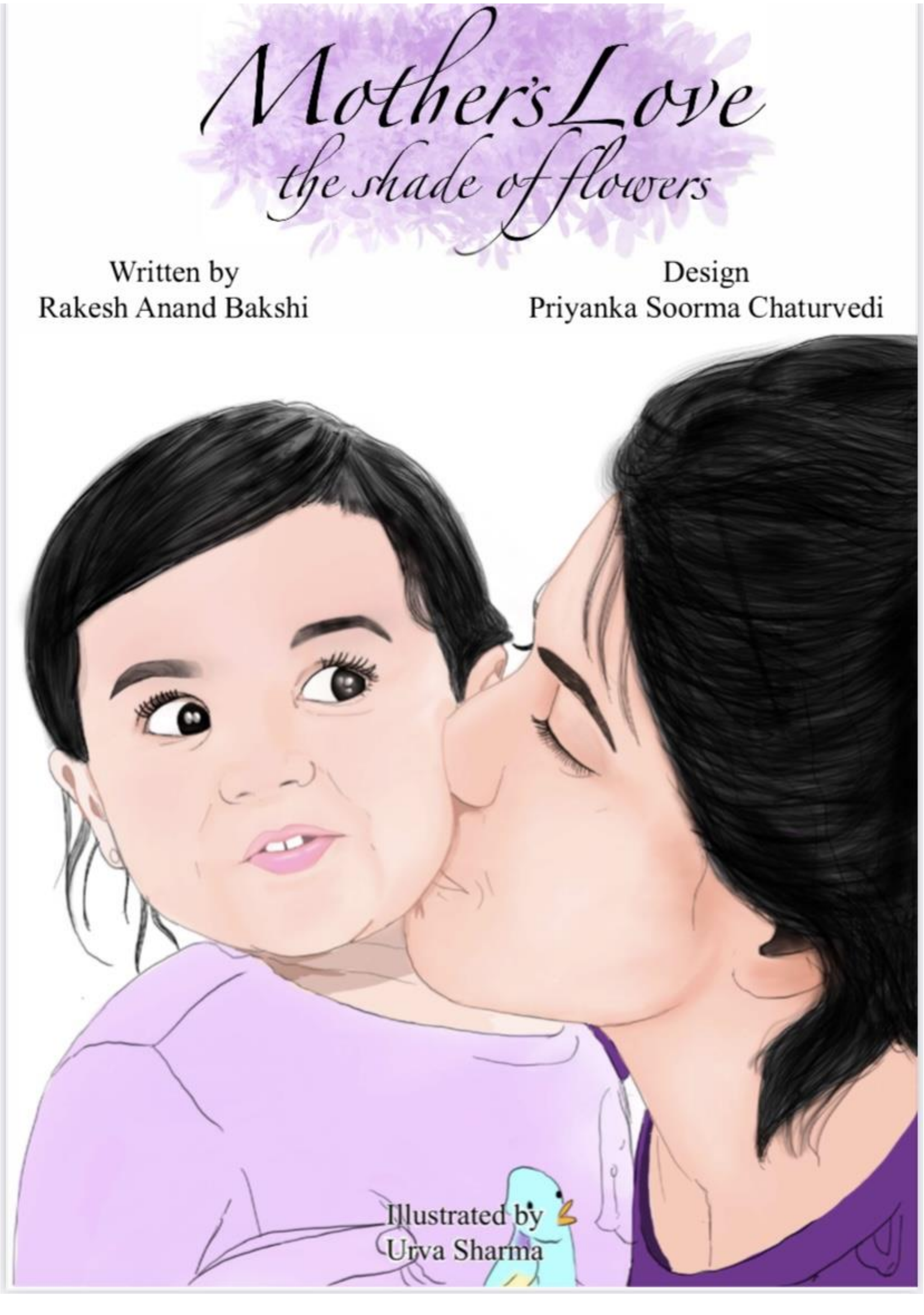

BOOK
TIVITY

Mother's Love

The shade of flowers

Written By
Rakesh Anand Bakshi

Maa, Mother, the most beautiful color in the palette of our life. With our mother, we dare to dream, learn explore and thrive. With her blessings and prayers, we are ever protected. The love of a mother manifests into a wholesome upbringing of the child. Moreover, a mother adds unparalleled beauty to our world much like the serene shade of colorful flowers blooming in the spring.

I wrote these poems as a tribute to my mother, Kamla Anand Bakshi. But she could never read them, Mummy was not able to read English. So I decided to publish them, 13 years after her eternal travel, as a book for women, children, moms, anyone to read and appreciate mothers. It includes a poem to my father too, that reflects my admiration for my mother.

This book includes tributes written for mothers.

-By Rakesh Anand Bakshi,
Priyanka Soorma Chaturvedi and Urva Sharma

BOOKTIVITY

PUBLISHING PARTNER
BIRCH BOOKS

Copyright©Rakesh Anand Bakshi

The mind and heart are too beautifully interlinked. The passion that pulsates through us begins at a very young age. Through all this while, the major question being, 'what will I be when I grow up?'

A child only wants to be what they touch, hear, see and feel primarily in their immediate environment, home.

What does Sunny dream to be when he grows up? He wants to share it with his family. Share his dream with your little one.

- Annalise Benjamin, Editor, Educator.

"When I Grow Up"
An illustrated story and activities book
for children age 4-7;
by Rakesh Anand Bakshi,
Priyanka Soorma Chaturvedi
and Urva Sharma.

PUBLISHING PARTNER
BIRCH BOOKS

BOOK TIVITY
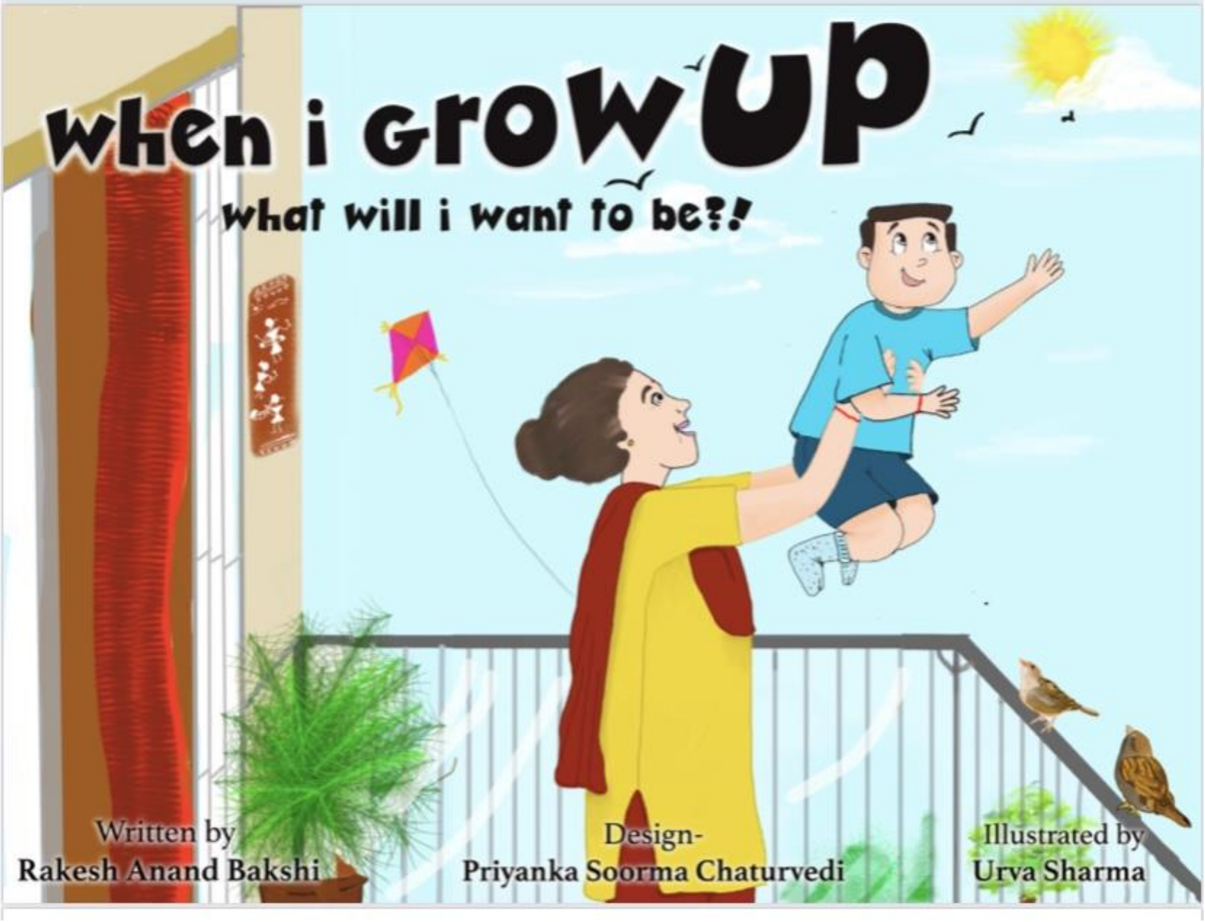
ISBN- 978-93-90787-12-8
Published by and Copyright ©Rakesh Anand Bakshi 2021